# हरिहर-उपासना की परम्परा

तथा

# मध्यकालीन हिन्दी-भक्ति-काव्य

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

## शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

क्षेत्रपाल

निर्देशक

डॉ० जगदीश गुप्त

रीडर, हिन्दी विभाग

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९७४

श्यामिम्ना धवलिम्ना च यमुनाजाह्नवीप्रभाम् ।
तीर्थराजवदव्यग्रां दधती कापि दैवता ।।

^ ^

स्फटिकमरकतश्रीहारिणोः प्रीतियोगात्तदवतु
वपुरेकं कामकंसद्विषोर्वः ।
भवति गिरिसुतायाः सार्धमम्भोधिपुत्र्या
सदृशमहसि कण्ठे यत्र सीमाविवादः ।।

^ ^

यस्मिन्नद्रिसमुद्रजावहनयोरुत्सृज्य नैसर्गिकं
वैरं केसरि-कुंजरप्रवरयोः सौहार्दहृद्या स्थितिः ।
यस्मिन्नप्यहिराजपन्नगभुजो निर्व्याजमैत्रीयुजो
निष्प्रत्यूहमसौ महापुरुषयोः सन्धिर्निबध्नातु वः ।।

^ ^

दिनान्तरात्र्यागमयोरिवाथवा
सुरस्रवन्तीयमुनौघयोरिव ।
उमारमाकामकयोः समागमः
सिताऽसितस्तापमघं च हन्तु वः ।।

---

विषयानुक्रम

पृष्ठ संख्या

हरिहर-उपासना की परम्परा के संदर्भ में—

—

## संकेतिका

| | |
|---|---|
| अ० | अध्याय |
| अथर्व, अथर्व० | अथर्ववेद |
| आ० | आरण्यक |
| आश्व० | आश्वलायन |
| ई०पू० | ईसापूर्व |
| उप०, उपनि० | उपनिषद् |
| एपि०क० | एपिग्रैफिया कर्नाटिका |
| ओ०इ० | ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट |
| क०, कविता, कविता० | कवितावली |
| क०ग्र० | कबीरग्रन्थावली |
| क०म्यु०कै० आफ क्वा० | कलकत्ता म्युजियम कैटैलाग आफ क्वाइंस |
| कै०कै० | कैटैलागस कैटैलागरम |
| कौषी० | कौषीतकि |
| क्र०सं० | क्रमसंख्या |
| गी० | गीतावली |
| गृ०सू०, गृह्सू०, गृसू० | गृह्यसूत्र |
| छं० | छन्द |
| जा० | जानकीमंगल |
| जि० | जिला |
| डे०कै०आफसं०मै० | डेस्क्रिप्टिव कैटैलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट |
| तैत्ति० | तैत्तिरीय |
| दि० | दिनांक |
| दे० | देखिए |
| दो० | दोहावली |
| द्वि० | द्वितीय |
| पंच० | पंचविंश |
| पा० | पारस्कर, पार्वतीमंगल |
| पु० | पुराण |
| पृ० | पृष्ठ |
| प्रा०भा०अ० | प्राचीन भारतीय अभिलेखों |
| ब०, ब०रा० | बरवैरामायण |
| बृ०र० | बृहत्स्तोत्ररत्नाकर |
| ब्रा० | ब्राह्मण |
| भा०पु०सं० | भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण |
| भा०हि०प० | भारतीय हिन्दी परिषद् |
| मानस | रामचरित मानस |
| मैत्रा० | मैत्रायणी |
| मं० | मंगल |
| म्युजि० | म्युजियम |
| रा०, रा०मा०, रा०मानस | रामचरितमानस |
| रा०प्र० | रामाज्ञाप्रश्न |
| रुद्र हृ० | रुद्रहृदय उपनिषद् |
| वाज० | वाजसनेयी |
| वि०, विनय०, विनय प० | विनयपत्रिका |

| | |
|---|---|
| वै० | वैराग्यसंदीपनी |
| शत० | शतपथ |
| स०पु० | काशिकराजकीय संस्कृत महाविद्यालय, सरस्वती भवन, पुस्तकालय का सूचीपत्र |

सा०इ०इ०आफ०गा०गा० - साउथ इंडियन इमेजेज़ आफ गाड्स एंड गाडेसेज़

| | |
|---|---|
| सो० | सोरठा |
| सं० | संख्या, संवत्, संहिता (यथा प्रसंग) |
| सं०अ०सू० | संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ |
| सं०सू० | संस्कृत सूक्तिसागर |
| सु०सु०भा० | सुभाषित सुधारत्नभाण्डागारम् |
| सें०मी० | सेंटीमीटर |
| ह० | हरिगीतिका |
| ह०ह्नु० | हनुमानबाहुक |

—

## हरिहर के संलग्न चित्र : परिचय

## प्राक्कथन

मध्यकालीन धार्मिक चेतना तथा विविध साम्प्रदायिक साधना पद्धतियों के वास्तविक स्वरूप का बोध पूर्वापर सम्बन्धों की यथोचित संगति लगाते हुए एक व्यापक सन्दर्भ में देखने से ही सम्भव होता है । मूलत: भारतीय संस्कृति के विकासक्रम में कला एवं शिल्प, साहित्य एवं शास्त्र तथा दर्शन और धर्म के स्वरूप परस्पर विच्छिन्न नहीं रहे हैं, वरन् उनके मूल स्रोत प्राय: समान मिलते हैं । विकास की दिशाओं में अन्तर अवश्य मिलता है, परन्तु वह उनकी मौलिक एकता का प्राय: समर्थन ही करता है, निषेध या विरोध नहीं । उसी का परिणाम है कि (१) किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन समग्रता में ही उचित और यथार्थ होता है । कवि भी सामाजिक उत्सवों और तीर्थों आदि के मध्य ही रहता है तथा भक्ति मात्र साहित्य की वस्तु न होकर मूर्ति, मन्दिर, कर्मकाण्ड तथा लोक से सम्पृक्त होती है । (२) सही परिप्रेक्ष्य में आने पर बहुत-सी गौण लगने वाली वस्तुएं महत्वपूर्ण दिखाई देने लगती हैं और अनेक तथाकथित महत्व की वस्तुएं गौण या सामान्य प्रतीत होने लगती हैं । यथार्थ स्थिति का बोध होने पर निर्गुण तथा सगुण के समन्वयवादी और हिन्दू - मुस्लिम एकता वाले सम्प्रदाय भी प्रकाश में आये । (३) कुछ सर्वथा उपेक्षित तथ्य सामने आते हैं और एक नया आलोक विकीर्ण करने लगते हैं जिससे ज्ञात वस्तुओं का अर्थ-विस्तार होता है तथा अनेक समस्याओं के समाधान के सूत्र प्राप्त होने लगते हैं ।

हरिहर उक्त अन्तिम श्रेणी में ही आता है । शिव और विष्णु का पृथक अस्तित्व होते हुए भी उनकी एकता की परम्परा में कितनी गहनता, विविधता तथा व्यापकता है यह उसके उद्घाटन से स्पष्ट हो जाता है । साहित्य ही नहीं कला ~~एवं~~ तथा शिल्प में भी हरिहर उपासना का स्वरूप अत्यन्त विस्तीर्ण है । शिव तथा मोहिनी रूप विष्णु के संसर्ग तथा हरिहरपुत्र की कल्पना उत्तर भारत के लिए अज्ञात ही है । परन्तु दक्षिणी भाषाओं से अनभिज्ञ होते हुए भी शिल्पगत ज्ञान के द्वारा उनका बोध हो जाता है । सामान्य दृष्टि से सदाशिव और भैरव समानार्थक होते हुए भी भिन्न हैं । शिव के विविध नामों से शिल्पशास्त्रगत या उपासनापरक विशेषता

सामने आती है ।

अभी तक पुरातात्त्विक तथा कलात्मक क्षेत्रों को मिलाकर साहित्यिक अध्ययन का अभाव खटकता है । फिर इस दृष्टि से हरिहर का अनुशीलन हिन्दी ही क्या किसी भी भाषा में नहीं हुआ है । इतना ही नहीं हरिहर के तो शिल्पगत अध्ययन की भी आवश्यकता है । हिन्दी काव्य में शैव-वैष्णव मतों के संघर्ष एवं समन्वय की अन्तश्चेतना तथा छायायें-प्रतिच्छायें किस रूप में समाविष्ट हुई हैं, इसका सूक्ष्म विश्लेषण किसी ने नहीं किया ।

समन्वयवादी भारतीय संस्कृति में विविध देवों का संश्लेषण हुआ है । शिल्पग्रन्थों में अर्धनारीश्वर, हरिहरहिरण्यगर्भ, हरिहरपितामह, चन्द्रार्कपितामह आदि का मूर्तिविधान और लोक में सूर्यनारायण, मार्तण्डभैरव, हरिहरपितामहार्क, शिव लोकेश्वर, सूर्यलोकेश्वर, विष्णुलोकेश्वर आदि की संयुक्त प्रतिमायें मिलती हैं । विनयपत्रिका की सूर्य स्तुति में हरिहरपितामहार्क का ही समन्वय है । परन्तु साहित्य में इन सब स्वरूपों की अभिव्यक्ति इतनी व्यापक नहीं हुई है । हरिहर की कल्पना भारतीय समन्वयात्मक प्रवृत्ति का एक उदाहरण है जिसके मूल में वैदिक देवों के समन्वय की भावना, वैष्णव-शैव तथा आर्य-अनार्य संघर्ष और फिर समन्वय, वेदान्त, स्मार्त-धर्म तथा गीता की सहिष्णुता, पौराणिक देवत्रयी से ब्रह्मा के लोप, तथा विदेशियों की सहिष्णुता की भावना जैसे कारण अन्तर्निहित हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अनेकता में एकता स्थापित करने का दुराग्रह न होकर एकता की प्रवृत्ति को उद्घाटित कर देना ही उद्दिष्ट रहा है ।

समग्र प्रबन्ध को आठ अध्यायों में विभाजित कर के प्रथम अध्याय में वैदिक आर्य-अनार्य संघर्ष की पृष्ठभूमि , विविध देवों के परिपेक्ष्य में विष्णु रुद्र और प्रजापति की स्थिति तथा उनका विकास और उपनिषदों में प्राप्त शिव-वैष्णव संघर्ष तथा समन्वय को दिया गया है । दूसरे अध्याय में संस्कृत महाकाव्यों, आख्यान - काव्यों, तन्त्रों, संहिताओं, शैव आगमों, शृंगारिक काव्यों, स्तोत्रों, पुराणों तथा उपपुराणों में हरिहरात्मक विद्वेष और प्रतिस्पर्धा के परिप्रेक्ष्य में समन्वय भाव को उद्घाटित किया है । यहाँ मूर्ति तथा वास्तुशास्त्रीय लक्षणग्रन्थों में प्राप्त हरिहर के मूर्तिशास्त्रीय लक्षण भी दिए गए हैं । तीसरे अध्याय में सैन्धव संस्कृति में प्राप्त

शैव-वैष्णव अवशेषों का संकेत देकर चौदहवीं शती विक्रमी तक मिलने वाले हरिहर के पुरातात्विक प्रमाणों-सिक्कों, मोहरों, मूर्तियों, मन्दिरों तथा अभिलेखों- का विश्लेषण है। चौथे अध्याय में हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में विद्यमान शैव तथा वैष्णव प्रकृति से विद्वेषात्मक और सहिष्णु या समन्वयवादी सम्प्रदायों का परिचय देकर संस्कृत के साहित्यिक, आचारपरक, शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में हरिहर की स्थिति दिखाकर उस काल के पुरातात्विक प्रमाणों का उल्लेख है। पाँचवें अध्याय में मध्यकालीन निर्गुण काव्य की एकेश्वरवादी तथा अद्वैतवादी प्रकृति का वर्णन करते के साथ उसकी भक्ति तथा योगभावना का उद्घाटन है। छठे अध्याय में कृष्ण-काव्य तथा सातवें अध्याय में रामकाव्य में हरिहर की स्थिति का विस्तृत वर्णन है। आठवें अध्याय के रूप में नियोजित उपसंहार में हरिहर उपासना का सिंहावलोकन करते हुए उसकी व्यापकता, सार्वदेशिकता, हिन्दीतर भाषाओं में उसकी व्याप्ति के साथ हिन्दी के ही रीतिकवियों की एतद्विषयक धारणा का परिचय देते हुए उसको अधुनातन काल तक दिखाने का प्रयास किया है। अन्त में परिशिष्टों में हरिहर को वृहत्तर भारत तथा मध्यकाल के बाद दिखाकर हरिहर के मौलिक स्तोत्र और शिल्पशास्त्रीय लक्षण दे दिए हैं। एक परिशिष्ट में हरिहर की आधुनिक पूजा-विधि तथा हरिहर के प्राप्त शिल्पशास्त्रीय प्रमाणों की सूची दे दी गई है। अन्त में प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखन में प्रयुक्त आधार तथा साहाय्य ग्रन्थों का विवरण है। प्रबन्ध में आये संक्षिप्त शब्दों की संकेत सूची तथा संलग्न छायाचित्रों का परिचय प्रारम्भ में दे दिया है। प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली के लिए मान्य ग्रन्थों का ही आश्रय लिया गया है।

प्रबन्ध की विषय-सूची तथा रूपरेखा आदि कलेवर को पूज्य गुरुवर डा० जगदीश गुप्त जी के निर्देशन में तैयार किया गया है। पितृतुल्य स्नेह के समक्ष नत-मस्तक होते हुए उनसे प्राप्त अमूल्य सुझावों के प्रति मैं आभार प्रकट कर उसकी सीमा नहीं बांधना चाहता। इस कार्य की सम्पन्नता में इलाहाबाद विश्वविद्यालय, गंगा-नाथ झा संस्कृत विद्यापीठ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा भारती भवन पुस्तकालयों एवं पटना, इलाहाबाद, मथुरा, दिल्ली आदि के पुरातत्व संग्रहालयों, फ्रेन्च इन्स्टी-

ट्यूट आफ इन्डोलाजी, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, कर्नाटक के हरिहर मन्दिर तथा सम्मान्य गुरुजनों, विद्वानों, सुहृदों और इष्ट-मित्रों का हृदय से आभारी हूं जिनसे मुझे इस शोधप्रबन्ध में सद्भावपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है । वस्तुत: यह कार्य उनकी सहायता के बिना अपेक्षित रूप में पूर्ण भी न हो पाता । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सीमा से अधिक न हो जाये इसलिए समस्त उपलब्ध सामग्री सम्मिलित नहीं की है । जो छायाचित्र आदि प्रयोग में नहीं आये हैं उन्हें यथावसर प्रयुक्त करने का प्रयास करूंगा ।

अन्त में विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग का आभारी हूं जिसने शोध छात्रवृत्ति देकर मुझे सहयोग प्रदान किया ।

छत्रपाल

—छत्रपाल

८४ बी, बाघम्बरी मार्ग,
मोतिलैनगर, इलाहाबाद,

नाग पंचमी, सं० २०३१ वि०

## अध्याय -१

### वैदिक साहित्य में हरिहर उपासना के आधार सूत्र

इसमें सन्देह नहीं कि वैदिक काल अपने में दो भिन्न संस्कृतियों को संजोये था। इनमें से एक आर्य थी तो दूसरी को अनार्य या आर्येतर कहा जा सकता है। यद्यपि कुछ लोग आर्य शब्द को जातिवाचक मानने के पक्ष में नहीं हैं। इन अनार्यों को ही आर्यों ने दास, दस्यु, अदेव, मृध्रवाक ( अपरिचित भाषा-भाषी ), अकर्मन (वैदिक कर्मों से रहित ), अदेवयु ( वैदिक देवों को न मानने वाला ), अयज्वन (यज्ञों से शून्य ), अव्रत (व्रतों से रहित), क्रव्याद[1] (कच्चामांस खाने वाला ) और पौरुषेयेण क्रविषा[2] ( नरमांसभक्षक) कहा है। वे प्रार्थना तथा यज्ञ से घृणा करते हैं[3] और क्रूर, चोर तथा निन्दक हैं।[4] उनका काम यज्ञ में बाधा डालना है,[5] इसलिए आर्यों को यज्ञ करते समय सदैव उनका भय बना रहता है।[6] अग्निदेव प्रतिज्ञा करते हैं कि वे एक ऐसा महत्वपूर्ण सूक्त रचेंगे, जिसके द्वारा देवता लोग असुरों को पराभूत कर देंगे।[7] इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि वे अदेव असुरों का अपनोदन कर दें।[8]

आर्यों और अनार्यों के मध्य होने वाले महान् युद्ध को शम्बर-दिवोदास या किरातार्य युद्ध कहा जा सकता है, जो राहुल सांकृत्यायन के अनुसार कम-से-कम चालीस वर्ष तक चलता रहा।[9] युद्ध में इन्द्र-विष्णु ने शम्बर के निन्यानबे किले तोड़

---

१. ऋग्वेद ७।१०४।२; १०।८७।२,१६

२. वही १०।८७।१६

३. वही ७।१०४।१८, २०,२१

४. वही ७।१०४।३,७-१०;१०।८७।२२

५. व शतपथब्राह्मण १।१।१६;१।१।२।३; १।४।२।१२; १।४।४।८; २।१।४।१५; ३।६।१।२७; ३।६।४।६;४।१।१।१६ आदि।

६. वही १।२।१।६; ३।३।४।२; ३।५।३।१५; ४।१।१।६; ४।२।५।१०; ४।६।६।१ आदि

७. ऋग्वेद १०।५३।४      ८. वही ८।९६।६

९. ऋग्वेदिक आर्य, पृष्ठ १०२

डाले थे, वर्चिन् के एक लाख वीरों को धराशायी कर दिया[१] तथा ऋजिश्वा के साथ मैत्री कर के इन्द्र ने मायावी पिप्रु असुर के दृढ़ किलों को भेद दिया।[२] शम्बर पहाड़ी लोगों (किरातों) का नेता था, इस अवधारणा की पुष्टि उस (शम्बर) के सौ पर्वतीय दुर्ग होने से हो जाती है।[३] अन्य स्थलों पर भी उन्हें गुहा या पर्वतवासी कहा है।[४] प्रस्तुत संघर्ष को वैदिक साहित्य में देवासुर संग्राम के नाम से अभिहित किया गया है, जिसका ब्राह्मण साहित्य में विस्तृत वर्णन है।[५] आर्यों ने अपने इन्हीं शत्रुओं को शिश्नदेवाः (लिंगपूजक)[६] कहा है और इन्द्र से प्रार्थना की है कि वे उन्हें यज्ञस्थल से दूर रखें।[७] ऋग्वेद में ही शृंगमुकुटधारी तथा त्रिमुखी दास का उल्लेख है,[८] जिसे त्रित ने मारा था।[९] तैत्तिरीय संहिता के अनुसार त्वष्टा का पुत्र त्रिशीर्ष विश्वरूप असुरों का भागिनेय था, जिसका इन्द्र ने शिरश्छेदन किया।[१०] आगे चलकर महाभारत की एक कथा में ऐन्द्र पद की प्राप्ति के लिये त्रिशिरा-विश्वरूप का संघर्ष व्याख्यात है। यहां त्रिशिरा को महान् तेजस्वी भी बतलाया गया है।[११] महाभारत में अन्यत्र विश्वरूप को सत् और असत् के परे विश्वोत्तीर्ण और विश्वानुग रूप में श्रेष्ठतम दैवतत्व भी चित्रित किया गया है। हरिवंश पुराण में रुद्र को त्वष्टा-पुत्र बतलाया गया है।[१२] कौषीतकि ब्राह्मण का जो अंश तैत्तिरीय संहिता के वेदार्थप्रकाशभाष्य में उद्धृत हुआ है, उसमें त्रिशिरा विश्वरूप को अरुणामुख यतियों में गिनाया गया है, जिनको

---

१. ऋग्वेद, ७।६६।५

२. वही १०।१३८।३,

३. वही २।१४।६

४. वाज० सं० ३०।१६; अथर्व १०।४।१४

५. तैत्ति०सं० २।१।३।१; ६।२।४।३,४; मैत्रा० सं० २।८।३; ऐतरेय ब्राह्मण ६।१५, शतपथ ब्रा० १।२।४।८,६; १।४।१।४०; १।५।३।२,३; १।६।२।३४; २।१।१।१३-१६; ३।४।३।२; ३।४।४।३; ३।५।४।२; ३।६।१।१८ आदि।

६. के०ए० नीलकंठ शास्त्री ने रौथ के इस मत का समर्थन किया है कि शिश्नदेवः का अर्थ पुंश्चयुक्त, असुर हो सकता है।- कल्चरल हेरिटेज, आफ इण्डिया, भाग४, पृ० ६६

७. ऋग्वेद ७।२१।५, १०।६६।३

८. वही ७।६६।४

९. वही १०।८।८; १०।६६।६

१०. तैत्ति०सं० २।५।१।१      ११. उद्योग, सैनोद्योग पर्व ६।४-६

इन्द्र ने मारकर भेड़ियों को खिला दिया था।[1] शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि जब इन्द्र त्वष्टा के त्रिशीर्षा पुत्र विश्वरूप का वध करना चाहता था, तभी त्रित ने उसे मार डाला और इन्द्र हत्या के इस पाप से बच गया।[2] प्रस्तुत सन्दर्भ में सिन्धुघाटी की उस मोहर का अनायास स्मरण हो आता है, जिस पर सशृंगी त्रिमुखी आकृति योगमुद्रा में आसीन है और उसे पशु घेरे हैं।[3] इसीप्रकार वैदिकशिश्नदेवा: भी सिन्धुघाटी के वह लोग ज्ञात होते हैं, जो लिंग और योनि को पूजते थे। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि आर्यों के शत्रु सिन्धु के वही निवासी थे, जिनका उन्होंने नाश किया। मोहरका अनार्यत्व इससे भी सिद्ध हो जाता है कि निवृत्तिमूलक धार्मिक परम्परायें अवैदिक हैं[4] और इस मोहर की आकृति योगमुद्रा में प्रदर्शित है। पुरातात्विक आधारों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि सैन्धव संस्कृति के विनाश का कारण आर्यों का आक्रमण ही था।[5]

इस संघर्ष में आर्यों की विजय हुई और उन्होंने विजित अनार्यों को दास बना लिया, जिन्हें वे दान में भी दे दिया करते थे।[6] प्रसिद्ध दाशराज्ञ ( आर्यों के पारस्परिक) युद्ध से भी दोनों के समन्वय की पुष्टि होती है, जिसमें सुदास के विरुद्ध लड़ने के लिये अनार्य भी सम्मिलित हुये थे।[7] आर्यों ने अनार्यों को जिस अन्य रूप में ग्रहण किया वह थी वर्ण-व्यवस्था, जिसमें उन्हें शूद्र रूप में अधिगृहीत कर लिया। इस प्रकार सांस्कृतिक समन्वय के लिये स्वस्थ वातावरण निर्मित हो गया।

जहां तक अनार्यों की धार्मिक स्थिति का सम्बन्ध है, उनमें लिंगपूजा प्रचलित थी और उनका एक देवता ऐसा था, जिसका पशुओं और योग से विशेष सम्बन्ध

---

१. अतएव कौषीतकिन इन्द्रवाक्यमेतदामनन्ति यन्मां विजानीयात्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रम् अरुन्मुखान् यतीन् सालावृकेभ्य: प्रायच्छम्।

२. शतपथ ब्रा० १।२।३।२

३. मोहेन्जोदड़ो एण्ड दि इण्डस सिविलिज़ेशन, भाग १, फलक १२, चित्र १७; उत्खनित इतिहास, पृ० ८०, चित्र ७४

४. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृ०४-६

५. इण्डस सिविलिज़ेशन, पृ० ९४-९५

६. ऋग्वेद ८।५६।३

७ ऋग्वेद ७।३३।२

था । दूसरी ओर आर्य संस्कृति यज्ञ-प्रधान थी, जिसमें देवों का बाहुल्य था । ऋग्वेद में एक स्थल पर इनकी संख्या तैंतीस[1] और दूसरे स्थल पर निन्यानवे बताई गई है ।[2] एक अन्य मन्त्र के अनुसार निन्यानवे देवता स्वर्ग में, निन्यानवे पृथ्वी पर और निन्यानवे जल(वायु) में रहते हैं ।[3] यह संख्या तीन हजार तीन सौ उन्तालीस तक पहुंच गयी है ।[4]अथर्ववेद तथा ब्राह्मणों ने तैंतीस संख्या का समर्थन किया है ।[5]ऋग्वेद ( १।१३६।११) के त्रिधा विभाजन के आधार पर यास्क ने देवों को पृथ्वी स्थानीय[6], अन्तरिक्ष या मध्यस्थानीय[7] और द्यौस्थानीय[8]—तीन वर्गों में विभाजित करते हुये कहा है कि उनके पूर्ववर्ती नैरुक्तों के अनुसार देवता केवल तीन हैं - पृथ्वी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु या इन्द्र और द्यौलोक में सूर्य ।

परन्तु इस देवमण्डल में बहुत-से देवता ऐसे हैं, जिनका पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया गया है या उनमें समान विशेषतायें आरोपित हुई हैं । उषस्, सूर्य एवं अग्नि के कुछ गुण समान हैं जैसे ज्योतिष्मत्ता, अन्धकार का निरसन और प्रातःकालीन आविर्भाव । एक दूसरे से पार्थक्य उस अवस्था में और भी कम हो जाता है, जब विभिन्न देवता एक ही प्राकृतिक दृश्य या घटना के विभिन्न पक्षों से उत्पन्न बताये जाते हैं ।असामान्य महत्ता के कुछ कार्य प्रत्येक महान् देवता करता है और लगभग दस-बारह देवता दोनों लोकों की सृष्टि करते बताये गये हैं तथा इनसे भी अधिक देवताओं ने सूर्य का आविर्भाव कर उसे आकाश में स्थिर किया है अथवा उसके लिये पथ प्रशस्त किया है । चार-पांच देवता पृथ्वी और आकाश के विस्तारक हैं तथा अनेक देवता ( सूर्य, सविता, पूषा, इन्द्र, पर्जन्य, आदित्यगण) चर और अचर सभी

---

१. ऋग्वेद, ३।६।६

२. वही, ८।३५।३

३. वही १।१३६।११

४. वही, १।३४।११; १।४५।२; १८।३५।३ ; ८।३६।६

५. निरुक्त अथर्व० १०।७।१३, शतपथ ४।५।७।२; ११।६।३।५

६. निरुक्त ७।१४ से ६।४३

७. वही, १०।१ से ११।५०

८. वही, १२।१-४६

के स्वामी हैं ।[१]

देवों को युग्म रूप में आहूत करने से एक देवता के गुण विशेष दूसरे में भी निक्षिप्त हो जाते हैं । इसी आधार पर अग्नि सोमपा, वृत्रघ्न और गो, जल तथा सूर्य का विजेता बन जाता है जबकि यह विशेषतायें इन्द्र की हैं । एक ही देवता को भिन्न अवसर पर भिन्न रूप में देखा जाता है, जैसे अग्निदेव जन्म से वरुण हैं, समिद्ध होने पर मित्र हैं, उसमें सभी देवता केन्द्रित हैं और उपासक के लिये वह इन्द्र है ।[२] वह मित्र वरुण भी है ।[३] इसी प्रकार सूर्य अग्नि का एक रूप है ।[४] सूर्य विश्वकर्मा है,[५] सविता है,[६] प्रजापति है ।[७] इसी आधार पर विभिन्न देवताओं को एक ही परमसत्ता के भिन्न-भिन्न रूप कहा जा सकता है, जिन्हें विप्र लोग अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि अलग-अलग नामों से पुकारते हैं ।[८] उस एक ही सुपर्ण को कवि अनेक प्रकार से देखते हैं ।[९] मार्ग तो एक है, परन्तु उस पर चलने वाले रथ अनेक[१०] अदिति[११] ~~मार्ग तो एक है, परन्तु उस~~ और प्रजापति[१२] सब देवों के मूल ही नहीं सम्पूर्ण प्रकृति के प्रतिनिधि हैं ।

कुछ देवता परस्पर अधीन भी हैं, जैसे वरुण और अश्विन विष्णु के समक्ष नतमस्तक हैं,[१३] इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा, रुद्र सवितृदेव के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते[१४] और वरुण तथा सूर्य इन्द्र के अधीन हैं ।[१५]

---

१. वैदिक देवशास्त्र, पृ० २८-२६

२. ऋग्वेद ५।३।१

३. वही, ३।५।४, ५।३।१

४. वही, १०।८८।११

५. वही १०।१७०।४

६. वही, १०।१५८।१-४; १।३५।१-११; १।१२४।१; २।३८।१; ५।८१।४,

७. वही ४।५३।२; शतपथ ब्रा० १२।३।५।१; तैत्तिरीय ब्रा० १।६।४।१; १।१५७।१; ७।३५।८,१०; १०।१२६।४; १०।१६१।३ आदि

८. वही १।१६४।४६ (अथर्ववेद-उतैषां पितोत वा पुत्र- १०।८।२८ तथा- य एतं देवमेकवृतं वेद - १३।४।१५ से तुलनीय)

९. ऋग्वेद १०।११४।५ १०. वही १०।१४२।५, ११. वही, १।८६।१०

१२. वही १०।१२१।८,१० १३. वही, १।१५६।४ १४. वही, २।३८।६

१५. वही, १।१०१।३

देवताओं में परस्पर पिता-पुत्र अथवा अंग-अंगी का सम्बन्ध है । रुद्र मरुतों के पिता है अथवा वरुण ने अग्नि, सूर्य स्वं सोम को उत्पन्न किया है ।[1] द्यौ की पुत्री उषस् तथा पुत्र अश्विन् अग्नि, पर्जन्य, सूर्य, आदित्यगण, मरुतगण, अंगिरस और इन्द्र है ।[2] सूर्य की उत्पत्ति अदिति,[3] द्यौ,[4] सोम,[5] इन्द्रविष्णु[6] या धाता[7] से हुई है ।

प्राचीन देवताओं का महत्त्व घट भी जाता है । इसी आधार पर भारत-ईरानीकाल का महानतम देव वरुण ऋग्वेद में अपनी महत्ता खो बैठा और आर्यों के महत्वपूर्ण देवता इन्द्र के अस्तित्व में भी सन्देह किया जाने लगा था । प्रश्न है - इन्द्र कौन है ? क्या किसी ने उसे कभी देखा भी है ? उसकी तो सत्ता ही नहीं है[8]। डा० राधाकृष्णन् ऋग्वेद (८।९६।१३-१५) में ही इन्द्र व कृष्ण — गीता के देवका आदि रूप — के संघर्ष का संकेत भी पाते हैं ।[9]

इस सब से स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वैदिक काल से ही एकेश्वरवाद की धारणा पनपने लगी थी । अत यदि पौराणिक देवत्रयी पर ध्यान दें तो उसके मूल रूप वैदिक देवता मिलते हैं —रुद्र, विष्णु और प्रजापति । इन्हीं से त्रिदेव की धारणा विकसित हुई और उसमें से ब्रह्मा का लोप होने पर शिव तथा विष्णु शेष रह गये, जिनसे शैवों और वैष्णवों के विभिन्न सम्प्रदाय बने ।

## विष्णु

संख्या की दृष्टि से ऋग्वेद में विष्णु का चौथा स्थान है ।

---

१. ऋग्वेद, ५।८५।२

२. वैदिक देवशास्त्र, पृ० ४०

३. ऋग्वेद १।५०।१३; १।१६१।६; ८।१०१।११; १०।८८।११

४. वही, १०।३७।१

५. वही ६।४४।२३; ६।६७।४१;६।६६।५; ६।६३।७; ६।१०७।७

६. वही, ~~६।४४।२३~~ , ७।६७।४

७. वही १०।१६०।३

८. ऋग्वेद २।१२।५; ८।१०३।६

९. इण्डियन फिलासफी, भाग १, पृ० ८७ व आगे ।

यहाँ वे इन्द्र के सहज मित्र हैं (१।२२।१६)। उन दोनों ने एक साथ दास, शम्बर तथा वर्चिन पर विजय प्राप्त की थी (७।६६।४,५)। वे वृत्रघ्न में इन्द्र के सहायक हैं (६।२०।२) और दोनों मिलकर अग्नि के उत्पादक हैं (७।६६।४,६)। इन्द्र की सहायता से उन्होंने गो के घेरे को खोला है (१।१५६।४)। विष्णु मरुतों के भी साथी हैं (१।८५।७; २।३४।११; ५।८७।४,५;७।४०।५ आदि) और गर्भाशय में पुत्र-स्थापना के लिये उनका उपाधान होता है (१०।१८४)। वे भ्रूण-रक्षक, गर्भवर्धक (७।३६।६, १०।१८४।१), संरक्षक (३।५५।१०), उदारदानी (१।१५५।४क), पृथ्वी, द्यौलोक आदि समस्त भुवनों के धारक (१।१५४।४) तथा संसार के स्थापक हैं (७।६६।३)। वह वृहत् शरीर एवं युवाकुमार हैं (१।१५५।२), जो तीन पदों में समस्त पृथ्वी का अतिक्रमण कर लेते और आकाश में रहते हैं (१।१५५।५, ७।६६।२)। उनके तीन पदों में भुवनों का निवास है (१।१५४।२)। विष्णु के तीन पदों को यास्क व और्णनाभ ने सूर्य के उदय मध्याह्न तथा अस्तकाल का द्योतक माना है और शाकपूणि, बेर्गेन तथा मैकडानल के अनुसार यह सूर्य का तीन लोकों में से अधिक्रमण है। इन त्रिपादों से प्रकाश के तीन रूपों का भी अर्थ लिया गया है — अर्थात् पृथ्वी पर अग्नि, आकाश में विद्युत् और नभ में सूर्य। विष्णु व सूर्य दोनों विक्रम हैं (१।२२।१८, ५।४७। ३) और एक स्थान पर तो विष्णु सूर्य के एक रूप (१।१५५।६) तथा रश्मि-आच्छादित हैं (७।६६।१, ७।१००।५-६)। विष्णु ने समस्त पार्थिव लोकों को नापा है (१।१५४।१,६।४६।१३) और उनका शस्त्र सूर्य जैसा घूमता चक्र है (५।६३।४)। वे गिरिष्ठा तथा गिरिक्षित हैं (१।१५४।२,३)। यज्ञ से तादात्म्य करते हुये उन्हें ऋतगर्भ कहा गया है (१।१५६।३)। ब्राह्मणों में उनका तद्रूप्य यज्ञ से हुआ है और परवर्ती साहित्य में वे यज्ञ, यज्ञावयव, यज्ञेश्वर, यज्ञपुरुष, यज्ञभावन, यज्ञवराह, यज्ञकृत, यज्ञत्रातृ, यज्ञभोक्तृ, यज्ञकृतु, यज्ञवाहन, यज्ञवीर्य आदि कहलाये हैं।[1] वे गोपा हैं (१।२२।१८, १०।१६।४) तथा गौओं के निवास हैं (१।१५४।६) और उनकी तुलना विध्वंसकारी पशु से की गई है (१।६१।७, १।१५४।२, ८।७७।१०)। डा० दिनेशचन्द्र सरकार एक स्थान (६।४६।१३) पर विष्णु के अवतार का भी संकेत पाते हैं।[2]

---

१. कल्चरल हेरिटेज़ आफ इण्डिया, भाग ४, पृ० ११०
२ वही, प० १३२

यजुर्वेद में विष्णु से प्रार्थना की गई है कि वे अन्तरिक्ष, द्यौ या पृथ्वी से अपार धन दें (५।१६)। यहीं उन्हें पहाड़ी पशुओं के समान भयानक कहा है, जिसके तीन पदों पर समस्त संसार स्थित है (५।२०)। उनसे यजमान के लिए धन व सन्तान देने की प्रार्थना की गई है। (८।१७)। [1]तैत्तिरीय संहिता में विष्णु-पर्वतों के स्वामी हैं (३।४।५।१) तथा वामन रूप ग्रहण करके तीनों लोकों को जीतते हैं (२।१।३।१)। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।६।१।५) में भी विष्णु के वामनावतार का उल्लेख है। ऐतरेय ब्राह्मण(१।१) में अग्नि से उनका सम्बन्ध स्थापित करते हुये उन्हें (विष्णु को) परमदेव और अग्नि को अधमदेव कहा है। यहां उनका देवों का द्वारपाल होना (१।३०) इस बात का सूचक है कि वे स्वर्ग में प्रवेश देने के अधिकारी हैं। यहीं वे स्वर्ग के देवताओं में सर्वोच्च घोषित किये जाते हैं। वे यज्ञ के देवता हैं (शतपथ,३।५।३।२) और यज्ञ से उनका तादात्म्य (ऐतरेय ब्राह्मण १।१३; कौषी०ब्रा० १६।८; शत० ब्रा० १।१।३२; १।२।५।३,३।१।१।६८, ४।३।५। ८ इत्यादि) इनकी विकासशील महत्ता का द्योतक है, इसीलिये उनसे यज्ञ और यज्ञपति की रक्षा की प्रार्थना हुई है (शत० १।३।४।१६)। ऐतरेय ब्राह्मण (१४,३।३८) में वे यज्ञ के विघ्नों का नाश करते हैं। इसी के अनुसार जब असुरों ने विष्णु को उतनी भूमि देना स्वीकार किया, जितनी वह तीन पदों से माप लें तो उन्होंने तीनों लोकों को अधिकृत कर लिया (वही ६।१५)। शतपथ ब्राह्मण के एक आख्यान में मिलता है कि विष्णु के माध्यम से देवों ने असुरों से भूमि हस्तगत की (१।२।५।३-६)। यहीं पर विष्णु को वामन कहा है (१।२।५।५)। विष्णु के त्रिपाद पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्यौलोक में पड़ते हैं (१।१।२।१३, ३।६।३।३)। इसी ब्राह्मण के अनुसार विष्णु का सिर सूर्य है। विष्णु का पद परम है और वह विजयी हैं (शत० ३।७।१।८)। देवों में सर्वोच्चता का विवाद उपस्थित होने पर विष्णु ही महान् घोषित किये जाते हैं (शत० १४।१।१, तैत्ति०आ० ५।१)। शतपथ ब्राह्मण (१२।३।४।१) में नारायण का भी उल्लेख है, परन्तु विष्णु से उनका सम्बन्ध अज्ञात है। इसी के एक अन्य स्थल (१३।६।१) पर कहा है कि पुरुष नारायण ने पंचरात्र सत्र के द्वारा

---

१. देखिये - अथर्ववेद ७।१७।४।

सर्वोच्च देवत्व प्राप्त किया । मैत्रायणी संहिता (२।६) में विष्णु का उल्लेख केशवनारायण के रूप में हुआ है तथा तैत्तिरीय आरण्यक (१०।११) में विष्णु और नारायण का सम्बन्ध स्पष्ट है । यहाँ वे महान्,सर्वोच्च,हरि और वासुदेव भी हैं । बौधायन धर्मसूत्र ( पूर्वी शती ई०पू०) में भी विष्णु तथा नारायण का एकीकरण मिलता है । कतिपय विद्वान् नारायण शब्द और उसकी अवधारणा को आर्येतर मानते हैं ।[१]

रुद्र –

अन्तरिक्षीय देवता रुद्र का ऋग्वेद में भूरा वर्ण बताया है ( २।३३।५) । उनके केश घुंघराले हैं (१।११४।१,५)।वह वज्र (२।३३।७) और धनुषबाण धारण करते हैं (२।३३।१०, ११;५।४२।११; १०।१२५।६) तथा मृग की भाँति भीम (२।३३।६, ११;१०।१२६।५),घातक (२।३३।११),अरुष वराह (१।११४।५), स्वयशस व शिव ( १।१२९।३, १०।९२।९), ईशान (२।३३।९) , जगत-पिता (६।४९(१०), शुभाशुभ के द्रष्टा (७।४६।२) तथा मरुतों के पिता हैं ( १।११४।६,९;२।३३।१, २।३४।२) । कवि उनसे उपासकों, उनके परिजनों, पशुओं आदि की क्षति न करने की प्रार्थना करते हुये (१।११४।७,८) उनके गोघ्न और नृघ्न वज्र अलग रखने (२।३३।१) तथा क्रोध एवं वज्र वापिस ले लेने की इच्छा प्रकट करता है (२।३३।११,१४) । रुद्र भयोत्पादक हैं (२।३३।४,६,१५), इसलिये उनसे गौओं, उपासकों परिजनों की क्षति न करने ( ६।२८।७) और कल्याण करने के लिए अनुनय विनय की गई है ( १।४३।६, १।११४।२, २।३३।६; ५।५१।१३; ७।३५।६) । वे औषधिदायक (२।३३।१२), प्रत्येक औषधि के स्वामी (२।३३।२; ५।४२।११; ७।४६।३), वरणीय भेषजधारी (१।११४।५), वैद्यों के मूर्धन्य ( २।३३।४), शुचि, उग्र,पीयूषपाणि व आयुधधारी ( ८।२९।४), कपर्दिन ( जटाजूटधारी- १।११४।१,५), कल्पलीकिन ( जलने या दहकने वाले - २।३३।८) वृषभ ( वर्षाकारक या अत्यधिक प्रजनन शक्ति सम्पन्न अत: पुरुषत्वपूर्ण-२।३३। ७,८,१५ आदि ) तथा सर्वद्रष्टा हैं (७।४६।२) । यहाँ रुद्र की वृषभ संज्ञा सिन्धु घाटी के सन्दर्भ में विशेष अर्थपूर्ण प्रतीत होती है । उनका तादात्म्य अग्नि से भी

---

१. ऐन इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी आफ इण्डियन हिस्ट्री, पृ० १११,

२/

किया गया है (२।१।६; ३।२।५) । प्रस्तुत विशेषताओं के आधार पर मैक्डानल ने क्रोध व संहार के इस देवता को तूफान एवं अग्नि (विद्युत) के संयोग से उत्पन्न,[1] भण्डारकर ने विद्युत की विनाशक शक्ति[2] और डा० यदुवंशी ने घने बादलों में चमकती हुई बिजली का प्रतीक माना है ।[3] इस रूप में रुद्र को शुद्ध भारतीय देवता कहा जा सकता है ।

ऊपर आर्य-अनार्य संघर्ष पर एक सूक्ष्म दृष्टिपात किया जा चुका है । ऋग्वेद से ही यह ज्ञात होता है कि उसीकाल में दोनों जातियों का समन्वय हो चुका था, इसलिये एक का दूसरी पर प्रभाव स्वाभाविक है । ऊपर सिन्धुघाटी के पशुपति योगी का भी उल्लेख हुआ है, जो वहां का एक देवता था ।[4] इसकी कुछ विशेषतायें रुद्र के समान होने के कारण दोनों का समन्वय हुआ । इसीलिये यजुर्वेद एवं परवर्ती साहित्य में रुद्र अप्रत्याशित महत्व ग्रहण कर लेते हैं और उनमें अनार्य प्रभाव परिलक्षित होता है । यजुर्वेद के अनेक अंशों से उनके किंचित् अनार्यत्व की अभिपुष्टि होती है ।[5]

यजुर्वेद में रुद्र ताम्र वर्ण, लोहित, नीलग्रीव तथा कृत्तिवास हैं ( वाज०सं० १६।७) । यहाँ उन्हें अशनि, पशुपति, भव, शर्व, महादेव, ईशान व उग्रदेव कहा गया है (वाज० सं० ३६।८) । परन्तु यजुर्वेद में दो सूक्त ऐसे मिलते हैं जिनसे रुद्रका एक नवीन स्वरूप उभर कर आता है । यह दो सूक्त हैं – त्र्यम्बक होम और शतरुद्रिय । त्र्यम्बक होम[6] में पशुपति और भिषक् रूप रुद्र के साथ अम्बिका नामक एक देवी भी जुड़ जाती है, जिसे रुद्र की बहिन कहा गया है । यहाँ रुद्र कृत्तिवास हैं और

---

१. वैदिक देवशास्त्र, पृ० १८८
२. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० ११७,
३. शैवमत, पृ० २,
४. देखिये-आगे तृतीय अध्याय .
५. वाज०सं० १।६०; तैत्ति०सं० ४।४
६. वाज०सं० ३।५७।६३; तैत्ति० सं० १।८।६

उनका वाहन मूषक । मृत्यु से मुक्ति तथा अमृतत्व प्राप्ति के लिये उनकी स्तुति हुई है । अन्त में जब रुद्र का यज्ञ भाग उन्हें दे दिया जाता है, तो स्तोता कुछ ऐसे ढंग से रुद्र को मूजवत (पर्वत विशेष) के उस पार चले जाने की प्रार्थना करता है मानो उसे रुद्र की उपस्थिति अभीष्ट नहीं है । शतरुद्रिय स्तोत्र[१] में वह शिव, शिवतर, शंकर, भिषक, कपर्दिन, नीलग्रीव (अथर्व० नीलशिखण्डिन), पशुपति, कृत्तिवासा आदि कहलाये हैं । साथ ही कुछ ऐसी उपाधियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं जो उन्हें पर्वतों से सम्बद्ध करती हैं, जैसे गिरिशंत, गिरित्र, गिरिचर, गिरिशाय । उनकी लोकप्रियता द्योतक उपाधियाँ हैं -- क्षेत्रपति और वणिक् । इन महत्वपूर्ण अभिधानों के साथ उन्हें स्तेनानांपति (चोरों का अधिपति), वंचक, स्तायूनां पति (ठगों का स्वामी), तस्कराणांपति, मुष्णातांपति, विकृन्तानांपति (गलकटों का अधिराज), कुलुचानांपति, वनानांपति आदि से भी अभिहित किया है । यहीं पाँच मन्त्रों में रुद्र के गणों का वर्णन है, जो उनके उपासक होंगे । इनमें सभा, सभापति, गण, गणपति आदि के साथ व्रात, व्रातपति, तक्षक, रथकार, कुलाल, कर्मकार, निषाद, पुंजिष्ठ, श्वनि (कुत्ता पालक), मृगायु (व्याध) आदि सम्मिलित हैं ।

त्र्यम्बक होम में रुद्र से दूर रहने का अनुरोध इस कारण किया गया होगा कि उनमें किसी अनार्य देवता की विशेषतायें सन्निविष्ट हो चुकी होंगी । विद्वानों का विचार है कि यह प्रभाव हिमालय की उपत्यकाओं में रहने वाली किरात आदि जातियों के देवता से अधिगृहीत हुआ था, जिसे वे कृत्तिवासा और कन्दरावासी मानती थीं,[२] इसीलिए रुद्र के साथ पर्वत से सम्बद्ध द्योतक उपाधियाँ सन्निविष्ट हो गईं । डा० यदुवंशी ने मूजवत से परे जाने का अर्थ उसका उत्तरदिशावासी होना लिया है ।[३] रुद्र के शिव और शम्भु नामों को भी तमिल भाषा के शिवन् और शेम्बु से व्युत्पन्न बताते हुये उन्हें अनार्य माना गया है ।[४] परन्तु नाम के ही इतरभाषी होने

---

१. वा०सं० १६।१-६६

२. शैवमत, पृ० १५; उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति, पृ० २३४

३. शैवमत, पृ० १४

४. उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति, पृ० ४

से किसी के स्वरूप को विदेशी मान लेना अनुचित होगा । चीन में कितने ही बौद्ध चरित्रों के नाम को चीनी भाषा में परिवर्तित कर दिया गया है और वे वहीं से व्युत्पन्न लगते हैं, परन्तु इतने से ही उनकी विदेशिता सिद्ध नहीं हो जाती ।

रुद्र की पशुपति उपाधि सिन्धु घाटी के योगी, पशुपति का स्मरण दिलाती हैं । वनानांपति से इस बात की पुष्टि होती है कि रुद्र ने किसी ऐसे देवता को आत्मसात् किया था, जिसे चोर, वंचक, ठग, तस्कर आदि स्वभाव की वन्यजातियां पूजती थीं । इस अनार्य देवता को रुद्र द्वारा ही समाविष्ट करने का कारण था, वैदिक रुद्र का जन सामान्य देवता होना जो उच्च वर्ग के अतिरिक्त विशेषत: निम्न वर्ग का उपास्य था ।

अथर्ववेद में रुद्र-शिव महादेव (१५।१।४।५), सर्वव्यापक (७।८७।१), सहस्राक्ष (११।२।७), नीलशिखंडिन (२।२७।६; ६।९३।१; ११।२।७) तथा पशुपति (२।३४।१; ५।२४।१२, ११।२।१ आदि) हैं, जिनका आह्वान भूतपिशाचादि से रक्षार्थ ( ६।३२।८) तथा व्याधिनाश के लिए किया गया है (६।४४।३; ६।५७।१; १६।१०।६)। अथर्ववेद के जिन आरम्भिक मन्त्रों ( ११।२।१; १२।४।१७) में भव और शर्व दो भिन्न देवता हैं, उन्हीं को आगे चलकर (६।४, ११।६।९) रुद्र ने आत्मसात् कर लिया है और यह दोनों रुद्र के नाम बन गये हैं । एक स्थल (११।२।६) पर रुद्र के लिये नरमेध तक का संकेत पाया जाता है, जहाँ उन्हें यज्ञ, आहुति के रूप में पांच प्राणियों देने का विधान है ।[2] उनके साथ विकराल श्वान भी हैं, जो अपने भोज्य को बिना चबाये निगल जाते हैं (१०।१।३०) ।

ब्राह्मणों में रुद्र की महत्ता-वृद्धि तो हुई, परन्तु उनसे पलायन का भाव और अधिक तीव्र हुआ है । यहाँ वे पशुहन्ता (पंच०ब्रा० १४।९।१२; ताण्ड्य ७।९।१६-१८), घोर, क्रूर (तैत्ति० ३।२।५) तथा भयानक हैं ( ऐतरेय ३।३३।१) । उनका अग्नि से तादात्म्य स्थापित करते हुये (शतपथ ६।१।३।१०) अग्नि को शर्व, भव, पशुपति, रुद्र, उग्र, महादेव, अशनि आदि कहा गया है (कौशीतकि ६।१; शतपथ १।७।३।८; ६।१।३।७) ।

---

१. संभवत: यह भूत, पिशाचों के अधिपति माने जाते होंगे ।

२. उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति, पृ० २२७

अन्य देवताओं से उपेक्षित होते हुये भी वे देवाधिपति हैं, जिनसे देवता आतंकित हैं (कौशीतकि २३।३)। रुद्र सेदेवताओं के भय की बात शतपथ (६।१।१।१-५) में भी आई है। ऐतरेय ब्राह्मण (५।१४) के नाभानेदिष्ट आख्यान में रुद्र संसार की प्रत्येक वस्तु पर अपना अधिकार बताते हैं। उन्हें वैभवशाली (शतपथ १।५।१।१७) तथा सब प्राणियों को सुखदायक माना गया है (शतपथ (२।६।२।११)। कई स्थलों पर रुद्र का महत्त्व चरम सीमा पर पहुँच गया है, जैसे तीन ही देवों के प्रतिपादन में रुद्र भी सम्मिलित हैं (शेष दो हैं वसु व आदित्य,शतपथ १।८।३।८) अथवा जब वाणी को सोम लेने भेजा जा रहा है तो उसकी रक्षा के लिये रुद्र को नियुक्त किया जाता है (शतपथ ३।२।४।२०)। इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रजापति के अगम्य गमन का आख्यान है। ऐतरेय ब्राह्मण ( ३।१३।६) में प्रजापति का यह अपराध सरस्वती के प्रति है और शतपथ ब्राह्मण (१।७।४।१-३)में पुत्री द्यौ या उषा के प्रति। दोनों ही स्थलों पर प्रजापति को दण्ड देने का कार्य रुद्र करते हैं, जिससे उनका नैतिक उत्कर्ष सिद्ध होता है। जैमिनीय ब्राह्मण (३।२६१।६३ ) में उनकी नैतिकता और अधिक स्पष्ट हो जाती है जहाँ कहा है कि देवताओं ने प्राणिमात्र के कर्मों का अवलोकन करने तथा धर्म के विरुद्ध आचरणकर्ताओं का विनाश करने के लिये रुद्र को उत्पन्न किया। उनकी उग्रता को ध्यान में रखते हुये - परन्तु अनार्य प्रभाव के कारण संभवत: उन्हें नीचा दिखाने के लिये - उनकी उत्पत्ति देवों के घोर अंश से बताई है (ऐतरेय ३।८।६; तलवकार ३।२६६; शतपथ ६।१।१।६ ; जैमिनीय ३।२६१।२६३)।रुद्र की विविध उपाधियाँ अब उनके विविध नाम हो गये हैं।शतपथ ब्राह्मण (६।१।३) में उन्हें प्रजापति और उषा के संसर्ग से उत्पन्न बताते हुये, रुद्र ,सर्व, पशुपति, उग्र, अशनि (-द्रष्टव्य रुद्र का प्राचीन विद्युत स्वरूप ), भव, महान्देव, ईशान और कुमार नामदिये गये हैं। इन कथाओं में रुद्र को सहस्राक्ष और सहस्रपाद भी कहा गया है। ऋग्वेद में यह विशेषता रुद्र के लिये प्रयुक्त हुए हैं। रुद्र की महत्ता के ही कारण प्रजापति, ईशान,महान्देव तथा पशुपति जैसे विरुदों को अधिग्रहण करना चाहते हैं।[१] बोधायन गृह्यसूत्र में रुद्र विश्वव्यापी परमब्रह्म (१।२।७।२३) आदिपुरुष तथा विश्वस्रष्टा हैं (३।२।१६-३६)।

---

१. शतपथ ब्राह्मण ,भाग १,भूमिका , पृ० १३८ .

~~२. इस सन्दर्भ में यह द्रष्टव्य है कि जो यज्ञ में सम्मिलित नहीं किये जाते वह तिरस्कृत है- शतपथ २।३।१।२०~~

इतने पर भी दूसरी विशेषता है उनका बहिष्कार अथवा उनसे पलायन की प्रवृत्ति। ऐतरेय ब्राह्मण ( ३।३४।७) की धारणा है कि रुद्र का नाम तक नहीं लेना चाहिए। देवों द्वारा पशु-विभाजन के समय रुद्र को भाग नहीं मिलता है, परन्तु उनके कुपित होने पर सृष्टि-विनाश के भय से देवों ने उन्हें मूषक दे दिया (-तैत्तिरीय १।६।१०, ताण्ड्य ७।६।१६)। जब देवता यज्ञ के द्वारा द्यौ (स्वर्ग) लोक गये, तो रुद्र यहीं रह गये परन्तु अपना बहिष्कार देख जब उन्होंने शस्त्र ग्रहण किये तो देवता भयभीत हो गये और तब रुद्र को यज्ञ भाग मिला[1] ( शतपथ १।७।३।१-५)। स्तोता उन्हें दूर ठहरा हुआ समझता है ( वही १।७।३।८)। रुद्र की आहुति अन्य आहुतियों में मिलाने से यजमान का घर और उसके पशु नष्ट हो जाने की आशंका से अलग रखी जाती है ( वही १।७।३।२१)। शतपथ ब्राह्मण (२। ६।२।२-१६) में परिवार तथा भावी सन्तान को रुद्र पाश से मुक्त तथा भली-भाँति प्रसव के लिये त्र्यम्बक यज्ञ का विधान है। यह यज्ञ अन्य यज्ञों से नितान्त भिन्न है, क्योंकि उसमें देवता एकाकी रहता है, हवि में घी नहीं मिलाया जाता तथा आहुति रुद्र व उसकी बहिन अम्बिका दोनों को दी जाती है। रुद्र की यह आहुति उत्तर दिशा में मार्ग या चौराहे पर अर्पित की जाती है[2] और गर्भ को रुद्र-पाश से मुक्त करने के लिये एक पुरोडाश रुद्र के ~~प्रार्थना-की-जाती~~ पशु मूषक के बिल में गाड़ा जाता है। यहीं त्र्यम्बक रुद्र से प्रार्थना की जाती है कि वह हमें मृत्यु से छुड़ा लें, मोक्ष से नहीं ( - संभवत: वे मोक्ष के बाधक भी माने जाते होंगे )। अम्बिका भाग्यदेवी हैं अत: इस यज्ञ में कुमारियाँ भी कल्याणार्थ परिक्रमा करती हैं। अन्य यज्ञों में कुमारियों के लिए पृथक् निर्देश का अभाव है। आगे की महत्वपूर्ण क्रिया है पुरोडाश को बाँस के सिरे में बाँधकर ( हाथ में पकड़कर नहीं! ) उत्तर में ले जाना और किसी वृक्ष आदि में बाँध कर रुद्र से मूजवत पर्वत के उस पार चले जाने की प्रार्थना करना। कहा है कि वे हिंसा के स्थान पर कल्याण करते हुये जायें। वह

---

१. इस सन्दर्भ में यह द्रष्टव्य है कि "जो यज्ञ में सम्मिलित नहीं किये जाते वह तिरस्कृत हैं-" शतपथ २।३।१।२०

२. शतपथ ब्रा० २।६।२।५, अन्य देवों की दिशा पूर्व, रुद्र की उत्तर,- वैदिक देवशास्त्र, पृ० १८६

कृत्तिवासा रूप में जायें क्योंकि तब सोते हुये को हानि नहीं पहुँचा सकते। इस प्रकार पुरोडाश समर्पित कर दक्षिणा को मुड़ते हैं और लौटकर पीछे नहीं देखते। अब जल का स्पर्शकर स्वयं को पवित्र करते हैं, क्योंकि अभी तक रुद्रयज्ञ कर रहे थे। घर आकर केश मुंड़वाते और वेदी का स्थान परिवर्तित करते हैं। इस यज्ञ में पुरोडाश खाया नहीं गया। रुद्र की उत्तर दिशा में रख दिया गया। अन्य यज्ञों में उसे खाते हैं अथवा बाहर रखने का विधान नहीं है। रुद्र से मूजवत के पार जाने का निवेदन किया गया है और यज्ञ के पश्चात् शुद्धीकरण का विधान है।

चातुर्मास्य यज्ञ के तृतीय पर्व साकमेध में भी रुद्र को उत्तर में पुरोडाश प्रदान कर प्रार्थना की जाती है कि हेरुद्र! तुम हमसे दूर हो जाओ। हे त्र्यम्बक देव दूर हो जाओ।[1] बसन्त या हेमन्त में रुद्र को एक वृषभ की बलि देकर शूलगव यज्ञ संपन्न होता है,[2] जिसमें बलि मध्य रात्रि में या कम से कम सूर्यास्त के पश्चात् गाँव से दूर प्रदान की जाती है।

ब्रह्मा --

पौराणिक ब्रह्मा पर आरोपित विशेषतायें ऋग्वेद में विधाता, विश्वकर्मा, त्वष्टा, प्रजापति तथा हिरण्यगर्भ की हैं। विधाता सूर्य, चन्द्र, स्वर्ग, पृथ्वी तथा वायु के रचयिता (१०।१९०।३) एवं विश्वपति हैं (१०।१२८।७)। विश्वकर्मा की स्तुति में दशम मण्डल में दो सूक्त (८१,८२) आये हैं, जिनमें उन्हें सर्वद्रष्टा बताया है। उनके नेत्र, मुख, भुजायें एवं पैर सब ओर हैं। त्वष्टा स्रष्टा (१०।११०।९), गर्भ-वर्धक (१।१८८।९;८।१०२।८; १०।१८४।१), बृहस्पति, अग्नि व इन्द्र के पिता (क्रमशः २।२३।१७; १० २। ७; १।...७।२२) दीर्घजीवनदायक (१०।१८।६) तथा सृजक और पालक हैं (३।५५।१९)। वीर सन्तति के लिये उनकी स्तुति हुई है (३।४।९; १०।१०।५)। प्रजापति समस्त सृष्टि के सृजक हैं (१०।१२१।१ आदि) और कौशिक सूत्र में उनका तादात्म्य त्वष्टा से स्थापित हुआ है। हिरण्यगर्भ सर्वोच्च हैं (१०।१२१।१) ।

---

१. वैदिक धर्म एवं दर्शन (भाग २), पृ० ४००-४०१

२. आश्व० गृह्यसू०४।८,पार०गृ०सू० ३।८; मानवगृसू० २।५

यजुर्वेद (२३।४) में प्रजापति की महिमा चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि,संवत्सर तथा नक्षत्र में परिव्याप्त बताई है। वही अग्नि,आदित्य,वायु, चन्द्रमस्, शुक्र, ब्रह्म तथा आप: (३२।१), विश्वकर्मा (१८।४३) और सर्वोपरि हैं ( १४।३१)। देवमंडल में इन्द्र निम्नतम था, परन्तु प्रजापति की सहायता से उसने सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया (तै०सं० २।३।४।२)। यहाँ वह ऋग्वैदिक पुरुष के स्थानापन्न हैं ( वही ५।३।१०।४)।

प्रजापति के पुत्री पर आसक्ति विषयक आख्यान का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इतने पर भी ब्राह्मणों में वह उच्च स्थान रखते हैं। वास्तव में प्रजापति याज्ञिक कर्मकाण्ड के देवता थे, इसीलिये वह ब्राह्मणों में उभरे और यज्ञों के साथ लुप्त भी हो गये। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रारम्भ में केवल प्रजापति थे और उन्होंने सृष्टि-रचना की (६।१।३, ७।१।२।१)। उन्होंने वह कार्य कूर्म या कश्यप रूप धारण करके किया था ( वही ७।४।१।५ )। वह अग्नि के पिता ( ७।३।२।१४), भूतानाम्-पति ( ६।१।३।७), महान्देव ( ६।१।३।१६), यज्ञ व पर्ण वृक्ष ( ७।३।१।४२), हिरण्यपुरुष (७।४।१।१५) तथा विश्वकर्मा हैं। वह तैंतीस देवों से ऊपर चौंतीसवें देवता हैं ( १२।२।२।७)। क: भी प्रजापति हैं ( ११।५।४।१)। एग्लिंग के अनुसार शतपथ ब्राह्मण में उन्हें विश्वकर्मन् , हिरण्यगर्भ, पुरुष,क:, गन्धर्व विश्ववसु, प्रजापति तथा ब्रह्मणस्पति नामों से अभिहित किया गया है।[१] अग्नि प्रजापति की उत्पत्ति जल से हुई है और जल का प्रतीक कमल पत्र है।[२]

देव तथा असुर दोनों उन्हीं की सन्तान हैं ( शतपथ ब्रा० १।२।४।८; १।६।२।३४; २।४।३।२; ४।२।४।११ आदि )। इसी ब्राह्मण में प्रजापति द्वारा सृष्टि उत्पन्न करने से संबद्ध कई आख्यान मिलते हैं। एक आख्यान में उन्हें दक्ष कहा है, जिन्होंने प्रजा, पशु, श्री, यश आदि के लिये यज्ञ किया था ( २।४।४।१,२)। अन्य आख्यान के अनुसार प्रजापति ने जब वैश्वदेव यज्ञ द्वारा प्रजा उत्पन्न की तो वह वरुण-पाश से सूज गई क्योंकि प्रजा ने उसके जौ खा लिये थे (२।५।२।१-२)। एक स्थल पर वरुण द्वारा ग्रसित प्रजा का उपचार मरुत करते हैं (२।५।२।२४)। प्रजापति ने

---

१. सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट,खण्ड ४३,शतपथ ब्राह्मण,भाग ४, भूमिका, पृ० १४

२. शतपथ ब्राह्मण (भाग १) की भूमिका, पृ० १३८

जब सृष्टि-रचना की तो वह थक गये जिससे प्रजा उनके पास से छूट तक गई ( ३।६।१।१)। प्रजापति की पुष्टि बृहस्पति रूप ब्रह्म के द्वारा ( ३।६।१।११) अथवा देवों द्वारा हवियों तथा यज्ञों के माध्यम से हुई ( १।६।३।३६ ) । मन,प्राण तथा आत्मा भी प्रजापति हैं ( क्रमश: ४।१।१।२२; ४।५।५।१३ तथा ४।५।६।२, ४।६।१।१) । विभिन्न स्थलों पर प्रजापति का तादात्म्य यज्ञ से हुआ है ( १।१।१।१३; १।५।२।१७; ३।२।२।४; ४।१।१।१५,१६; ४।३।४।३, ४।५।५।१२ आदि ) ।

उषा प्रसंग में प्रजापति के विद्ध अंग को नष्ट होने से बचाने में भग के नेत्र और पूषा के दांत चले गये । उस समय बृहस्पति ने भी सहायता की (१।७।४।६-८) इससे सिद्ध होता है कि प्रजापति कितने निम्नस्तर तक पहुंच गये थे और उनके अस्तित्व रक्षण में किस प्रकार अन्य देवों से सहायता ली गई ।

स्तुतिपरक ऋग्वेद में बृहत देवमण्डल होते हुये भी बहुत-से देव परस्पर सम्बद्ध हैं । वहाँ इस समन्वय के आधार हैं - पारस्परिक आधीनता, परस्पर समान गुण, समान उत्पत्ति, एक ही देव का अवसर विशेष पर भिन्न देव होना, अंग-अंगी भाव, युग्म में स्तवन आदि।विभिन्न देव एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भिन्न साधन ही नहीं हैं ( एकं नियानं बहवो रथास: - ऋ० १०।१४२। ५ )। एक ही सत्ता को देव रूप में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है ( एकं सद्विप्रा बहुधावदन्ति) । इसी आधार पर ह्रासोन्मुख देव संस्था के साथ, देव स्तुतियोंके स्थान पर, यज्ञ को महत्व दिया गया , जिसके विधिवत् सम्पादन के लिये कर्मकाण्ड प्रधान ब्राह्मण साहित्य का आविर्भाव हुआ । यज्ञ को मोक्ष, सन्तान, राज्य, यश, पुण्य, महान् पद, प्रजा एवं श्री देने वाला तथा शत्रुनाशक माना गया और यहाँ तक कहा गया कि प्रजापति ने प्रजा की सृष्टि, देवों ने स्वर्ग की प्राप्ति, इन्द्र ने वृत्र-वध या देवों ने असुरों पर विजय इसी के माध्यम से प्राप्त की । देवों के देवत्व तथा प्रजापति की उत्पत्ति का कारण भी यज्ञ ही है । ऐसे महत्वपूर्ण कृत्य को विजित अनार्यों ने भी करना चाहा था, इसके संकेत शतपथ ब्राह्मण से ही मिलने लगते हैं । परन्तु यज्ञों में होने वाली हिंसा ( पशु तथा मानव बलि तक), अत्यधिक व्ययसाध्यता ( महान दक्षिणा,कभी-कभी तो सम्पूर्ण सम्पत्ति या पत्नी-पुत्री तक ), समय साध्यता ( कई-वर्ष, आजीवन अथवा १००० वर्ष तक का अनुष्ठान), दुष्कर विधान (यौन संसर्ग,

तेल मलना, गुरु के सम्मुख हाथ किये बिना हँसना, असत्य भाषण, अनार्य संपर्क आदि वर्जित), संभाव्य अहित ( तनिक-सी त्रुटि से स्वयं यजमान का अहित) आदि ऐसे कारण थे, जिनसे आगे चलकर उपनिषदों का अन्तर्मुखी दर्शन अंकुरित एवं पल्लवित हुआ, जिसमें कर्मकाण्ड-प्रधान यज्ञों के स्थान पर अपने ही अन्दर ब्रह्म के निवास का प्रतिपादन करते हुये आत्मशुद्धि और तपस्या या इन्द्रियनिग्रह पर बल दिया गया । यद्यपि यज्ञों के प्रति अश्रद्धा का भाव ब्राह्मणकाल से मिलने लगता है ,[1] परन्तु उपनिषदों में उनके महत्त्व पर प्रत्यक्ष आक्रमण करते हुये उन्हें मात्र पितर-लोक की प्राप्ति का साधन बताया है, जहाँ से पुन: वापिस आना पड़ेगा, जब कि तप से मोक्ष मिल सकता है ।[2]

यहाँ पर विवेचित देवत्रयी की स्थिति का सिंहावलोकन अनुपयुक्त न होगा । वैदिक एकेश्वरवादी प्रवृत्ति द्वारा एक ही देवता में अनेक देवताओं की विशेषताओं का अध्यारोपण हुआ, जिसके अनुसार विष्णु ने सूर्य को तो अधिग्रहण ही कर लिया । साथ ही उनकी सौम्यता, आर्यों के उच्च वर्ग का देवता होना आदि ऐसी विशेषतायें थीं, जिनसे विष्णु का महत्व बढ़ता गया । डा० विजयबहादुर राव की धारणा है कि रुद्र के अतिरिक्त विष्णु के भी प्रधान हो जाने का कारण अनार्य प्रभाव है,[3] परन्तु जहाँ उनमें अनार्य लक्षणों का अभाव है, दूसरी ओर विजयी आर्य जाति के उच्च वर्ग का देवता होना उनकी महत्ता के लिये पर्याप्त है ।

यद्यपि ऋग्वैदिक रुद्र की कल्पना विशुद्ध आर्य मस्तिष्क से उद्भूत हुई थी, परन्तु आगे चलकर उन्होंने एक अनार्य देवता को आत्मसात कर लिया, जिसका एक रूप सिन्धु घाट की योगी-पशुपति मोहर पर मिलता है । रुद्र आर्य देवता होते हुए भी संभवत: अपने भीषण स्वरूप के कारण आर्यों के उच्च वर्ग में महत्त्वपूर्ण स्थान न रख कर लौकिक देवता थे । जब आर्यों की अनार्यों से सन्धि हो गई और उन्होंने अनार्यों को अपने समाज में रखना प्रारम्भ किया, तो उनके एक देवता ने

---

१. शतपथ ब्राह्मण १।२।५।२४,२५

२. कठ १।३; मुण्डक; १।७-१०; छान्दोग्य १।४।३ आदि

'उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति' :

३. वही, पृ० २२१

आर्य देवमण्डल को प्रभावित करना चाहा । इस देवता का स्वरूप ऋग्वैदिक रुद्र के समान होने के कारण दोनों के समन्वय से रुद्र-शिव के उत्तरकालीन स्वरूप का आविर्भाव हुआ, जिसकी भीषणता के कारण आर्यजन उसे पूजते तो हैं, परन्तु अपने पास रखना नहीं चाहते । अनार्यों को आर्य बनाने के लिये आर्यों ने चतुर्वर्णों में उन्हें शूद्रों की स्थिति प्रदान की, जिनका सम्पर्क आर्यों के उस जनसामान्य से स्वाभाविक था, जो रुद्र को महत्त्व देती थी । ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की बढ़ती महत्ता के साथ वैश्यों का सम्बन्ध भी शूद्रों व सामान्य वर्ग से अधिक हो जाने के कारण उनका भी शिव-रुद्र से प्रभावित होना स्वाभाविक है । इस प्रकार शिवोपासना का प्रचार व प्रसार समाज के सामान्य एवं निम्नवर्ग में हुआ जिसकी मात्रा अधिक होने के कारण शिव अत्यन्त लोकप्रिय हो गये । प्रस्तुत तथ्य की पुष्टि गुजरात के तपोधनगण,[1] दक्षिण के शिवाराध्यगण[2] या शिवध्वजगण[3] की वर्तमान स्थिति से हो जाती है जिन्हें शिवमन्दिर में पुजारी होने के कारण उन्हीं की जाति में हेय दृष्टि से देखा जाता है ।

प्रजापति को ऋग्वेद में निम्नकोटि का ही माना जाने के कारण वहाँ उनका नाम केवल पाँच बार आया है । परन्तु आगे यज्ञ की महत्ता के कारण उनका विकास होता है और ब्राह्मणों में उन्हें यज्ञ का प्रतिरूप मानते हुये महान् देवता माना जाने लगता है । डा० राव प्रजापति की प्रतिष्ठा में अनार्य प्रभाव देखते हैं ।[4] परन्तु इसके लिए उन्होंने कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया है । ब्राह्मणों में उच्च पद पाते हुये भी उनके साथ एक पाप आख्यान संलग्न है और भारतीय मस्तिष्क पुत्री के साथ अभिगमन को कभी क्षम्य नहीं मान सकता । इसीलिये देवों ने उनके छिद्र अंग—लुप्त प्रतिष्ठा—को पुनर्स्थापित करने में कितना प्रयास किया हो, आगे चलकर यज्ञ की

---

१. विल्सन कृत इण्डियन कास्ट्स (भाग २), पृ० १२२

२. मैसूर ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स (भाग २), पृ० ३१८

३. वही (भाग ३), पृ० ३३७

"उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति"
४. वही, प्राक्कथन, पृ० १५

रहा भले शेष रही, परन्तु प्रजापति का अस्तित्व नष्ट हो गया ।

जब देवत्रयी में से प्रजापति का लोप हुआ तो शेष रहे विष्णु और शिव । समन्वयशील प्रबुद्ध वर्ग ने उनमें भी समान विशेषतायें देखीं और दोनों देवों के सम्मिलन से आगे चलकर एक अन्यतम देव हरिहर का विकास हुआ । यह सच है कि ऋग्वेद में इन्द्र और विष्णु घनिष्ट मित्र हैं, जिन्होंने एक साथ विभिन्न कार्य सम्पन्न किये हैं और सम्मिलित रूप में जिनका आह्वान हुआ है, परन्तु इतने से ही इस अवधारणा की पुष्टि नहीं हो जाती कि उन्हीं से पौराणिक काल में हरिहर का स्वरूप निर्मित हुआ[1], क्योंकि न तो कहीं पर इन्द्र को शिव या रुद्र कहा है और न उनकी चारित्रिक विशेषताओं में परस्पर साम्य है ।

उपनिषदों में शिव और विष्णु का समन्वय भाव मिलने लगता है, इसलिये उनका अध्ययन पृथक् रूप से किया जा रहा है । यहाँ अव्यक्त, निराकार, हृदयस्थ, ब्रह्म तथा शिव और विष्णु के वर्णन के अतिरिक्त साम्प्रदायिक विद्वेष तथा शिव और विष्णु का समन्वय भी स्थापित हुआ है ।

जहाँ तक प्रमुख उपनिषदों का प्रश्न है, उनकी रचना छठी शती ई० पू० तक हो चुकी थी । इनमें साम्प्रदायिकता का प्रायः पूर्ण अभाव है । सर्वप्रथम श्वेताश्वतर उपनिषद् में ब्रह्म के रूप में शिव-रुद्र की स्थापना हुई है । यह उपनिषद् ~~में ब्रह्म के रूप शिव-रुद्र की स्थापना हुई और~~ पाणिनिकालीन समझा जाता है । लेकिन इसमें शैव और वैष्णव संघर्ष अथवा सहिष्णुता की भावना नहीं मिलती । अन्य साम्प्रदायिक उपनिषदों की रचना इससे काफी बाद में हुई प्रतीत होती है और कई तो नितान्त परवर्ती हैं परन्तु स्वरूप और परम्परा की दृष्टि से इन सभी को वैदिक साहित्य में सम्मिलित कर लिया गया है । इन सभी हरि-हर की दृष्टि से तीन वर्गों में रख सकते हैं ।

क. शैव,

ख. वैष्णव

ग. समन्वयवादी अथवा सहिष्णु ,

---

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, शिव महादेव, पृ० ५०

क. पहले प्रकार के उपनिषदों में या तो किसी-न-किसी प्रकार विष्णु की अपेक्षा शिव की महत्ता स्थापित की गई है, अथवा समन्वयात्मक स्थिति में शिव को ही विष्णुरूपधारी बताया है। अर्थात् इन सब में शिव के प्रभुत्व का निरूपण करते हुए एकमात्र उन्हीं के अस्तित्व को स्वीकारा गया है। इस वर्ग की विविध स्थितियाँ निम्न प्रकार हैं —

१. रुद्र (शरभ) द्वारा नृसिंह-वध — शरभ उपनिषद् में रुद्र द्वारा शरभ रूप से नृसिंह वध का उल्लेख है।[1] पुराणों में प्रस्तुत आख्यान को बहुत महत्व मिला है, जहाँ विष्णु नृसिंह रूप से हिरण्यकशिपु का वध करते हैं। इन्हीं नृसिंह से शिव की महत्ता स्थापित करने के लिए शैवों ने शरभेश द्वारा नृसिंह का वध कराया है। यह शरभ रूप शिव ने ही धारण किया था, जिसमें पक्षी, पशु (सिंह) और मानव का मिश्रण था। उपनिषद् के अनुसार दक्ष-यज्ञ भंग करते समय रुद्र ने विष्णु को नागपाश में बांध लिया था[2]। कि

२. शिव-भक्तिहीन व्यक्ति चाण्डालवत् — विशेष की इस स्थिति में शैवों ने शिव-भक्तिहीन ब्राह्मण को चाण्डाल कहा है[3]।

३. शिव द्वारा कृष्ण की सहायता - कृष्ण का प्रमुख अस्त्र सुदर्शन चक्र है और उन्हें इसकी प्राप्ति शिव से हुई है।[4]

४. रुद्र से विष्णु की उत्पत्ति - रुद्र त्रिपुरान्तक हैं और उनके अश्रु रुद्राक्ष। इनमें से द्वादशमुखी रुद्राक्ष महाविष्णु का प्रतीक है।[5] यहाँ शिव और विष्णु में जनक तथा अपत्य का सम्बन्ध होते हुए भी विष्णु को शिव के अश्रु से प्रादुर्भूत बताकर उन्हें हेय भाव से देखा गया है।

---

१. शरभ ४-५

२. वही, ११

३. रुद्र, १

४. कृष्णोपनिषद्, १६

५. रुद्राक्षजाबाल, ४०

५. विष्णु शिव के भक्त — कृष्णोपनिषद् में कृष्ण को शिव से चक्र प्राप्ति की बात आई है। यह चक्र उन्हें शिव-भक्ति से ही मिला था और इस भक्ति में उन्हें अपना नेत्र तक अर्पित करना पड़ा था। विष्णु सदैव शिव के चरण-कमलों के अभिलाषी रहते हैं।[1]

६. शिव ही विष्णु-रूप धारी — हरि-हर समन्वय के प्रस्तुत स्वरूप के अन्तर्गत इन दोनों में एकीभाव अथवा तादात्म्य निरूपित किया गया है। सृष्टि में सर्वोच्च सत्ता शिव हैं और वही भक्तों की मंगल-कामना के लिए हरि रूप धारण करते हैं।[2]

ख. दूसरे प्रकार के उपनिषदों में विष्णु को सर्वोच्च मानते हुए वैष्णवों का शैवों के प्रति स्पर्द्धा अथवा सहिष्णुता का भाव परिलक्षित होता है। इन परिस्थितियों के विविध स्वरूप निम्न प्रकार हैं —

१. गुरु की वैष्णवता का अनिवार्य होना — जिस प्रकार शैवों ने शिव भक्ति विहीन ब्राह्मण को चाण्डालवत् घोषित किया, इसी प्रकार वैष्णवों ने शैवों से प्रतिस्पर्द्धावश गुरु अथवा आचार्य को वैष्णव होना आवश्यक माना है।[3]

२. हरि और हर में सैव्य-सेवक भाव - लांगूल उपनिषद् (१-२) में हनुमान् को कालाग्नि रुद्र कहा है। निश्चय ही इस उपनिषद् की रचना राम का सेवक होने के कारण हनुमान की ख्याति-प्राप्ति के बाद हुई होगी और उपनिषद्कार उन्हें रुद्रावतार बताकर शिव को (राम-रूप) विष्णु का सेवक स्वीकार करता है।

३. कृष्ण के उपकरण रुद्रावतार - वेणु रुद्रावतार है[4] और कृष्ण वेणु-प्रिय हैं। कृष्ण के वेणु-प्रिय होने पर वेणु को रुद्रावतार बताकर वैष्णवों

---

१. शरभोपनिषद् १०;१६-१७

२. नीलरुद्र उपनिषद्, ३; तेजोबिन्दु उपनिषद् ६।६४

३. दयोपनिषद् १.

४. कृष्णोपनिषद् ८,११

ने शैवों के प्रति अपना सहिष्णु भाव प्रकट किया है ।

४. विष्णु के शिव विशेषण – ब्रह्मविद्या उपनिषद् (१०४) में विष्णु को शाश्वत और शिव कहा है ।

५. विष्णु ही शिव रूप धारी –मुद्गल उपनिषद् में ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त का विष्णुपरक प्रतिपादन करते हुए विष्णु को ही महान्तम बताया है । उपनिषद् के अनुसार उन्हें जो जिस रूप में देखता है, उसी रूप में पाता है ।[१] नारायण उपनिषद् में नारायण को शिवरूप माना है और नृसिंहपूर्व तापिनी उपनिषद् में कहा है कि नृसिंह,(रूप-विष्णु) ही शिव, नीलकण्ठ,नीललोहित, उमापति, पशुपति, धनुर्धारी और महेश्वर हैं ।[२]

ग. पूर्वोक्त दोनों स्थितियों में या तो शिव की ~~प्रधानता~~ प्रधानता रहती है अथवा विष्णु की । परन्तु इन दोनों से भिन्न एक तीसरी स्थिति वहाँ उपलब्ध होती है, जहाँ शिव और विष्णु को समान महत्व दिया गया है और उनके अस्तित्व की अभिन्नता स्वीकृत हुई है । सम्प्रदायों के पारस्परिक विद्वेष को व्यर्थ सिद्ध करने के उद्देश्य से ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् ने उनकी उपमा विविधवर्णी गायों से देते हुए कहा है कि जिस प्रकार अलग-अलग रूप और रंगवाली गायों का दूध श्वेत ही होता है, उसीप्रकार विद्वान् को अलग-अलग सम्प्रदाय वालों के भिन्न विचारों को ग्रहण करने वाले पुरुषों की विचारधारा ~~के दूध के समान एक जैसी लगती है । उनकी विचारधारा~~ गायों के दूध के समान एक जैसी लगती है । उनकी विचारधारा में बाहर के भिन्न चिह्नों से कुछ अन्तर नहीं दिखाई देता है ।[१] शिव और विष्णु के समन्वय वादी शिव-वैष्णव सम्प्रदायों की सहिष्णुता के, विविध उपनिषदों में, निम्नस्वरूप उपलब्ध होते हैं –

१. एक के विरोध से अन्य की प्राप्ति दुर्लभ – रुद्रहृदय उपनिषद् को शिव और विष्णु की भिन्न सत्ता तो स्वीकार्य है, परन्तु शैव और वैष्णव सम्प्रदायों का विद्वेष स्वीकार नहीं । उसमें कहा है कि जो भगवान् आशुतोष से द्वेष करता है, वे कभी जनार्दन प्रभु के प्रिय नहीं हो सकते । जो रुद्र के ज्ञाता नहीं है वे केशव के भी ज्ञाता नहीं हो सकते ।[३]

---

१. मुद्गलउपनि०,३।२-३ २. नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद् १।६ ३. रुद्रहृ०उप०,६-१०

२. एक की आराधना से अन्य की प्रसन्नता - उपर्युक्त उपनिषद् में ही एक अन्य स्थल पर शैव-वैष्णव सम्प्रदायों में सौहार्द-स्थापना के उद्देश्य से कहा है कि जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं, उनका नमस्कार भगवान् शंकर को स्वयं ही पहुंच जाता है और जो भक्त भगवान् विष्णु की पूजा करते हैं, वह मानों वृषभध्वज को ही पूजते हैं।[१]

३. हरि और हर का एक साथ पूजन- रामपूर्वतापिनी उपनिषद् में राम का पूजन करने के लिए उनके चक्र-निर्माण का उल्लेख है। परन्तु राम के इस चक्र में एकादश-रुद्रों का न्यास भी आवश्यक है और इस प्रकार राम तथा रुद्र का पूजन एक साथ करना चाहिए।

४. हरि-हर समन्वय —सम्प्रदायगत प्रतिस्पर्धावश शैव शिव को सर्वोच्च मानते हैं और वैष्णव विष्णु को। परन्तु स्कन्द उपनिषद् दोनों में कोई अन्तर न मानकर उन्हें एक ही सत्ता के दो भिन्न रूप समझता है। उसके अनुसार "शिव ही विष्णु रूप हैं और विष्णु ही शिव रूप हैं। जिसप्रकार विष्णु शिवमय हैं उसीप्रकार शिव विष्णुमय हैं। जब मुझे इनमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ता, तब इस शरीर में रहते हुए ही कल्याण रूप हो जाता हूँ। शिव तथा केशव में कोई अन्तर या भेद नहीं है।"[२]

५. लक्ष्मी और पार्वती की एकरूपता - लक्ष्मी विष्णु की शक्ति हैं और पार्वती शिव की शक्ति। जब हरि-हर अभिन्न हैं तो उनकी शक्तियाँ - लक्ष्मी एवं पार्वती-के समन्वय का प्रयास अस्वाभाविक नहीं। इसी क्रम में रुद्रहृदय उपनिषद् (१८) में लक्ष्मी को उमा रूप और देवी उपनिषद् में भगवती को विष्णु की शक्ति, स्कन्द माता तथा दक्षकन्या कहा है।[३]

---

१. रुद्रहृदय उपनिषद्, ५

२. स्कन्दोपनिषद् ८-१०

३. देवी उपनिषद् ११-१२

इस प्रकार वेदों में जिस समन्वयवाद एवं एकेश्वरवाद की स्थापना का संकेत मिलता है उपनिषदों में उसका विकास हुआ है। यद्यपि उपनिषदों में विद्वेषात्मक स्थिति का भी अभाव नहीं है, परन्तु उनकी मूल प्रवृत्ति में विविधता में भी एकत्व-प्रदर्शन किया गया है।

—

# अध्याय-२

## लौकिक संस्कृत साहित्य में शिव और विष्णु की एकता तथा विरोध की परम्परा

किसी भी देश की सांस्कृतिक एवं सामाजिक दिशा एक ही दिन में परिवर्तित नहीं हो जाती है। इसके लिये उस देश को एक संक्रान्ति-काल से होकर निकलना पड़ता है। इस समय प्राचीन तथा नवीन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ अस्तित्व रखती हैं, परन्तु उनका विकास नवीनता की ओर होता है। साहित्य के विषय में भी ऐसा ही है और कोई भी नई प्रवृत्ति एक ही दिन में दृढ़ता ग्रहण नहीं कर लेती। प्राचीन भारतीय वाङ्मय को वैदिक और लौकिक दो भागों में बांटने का तात्पर्य यह नहीं है कि उसकी कोई एक निश्चित कालरेखा नियोजित की जा सकती है अथवा उसमें संक्रान्ति काल का अभाव था। परवर्ती वैदिक साहित्य के अन्तर्गत उपनिषदों को रखा जाता है और उनकी रचना दो-चार दशकों में न होकर शताब्दियों में हुई है। श्वेताश्वतर उपनिषद् का डेढ़ मन्त्र भगवद्गीता में शब्दश: मिलने के कारण डा० आर०सी० मजूमदार ने उसे गीता से प्राचीन माना है।[1] डा० दिनेशचन्द्र सरकार ने गीता का समय ई०पू० तीसरी शती रखा है।[2] श्वेताश्वतर सबसे प्राचीन शैव उपनिषद् है और उसके बाद से ही साम्प्रदायिक उपनिषदों की रचना प्रारम्भ हो गई होगी। इस प्रकार इन उपनिषदों के समानान्तर ही वाल्मीकिरामायण, महाभारत और कुछ प्राचीन पुराणों की रचना हुई थी।

यदि वैदिक साहित्य से इन साम्प्रदायिक उपनिषदों को अलग कर लिया जाये तो वैदिक और लौकिक वाङ्मय का मौलिक अन्तर स्पष्ट परिलक्षित हो जायेगा। वैदिक संस्कृति यज्ञ प्रधान होने के कारण उस साहित्य में विविध यज्ञों की कार्य-प्रणाली और उनके परिणाम-कथन के साथ विभिन्न देवों की स्तुतियां मिलती हैं, तो काव्येतर लौकिक साहित्य पूर्णतया साम्प्रदायिक है, जिसमें अन्य गौण एवं प्रासंगिक

---

१. कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया, भाग ४, पृ० ३५

२. वही, पृ० ११२

बातों के अतिरिक्त उस सम्प्रदाय के इष्टदेव की महत्ता प्रतिपादित हुई है । इनकी शैली भी वैदिक साहित्य से भिन्न है, क्योंकि अपने कथन की पुष्टि के लिए यहाँ प्राय: आख्यानक शैली का आश्रय लिया गया है ।

पिछले अध्याय में दिखाया जा चुका है कि वैदिक दर्शन समन्वयवादी या एकेश्वरवादी था, जिसमें किसी भी देवता की स्तुति के समय उसे सर्वोच्च स्थान दिया गया है और समस्त देवों की एकता प्रतिपादित हुई है । इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप उत्तरवैदिककाल तक अन्य देवों का अस्तित्व रहते हुये भी शिव और विष्णु ने प्रमुख स्थान ग्रहण कर लिया और इनके सम्प्रदाय गठित होने लगे । महाभारत में विष्णु के कृष्णावतार की प्रतिष्ठा हुई है और पतंजलि ( ई० पू० दूसरी शती ) ने शिव-भागवत् सम्प्रदाय का उल्लेख किया है ।[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार कुषाणकाल तक सरस्वती, लक्ष्मी, महिषमर्दिनी तथा सिंहवाहिनी दुर्गा, सप्तमातृका, कुबेर एवं हारीती, कामदेव, इन्द्र, सूर्य, बलराम, कार्तिकेय, गणपति, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के कई रूपों की मूर्तियां बनने लगी थीं[2] और उससे पूर्व कौटिल्य ने भी दुर्गा, विष्णु, जयन्त, इन्द्र, शिव, वैश्रवण, अश्विन, लक्ष्मी तथा मदिरा की मूर्तियों के स्थापन का विधान बताया है ।[3] परन्तु आगे चलकर साम्प्रदायिक स्थिति शिव और विष्णु को ही प्राप्त हुई । पौराणिक काल से लेकर १४ वीं शती तक हिन्दू-धर्म में शाक्त सम्प्रदाय के अतिरिक्त इन्हीं दोनों को लेकर विविध मत-मतान्तरों का विकास हुआ ।

वैदिक रुद्र ने सैन्धव पशुपति शिव को अधिग्रहीत कर लिया था, इसलिये वैदिक आर्य उसका पूजन-स्तवन करते हुये भी उसे दूर ही रखना चाहता था । आगे चल कर इसी भावना के फलस्वरूप कुछ पुराणों में शैव-वैष्णव विद्वेष परिलक्षित होता है और दोनों को लेकर अलग-अलग आख्यानों का निर्माण हुआ, जिनमें अपने-अपने इष्ट-देव की महत्ता स्थापित की गई । इतना होने पर भी इस काल के समस्त वाङ्मय की प्रवृत्ति समन्वयात्मक है । यहाँ हम विधा-भेद से उनकी पारस्परिक स्थिति के विविध रूपों पर प्रकाश डालेंगे ।

---

१. इण्डियन इमेजेज, भूमिका, पृ० २५

२. भारतीय कला, पृ० ३१०-११

३. कौटिल्य अर्थशास्त्र २।२०।४

महाकाव्य –

आदि (महा)काव्य वाल्मीकि रामायण से लेकर १२ वीं शती के राघव-पाण्डवीयम् तक सभी में प्राय: शिव-विष्णु की समन्वयात्मक स्थिति या शैवों-वैष्णवों की सहिष्णुता ही मिलती है। परन्तु कतिपय उदाहरणों में विद्वेष की स्थिति भी अस्वाभाविक नहीं है। महाकाल के नगरवासी महाकवि कालिदास ने शैव होते हुये भी जहां विष्णु के रामावतार को रघुवंश में प्रमुखता दी है वहीं कुमारसंभव में उन्होंने विष्णु को शिव के सेवक रूप में दिखाया है। महाकाव्यों में प्राप्त शिव और विष्णु के स्वरूप को निम्न वर्गों में रखा जा सकता है–

क. शैव-वैष्णव द्वेष – जब शिव तथा विष्णु को एक दूसरे से उत्पन्न दिखाकर या अन्य किसी प्रकार से एक की अपेक्षा दूसरे मत को महत्व या प्रश्रय दिया हो।

१. शिव को शाप –सत्ययुग में सोमदत्त नामक ब्राह्मण ने गौतम मुनि से धर्म कथायें सुनी थीं, जिनसे प्रवृत्त हो वह भगवदाराधना में लग गया। एक दिन तन्मय भाव से विष्णु-पूजन करते हुए गुरु गौतम को प्रणाम न कर पाने पर भी वे प्रसन्न हुये, परन्तु अन्य दिन उसके द्वारा शिव-पूजन करते समय ऐसी ही स्थिति आने पर उन्होंने उसे राक्षस हो जाने का शाप दे दिया। तब शिव ने भी इसके लिये गौतम से क्षमा मांगी, परन्तु उसे राक्षस होना पड़ा।[१]

यहां एक स्तर पर शिव-विष्णु समन्वय या शैव-वैष्णव सहिष्णुता भी देखी जा सकती है, क्योंकि एक ही व्यक्ति विष्णु और शिव दोनों का पूजन करता है। परन्तु वस्तुत: शैवपूजन करने पर उसे राक्षसत्व का शाप मिलता है, जिसका शमन स्वयं शिव भी नहीं करा पाते, इस बात का प्रमाण है कि शैवों के प्रति वैष्णव द्वेष भाव रखते थे।

ख. विष्णु को शिव का सेवक प्रदर्शित करना – तारकासुर के भय से आतंकित देवगण शिव के निवास पर पहुंचे तो वहां उन्होंने नीलकण्ठ, कृत्तिवास तथा त्रिशूलधारी शिव को देखा और विष्णु उनकी सेवा कर रहे थे।[२]

---

१. वाल्मीकि रामायण, रामायण महात्म्य.

२. कुमारसम्भव, १२।१६

ख. सहिष्णुता या समन्वय --यहाँ या तो शिव और विष्णु को एक ही मानकर उनकी अभिन्नता प्रकट हुई है अथवा एक ही कवि ने दोनों का अधिग्रहण किया है ।

१. विष्णु के ललाट से शिव की उत्पत्ति --महाभारत(वन पर्व में विष्णु को सर्वोच्च मानते हुये अर्जुन ने उनका स्तवन किया है, जिसमें वह कहते हैं कि त्रिशूलधारी एवं त्रिनेत्री शिव का आविर्भाव आप श्रीहरि के ललाट से हुआ है ।[१]

२. शिव नामों में वैष्णव नाम --महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में संवर्त मरुत को जिस शिव-नाम स्तोत्र का जप करने को कहते हैं, उसमें शिव को वामन,भार्गव (परशुराम) तथा कृष्ण विशेषण प्रयुक्त हुये हैं ।[२]

३. वैष्णव काव्य में शैव आख्यान - वाल्मीकि रामायण और महाभारत के चरितनायक विष्णु के अवतार राम और कृष्ण हैं । परन्तु इनमें शैव आख्यानों को भी स्थान मिला है । रामायण के बालकाण्ड में उमा-माहात्म्य और कुमार-उत्पत्ति के दो अध्याय मिले हैं, जिनमें शिव और पार्वती के विहार, देवों के आगमन से उत्पन्न विघ्न, पार्वती के शाप, कुमार-जन्म, उनके षडानन और देव-सेनापति होने आदि की कथा है ।[३]

इसीप्रकार महाभारत में देवसेनापति स्कन्द का चरित[४] तथा शिव द्वारा दक्ष-यज्ञ-भंग का आख्यान संग्रथित है ।[५]

४. वैष्णवकाव्य में शैवमंगलाचरण- शिव-भक्त कालिदास ने अन्य काव्यों के समान वैष्णव काव्य रघुवंश में भी शैवमंगलाचरण ही रचा है ।[६] जिसकी ओर संकेत

---

१. महाभारत,वनपर्व, १२।४०

२. वही, आश्वमेधिक पर्व, अ० ८।१४-२४

३. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड, सर्ग ३६-३७

४. महाभारत, वनपर्व,अ० २२७-२३२

५. वही, शान्तिपर्व, अ० २८३-२८४

६. रघुवंश,१।१

करते हुये भगवतशरण उपाध्याय ने लिखा है कि यह मनोरंजक है कि रघुवंश के पराक्रमों का आरम्भ, जिनमें राम (विष्णु) के शौर्य सर्वापेक्षा विशिष्ट हैं, शिव के स्तुति पाठ से होता है । कालिदास की इसी शैली का समावेश तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में किया है ।

५. एक ही कवि द्वारा शैव-वैष्णव काव्यों की रचना -- कालिदास ने शिव और पार्वती को लेकर जहां कुमारसम्भव रचा, वहीं विष्णु के प्रति श्रद्धावश या शैव-वैष्णव संतुलन बनाये रखने के लिये रघुवंश में राम-चरित को ही अधिक प्रश्रय दिया है । उन्नीस सर्गों के इस महाकाव्य में छः सर्ग केवल राम को मिले हैं,[१] जिनमें उनके जन्म से लेकर पर्यवसान तक का वर्णन है ।

६. मंगलाचरण में शिव और विष्णु दोनों की स्तुति --वाकाटक नरेश प्रवरसेन कृत सेतुबन्ध के मंगलाचरण में पहले विष्णु और फिर शिव की वन्दना है ।[२] इस विषय में डा० जयशंकर त्रिपाठी का कहना है कि कि विष्णु और शिव की इस एकता में गोत्रदेवता तथा इष्ट देवता की समान मान्यता कारण थी ।[३] वाकाटकों के गोत्रदेवता तो विष्णु थे, परन्तु इष्ट देवता शिव । इसी प्रकार राघवपाण्डवीयम् (१२ वीं शती का उत्तरार्ध ) के मंगलाचरण में प्रथम दो श्लोक ब्रह्मा और सरस्वती को दिये गये हैं, परन्तु अगले तीन श्लोकों में क्रमशः पार्वती, विष्णु और शिव का स्तवन है । स्थानक्रम की दृष्टि से पार्वती और शिव के मध्य विष्णु का होना महत्त्वपूर्ण है ।[४]

७. श्लेष से शैव-वैष्णव दोनों आख्यानों का वर्णन-- जिस प्रकार राघव-पाण्डवीयम् में श्लेष से महाभारत और रामायण की कथाओं के अर्थ एक साथ निकलते हैं, उसीप्रकार चालुक्य नरेश सोमदेव (११२३-११३८ ई०) के सभापण्डित विद्यामाधव ने नौ सर्गों का पार्वती-रुक्मिणीय नामक काव्य रचा, जिसमें आद्योपान्त पार्वती (शिव) तथा रुक्मिणी (कृष्ण की पत्नी-वैष्णव) के विवाह का वर्णन है ।[५] प्रस्तुत

---

१. रघुवंश, सर्ग १०-१५

२. सेतुबन्ध १।१-८

३. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ७१, अंक २

४. राघवपाण्डवीयम्, १।३-५

अप्रकाशित ग्रन्थ की पाण्डुलिपियाँ मद्रास तथा तंजौर के पुस्तकालयों में हैं ।[१]

८. शिव द्वारा राम-नाम उच्चारण-

रामायण माहात्म्य के एक आख्यान में बताया है कि नर्मदा तट पर एक राक्षस को कलिंगदेशीय गर्ग नामक ब्राह्मण मिला, जो कन्धे पर गंगाजल धारण कर जाते हुये शिव स्तोत्र पाठ के साथ मध्य में राम-नाम का भी उच्चारण करता था ।[2]

६. शिव और विष्णु द्वारा एक दूसरे का महिमा-कथन-

भीम द्वारा बन्दी किया गया जयद्रथ युधिष्ठिर के सम्मुख उपस्थित किया गया, परन्तु युधिष्ठिर की आज्ञा से बन्धन मुक्त होने पर गंगाद्वार में तप करके उसने शिव से अजेयता का वर माँगा । उस समय शिव ने ऐसा असम्भव बताते हुये कृष्ण के विषय में कहा कि नारायण देवाधिदेव, अनन्तस्वरूप,सर्वव्यापी , देवगुरु,सर्वसमर्थ, प्रकृति-पुरुष रूप, अव्यक्त, विश्वात्मा एवं विश्वरूप हैं । प्रलयकाल उपस्थित होने पर वे भगवान् विष्णु ही कालाग्नि रुद्र रूप से प्रकट हो पर्वत, समुद्र, द्वीप,शैल, वन और काननों सहित सम्पूर्ण जगत् को दग्ध कर देते हैं । इसके आगे उन्होंने विष्णु के नारायण , वाराह, नृसिंह,वामन तथा कृष्णावतारों का स्मरण, उनकी प्रशंसा और उनके द्वारा किये कार्यों का वर्णन किया है । यहाँ विष्णु को कालाग्नि रुद्रमान-कर उन्हीं को संहारकार्य का निमित्त माना है[3]।

इसी के दूसरे रूप में कृष्ण द्वारा शिव-महत्त्व प्रतिपादित हुआ है, जब वह कहते हैं कि महादेव-शिव के प्रभाव से ही अश्वत्थामा युधिष्ठिर के पुत्रों और सैनिकों के संहार में समर्थ रहा । आगे कृष्ण शिव की उत्पत्ति तथा मुंजवान पर्वत पर उनके तपस्यार्थ जाने के विषय में बताते हैं ।[४]

---

१. आचार्य बलदेव उपाध्याय ,संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३३२,पाद टिप्पणी

२. वाल्मीकि रामायण, माहात्म्य,अ० २।४६-५१

३. महाभारत,वनपर्व, अ० २७२

४. वही,सौप्तिक पर्व, अ० १७

१० वैष्णाव तथा विष्णु के अवतार का शिव-भक्त होना --

जब वैष्णाव तथा विष्णु या उनका अवतार शिव का भक्त हो ।

क. वैष्णाव द्वारा शिव-भक्ति -- अर्जुन ने युधिष्ठिर की आज्ञा से शिव को प्रसन्न करने के लिये तपस्या की थी जिससे शिव ने उन्हें पाशुपतास्त्र दिया था ।[१] इसी आख्यान को लेकर भारवि ने किरातार्जुनीय नामक पूर्ण महाकाव्य रचा है ।

ख. कृष्णा द्वारा शिव-पूजन कराना - अर्जुन की विजय के लिये कृष्णा ने शिव का पूजन कराया था ।[२] अर्जुन ने भी स्वप्न देखा कि वे कृष्णा के साथ शिव के पास गये, जहाँ उन्होंने शिव का स्तवन किया ।[३]

ग. नर-नारायणा और कृष्णा द्वारा शिव-भक्ति --अश्वत्थामा द्वारा प्रयुक्त आग्नेयास्त्र से एक अक्षौहिणी पाण्डव सेना तो नष्ट हो गई परन्तु कृष्णा और अर्जुन पर उसका कोई प्रभाव न देखकर वह अस्त्र की महत्ता में सन्देह करने लगा । उस समय व्यास ने बताया कि पूर्वकाल में आदिदेव जगन्नाथ नारायणा ने धर्म के पुत्ररूप में अवतीर्ण होकर हिमालय पर शिव की कठोर तपस्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर विश्वेश्वर रुद्र ने उन्हें दर्शन दिये । उस समय उन्होंने रुद्र का स्तवन करते हुये स्वयं को 'शिव का भजन करने वाला भक्त' कहा है । व्यास आगे बताते हैं कि नर-नारायणा ने प्रत्येक युग में शिव/लिंग रूप महादेव की आराधना की है । यह कृष्णाभगवान् शिव के भक्त हैं और उन्हीं से प्रकट हुये हैं ।[४]

महाभारत अनुशासन पर्व में कृष्णा युधिष्ठिर से कहते हैं कि वे प्रात:काल उठकर प्रतिदिन समस्त जगत् के स्रष्टा, पिनाकधारी, दक्ष-विध्वंसक, त्रिपुरनाशक सार्वोत्कृष्ट देव रुद्र-शिव का मन और इन्द्रिय-निग्रहपूर्वक हाथ जोड़ कर शतरुद्रिय से जप करते हैं ।[५]

---

१. महाभारत, वनपर्व, अ० ३८-३९

२. वही, द्रोणपर्व, अ० ७९

३. वही, द्रोणपर्व, अ० ८०

४. वही, द्रोणपर्व, अ० २०१, श्लोक ६० से आगे

५. वही, अनुशासनपर्व, अ० १६०

११. शिव और विष्णु-एक ही सत्ता के अभिन्न प्रतीक (हरिहर रूप) -

अर्जुन की तपस्या से प्रसन्न शिव किरात रूप में तपस्थान पर आते हैं और शूकर वध को लेकर दोनों में भीषण युद्ध होता है। अर्जुनके पुरुषत्व एवं हस्तलाघव से शिव प्रसन्न तो हैं, परन्तु अर्जुन उनसे पराजित हो जाते हैं। उस समय वह शिव की पार्थिव मूर्ति बनाकर उसका पूजन करते हैं परन्तु मूर्ति पर अर्पित माला को किरात के सिर पर पड़ी देख वह उनके यथार्थ स्वरूप को पहिचान कर स्तुति करते हैं।[१] इस स्तुति में अर्जुन कहते हैं कि 'देवता, असुर और मनुष्यों सहित तीनों लोक भी आपको पराजित नहीं कर सकते। आप ही विष्णु रूप शिव तथा शिवस्वरूप विष्णु हैं, आपको नमस्कार है। दक्षयज्ञ का विनाश करने वाले हे हरिरुद्र रूप आपको नमस्कार है' ( -वही ३६। ७६-७७)।

यहाँ शिव ही विष्णु और विष्णु ही शिव माने हैं अर्थात् एक ही सत्ता दोनों रूप ग्रहण करती है। परन्तु आगे शिव को ही शिव-विष्णु का संयुक्त रूप हरिरुद्र कहा है, क्योंकि दक्षयज्ञ विध्वंस एकमात्र शिव ने किया था, हरिहर ने नहीं, हाँ इस आख्यान में ब्रह्मा ने दोनों का समन्वय अवश्य स्थापित किया है, क्योंकि दक्षयज्ञ-विध्वंस के बाद जब शिव द्वारा प्रक्षिप्त त्रिशूल तपस्यारत नारायण के हृदय में चुभता है, तो वहाँ से प्रतिहत हो शिव के पास पहुँचता है। तब शिव नारायण के पास आते हैं और दोनों में भीषण युद्ध होता है। उस समय देवों, ऋषियों के साथ आकर ब्रह्मा ने शिव को नारायण का महत्त्व बताते हुये युद्ध विराम को कहा और ऐसा होने पर शिव से गले मिलकर हरि-नारायण कहते हैं कि जो तुम्हें जानता है, वह मुझे भी जानता है। जो तुम्हारा अनुगामी है, वह मेरा भी अनुगामी है। हम दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं है। तुम्हारे मन में इसके विपरीत विचार नहीं होना चाहिये।[२]

भगवद्गीता -

महाभारत के ही एक सर्ग में सन्निविष्ट होते हुये भी गीता ने हिन्दुओं के मन:स्तल पर जो प्रभाव डाला है, उससे उसका स्वतन्त्र स्थान हो गया है और उपनिषदों

---

१. महाभारत, वनपर्व, अ० ३६

२. वही, शान्तिपर्व, अ० ३४२

तथा ब्रह्मसूत्रों के साथ वृहद्त्रयी के निर्माण का गौरव इसी को मिला है । जिस ग्रन्थ का लोग प्रात: - सायं पाठ करते हों, उसकी धारणा से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है । इस दृष्टि से उसे पृथक् से लिया गया है ।

गीता में निर्गुण-उपासना की कठिनाई बताकर सगुणोपासना को बल देते हुये किसी भी देवता के पूजन की छूट है । यहाँ कृष्ण की स्थापना ब्रह्म रूप में हुई है और उस (ब्रह्म) की उपासना के विषय में कहा है कि जो उसे जैसे भजता है, उनको ब्रह्म भी उसी रूप में मिलता है ।[1] कोई किसी भी देवता का पूजन करे, परन्तु उसे इच्छित भोगों की प्राप्ति उस इष्टदेव से कृष्ण के द्वारा ही मिलती है ।[2] एक स्थान पर तो कृष्ण कहते हैं कि जो श्रद्धालु तथा सकामी भक्त (विष्णु के अतिरिक्त शिव आदि) दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझ को ही भजते हैं ।[3]

एक स्थल पर कृष्ण ने स्वयं को सर्वलोकमहेश्वर (५।२९) और दूसरे स्थल पर अर्जुन ने उन्हें भूतेश तथा भूतभावन विशेषणों (१०।१५) का प्रयोग किया है, जो आगे चलकर शिव के साथ संयुक्त हो गये हैं । कृष्ण स्वयं को एकादश रुद्रों में शंकर मानकर (१०।२३) संसार की उत्पत्ति तथा प्रलय का हेतु स्वयं को ही बताते हैं (७।६)।इतना ही नहीं अर्जुन को प्रदर्शित कृष्ण के विराट् स्वरूप में रुद्र भी सम्मिलित हैं, जिससे रुद्र से उनका सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है ।

आख्यानक काव्य:

१. अर्धनारीश्वर में नारी भाग विष्णु - अर्धनारीश्वर की धारणा में एक ओर सांख्य दर्शन का प्रभाव देखा जाता है तो दूसरी ओर पौराणिक आख्यानों में बताया है कि शिव और शक्ति (पार्वती) ने ही अर्धनारीश्वर रूप ग्रहण किया था । शिल्पग्रन्थों में भी दक्षिणार्ध शिववत् और वामार्ध पार्वतीके समान बनाने का विधान

---

१. भगवद्गीता ४।११

२. वही ७।२३

३. वही ९।२३

है । परन्तु पौराणिक काल से ही शिव और विष्णु का समन्वय स्थापित करने के लिये अर्धनारीश्वर में नारी भाग को विष्णु और नर भाग को शिव कहा गया है । सोमदेव का कथासरित्सागर गुणाढ्य की बृहत्कथा का अनुवाद है, जिसके प्रथम लम्बक के प्रारम्भ में पार्वती को कथासुनाने का उपक्रम करते हुये शिव बताते हैं कि एक बार ब्रह्मा और विष्णु शिव से मिलने हिमालय की उपत्यका में गये तो वहां उन्हें ज्वालामय लिंग के दर्शन हुये । ब्रह्मा और विष्णु जब उसके आदि - अन्त को खोजने में असमर्थ रहे तब उन्होंने श्रान्त होकर तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न किया । तब शिव ने प्रकट होकर उन्हें वरदान मांगने को कहा। ब्रह्मा ने तो शिव को पुत्र रूप में पाने का वर मांगा , जिससे निन्दित होकर वह अपूज्य हो गये, परन्तु विष्णु ने शिव की सेवा में तत्पर रहने का वर मांगा । तभी से वह (नारायण) पार्वती के रूप में उत्पन्न होकर शिव के अर्धांग बने ।[१]

इस आख्यान के वक्ता स्वयं शिव हैं और कथासरित्सागर के मंगलाचरण में भी शिव स्तवन है । पूरे ग्रन्थ को शिव पार्वती के संवाद रूप में लिखना तथा मध्य में भी शिवस्मरण करने से रचयिता का शैवत्व सिद्ध हो जाता है । इस प्रकार प्रस्तुत आख्यान द्वारा अर्धनारीश्वर को शिव और विष्णु के नारी रूप का समन्वय बताने से शैवों की सहिष्णुता स्पष्ट हो जाती है, जिन्होंने विष्णु को शिव से अभिन्न मानते हुये उन्हें ग्रहण तो किया परन्तु शिव की शक्ति के रूप में ।

२. मंगलाचरण में शिव-विष्णु स्तुति - बाण के आश्रयदाता हर्ष शैव-शासक थे, परन्तु हर्षचरित के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस समय शैव और वैष्णव सभी मत-मतान्तर प्रचलित थे । बाण ने कादम्बरी के मंगलाचरण में परब्रह्म के बाद शिव और नृसिंह रूप विष्णु तथा उत्तर भाग में अर्धनारीश्वर शिव और नारायण को स्मरण किया है ।

३. हरिहर से कापालिक धर्म की श्रेष्ठता - कृष्ण मिश्र (११ वीं शती का उत्तरार्ध)के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक में जब क्षपणक का कापालिक से परिचय होता है तो उसके धर्म और कृत्यों को सुनकर क्षपणक उस पर व्यंग्य एवं कटाक्ष करता है । इससे

---

१. कथासरित्सागर, प्रथम लम्बक, प्रथम तरंग, २६-३२

क्रोधित हो कापालिक कहता है कि मैं कापालिक धर्म के प्रभाव से हरिहर तक को बुला सकता हूं ।[1]

४. उपमान रूप में हरिहर शब्द का प्रयोग — लक्षण-ग्रन्थों में हरिहर-मूर्ति को शिव तथा विष्णु सदृश श्वेत एवं श्यामवर्ण बनाने का विधान है और ऐसी मूर्तियां बाण के पूर्व गुप्तकाल से ही बनने लगी थीं । इसीलिए बाण ने एक कान में नीलम का कुण्डल तथा दूसरे में मोतियों का त्रिकण्टक धारण किये यशोवती के भतीजे भंडि की उपमा हरिहर से दी है,[2] क्योंकि दोनों की आभा से शरीर का वर्ण श्वेत-श्याम हो जायेगा । हरिहर के दोनों कर्णाभूषण भी भिन्न होते हैं और यहां भी वैसा ही है ।

इसी प्रकार हितोपदेश की एक सूक्ति में कहा गया है कि जिस प्रकार सेवा मान को, वृद्धावस्था सौन्दर्य को और हरिहर कथा पाप को हर लेती है, उसीप्रकार याचकता सैकड़ों गुणों को हर लेती है ।[3]

तन्त्र एवं संहिताएँ —

शुद्ध साम्प्रदायिक ग्रन्थ होने से जहां इनमें घोर विद्वेष मिलता है, वहीं सहिष्णुता और समन्वयवादी दृष्टिकोण का भी अभाव नहीं है । परन्तु इनमें वैष्णवों ने विष्णु को शिव से महत्वपूर्ण और उत्कृष्ट दिखाने का प्रयास किया है ।

क. विद्वेष — ज्याख्य संहिता में शैवों के प्रति जिस घृणा और हीनभाव के दर्शन होते हैं, वह ईर्ष्या और विद्वेष की चरमसीमा है । इसके अनुसार जो व्यक्ति लिंग-पूजन के कार्य में नियुक्त हो उसके अन्न का भक्षण करने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए और जो वैष्णव शिवलिंग पर अर्पित सामग्री ( शैवप्रसाद) का भक्षण करता है उसका तो भूल से भी स्पर्श हो जाने पर अशुद्ध हो जाते हैं और तब जप आदि से ही शुद्धि सम्भव होती है ।[4]

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय ३।१४

२. एकेन इन्द्रनीलकुण्डलांशुश्यामलितेन शरीरार्द्धेन इतरेण चत्रिकण्टकमुक्ताफलालोकधवलितेन सम्प्रक्तावतारमिव हरिहरमोर्दर्शयन्तम् ।— हर्षचरित, उच्छ्वास, ४

३. हितोपदेश, मित्रलाभ, ५।१३७,

४. ज्याख्यसंहिता, पटल २५ , पृ० २७८

ख. समन्वय -- इस स्थिति में शिव को वैष्णवशास्त्र तथा विष्णु के अद्भुत कार्यों का वक्ता, महिषमर्दिनी, महाकाली आदि शैव शक्तियों को महालक्ष्मी का अवतार तथा शिव और विष्णु की अभिन्नता प्रतिपादित करने का प्रयास हुआ है।

१. शिव वैष्णव शास्त्र के वक्ता रूप में -- अहिर्बुध्न्यसंहिता की रचना नारद और शिव के संवाद रूप में हुई है, जिसमें शिव ने विष्णु के संकल्प से विकसित संकल्प नामक सुदर्शन शास्त्र सुनाया है।[१]

२. शिव द्वारा विष्णु का गुणगान या उनके अद्भुत कार्यों का वर्णन करना -- सात्वततन्त्र के प्रारम्भ में नारद शिव से विष्णु के अद्भुत कार्यों, उनके लीलारूपों, अवतार हेतुओं आदि के विषय में पूछते हैं और फिर इन्हीं को उत्तर देते हुये शिव यह भी बताते हैं कि कृष्ण ने उन्हें गुप्त विष्णु-भक्ति का रहस्योद्घाटन किया था।[२] अहिर्बुध्न्यसंहिता में भी शिव द्वारा वैष्णव-यश के वर्णन का उल्लेख है।[३]

३. शिव विष्णु-भक्त -- सात्वततन्त्र के छठे पटल में शिव विष्णु सहस्रनाम बताते हैं (६-२१२) और नवें पटल में शिव कृत कृष्ण-स्तुति है।

(४) महालक्ष्मी के शैव अवतार - लक्ष्मीतन्त्र में महिषमर्दिनी, महाकाली, सुनन्दा, विन्ध्यवासिनी, शाकंभरी, दुर्गा तथा भीमा को, जो शिव की शक्तियां हैं, महालक्ष्मी का अवतार बताने से शैव और वैष्णव शक्तियों की एकता प्रतिपादित होती है।[४]

५. शिव-शक्ति ही विष्णु - जिस प्रकार कथासरित्सागर में अर्धनारीश्वर के नारी भाग को नारायण का रूप कहा है, उसी प्रकार मुण्डमालातन्त्र में दुर्गा ही को विष्णु कहा है।[५] कालीतत्व में तो भद्रा, भद्रकाली, काली, शक्ति और विष्णु का समन्वय स्थापित किया गया है।[६]

---

१. अहिर्बुध्न्यसंहिता, अ० १०।१-४

२. सात्वततन्त्र, पटल ४।४-५

३. अहिर्बुध्न्यसंहिता, अ० १२।१-२

४. लक्ष्मीतन्त्र, अ० ६

५. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (५ जनवरी, १६६६, पृ० २७)

६. वही (१३ नवम्बर, १६६६), पृ० ७

६. शिव - कृष्ण समन्वय – गर्ग संहिता में कृष्ण का स्तवन करते हुये शिव कहते हैं कि भेद की निवृत्ति में भी मैं तो आपका हूं, किन्तु आप मेरे नहीं हैं। जैसे तरंग समुद्र की है, किन्तु तरंगों का समुद्र नहीं है, ऐसे ही आपके हम हैं, परन्तु आप हमारे बनाये हुये नहीं हैं, आप स्वत: सिद्ध हैं। मैं सांसारिक ताप से भयभीत आपकी शरण हूं, मेरी रक्षा कीजिये। मेरे दोषों को दूर कीजिये। मैंने आपके चरणों की शरण ली है। मेरी भक्ति से अभिमानी हुये जो पापी मनुष्य हैं, वे सब निश्चय ही नरक में जाते हैं। इतना कहकर साश्रु शिव कृष्ण के चरणों में गिर पड़े तो कृष्ण ने उन्हें हृदय से लगाकर आश्वस्त करते हुये कहा कि मेरे हृदय में तुम हो और तुम्हारे हृदय में मैं हूं। मेरा तुम्हारा भेद नहीं है, जो मन्दबुद्धि हैं वही हममें भेद करते हैं। जो मेरे भक्त हैं, वे तुमको प्रणाम करते हैं और तुम्हारे भक्त मुझको प्रणाम करते हैं। जो मेरे इस कथन को नहीं मानते वे नरकगामी होते हैं।[1]

यहां उन्हीं को यथार्थ भक्त माना है, जो शिव और कृष्ण दोनों का स्मरण, स्तवन करते हैं। उन दोनों में कोई भेद नहीं है। इस प्रकार दोनों का समन्वय तो स्थापित हुआ है, परन्तु शिव द्वारा कृष्ण-स्तुति करने तथा कृष्ण द्वारा उन्हें अंगीकृत करने से शिव की अपेक्षा कृष्ण की महत्ता स्थापित होती है।

शैव-आगम –

शैव सिद्धान्तों के अनुसार ब्रह्म के तीन तत्त्व शिव, सदाशिव और महेश हैं। इन्हीं को क्रमश: निशकला, सकला-निशकला तथा सकला (अथवा सूक्ष्म, स्थूल-सूक्ष्म, स्थूल और तत्त्व, प्रभाव एवं मूर्ति) कहा जाता है। इनमें से महेश मूर्ति भक्तों के लिये पच्चीस लीलारूप धारण करती है, जिनमें एक रूप शंकरनारायण है।[2] यह शिव और विष्णु का संयुक्त रूप है, जिसके मूर्तिविधान का कई आगमों में वर्णन है। पूर्वकारणागम (एकादशपटल) के अनुसार समस्त आभूषण एवं अर्धपीताम्बरधारी वामार्ध विष्णुभाग के

---

१. गर्ग संहिता, अश्वमेध खण्ड, अ० ३६

२. टी०ए० गोपीनाथ राव, एलिमेन्ट्स आफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी, भाग २, खण्ड २ पृ० ३६१-३६७ ।

सिर पर मुकुट , कर्ण में नक्रकुण्डल, केयूर तथा कटक से सुशोभित करों में शंख एवं कटक और शिव भाग चन्द्रशेखर(शिवमूर्ति) के समान हो ।[1] सुप्रभेदागम (चतुस्त्रिंशत्तम पटल) में श्यामवर्ण विष्णु को पीताम्बर और किरीट मुकुट तथा शिव को व्याघ्रचर्म एवं जटाधारी बनाने का विधान दिया है ।[2] उत्तरकामिकागम (षष्टितम पटल ) में पीताम्बर और सर्वाभरणसंयुत विष्णु को शंख एवं कटकधारी और शिव को अर्धनारीश्वरवत् कहा है।

शृंगारिक काव्य तथा स्तोत्र:

स्तोत्रों में हरिहर-स्तवन की विभिन्न शैलियाँ हैं । किसी में श्लेष से विष्णु और शिवपरक भिन्न अर्थ निकलते हैं तो बहुत-से कवियों ने दोनों के संयुक्त स्वरूप का एक साथ स्तवन किया है । दो कवियों ने तो हरिहर के हरि भाग को ही प्राधान्य दिया है । ज्ञात स्तुतिकारों में सर्वप्राचीन भारवि हैं, जिनका समय 600 ईसवी के लगभग है और फिर शंकराचार्य ( 8 वीं शती ), राजशेखर (9,10 वीं शती) तथा मल्लिनाथ (14 वीं शती ) का समय ज्ञात है । परन्तु 12 वीं शती ई० तक योगेश्वर, भवानन्द, तुंगोक, जलचन्द्र, त्रिपुरारिपाल, हरि, आर्याविलास आदि बहुत-से स्तुतिकार हो चुके थे क्योंकि इनके हरिहर स्तवन श्रीधरदास कृत सदुक्तिकर्णामृत में संकलित हैं, जिसका समय 1205 ई० के लगभग है ।[4] इन सब की शैलियों के निम्नप्रधान वर्ग मिलते हैं ।

1. मंगलाचरण में शिव-विष्णु —गोवर्धनाचार्य (1116 ई० ) ने आर्यासप्तशती के प्रारम्भ में नौ श्लोक शिव की स्तुति को दिये हैं, तो अगले सात श्लोकों में विष्णु के विभिन्न स्वरूपों का स्मरण किया है । अन्त में ग्रन्थ को हरिचरणों में अर्पित करने से कवि का हरि-हरविषयक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है कि उसे दोनों के प्रति समान श्रद्धा है ।

---

1. वही, प्रतिमालक्षणानि, पृ० 171
2. वही, प्रतिमालक्षणानि, पृ० 199
3. वही, प्रतिमालक्षणानि ,पृ० 198-199 ; डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने यह लक्षण उत्तरकारणागम के बताये हैं ; देखिये-वास्तुशास्त्र,भाग 2,पृ० 177, संभव है दोनों में समान लक्षण हों ।
4. सुभाषित रत्नकोष,भाग 42,पृ० 21

२. प्रश्नोत्तर रूप -- शंकराचार्य ने विभिन्न प्रश्नोत्तरों को मणिरत्नमाला (नामक स्तोत्र) में संग्रथित किया है,[१] जिसके अन्तर्गत अद्वितीय शिव को ही एकमात्र तत्व बताते हुये (२०), करने योग्य प्रिय कार्य शिव और विष्णु की भक्ति बताई है (१०)। संसार में कामारिकंसारि (शिव-विष्णु) का पूजन ही ऐसा कर्म है, जिसे करके व्यक्ति को प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता (२२)। मृत्युकाल उपस्थित होने पर करणीय कर्म एक स्थान पर तो विष्णु-चिन्तन (२४) और दूसरे स्थान पर शिव-अर्चन (३०) बताकर शंकराचार्य दोनों का समन्वय स्थापित कर देते हैं। अन्त में भी इस प्रश्नोत्तर नाम की मणिरत्नमाला के कण्ठ या कानों में जाते ही रमेश-गौरीश (हरि-हर) की कथा के समान विद्वानों के आनन्द में वृद्धि करने की कामना करके शिव-विष्णु का एक साथ स्मरण हुआ है (३२)।

३. शिव-विष्णु दोनों की संयुक्त स्तुति - मल्लिनाथ ने शिव और विष्णु की समान विशेषताओं को लेकर कहा है कि गंगा जिनके मस्तक (शिव) या चरण (विष्णु) से निकली हैं, काल जिनके गले (शिव) या शरीर (विष्णु) में है, ऐसे किसी देव-काम के शत्रु (शिव) या पिता (प्रद्युम्न के पिता कृष्ण या विष्णु) की हम स्तुति करते हैं।[२]

४. श्लेष से शिव और विष्णुपरक अर्थ --सदुक्तिकर्णामृत में भारवि के नाम से दिया गया स्तोत्र[३] महादेव शास्त्री द्वारा संपादित ध्वन्यालोक और भट्टवामन झलकीकर द्वारा संपादित काव्यप्रकाश में किंचित् पाठभेद के साथ किन्हीं चन्द्रक कवि का बतायागया है[४]। पूरी स्तुतिमें श्लेष अलंकार से वस्तुध्वनि के रूप में विष्णुपक्षीय अर्थ होगा-जिस अजन्मा और बलि के बन्धनकर्ता विष्णु ने बाल-क्रीड़ा में शकटासुर का वध और समुद्रमन्थन के बाद अमृत लेने के लिये स्त्रीरूप ग्रहण किया, जिसने गोवर्धन और पृथ्वी को उठाया (क्रमशः कृष्ण और वाराह), यादवों का नाश किया और जिसे मोर-पंख अतिप्रिय है (कृष्ण) तथा देवों ने जिसके नाम को यह

---

१. दिनचर्या, परिशिष्ट ग

२. सुभाषितसुधारत्नभाण्डागारम्, पृ० २२।२; बृहत्स्तोत्ररत्नाकर, पृ० ३३१।१; संस्कृतसूक्तिसागर, पृ० ७।४

३. सदुक्तिकर्णामृत ३३।३

४. द्रष्टव्य-ध्वन्यालोक २।२१, पृ० ५६४ तथा काव्यप्रकाश ७।३०२, पृ० ४१६

कहकर उपासनीय बताया है कि, वह राहु का सिर काटने वाले हैं। जो लक्ष्यभूत कालियनाग के दमनकर्ता तथा शब्द में लीन होने वाले हैं, वे सब कुछ देने वाले भगवान् विष्णु रक्षा करें। स्तुति का शिवपरक अर्थ है-कामदेव का नाश करने वाले जिन शिव ने त्रिपुरदाह के समय बलि-विजेता विष्णु को बाण बनाकर सन्धान किया, जो गंगा को धारण करते हैं, जिन्होंने अन्धकासुर का वध किया, जिन्हें बर्हिपत्र प्रिय है, 'चन्द्रमा से युक्त यह हर हैं' ऐसा कहकर देवता जिनके नाम को उपासनीय बताते हैं और भुजंग ही जिनके हार तथा कंकण हैं, वे पार्वती के स्वामी भगवान् शिव रक्षा करें।

५. हरिहर के संयुक्त स्वरूप में हरि(विष्णु) की स्तुति - आर्याविलास और हरि ऐसे स्तुतिकार हैं, जिन्होंने हरिहर के संयुक्त स्वरूप का स्मरण करते हुये भी विष्णु को महत्ता दी है। आर्याविलास में कहते हैं, हरिहर के अर्धशरीर में स्थित चराचर के गुरु भगवान् विष्णु रक्षा करें, जिनको ब्रह्मा अत्यन्त सरलतावश आश्चर्य में पड़कर शिव से भेद रखते हुये अलग से पूज रहे हैं तथा मुनि और देवगण अमित आनन्दपूर्वक एक साथ ही हरिहर को अपनी सेवायें अर्पित कर रहे हैं। इस प्रकार ब्रह्मा की भेद बुद्धि तथा देवों और मुनियों के द्वारा शिव के साथ विष्णु की पूजा से खिन्न पार्वती चरण से पृथ्वी कुरेदती हुई भौंहें टेढ़ीकरके उनको देख रही हैं।[१] यह स्तुति उस सामाजिक वातावरण का प्रतीक है, जहाँ कुछ लोग तो हरिहर के समन्वित रूप की उपासना करते थे और कुछ उनमें भेदबुद्धि रखकर या तो शिव के उपासक थे या विष्णु के।

इसी प्रकार हरि कहते हैं कि तमालपत्र का मुकुट धारण करने वाला विष्णु का वह विषम अर्धशरीर कल्याणकारी हो, जो त्रिपुरारि भगवान शिव के अर्धशरीर से पूरा बन रहा है। उस (हरिहर) शरीर में एक दूसरे के रतिकर्म विनोद को भंग करने के कारण पार्वती और लक्ष्मी का संभोग प्राप्त न होने के कारण महान् काम-ज्वर उद्दीप्त हो रहा है।[२]

६. हरिहर के संयुक्त रूप का स्तवन् - कुछ स्तुतिकारों ने शिव और विष्णु के उस समन्वित स्वरूप का स्मरण किया है, जिसमें दोनों का आधा-आधा भाग है। स्तुति में शिव या विष्णु के किस स्वरूप विशेष को अधिगृहीत किया है, इस आधार पर तीन वर्ग किये जा सकते हैं -

---

१. सदुक्तिकर्णामृत ३४।५ २. वही, ३४।४

क. विष्णु और शिव के सामान्य स्वरूपों का समन्वय, ऐसे स्तुतिकारों में राजशेखर, तुंगोक, जलचन्द्र, त्रिपुरारिपाल आदि को रखा जा सकता है।

ख. विष्णु के शेषशायी स्वरूप और शिव का समन्वय- भवानन्द।

ग. विष्णु के कृष्णावतार और शिव का समन्वय- योगेश्वर।

इसी प्रकार एक अन्य भेद हरि-हर की शक्तियों के आधार पर किया जा सकता है। श्रीधरदास ने भी सदुक्तिकर्णामृत में इस आधार पर हरिहरस्तुतियों को दो वर्गों में रखा है।

अ. एकाकी हरिहर-इस वर्ग में भारवि, राजशेखर, भवानन्द, तुंगोक, जलचन्द्र आदि स्तुतिकार आते हैं।

आ. सशक्ति हरिहर-योगेश्वर, त्रिपुरारिपाल, हरि, आर्याविलास आदि ने हरिहर स्तुतियों में उनकी शक्तियों का भी उल्लेख किया है। शिव और विष्णु के पारस्परिक ऐक्य के विषय में त्रिपुरारिपाल की कल्पना है कि यदि वे इतनी घनिष्टता में न बंधे होते तो दोनों पार्श्वों में खड़ी लक्ष्मी और पार्वती के कटाक्षों से टूट ही जाते। इसी प्रकार योगेश्वर की पार्वती और लक्ष्मी में तो हरिहर के संपूर्ण श्याम कण्ठ को लेकर सीमाविवाद ही होने लगता है, क्योंकि शिवशक्ति सम्पूर्ण नीलग्रीवता पर अपना अधिकार समझती हैं और लक्ष्मी की दृष्टि में सम्पूर्ण कण्ठनीलिमा का कारण विष्णु की देह-कान्ति होने के कारण वह उनकी सीमा में आती है।

इन स्तुतियों में से कुछ तो शिव से प्रारम्भ होती हैं और कुछ विष्णु से। आगे कुछ स्तुतियों में आद्योपान्त शिव-विष्णु की विशेषताओं का वर्णन यथाक्रम हुआ है और कुछ में क्रम-भंग से।

अ. <u>शिव से प्रारम्भ स्तुति में आद्योपान्त शैव-वैष्णव क्रम का निर्वाह</u> - ऐसे स्तुतिकारों में राजशेखर, योगेश्वर और त्रिपुरारिपाल आते हैं। स्तुति को शिव के जटा भाग से प्रारम्भ करते हुये राजशेखर हरिहर के उस स्वरूप की वन्दना करते हैं, जिसमें दूसरी ओर मुकुट है। एक ओर चन्द्र है तो दूसरी ओर मन्दारमाल, एक ओर(अक्ष) माला है तो दूसरी ओर तेज। एक पार्श्व का वर्ण कुन्द सदृश श्वेत है तो दूसरे पार्श्व का इन्द्रनीलमणि सदृश श्याम। वह खट्वांग तथा चक्र धारण किये कि‍ठवेष प्रकट कर

रहा है तथा उसके पार्श्वों में नन्दी और गरुड़ हैं ।[1] योगेश्वर ने कामारि और कंसारि की देहकान्ति को क्रमश: स्फटिक तथा नीलमणि सदृश श्वेत-श्याम कहा है[2] और त्रिपुरारिपाल त्रिपुरारि और मुरारि के उस संयुक्त रूप से कल्याणार्थ प्रार्थना करते हैं, जो जटा-किरीट सम्पन्न हैं तथा जिसमें पार्वती एवं लक्ष्मी की बाहुरूपी लतायें अपने स्वामी के कण्ठ में पड़कर दोलायमान हो रही हैं ।[3]

आ. शिव से प्रारम्भ स्तुति में क्रम-विपर्यय- ऐसी स्तुतियों का प्रारम्भ तो शिव से हुआ है, परन्तु बाद में एक साथ विष्णु की दो भिन्न विशेषतायें आकर दूसरी के समानान्तर शिव विशेषता मिलती है । भवानन्द झा द्वारा उपासित हरिहर के उस स्वरूप से तीनों लोकों की कल्याण-कामना करते हैं, जिसके अर्धभाग में जटायें हैं (शिव) और अर्धभाग शेषनाग पर शयन किये है । हरिहर के दोनों ओर पृथ्वी तथा वृषभ है । वस्तुत: पृथ्वी शिव-पार्श्व में न होकर, विष्णु पार्श्व में होती है और वृषभ शिव के पार्श्व में, परन्तु यहां क्रम उलट गया है । इसी प्रकार तुंगीक त्रिपुरारि और मुरारि के संयुक्त रूप के दर्शन से कल्याण-कामना करते हैं, जिनके एक ओर (शिव-पार्श्व में) गरुड़ के त्रास से सर्प के फण हत हो गये हैं तथा दूसरी ओर (विष्णु पार्श्व में ) सिर के बाल-चन्द्रमा के प्रकाश से नाभिकमल संकुचित हो गया है और जो श्याम-श्वेत वर्ण के हैं ।[4] त्रिपुरारि का वर्ण श्याम न होकर श्वेत है, इसी प्रकार मुरारि का श्वेत न होकर श्याम ।

इ. विष्णु से प्रारम्भ स्तुति में आद्योपान्त वैष्णव-शैवक्रम का निर्वाह - त्रिपुरारिपाल विष्णु और शिव के विषय में कह रहे हैं कि उनके संयुक्त स्वरूप में से एक भाग संभोग की अभिलाषा रखता है (विष्णुभाग) और दूसराभाग मन्मथ का नाश

---

१. सदुक्तिकर्णामृत ३३।१

२. वही, ३४।३

३. वही, ३४।२

४. वही, ३३।४

करके उसके पुनर्जन्म का कारण बना है। ऐसा हरिहर स्वरूप लक्ष्मी और पार्वती के कटाक्ष की कुटिल क्रीड़ाओं के हठात् आकर्षण से टूट ही जाता, यदि बीच में पारस्परिक दृढ़ गुणों से एकत्व में अनुस्यूत न होता।[१] यहाँ विष्णु से प्रारम्भ करके उनकी संभोग स्पृहा और लक्ष्मी का पार्श्व तथा बाद में शिव के कामदहन एवं पार्वती के पार्श्व का उल्लेख अभीप्सित है, जो यथाक्रम वर्णित है।

ई. विष्णु से प्रारम्भ स्तुति में क्रम-विपर्यय -- लक्षचन्द्र लक्ष्मी और पार्वती के स्वामी हरिहर के संयुक्त स्वरूप से रक्षा की कामना करते हुये उनका अभिज्ञान बता रहे हैं कि उन का वर्ण जम्बू सदृश श्याम तथा शंख सदृश श्वेत है। गंगा एक और उनके चरण से प्रवाहित हो रही है तथा दूसरीओर सिर से, वह रक्षा तथा संहार दोनों में दक्ष हैं, कामदेव का उदय तथा विनाश करने वाले हैं और उनका शरीर फणाधर भक्षक गरुड़ एवं नागराज तथा चन्द्रमा एवं कमल की द्युति से प्रसन्न हो रहा है।[२] अन्तिम विशेषणों में क्रम का विपर्यय हो जाता है क्योंकि चन्द्रमा शिव का आभूषण है विष्णु का नहीं, इसी प्रकार कमल विष्णु के नाभिकमल का द्योतक है।

## पुराण तथा उपपुराण-

जहाँ तक पुराणों की प्राचीनता का प्रश्न है, कुछ लोग उन्हें उपनिषदों से प्राचीन नहीं तो समकालीन अवश्य मानते हैं क्योंकि छान्दोग्य* आदि उपनिषदों में पुराण शब्द मिलता है। जो कुछ भी हो ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों और गुप्तकाल में कुछ पुराणों की रचना अवश्य हो चुकी थी। यह पूर्णतया साम्प्रदायिक ग्रन्थ हैं, जिनमें वैदिक कर्मकाण्ड के विरुद्ध देवों के साकार रूप की पूजा, उपासना और भक्ति मिलती है। यों तो अठारह पुराणों में एक-एक आग्नेय और सौर, दो ब्राह्म, चार वैष्णव, तथा दस शैव कहे जाते हैं, जिनमें से वैष्णव पुराणों को रामदास गौड़ ने शिव और विष्णु के साम्य का प्रतिपादक कहा है,[३] पर वस्तुत: यह कथन अन्य पुराणों पर भी लागूहोता है। किसी भी पुराण में शिव और विष्णु भी विद्वेषात्मक

---

१. सदुक्तिकर्णामृत, ३४।१

२. वही, ३३।५ * छ अध्याय ७।१।४

३. हिन्दुत्व, पृ० १६७

तथा समन्वयात्मक दोनों ही स्थितियाँ देखी जा सकती हैं । इतने पर भी यह कह सकते हैं कि कुछ पुराणों में किसी देवता विशेष को महत्व एवं सर्वोच्च स्थान दिया गया है । उदाहरण के लिये आदिब्रह्म (अ० ६३), ब्रह्मवैवर्त (श्रीकृष्णजन्मखण्ड अ०११४-१२०) आदि कई पुराणों में प्राप्त ऊषा-अनिरुद्ध आख्यान के अन्तर्गत हरिवंश (विष्णुपर्व, अ० ११६-१२६) में विष्णु को महत्व मिला है, तो शिव पुराण (रुद्र,युद्ध,अ०५४-५५) में शिव को । जहाँ तक पौराणिक साहित्य में शिव-विष्णु — शैव-वैष्णव-के विद्वेष और समन्वय की सापेक्षिकता है,समन्वय ही अधिक है ।

पुराणों में प्राप्त हरि-हर की स्थितियाँ स्पष्टत: तीन प्रकार की हैं— पारस्परिक ईर्ष्या एवं द्वेष,स्पर्धा तथा समन्वय । शिव के सिर से नि:सृत गंगा का मूल वैष्णवों ने विष्णु - नख बताया, तो विष्णु के (सुदर्शन) चक्र की उत्पत्ति शैवों के अनुसार शिव के चरण-अंगुष्ठ से हुई है । शैवों का विद्वेष उस समय पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, जब शिव द्वारा विष्णु का शिरच्छेद होता है । उसी प्रकार समन्वय की अन्तिम स्थिति में शिव को विष्णु और विष्णु को शिव ही नहीं कहा गया, वरन् दोनों के एक स्वरूप की स्तुति, मूर्ति-विधान और मंत्र भी स्थापित होने लगे । पुराणों की अपनी एक विशेषता है आख्यानक प्रतिपादन शैली । उनमें जो बात भी कहीं गई है किसी कथा के रूप में । हरिहरके ऐक्य भाव का प्रतिपादन करने के लिए पहले शिव-विष्णु दोनोंमेंयुद्ध होता है, फिर ब्रह्मा आकर सन्धि कराते हुये उनकी एकता बताकर संयुक्त रूप की स्तुति करते हैं। इन आख्यानों को दृष्टि में रखते हुये हरिहर की स्थितियों को कई स्तरों में विभाजित पाते हैं । ईर्ष्या, स्पर्धा तथा समन्वय शीर्षकों के अन्तर्गत निम्न विभाजन किये जा सकते हैं ।

क. ईर्ष्या एवं द्वेष -

इसके अन्तर्गत वे परिस्थितियाँ आती हैं जब शैवों और वैष्णवों का विद्वेष स्वयं शिव तथा विष्णु के संघर्ष रूप में समुपस्थित होता है । यदि शैवों ने लिंगपूजन आवश्यक बताया तो वैष्णवों ने शालग्रामपूजन के सम्मुख लिंगपूजन को नगण्य माना । यह विद्वेष अधिकतर शैवों की ओर से परिलक्षित होने के कारण ऐसा लगता है संभवत: आर्यों की शिव के प्रति उपेक्षा या उनसे पलायन की प्रवृत्ति से ही प्रादुर्भूत हुआहै। विद्वेष के विभिन्न स्वरूप इस प्रकार हैं [१]।

---

१. देवीभागवतपुराण,माहात्म्य, अ० ५।८७-८७

१. अपने इष्टदेव की प्रशंसा — देवीभागवत का माहात्म्य बताते हुये सूत कहते हैं कि जैसे नदियों में गंगा, काव्यों में रामायण, ज्योतिष पदार्थों में सूर्य, क्षमाशीलों में भूमि और गंभीरता में सागर श्रेष्ठ है उसी प्रकार देवों में शिव सर्वश्रेष्ठ हैं।[1] उसी पुराण में आगे चलकर विष्णु को सर्वोत्तम बताकर उन्हें आदिदेव, जगन्नाथ, सर्वसमर्थ कहा है, जिनके सम्मुख कोई भी कुछ कार्य करने को समर्थ नहीं है।[2]

२. एक के प्रिय या विशिष्ट उपकरण की उत्पत्ति अन्य से — यदि विष्णु के चरण-नख से नि:सृत गंगा को शिव सिर पर धारण करते हैं, तब तो शैवों द्वारा विष्णु की महत्ता स्वीकार करना होगा, परन्तु शिव के सिर की गंगा का मूल विष्णु का चरण नख बताने से वैष्णवों की ईर्ष्याप्रकट होती है। दूसरी स्थिति का प्रमाण यह है कि विष्णु आदि पुराणों में प्राप्त इस आख्यान[3] की प्रतिक्रिया में शैवों ने विष्णु के सुदर्शन चक्र को शिव के चरण-अंगुष्ठ से निर्मित बताया है। इस आख्यान के दो स्वरूप हैं -- पहले के अनुसार तो शिव ने विष्णु को चक्र दिया भर है,[4] जबकि दूसरे के अनुसार उसकी उत्पत्ति भी शिव के चरण-अंगुष्ठ से हुई है।[5]

३. सेवक-स्वामी सम्बन्ध —शिव को सर्वोच्च दिखाने के लिये शैवों ने उन्हें विष्णु का स्वामी दिखाया है। शिव पुराण[6] के सती मोह आख्यान में तो शिव द्वारा राम को प्रणाम करने पर सती राम को शिव का सेवक बताती हैं, परन्तु उसी पुराण में आगे दक्ष-यज्ञ केविध्वंस के बाद वीरभद्र द्वारा फटकारे जाने पर विष्णु से स्वयंकहलाया गया है कि वे शिव के सेवक हैं।[7]

---

१. देवीभागवतपुराण, माहात्म्य, अ०५।८६-८७
२. वही, प्रथम स्कन्ध, अ० ७।५-६
३. विष्णुपुराण, द्वि०अंश, अ० ८।११०-११ ; ब्रह्म पु०, अ०१७५; भागवत, प्रथम स्कन्ध, अ० १८।२१; स्कन्द (कल्याण), माहेश्वर खण्ड, केदार खण्ड, पृ० ४५; नारद, अ० ६।
४. ब्रह्मपु०अ० १०६; लिंगपु० अ० ९८; शिव पु० रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, अ० ३५।३६-४२
५. शिवपु०, रुद्रसंहिता, युद्ध खण्ड, अ० २४।४५
६. वही, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड, अ०२४
७. वही, रुद्र, सती, अ० ३६।५८

४. पारस्परिक निन्दा तथा हीनता प्रदर्शन -- इसके अन्तर्गत तीन स्थितियां हैं -- इष्टदेव की प्रशंसा, अन्य की हीनता बताते हुये उसके महत्व को अक्षुण्ण समझना और अन्य की निन्दा । पहले रूप में शैवों ने लिंग-पूजन को इसलिये महत्त्व दिया, क्योंकि इसके अभाव में व्यक्ति कभी भी धर्म आदि का पात्र नहीं होता और ऐसा करने से समस्त सांसारिक ऐश्वर्यों तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है,[१] और दूसरे रूप में वैष्णवों ने शालग्राम शिला के सम्मुख लिंगपूजन को नगण्य मानते हुये भी शिव-निन्दा को अपरिहार्य कहा । अपनी स्वर्ग-प्राप्ति का कारण पूछने पर यमदूत विकुण्डल से कहते हैं कि द्वादश कालों में कोटि द्वादश लिंग स्वर्ण पद्मों से पूजने पर जो फल होता है, वह शालग्राम शिला को एक दिन पूजने से मिल जाता है । इतने पर भी जो वैष्णव शिव की निन्दा करता है, उसे वैष्णव लोक की प्राप्ति नहीं होती है ।[२] तीसरी स्थिति में शैवों ने शिव-भक्ति से अपरिचित व्यक्ति को मूढ़ और विष्णु की माया से विमोहित[३] तथा विष्णु से शिव-भक्त तक को महान् बताया,[४] तो वैष्णवों ने विष्णु के अतिरिक्त अन्य देवता की सेवा को कुत्ते की पूंछ पर चढ़कर समुद्र पार करने के समान तथा बन्धनों का स्वरूप बताया । जैसे वृकोदर शिव की सेवा करने से नाश को प्राप्त हुये थे, अन्य देवों से किसी भी प्रकार का सुख असंभव है ।[५] इसी पुराण में आगे कुबेर-पुत्रों के कृष्ण-भक्त से शिवोपासक होने पर उन्हें बुद्धि-भ्रष्ट, उन्मत्त, कुसंगतिवान् आदि कहते हुये हीन दृष्टि से देखा गया है ।[६]

५. विष्णु द्वारा शिव-भक्त का वध - प्रह्लाद के पुत्र विरोचन शिव का भक्त था और शिव की आराधना करके उसने स्वयं को शस्त्रों से अवध्य होने का वर पाया था, परन्तु छठवें देवासुर संग्राम के समय इन्द्र के शरीर में प्रविष्ट होकर विष्णु ने उसका वध कर दिया ।[७]

---

१. अग्नि, अ० १६८।११-१२
२. पद्म, सर्ग स्वर्गखण्ड, अ० ३१।१२५; १३४-१३६; १५१-१५२
३. मत्स्य०, अ० १६३, पृ० ५६०
४. शिव, रुद्र सती, अ० ३८
५. आदि अ०५।१६-२४
६. वही, अ० २८।४७-५३ तथा अ० २६ । १-४६
७. वायु०अ० ६७, पृ० ४११

६. शिव द्वारा कृष्णा-वध का वरदान दिलवा कर शैवों ने शिव को कृष्णा से महान् दिखाने का प्रयत्न किया है। समन्वय या मैत्री की दशा में शिव इस वरदान को मना भी कर सकते थे, परन्तु कृष्णा द्वारा पिता का वध हुआ देखकर काशी के एक राजपुत्र द्वारा शिव से कृष्णावध का वर मांगने पर शिव 'ऐसा ही होगा' कह देते हैं।[१]

७. शिव के पार्षदों द्वारा विष्णु का शिरच्छेद करना शिव और विष्णु के माध्यम से शैवों द्वारा वैष्णावों की हीनता प्रदर्शित करने की चरम-सीमा है। यहां शिव के पार्षद तक को विष्णु से महान् सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है जब उनके द्वारा विष्णु-वध आख्यान की कल्पना की गई है।[२]

शिव और विष्णु के दूसरे रूप को समन्वय से पृथक प्रतिस्पर्धा के रूप में इसलिए माना जा रहा है, क्योंकि इसमें समन्वय का आभास होते हुये भी पारस्परिक श्रेष्ठता-प्रदर्शन की प्रवृत्ति प्रमुख है। यदि विष्णु शिव की सहायता करते हैं तो शिव विष्णु की; शिव को विष्णु का भक्त कहा तो विष्णु को शिव-भक्त दिखाने की कल्पना कर ली गई। प्रतिस्पर्धा की यह स्थितियां निम्न रूपों में देखी जा सकती हैं —

१. शिव और विष्णु द्वारा पारस्परिक सहायता — यदि कंस-वध के पाप का प्रक्षालन कराने केलिये शैवों ने कृष्णा को शिव का आश्रय दिलाकर अपने इष्टदेव की महत्ता स्थापित करनी चाही।[३] तो ब्रह्म हत्या से मुक्ति एवं कपालमोचन के लिये शिव को विष्णु की शरण ग्रहण कराके वैष्णावों ने उसका प्रतिकार कर लिया। जहां तक आख्यानों की प्रवृत्ति और संख्या से ज्ञात होता है सर्वप्रथम विष्णु को शिव का सहायक बताया गया और उसकी प्रतिक्रिया हुई शैवों की ओर से। शतपथ ब्राह्मण में रुद्र-शिव ब्रह्म को दण्ड देते हैं और इन्हीं ब्रह्म का कटा हुआ सिर पौराणिक काल में शिव के हाथ से चिपक जाता है, जिसे वह विष्णु की सहायता से छुड़ा पाते हैं।[४] देवासुर-

---

१. विष्णु, पंचम अंश, अ० ३५।२८-३२

२. हरिवंश, विष्णुपर्व, अ० ७०।३०-३१

३. स्कन्द (कल्याण) वैष्णाव, उत्कल, पृ० ४२४-४२५

४. मत्स्य अ० १८३, पृ० ५२७-५२८; वामन, अ० ३

संग्राम,[१] हेति,[२] अन्धकासुर,[३] त्रिपुरासुर[४] आदि के वध तथा ब्रह्मा के शिरच्छेदन पर उससे उत्पन्न पुरुष से रक्षण[५] और वृकासुर के पार्वती पर आसक्त होने[६] पर विष्णु शिव की सहायता करते हैं। संभवत: इसीलिये शिव उन्हें अपनी प्रभुता का कारण मानते हैं।[७]

२. अन्य के समान इष्टदेव का रूप — इसे प्रभावमूलक समन्वय भी कह सकते हैं क्योंकि इसमें एक देवता के स्वरूप से दूसरा देवता प्रभावित हुआ है। शिव के लिंगपूजन को देखकर वैष्णवों ने विष्णु के लिंग की स्थापना की, तो शैवों ने शंख, चक्र, गदाधारी रुद्र प्रतिमा का निर्माण किया।[८] मत्स्यपुराण में नर्मदा के तटवर्ती पवित्र स्थलों में जनार्दन के लिंग का स्थान भी दिया है जहाँ स्नान करने से मनुष्य विष्णुलोक में पूजित होता है।[९] इसीप्रकार स्कन्दपुराण के एक आख्यान में राजा इन्द्रद्युम्न भगवान् विष्णु से वर चाहते हैं कि वह वैदुर्यपर्वत की चोटी पर जनार्दन लिंग के रूप में निवास करें और विष्णु ने नारायणेश्वर का रूप ग्रहण किया।[१०]

३. पारस्परिक गुण एवं भक्ति-कथन — शिव विष्णु तथा उनके अवतारों की भक्ति, व्रत आदि का उपदेश देते हैं तो विष्णु या उनके अवतार शिव-भक्ति के व्याख्याता हैं। इनमें से पहली स्थिति अपेक्षाकृत अधिक मिलने से ज्ञात होता है कि शैवों से प्रतिक्रियावश वैष्णवों ने शिव से विष्णु-भक्ति की महिमा का प्रतिपादन कराया

---

१. वायु, अ० ९७, पृ० ४११; स्कन्द (कल्याण), वैष्णव, उत्कल, पृ० ३६५-३६६

२. वायु० अ० १०६, पृ० ५१२

३. मत्स्य०, अ० १७९, पृ० ५१०, गरुड़ (बरेली) अ० १०८, द्वितीय खण्ड, पृ० ८५-८८

४. मत्स्य, अ० १३३, पृ० ३२१; अ० १८८, पृ० ५४२; अग्नि (बरेली), अ० १०६, द्वितीय खण्ड पृ० २८; ब्रह्मवैवर्त, अ० ४४; भागवत ७।१०।५३-६८; देवीभागवत ६।४७;

५. भविष्य, पूर्वार्द्ध, अ० २१

६. ब्रह्मवैवर्त, श्रीकृष्णजन्म खण्ड, अ० ३६

७. स्कन्द (कल्याण) वैष्णव, उत्कल, पृ० ६६४-६५

८. मत्स्य, अ० २५६, पृ० ६६५

९. वही, अ० १९१, पृ० २५५

१०. स्कन्द (कल्याण), वैष्णव, उत्कल, पृ० ७७७-७७८

है । इसे तीन रूपों में पुनर्वर्गीकृत कर सकते हैं -

क. शिव द्वारा विष्णु की भक्ति , वैष्णव तीर्थों आदि का कथन-
शिव मत्स्य पुराण (अ० ६५) में विष्णु के पूजन का विधान, गरुड़ (बरैली,अ० १०६),पद्म(४।७२),भागवत (४।२४) में विष्णु-भक्ति की महिमा का प्रतिपादन और स्कन्दपुराण[1] में वैष्णव तीर्थों की महिमा का वर्णन करते हैं ।

ख. शिव द्वारा विष्णु के अवतारों की भक्ति, चरित्र,तीर्थों का वर्णन-
शिव पद्मपुराण में कृष्ण भक्ति की विधि एवं अनुष्ठान (४।८२),कृष्ण के नाम का माहात्म्य (४।८०) तथा कृष्ण-चरित एवं राधाकृष्ण के स्वरूप का वर्णन (४।७६-७८) करते हैं और स्कन्दपुराण में तो द्वारकामाहात्म्य नाम का एक खण्ड ही है, जिसके व्याख्याता शिव हैं ।

ग. शिव द्वारा विष्णु के स्वरूपों के व्रत तथा वैष्णव नैवेद्य की महिमा का वर्णन- मत्स्यपुराण (अ०५४ तथा ५७) में शिव द्वारा नारायण व्रत का उपदेश कराया गया है और पद्मपुराण (४।७६) में वे शालग्राम, तुलसी आदि का महत्त्व बताते हैं ।

दूसरी स्थिति को भी दो वर्गों में रख सकते हैं -

क. विष्णु के अवतार द्वारा रुद्र-महिमा का कथन- गरुड़ पुराण में कृष्ण बताते हैं कि रुद्र-मन्त्र के जपकर्ता को प्रेत पीड़ा नहीं होती है ।[2]

ख. यहाँ स्वयं विष्णु ही शिव-पार्वती के पूजन की विधि[3] तथा शिव-भक्ति का वर्णन करते हैं ।[4]

४. शिव और विष्णु की अन्योन्याश्रित भक्ति - शिव-भक्त तथा शिव विष्णु की भक्ति , स्तुति और उपासना करते हुये स्वयं को उनका भक्त बताते हैं तथा विष्णु शिवलिंग या शिव का पूजन-स्तवन करते हैं । यहां दूसरी स्थिति अपेक्षा-

---

१. स्कन्दपुराण(कल्याण)वैष्णव,उत्कल,पृ० ३०३-३१३

२. गरुड़ (बरैली)उत्तरार्द्ध, अ० १०

३. वही, १।१३; मत्स्य अ० ६०

४. शिव, रुद्र, सृष्टि,अ० २-४

कृत अधिक मिलती है और उसमें भी विष्णु के राम तथा कृष्ण अवतारों को शिवभक्त दिखाया है। इससे शैवों की प्रतिक्रिया पर प्रकाश पड़ता है, जिन्होंने विष्णु को शिव का भक्त दिखाया है। राम तथा कृष्ण का शिव-भक्त होना व्यक्ति की शिव-उपासना का भी उदाहरण कहा जा सकता है, परन्तु समग्र रूप में वह विष्णु की शिव-भक्ति का ही एक अंग है क्योंकि ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें स्वयं विष्णु या उनके अन्य स्वरूप ऐसा करते हैं। शिव-भक्त की निम्नस्थितियाँ उपलब्ध होती हैं --

क. विष्णु-भक्त या वैष्णव शिव के भक्त -- स्कन्दपुराण में कई स्थलों पर गरुड़, हनुमान, सीता, लक्ष्मण, दशरथ, भरत, बलराम, सत्यभामा, रुक्मिणी आदि को शिव-पूजन अथवा शिवलिंग-स्थापन करते दिखाया है।[१]

ख. विष्णु के अवतार शिव-भक्त - हरिवंशपुराण में कृष्ण को शिव का पूजन-स्तवन करते दिखाया है[२] और पद्मपुराण के दो स्थलों पर कृष्ण द्वारा पूर्वकाल में शिव-आराधना करने का वर्णन है।[३] देवीभागवत के अनुसार कृष्ण ने शिव की उपासना द्वारा सन्तान-प्राप्ति का वर पाया था[४] और विष्णु ने शिव-उपासना इसलिये की थी कि शरीर के अधिष्ठाता शिव होने के कारण वे कृष्ण-रूप विष्णु के भी जनक हैं।[५] इसी प्रकार राम रुद्र, शंकर और शिवलिंग का पूजन-स्तवन करते हैं अथवा शिवलिंग स्थापन।[६] परशुराम भी शिव के उपासक हैं।[७]

ग. विष्णु के स्वरूप शिव के भक्त - स्कन्दपुराण में नर-नारायण को शिव और पार्वती का उपासक दिखाया है।[७]

---

१. स्कन्द, प्रभास, अर्बुद, अ० ११०, १५१, १५२, १६५, १६६, १६६, २१५, रेवा, ब्रह्म, अ० ४६, रेवा, अवन्ती, अ० २३ तथा (कल्याण) माहेश्वर, कुमारिका, पृ० १४८-१५१, वैष्णव, उत्कल, पृ० ७७१ आदि।

२. हरिवंशपुराण, विष्णु, अ० ७४।८-३८, ४६

३. पद्मपुराण, विष्णु, अ० ७४।८-३८, ४६

४. देवीभागवत ४।२५

५. वही ५।१

६. वही, माहेश्वर, अरुणाचल, पृ० १६२-१६३

७. वायु, अ० १११, ब्रह्म, अ० १२३, १५७, स्कन्द, रेवा, ब्रह्म, अ० ४४, प्रभास, अर्बुद, अ० १०६ तथा (कल्याण) वैष्णव, उत्कल, पृ० ४३७-४४२, ७१५

घ. स्वयं विष्णु शिव के भक्त - देवी (१०।४) और पद्म (३।३७) पुराणों में विष्णु को शिव का भक्त दिखाया है। तथा शिव पुराण (रुद्र,सृष्टि, अ० २) में विष्णु कृत शिवस्तुति मिलती है। वायु पुराण (अ० २४) में भी विष्णु शिव की स्तुति करते हैं, जिसमें उन्हें लक्ष्मीपति कहा गया है। स्कन्दपुराण में विष्णु शिवलिंग की स्थापना भी करते हैं।[१] कई पुराणों में प्राप्त शिव के लिंगोद्भव-आख्यान में भी विष्णु शिव की महत्ता स्वीकार करते हुये उनका स्तवन करते हैं।[२]

शिव कृत विष्णु भक्ति के भी पुराणों में कई रूप मिलते हैं —

क. शंकर के अंश का विष्णु-भक्त होना - देवीभागवत (६।४१) में दुर्वासा को शंकर का अवतार और विष्णु का भक्त बताया है।

ख. शिव विष्णु-अवतार के भक्त - मत्स्यपुराण (अ० १७६) में शिव के ध्यान करने पर नरसिंह प्रकट होते हैं और तब शिवउनका स्तवन करते हैं, परन्तु भागवत (७/८) में शिव को हिरण्यकशिपु-वध के बाद नरसिंह-स्तवन करते दिखाया है। इसी प्रकार शिव राम के भक्त हैं[३] और कृष्ण का स्तवन करते हैं।[४]

ग. शिव विष्णु के स्वरूप के भक्त —देवीभागवत(८।८) और भागवत (५।१७) में कहा है कि इलावृतप्रदेश में महादेव-शिव संकर्षण की उपासना करते हैं। शिव उमा को अपने द्वारा वासुदेव को नमस्कार करने की बात बताते हैं।[५]

घ. शिव विष्णु के भक्त —मोहिनी द्वारा अमृतपान कराने के बाद शिव पार्वती के साथ विष्णु के पास उनका मोहिनी रूप देखने जाते हैं। वहाँ विष्णु के उस रूप पर कामासक्त हो जाते हैं, परन्तु स्मृति आने और विष्णु के प्रकट होने पर पार्वती को बताते हैं कि वह विष्णु के भक्त हैं।[६] मोहिनी पर शिव के कामातुर होने का प्रसंग अग्नि-

---

१. स्कन्द (कल्याण)माहेश्वर,कुमारिका, पृ० १४८-१५१

२. लिंग,अ० १८;देवी, ५।३३; स्कन्द ,माहेश्वर,अरुणाचल, अ० २७

~~३. लिंग,अ० १८,देवी,५।३३,स्कन्द,मा०~~

३. स्कन्द (कल्याण)वैष्णव,उत्कल पृ० ४९६-५००;पद्म० ४।३६,४६

४. आदि,अ० १६

५. भागवत ४।३

६. वही, ८।१२

पुराण में भी मिलता है ।[1] स्कन्द तथा भागवत में शिव को परमवैष्णव कहा है ।[2] और वह विष्णु की स्तुति तथा उपासना करते हैं ।[3]

प्रथम अध्याय में दिखाया जा चुका है कि ऋग्वैदिक काल से ही देवों के समन्वय तथा एकेश्वरवाद को बल दिया गया है और आगे चलकर कुछ देवताओं का स्वत: लोप हो गया तथा कुछ ने अन्य को आत्मसात कर लिया । परिणाम यह हुआ कि पौराणिक काल तक आते-आते शिव और विष्णु ही प्रधान रहे कर उनके अनेक सम्प्रदायों का विकास होने लगा । इस समय जहां दोनों में विद्वेष और पारस्परिक स्पर्द्धा की झलक मिलती है, अधिक महत्व समन्वय को ही दिया गया है । परन्तु समन्वय या एकत्व प्रदर्शन की शैली देखने से ज्ञात होता है कि समाज में प्रच्छन्न रूप से एक विघटनकारी धारा भी प्रवाहित हो रही थी, जिसकी प्रतिक्रिया में एकत्व स्थापना को बल दिया गया । इतने पर भी ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं जहां बिना किसी पूर्वाग्रह के हरि-हर समन्वय स्थापित हुआ है । यहीं तक नहीं शिव और विष्णु की शक्तियों को भी समन्वित या अभिन्न प्रदर्शित किया गया है । मायावी अन्धक का रक्तपान करने के लिए शिव ने जिन मातृकाओं को उत्पन्न किया उनमें माहेश्वरी, शिवा, चामुण्डा, कपाली, चण्डा आदि शैव हैं तो वाराही, नारसिंही तथा वैष्णवी विष्णु से सम्बन्धित[4]। इसी प्रकार दक्ष-यज्ञ में दग्ध सती की देह को लिये शिव घूम रहे थे कि देवों को आशंका हुई इस प्रकार से तो शिव ब्रह्माण्ड के बाहर चले जायेंगे और विष्णु ने सती की देह को बाण से काट दिया । इस शरीर के गिरने से जिन सिद्धपीठों का निर्माण हुआ उनमें शैव-वैष्णव दोनों प्रकार के हैं — गौरी, भवानी, रुद्राणी, कमला राधा, सीता, विन्ध्यवासिनी आदि ।[5] शिव और विष्णु की शक्तियों को लेकर समन्वय की जो अन्य स्थितियां मिलती हैं, उन्हें कम-से-कम चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

---

१. अग्नि० अ० ३

२. स्कन्द (कल्याण), वैष्णव, उत्कल, पृ० ३६३; भागवत, १२।१३।१६

३. वाराह, अ० ७२; भागवत, ४।२४

४. मत्स्य, अ० १७६

५. देवीभागवत, ७।३०।६४-६५

१. विष्णु की शक्ति को शिव-शक्ति के विशेषणों का प्रयोग — विष्णु के अंग में योगनिद्रा का निवास है,[१] परन्तु उसी को विष्णुपुराण में दुर्गा, अम्बिका आदि कहा है।[२] मार्कण्डेयपुराण में भी विष्णु-माया के लिये शिवा, गौरी, दुर्गा आदि विशेषण प्रयुक्त हुये हैं।[३] इसी प्रकार सीता को पार्वती[४] तथा लक्ष्मी को माहेश्वरी[५] कहा गया है।

२. शिव की शक्ति को वैष्णवी के अभिधानों का प्रयोग — दुर्गा को विष्णुमाया ही नहीं[६] लक्ष्मी, वासुदेवी, माधवी भी कहा गया है[७] और सती के विभिन्न रूपों में नारायणीदेवी, रुक्मिणी, राधा, सीता, महालक्ष्मी, लक्ष्मीदेवी, वैष्णवीदेवी आदि भी सम्मिलित हैं।[८]

३. एक ही शक्ति को शिवा तथा वैष्णवी मानकर भी उनमें एकात्म स्थापित किया गया है।[९] वृहन्नारदीयपुराण में उसी को उमा, गिरजा, वाराही, लक्ष्मी आदि कहा है[१०] तथा देवीभागवत में देवी को शंकर तथा विष्णु दोनों की प्रिया बताया है।[११]

४. वैष्णवी और शिवा के साथ हरि-हर में भी समन्वय स्थापना - विष्णुपुराण में विष्णु को शंकर तथा लक्ष्मी को गौरी कहा है।[१२] और पद्म तथा शिव - पुराणों में स्वयं शिव ही इस एकात्मता की स्थापना करते हैं। उनके अनुसार राधा ही

---

१. देवीभागवत १।७; विष्णु ५।१।७०

२. दे० ५।१।८३-८४

३. दे० खण्ड २, अ० ७७

४. स्कन्द(कल्याण), वैष्णव, उत्कल, पृ० ४४३,४४४

५. विष्णु १।६।१०३

६. देवीभागवत, ६।३८।१३०

७. शिव, रुद्र, सती ११।२५; मत्स्य, अ० ६०, पृ० १६५ तथा अ० ६३, पृ० १७३

८. मत्स्य, अ० १३, पृ० ३२-३३

९. मार्कण्डेय, खण्ड २, अ० ८३; देवीभागवत ८।१।२-४

१०. दे० अ० ३।१३-१४

११. दे० ७।५।६

दुर्गा तथा हरि रुद्र हैं[1] और विष्णु उन्हीं के रूप तथा पार्वती एवं लक्ष्मी एक ही हैं।[2]

शक्तियों के साथ ही नहीं अलग से भी हरि-हर समन्वय को स्थान दिया गया है। यदि कहीं पर दोनों को समान रूप में मानते हुए उनके अधिग्रहण द्वारा यह समन्वय प्रच्छन्न रूप से स्थापित हुआ है तो कहीं दोनों की एकता पर स्पष्ट बल दिया गया है। अप्रत्यक्ष समन्वय की स्थितियाँ के निम्न रूप देखे जा सकते हैं -

१. ग्रन्थ के मंगलाचरण में दोनों की स्तुति मिलने से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार दोनों को समान स्थान दे रहा है। उसके हृदय में जो श्रद्धा शिव के प्रति है, वही विष्णु के प्रति भी। मत्स्यपुराण के मंगलाचरण में मत्स्यावतार विष्णु-स्तुति के साथ शिव-स्तुति होना इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि उसे एक वैष्णव ग्रन्थ में स्थान मिला है।

२. शैव तथा वैष्णव दोनों आख्यान - लगभग सभी पुराणों में दोनों प्रकार के आख्यान मिल जाते हैं। यदि शैव पुराणों में शैव कथाओं की प्रमुखता है तो वैष्णव पुराणों में वैष्णव आख्यानों का प्राधान्य है। परन्तु इतने पर भी उनमें क्रमश: वैष्णव तथा शैव आख्यानों का अभाव नहीं है।

३. हरि-हर में से किसी एक के पूजन में अन्य के पूजा- विधान अथवा नैवेद्य का प्रयोग - तुलसी विष्णु का अपना नैवेद्य है और धतूरे तथा मन्दार से शिव - पूजन का विधान है, परन्तु शिवपुराण में शिव-पूजन के समय तुलसी के प्रयोग का उल्लेख है[3]। और पद्मपुराण में विष्णु-पूजन के समय धतूरा तथा मन्दार का उपयोग सम्मिलित किया गया है।[4] यही नहीं स्कन्द पुराण में तो शिवलिंग-पूजन के समय वैष्णव नामों के जप का विधान है।[5]

---

१. पद्मपुराण ४।८१

२. शिव, रुद्र, सती - १०।५७

३. दे० - रुद्र, सृष्टि १४।२८

४. दे० - ७।१२।२१

५. दे० - (कल्याण शिवांक) माहेश्वर, कुमारिका, पृ० १००-१०२

४. हरि-हर में परस्पर वक्ता-श्रोता सम्बन्ध - सती-दाह आख्यान के प्रथम वक्ता शिव तथा श्रोता विष्णु थे[१] और गरुड़पुराण तो पूरा का पूरा सर्वप्रथम विष्णु ने ही शिव को सुनाया था ।[२]

५. पुत्र-जनक सम्बन्ध - कई पुराणों में शिव से विष्णु की उत्पत्ति प्रदर्शित है तो कुछ में विष्णु से शिव की उत्पत्ति का प्रतिपादन हुआ है । शिव से विष्णु की उत्पत्ति के आख्यान प्राय: शैव पुराणों में ही मिलते हैं । वायुपुराण में शिव विष्णु को अपना बायां हाथ मानते हुये उन्हें अपने ही शरीर से उद्भूत बताते हैं[३] और शिवपुराण के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में शिव ने कालरूपिणी शक्ति के साथ शिवलोक नामक क्षेत्र का निर्माण किया, जिसे काशी कहते हैं । इसी में उन्होंने आनन्द वन की रचना की और उसमें रमण करते समय सोचा कि किसी अन्य का निर्माण करें, जिसे सृष्टि का भार सौंप कर हम स्वच्छन्द विहार कर सकें । इस प्रकार निश्चयकर उन्होंने उस पराशक्ति के दसवें अंग सुधारूपी आसव अल्पभाग से व्यापार किया, जिससे एक अति सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ । जब उसने शिव को प्रणाम कर अपना नाम और काम पूछा तो शिव ने इसको विष्णु नाम बताया ।[४] यहां पर विष्णु की उत्पत्ति शक्ति के संयोग से शिव द्वारा मानी गई है, जबकि इसी पुराण में आगे उन्हें शिव के वामांग से प्रादुर्भूत कहा है ।[५] शिव के वामांग से ही विष्णु की उत्पत्ति होने की बात स्कन्दपुराण में भी मिलती है ।[६]

इसके विपरीत भागवतपुराण में विष्णु के विराट् स्वरूप का वर्णन करते समय उनके अहंकार को रुद्र कहा है[७] और पद्मपुराण के अनुसार महाविष्णु ने संसार

---

१. शिव, रुद्र सती २।६
२. दे० गरुड़पुराण (बरेली), खण्ड १, अ० २
३. दे० अ० ५५
४. शिव, रुद्र, सृष्टि, अ० ६
५. दे०- रुद्र, सृष्टि, अ० ६।१७, रुद्र, सती, अ० २।१४
६. कल्याण विशेषांक, माहेश्वर, अरुणाचल, पृ० १६७-१६८, तथा वैष्णव-उत्कल, पृ० ५८१-८२
७. दे० १०।६३।३५

का संहार करने के लिए अपने मध्य अंग से महादेव शिव को उत्पन्न किया ।[१] यह ज्ञातव्य है कि इनमें से पहला पुराण वैष्णव है, जबकि दूसरा ब्राह्म ।

६. हरि-हर में मैत्री-भाव - समुद्रमन्थन से उत्पन्न कालकूट के विकराल रौद्र स्वरूप को देखकर और उसके संहारक कृत्य को सुनकर उसी के परामर्श से देवगण शिव के आश्रय में गये/वहां जाकर देवताओं ने शिव का स्तुति गान किया । इसमें देवता शिव तथा विष्णु को एक-दूसरे का प्रिय बताते हैं[२]। इसी प्रकार ब्रह्मपुराण के एक अन्य आख्यान में भी दोनों की मैत्री परिलक्षित होती है,[३] जिसमें गरुड़ द्वारा लाये गये शिव के नाग को वापिस मांगने के लिये नन्दकेश्वर के आने पर विष्णु गरुड़ को भी शिव के पास क्षमायाचना के लिये भेजते हैं । उत्कल के पुरुषोत्तम क्षेत्र में शिव तथा विष्णु दोनों का निवास है[४] क्योंकि शिव को विष्णु का सान्निध्य प्रिय है ।[५] इसीकारण बदरीक्षेत्र में भी शिवलिंग तथा विष्णु दोनों रहते हैं ।[६]शिवपुराण में शिव की बारात आने के समय नारद मैना को बताते हैं कि विष्णु शिव के समस्त कार्यों के अधिकारी तथा प्रिय हैं ।[७] इसी पुराण में शिव की स्तुति करते हुये देवता उन्हें विष्णु का कुटुम्बी तथा कलत्र बताते हैं ।[८]

७. हरि-हर में समानता प्रतिपादन — संसार से मोक्ष की प्राप्ति के लिये दोनों को एक भाव से देखना आवश्यक है ।[९] इसी की पुष्टि करते हुये विष्णु ब्रह्मा से

---

१. दे० ७।२।४

२. मत्स्य, अ० २५०

३. दे० अ० ६०

४. स्कन्द (कल्याण), वैष्णव, उत्कल, पृ० २५४-२५६

५. वही, पृ० २७१- २७५ तथा पृ० ६४८

६. वही, पृ० ३०३-३१३

७. दे० - रुद्र, पार्वती, अ० ४३।३८

८. दे०- रुद्र, सती, अ० ४०।४०

९. पद्मपुराण ३।५०।२०-२१

कहते हैं कि मुक्ति और शिव को समान भाव से देखने वाला, शिव भक्त, शालग्राम सम्पन्न व्यक्ति ही वैष्णव है;[1] क्योंकि देवों में शिव श्रेष्ठ हैं और पापनाशन में नारायण ।[2] यमराज अपने दूतों को आज्ञा देते हैं कि जो शिव और विष्णु में समान बुद्धि रखते हैं उन्हें छोड़ देना ।[3]

८. एक के अभाव में दूसरे की भक्ति असंभव -- विष्णु को शिव अत्यन्त प्रिय हैं और इस प्रेम-प्रगाढ़ता के कारण ही वह प्रचेताओं की दीर्घ तपस्या से प्रसन्न हो कहते हैं कि रुद्रगीत से मेरी स्तुति करने पर अभीष्ट वर प्राप्त होगा ।[4] पद्म-पुराण में भी विष्णु कहते हैं कि मेरे परम भक्त शिव का पूजन किये बिना मेरी भक्ति असंभव है ।[5]

९. शिव तथा विष्णु दोनों की भक्ति - जब शिव और विष्णु में अभेद है या एक के अभाव में अन्य की भक्ति असंभव है तो दोनों की प्रसन्नता-प्राप्ति स्वाभाविक हो जाती है । प्रस्तुत स्थिति को पुन: चार वर्गों में रख सकते हैं --

क. दोनों की समान पूजा-पद्धति - बृहन्नारदीय पुराण में इसका रोचक तथा विस्तृत वर्णन है, जिसमें कहा है कि कमलों से शिव तथा विष्णु का पूजन करने से तीन कुल सहित वैकुण्ठ प्राप्ति होती है । शमी पत्रों से पूजने पर सर्वकार्य फलीभूत होते हैं । घृतमिश्रित गुग्गुल देने से सब पाप छूट जाते हैं / आदि ।[6]

ख. दोनों की प्रसन्नता अभीष्ट -- मत्स्यपुराण में सौम्य नामक व्रत का वर्णन है, जिसमें शिव तथा विष्णु को प्रसन्न करने के लिये हेमन्त और शिशिर में पुष्पों का व्यवहार वर्जित बताकर फाल्गुन पूर्णिमा को सायंकाल तीन सुवर्ण पुष्प

---

१. पद्मपुराण ७।२।८६

२. देवीभागवत, माहात्म्य, अ० ५।८६,८८

३. बृहन्नारदीय, अ० २१।७०-७१

४. भागवत, खण्ड १।४।३०

५. पद्म ४।७३

६. दे० अ० १३।६६ तथा आगे; नारदपुराण, अ० १३ भी द्रष्टव्य

दान करने का विधान है ।[१] बाण की पत्नी ने दोनों को प्रसन्न करने के लिये सुवर्ण, मणि,रत्न आदि के अतिरिक्त अन्य अति दुर्लभ वस्तुयें भी नारद को दान में दी थीं ।[२] देवी भागवत में यमराज सावित्री से कहते हैं कि शिव तथा विष्णु के नैवेद्य को एक ही समझें और दोनों का पूजन करें ।[३]

ग. दोनों के नामों का जाप - गरुड़पुराण में मृत्यु के समय विष्णु और शिव के नाम-जप तथा श्रवण का विधान है ।[४]

घ. दोनों की भक्ति --गौतमी के तट पर शिव और विष्णु दोनों की मूर्तियां थीं । इन्द्र कृत अहिल्या-अभिगमन के पाप का शमन करने के लिए ब्रह्मा ने उन्हें गौतमी तट पर हरिशंकर की स्तुति करने का परामर्श दिया और वहां इन्द्र तथा उनके गुरु बृहस्पति की स्तुति से प्रसन्न हो हरिहर प्रकट हुये ।[५]धन के निमित्त होने वाले देवासुर संग्राम के पूर्व भी देवों ने गौतमी तट पर हरिशंकर का स्तवन किया था[६]। विभूतिद्वादशी व्रत की फलप्राप्ति में शिव-विष्णु की भक्ति ही है ।[७] हनुमान् ने एक साथ राम तथा शिवलिंग का स्तवन किया था[८] और पाण्ड्य देश का शंकर नामक राजा शिव तथा विष्णु दोनों का उपासक था ।[९] इसी प्रकार सूर्यवंश में उत्पन्न राजा मनु को शिव-विष्णु की आराधना करने से ही अयोध्या का राज्य मिला था ।[१०] पवित्रारोपण कार्य वाले गृह में हरि तथा हर दोनों का यजन कर दोनों को बलि दी जाती है ।[११] शिवपुराण में स्वयं शिव स्वीकार करते हैं कि विष्णुभक्त उन के अनुगामी

---

१. दे०- अ० १०१, पृ० २३५
२. वही, अ० १८७,पृ० ५४२
३. दे०- ६।३४।११६-११७
४. दे० लखनऊ संस्करण,अ० ८ तथा ११
५. ब्रह्मपुराण, अ० १२२
६. वही, अ० १६०
७. मत्स्य, अ० ६६,पृ० २३१
८. स्कन्द(कल्याण), वैष्णव,उत्कल, पृ० ४४३-४४४
९. वही, पृ० ४४४
१०. वही, अवन्ती,रेवा, पृ० ७५५
११. अग्नि (बरेली)अ० १४०।१६-२०

होते हैं ।[१]

१०. एक के पूजन से अन्य की प्राप्ति - जहां शिव और विष्णु में से किसी का भी पूजन करने से संसार की समस्त वस्तुयें सुलभ हैं,[२] वहीं शिवलोक की प्राप्ति भी असंभव नहीं,[३] परन्तु वैष्णवों की महान् सहिष्णुता का प्रमाण उस समय मिलता है जब वे शिवलिंग के दर्शन या शिव के पूजन से विष्णुलोक अथवा विष्णु की प्राप्ति की बात स्वीकार करते हैं । प्रस्तुत धारणा का शैव पुराणों में मिलना और भी महत्त्वपूर्ण है ।[४]

११. शिव के हृदय में विष्णु और विष्णु के हृदय में शिव का निवास - मत्स्यपुराण में एक ऐसे व्रत का विधान है जिसमें माघ शुक्ल दशमी को विष्णु के साथ शिव का पूजन ,एकादशी को रुद्र व विष्णु का एक साथ जप और अन्त में ब्राह्मणों को विदा करते समय हरिहर की एकता का निश्चय करते हुये यह समझना चाहिये कि शिव-हृदय में विष्णु का और विष्णु-हृदय में शिव का निवास है ।[५]

१२. शैव अथवा वैष्णव प्रतीक में अन्य का स्थान - शिव-लिंग में कुछ ने उसके मध्यवर्ती अष्टकोणीय भाग को वैष्णव प्रतीक माना है[६] तो अन्य ने उसकी पीठिका को ।[७] इसीप्रकार विष्णु ने जब हयग्रीव स्वरूप धारण किया, तो उनके मस्तक पर महादेव विराजमान थे ।[८] हिरण्यकशिपु वध के समय उपस्थित नृसिंह के ललाट पर भी प्रह्लाद को पशुपति शिव दिखाई देते हैं ।[९] वाराह पुराण में शालग्राम पर्वत की प्रत्येक

---

१. दे० रुद्र सृष्टि, अ० २।३४

२. भागवत ४।२२।८

३. मत्स्य,अ० १०१,पृ० २३५

४. स्कन्द (कल्याण),वैष्णव,उत्कल, पृ० ७१५;शिव,रुद्र,सृष्टि,अ० १४।३०; भविष्य,उत्तरार्द्ध,अ० ८०

५. दे० अ० ६९,पृ० १८३-१८४

६. मत्स्य,अ० २६३,पृ० ७०५

७. स्कन्द (कल्याण),माहेश्वर,केदार, पृ० १७

८. हरिवंश,भविष्य,अ० २६।५०

९. वही, अ० ४३।१०-१२

शिला को पूज्य बताकर कहा है कि जिस पर चक्र का चिह्न अंकित हो वह तो अतिश्रेष्ठ है, क्योंकि वहीं शिव भी लिंगरूप में रहते हैं, इसलिये लिंग चिह्नवाली शालग्राम शिला भी वहां मिलती है ।[१] देवमूर्ति के नेत्रज्योति सम्पादन वाले मन्त्र में उस मूर्ति विशेष को एक साथ शिव-विष्णु कहा है ।[२]

समन्वय का अन्तिम स्वरूप वह स्थितियां हैं जहां दोनों को स्पष्टतया एक ही कहा गया है, दोनों अपने समन्वित रूप में प्रकट होते हैं और उनके व्रतों, मूर्तिलक्षणों, यात्राओं आदि की कल्पना हुई है । पहली स्थिति में शिव अथवा विष्णु को क्रमश: वैष्णव और शैव अभिधान प्रदान किये गये हैं । जहां मत्स्यपुराण में शिव को कृष्ण-विष्णु का एक अवतार कहा है, वहीं वासुदेव और हरिकेश के अतिरिक्त[४] उनके लिये स्पष्ट रूप से विष्णु, हरि, नर-नारायण, चक्रधारी आदि विशेषणों का प्रयोग किया गया है ।[५] दूसरी ओर ऐसे स्थलों का भी अभाव नहीं है जहां विष्णु को शिव, रुद्र, हर, विष-हर्ता, विषकण्ठधर, नीलकण्ठ, वृषी, भालचन्द्र, उमापति, वटुक, भैरव, कपाली, महाकाल, श्मशानवासी, वामदेव, दिगम्बर, सदाशिव, सर्पसंगकर, भस्मरागी, महेश्वर, त्रिनेत्र, विश्वेश्वर, योगरूप, गुहावास आदि कहा है।[६]

२. विष्णु का शिव तथा शिव का विष्णु रूप धारण करना —दूसरे के अभिधानों का ही प्रयोग न होकर यहां कहा गया है कि विष्णु ही शिव रूप ग्रहण करते हैं[७] और शिव ही विष्णु हो जाते हैं । इसी को इस प्रकार कहा जा सकता है कि

---

१. दे०अ० १३८

२. ओं नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने । हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नम: । मत्स्य, अ० २६४, पृ० ७०७

३. दे० अ० ४७, पृ० १२२

४. हरिवंश, भविष्य, अ० १०५।५; शिव, रुद्र, सती, अ०४१।२७

५. हरिवंशपु०, विष्णु पर्व, अ० ७२।२६; स्कन्द पु०(कल्याण). वैष्णव, उत्कल, पृ० ४५८ तथा ७६८-७६६, मत्स्यपु०अ० ६५, पृ०२२४; वायु०पु०, ५४, पृ०१८४, १८५, अ०५५, पृ०१८८

६. मत्स्यपु० अ० ६६, पृ० २३०; भागवत पु० ८।१६।३२; स्कन्द पु०(कल्याण)वैष्णव, उत्कल पृ० ७३५-७४०; पद्मपु०, २।८७; अग्निपु०, भाग २, अ० १६०

७. हरिवंश पु०, हरिवंश, अ० ४१।२०-२२, विष्णुपर्व, अ० १२८।३१; भविष्यपर्व, अ० ११।५८; विष्णु पु० २।४।५६; ३।१७।२६, ६।३।२४; वायु पु०, अ० ६६, पृ० २५६, मत्स्यपु०, अ०२४६, पृ० ६६७; बृहन्नारदीय पु०, अ० २, ३

एक ही सत्ता कालक्रम से शिव और विष्णु का स्वरूप धारण करती है । हरिवंशपुराण में तो कृष्ण-जनार्दन तक को शिव-रुद्र कहा है[1]।दूसरी ओर रुद्र का ही एक रूप संकर्षण है[2]अथवा शिव ही विष्णु का रूप ग्रहण करते हैं ।[3]जैसे एक ही वर्ण की अनेक वस्तुयें बनती हैं और वस्तुत:भेद न होकर अलंकार नाम आकृति का भेद है तथा एक ही मिट्टी के अनेक नाम वाले पात्र हैं,उनमें भेद न होकर सब मृत्तिकामात्र है । इसी प्रकार कार्य-कारण से एक ही सत्ता विविधरूप धारण करती है[4]। वह शक्ति विशेष विष्णु के अवतार तथा रुद्र[5];स्वयंविष्णु तथा रुद्र[6]अथवा शिव[7]स्वरूप में अभिव्यक्त होती है ।

३. शिव-विष्णु में ऐक्य प्रतिपादन - दो सत्तायें होते हुये भी उन्हें एक रूप में प्रतिपादित करने के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं । ऐसा प्रयत्न कभी तो पुराणकार की ओर से हुआ है और कभी स्वयं विष्णु[8]अथवा शिव[9] पारस्परिक समन्वय की बात करते हैं । हरिहर के स्वरूप की मान्यता में शिव और विष्णु के विविध रूपों के समन्वय के आधार पर भी पुनर्वर्गीकरण द्रष्टव्य है।जहाँ नारदपुराण में लिंग, हरि तथा शिव, विष्णु में अभेद स्थापित हुआ है,[10] वहीं शिव तथा विष्णु को भी

---

१. है० भविष्य पर्व, अ० ११५।२०

२. विष्णु पु० २।५।१६

३. शिवपु०,रुद्र,पार्वती, अ० ३०; रुद्र, युद्ध, अ० २।२१-२८;स्कन्द पु०,माहेश्वर, केदार(कल्याण,पृ० १८,३४-३५) आदि;ब्रह्मवैवर्त पु०,गणपति,अ० ७

४. शिवपु०,रुद्र,सृष्टि अ० ६।३५-३६

५. पद्मपु०,स्वर्ग खण्ड,अ० २

६. गरुड़ पु० (बरेली)अ० ४

७. वायुपु० अ० २०,पृ० ५६;नारदपु०,अ० २।२८

८. पद्मपुराण,खण्ड ७,अ०१०।६६; नारद प०, अ० ५।७१;शिव पु०,रुद्र, सती,अ० १६ ।६८, देवीभागवत पु०, स्कन्ध ६,अ०१५।५४५६;बृहन्नारदीय पु० अ० ५।६०

९. पद्म०पु० २।८३।३७-४२; स्कन्द पु०, काशी, २७।१८३ (कल्याण, पृ० ५) माहेश्वर, कुमारिका(कल्याण,पृ० १०४),वैष्णव,उत्कल (कल्याण, पृ० ३०२-३०३ तथा ५८३-५८४)

१०. है०-अ० ६।४४-५०

एक कहा गया है ।[1] इस सम्बन्ध में यह रोचक है कि समन्वय स्थापित करते हुये भी किसी आख्यान में प्रच्छन्न रूप से शिव की महत्ता है, तो किसी में विष्णु की । इसे यों भी कह सकते हैं कि आख्यान विशेष में वैष्णव पुराण विष्णु को महत्त्व देते हैं,[2] तो शैव पुराण शिव को ।[3]

४. हरिहर : एक पृथक सत्ता --यह वह स्थिति है जहाँ शिव और विष्णु के अतिरिक्त एक अन्य सत्ता - हरिहर-का अस्तित्व मिलता है । इस स्थिति के कई रूपों को निम्न वर्गों में रख सकते हैं ।

क. शिव और विष्णु ही हरिहर --वायु (अ० ५५) , लिंग (अ० १।१७-१९), शिव (२।१।७-१०), कूर्म आदि पुराणों के समान ब्रह्म पुराण में भी शिव का लिंगोद्भव आख्यान मिलता है, जिसके अनुसार विष्णु और ब्रह्मा में अपनी सर्वोच्चता को लेकर विवाद होने पर एक ज्योति पुंज भासमान होता है । इसका आदि और अन्त खोजने के लिये विष्णु अधोगमन और ब्रह्मा ऊर्ध्वगमन करते हैं । पता न लग सकने पर वापिस आकर विष्णु तो सत्य, परन्तु ब्रह्मा बोलते हैं कि उन्होंने अन्त खोज लिया। ब्रह्मा के इस असत्य कथन को सुनकर शिव और विष्णु उसी प्रकार एक रूप हो गये जैसे सूर्य और चन्द्रमा मिल जायें । उस समय हरिहर ने ब्रह्मा की असत्य वाणी को नदी हो जाने का शाप भी दे दिया ।[4] परन्तु ब्रह्मा द्वारा स्तुति किये जाने पर हरिहर ने शाप मुक्ति के लिए गंगा से संगम करने का उपाय बताया ।[4] प्रस्तुत आख्यान में शिव की महत्ता होते हुए भी हरिहर की एक पृथक सत्ता स्थापित हुई है, जो ब्रह्मा को शाप देती है और उनके द्वारा स्तुति किये जाने पर शाप से मुक्ति का उपाय बताती है । वाराहपुराण के दक्ष-यज्ञ-विध्वंस आख्यान में शिव और विष्णु

---

हरिवंश पु०, विष्णु, अ० ७२।२६-२८; स्कन्द पु०, काशीखंड २३।४९;

१. वही, अ० १५।१५८-१५६; (कल्याण, पृ० ५) ; लिंगपु० अ० ६५ ~~काशीखं०२३।४१, लि०अ०६५~~

२. देखिये-उषा-अनिरुद्ध : विष्णु पु०, अंश ५, अ० ३२-३३;

३. हरिवंशपु०, विष्णु पर्व, अ० ११६-१२६ ; ब्रह्मवैवर्तपु०, श्रीकृष्णजन्म, खण्ड; अ० ११४-१२०

३. उषा अनिरुद्ध आख्यान में ही शिव के महत्व के लिए दे० शिव पु०, रुद्र, युद्ध, अ० ५४-५५; तथा लिंगपुराण का हिरण्यकशिपुवध, आख्यान, अ० ९५

४. ब्रह्मपुराण, अ० १३५

का द्वन्द्व होने पर ब्रह्मा उन्हें रोकते हुए हरिहर होने का वर देते हैं ।[1] इसीप्रकार बृहन्नारदीय पुराण में मिलता है कि जो आदि, अन्त रहित हरिहर हैं, वह एक ही (शक्ति) हैं, जो अज्ञान समुद्र में डूबे हुये पापीजन हैं, वे इनमें परस्पर भेद मानते हैं और ऐसे लोग प्रलय पर्यन्त नरक भोगते हैं ।[2]

ख. शिव द्वारा हरिहर रूप प्रकट करना — हरिवंश पुराण की शिव-स्तुति में उन्हें हरिहर रूप कहा है[3] और स्कन्दपुराण में तद्विषयक एक महत्त्वपूर्ण एवं रोचक आख्यान है, जिसके अनुसार एक समय भयंकर रूपधारी तथा बलोन्मत्त दानवों से पीड़ित देवता ब्रह्मा की शरण में गये। देवताओं के दुख को सुनकर ब्रह्मा ने कहा कि एक बार शैवों तथा वैष्णवों में विजय के लिए परस्पर महान् विवाद होने लगा। कि ऐसे समय भगवान् शिव ने अपने भक्तों के देखते-देखते एक परम अद्भुत रूप धारण किया । वह उनका हरिहर स्वरूप था । वे आधे शरीर से शिव और आधे शरीर से विष्णु हो गये । एक ओर शिव के चिह्न प्रकट हुये और दूसरी ओर विष्णु के । एक ओर मेघ के समान श्यामवर्ण तथा गरुड़ था और दूसरी ओर कर्पूर के समान श्वेत वर्ण तथा नंदी वृषभ । इस एक स्वरूप को देखकर दोनों धर्म के लोगों को एकता का बोध हुआ और श्रुतियों तथा स्मृतियों के अर्थ को बाधित करने वाली उनकी भेदबुद्धि नष्ट हो गई । वह हरिहर मूर्ति आज भी मन्दराचल पर विद्यमान है, जिसकी प्रमथ आदि गण सदा स्तुति करते रहते हैं । सृष्टि पालन एवं संहार करने वाली वह मूर्ति सम्पूर्ण विश्व का बीज एवं अनन्त है । स्मरण मात्र से वह सर्वपापों की नाशक है । वह परमयोगी पुरुषों द्वारा चिन्तन करने योग्य है और मोक्ष साधक व्यक्ति उसका ध्यान करके परमपद प्राप्त करते हैं । विशेष रूप से चातुर्मास्य में उसका ध्यान करने से मनुष्य पुनः भव बन्धन में नहीं पड़ता है । इतना कह ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये, तब देवता मन्दराचल पर जाकर भगवान् शिव को खोजने लगे । चातुर्मास्य पूर्ण होने पर उन्होंने हरिहर रूप में प्रकट होकर देवों को आश्वस्त किया कि उनकी विपत्ति समाप्त हो गई क्योंकि दानवों का नाश कर दिया गया है ।[4]

---

१. दे० अ० २१

२. दे० अ० ६।४६,४६

३. दे० भविष्य पर्व, अ० ८७।१७

४. दे० वैष्णव, उत्कल (कल्याण, पृ० ४६७-४६८)

प्रस्तुत आख्यान से ज्ञात होता है कि हरिहर का आविर्भाव शैव-वैष्णावों के संघर्ष का परिणाम था और दोनों की विकासावस्था के समय इसे अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता । कई पौराणिक आख्यानों में शिव और विष्णु का संघर्ष होता है, परन्तु उनकी परिणाति समन्वयात्मक ढंग से हुई है । ऊषा-अनिरुद्ध आख्यान में ही पहले तो कृष्णा शिव गणों को पराभूत करते हैं और फिर उनका शिव से भीषण संग्राम होता है जिसे अप्रत्यक्ष रूप से शैवों और वैष्णावों का संघर्ष कहा जा सकता है । परन्तु इसी मध्य ब्रह्मा आ जाते हैं और युद्ध स्थगित कराते हुये शिव तथा कृष्णाकी एकरूपता का स्मरण दिलाकर हरिहर की स्तुति करते हैं । इसी प्रकार हिरण्यकशिपु-वध के आख्यान में भी मिलता है कि जब नृसिंह के उत्पातों से भयभीत देवताओं ने शिव की शरण का आश्रय लिया तब शिव रूप वीरभद्र ने नृसिंह को दण्डित किया । उन्होंने नृसिंह का शिरच्छेद करके उनका चर्म भी उतार लिया । आख्यान को मोड़ दिया है देवों कृत शिव स्तुति ने, जिसे सुनकर शिव कहते हैं कि वह और विष्णु तो जल में जल और दूध में दूध मिलने के सदृश एक स्वरूप हैं । वह शैवों को नृसिंह का यजन करना भी आवश्यक बताते हैं । नृसिंह-वध के समय शिव द्वारा गृहीत शरभेश स्वरूप की भारतीय कला में मूर्तियाँ भी मिलती हैं, जिनमें पशु, पक्षी तथा मानव का मिश्रण है ।[१]

आख्यान में यह भी कहा है कि हरिहर के स्वरूप को देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हो गये और उन्होंने अपनी भेद-बुद्धि को छोड़कर संसार में एकमात्र सत्ता के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया । भारतीय संस्कृति अनेकता में भी एकता के दर्शन करती है, फिर उसे एकता में अनेकता कब सह्य होगी ? ब्रह्मा से मन्दराचल पर हरिहर के होने की बात जानकर भी वहाँ देवता शिव की ही खोज करते हैं, परन्तु उन्हें दर्शन हरिहर के होते हैं । इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि हरिहर मूर्ति में शिव और विष्णु दोनों का भाग होते हुये भी शैव-सिद्धान्तों के अनुसार वह — शिव, सदाशिव और महेश नामक तीन तत्वों में से — महेश की पच्चीस लीलामूर्तियों में से एक है ।[२] दूसरी ओर लक्षणाग्रन्थों में भी हरिहर मूर्ति के लक्षणा शिव के विविध स्वरूपों के साथ

---

१. डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्रफी, फलक ३४, चित्र २

२. देवपीडिया, पृ० २२ ४२

मिलते हैं[1] और हरिहर की मूर्तियों में कुछ अपवादों के अतिरिक्त शिव भाग दक्षिण पार्श्व में रहता है।[2] इन सबसे सिद्ध होता है कि हरिहर शैव देवता हैं और उसके स्वरूप विकास में शैवों की ग्रहणशीलता तथा सहिष्णुता ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

ग. हरि द्वारा हरिशंकर स्वरूप धारण करना — वामनपुराण के आख्यान के अनुसार विष्णु द्वारा मुरासुर का वध हो जाने के पश्चात् देवों ने विष्णु के पास जाकर जगत के संक्षोभ का कारण बताया। विष्णु ने कहा संक्षोभ का समाचार शिव से कहेंगे और शिव के निवास स्थल मन्दराचल पहुँचने पर जब देवता शिव को नहीं देख सके तो उन्होंने विष्णु के परामर्श के अनुसार तप्तकृच्छ्र का विधान किया, परन्तु तब भी शिव दिखाई नहीं दिये तो विष्णु ने कहा कि वह योगप्राय मेरे शरीर में ही हैं। इतने पर भी देवता सोचने लगे कि सत्वगुण और तमोगुण से सम्पन्न विष्णु तथा शिव योगत्व को कैसे प्राप्त हुये। देवों के इस विचार को जान विष्णु ने विश्वमूर्ति हरिशंकर का स्वरूप धारण किया। उन्होंने नाग कुण्डल पहिने, केश मुंजवत् कर जटायें बनाईं और गरुड़ध्वज लिया। सिर पर चन्द्रमा, कण्ठ में सर्पहार, कटि में पीताम्बर और मृग चर्म, पहिना। उस समय उनके हाथों में चक्र, खड्ग, हल, शार्ङ्ग, त्रिशूल, अजगव, धनुष, कपर्द, खट्वाङ्ग, कपाल, घंटा तथा शंख शोभायमान थे।

हरिहर की कोई मूर्ति ऐसी नहीं मिली है, जिसमें प्रस्तुत लक्षणों का पालन हुआ हो। केवल राष्ट्रीय संग्रहालय में हरिहर की आलीढ मुद्रा की एक प्रतिहारकालीन मूर्ति है,[3] जिसकी भुजायें खण्डित होने के कारण उनके आयुधों के विषय में मुद्रा

---

१. काश्यप शिल्प, ७३ वाँ पटल; मानसोल्लास, ३।१; अपराजित पृच्छा, सूत्र २१२; उत्तरकामिकागम, ६० वाँ पटल; देवतामूर्तिप्रकरण, अ० ६; शिल्परत्न, २२ वाँ अध्याय आदि

२. दे० प्रस्तुत लेखक का लेख :"हरिहर के असामान्य स्वरूप का द्योतन एक चित्र, मानविकीय शोध, अंक १३, पृ० ३३(१९७० ई०)

३. दे० जर्नल आफ दि ओ०इ०, बड़ौदा, भाग १८, अंक १-२(सितम्बर-दिसम्बर १९६८) में श्री बृजेन्द्रनाथ शर्मा का लेख "ऐन यूनीक् इमेज आफ हरिहर इन दि नेशनल म्यूजियम, न्यू देल्ही।

के आधार पर अनुमान किया जा सकता है । अलीढ़ बाण-संचालन की मुद्रा होने से लगता है कि हाथों में धनुष-बाण रहा ही होगा । परन्तु प्रस्तुत मूर्ति द्विभुजी होने के कारण उसका उपरोक्त आख्यान के हरिशंकर से कोई सम्बन्ध नहीं रहता है । इससे लगता है कि वैष्णवों में अलग से हरिहर का स्वरूप उतनी मान्यता न पा सका, जितनी उसे शैवों ने प्रदान की, यद्यपि हरिहर मन्दिर में दोनों जाते हैं ।

घ. हरिहर की सर्वोच्चता एवं महिमा-जहां हरिहर को सृष्टि, पालन तथा संहारकर्ता और स्मरण मात्र से पापों का नाशक तथा मोक्षदायक कहा है,[1] वहीं अन्य स्थल पर मिलता है कि हरिहर के सम्मुख दीपदान करने से भविष्य में तेजस्विता आती है और दोनों कुलों (?) का उद्धार हो जाता है । इसी प्रकार हरिहर को नैवेद्य प्रदान करने पर एक-एक ग्रास में सम्पूर्ण यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।[2]

ङ. पार्वती द्वारा हरिहरकापूजन - शिव, स्त्रियों तथा शूद्रों को, प्रणवयुक्त वैष्णवमन्त्र ( नमो भगवते वासुदेवाय) का अनधिकारी बताकर पार्वती को इस अधिकार की प्राप्ति के लिये चातुर्मास्य में विष्णु की तपस्या करने को कहते हैं । चातुर्मास्य आने पर वह सखियों सहित हिमालय पर गईं और ब्रह्मचर्यपूर्वक प्रातः,मध्याह्न तथा सायं तीनों समय हरिहर का ध्यान करने लगीं ।[3]

५. हरिहर की उपासना -पुराणों में हरिहर के विस्तृत स्तवन ही नहीं,[4] उनके विविध व्रतों, पूजनों आदि का भी विधान मिलता है । वेश्याओं द्वारा किये जाने वाले अनंगदानव्रत में पीताम्बर तथा पाश, अंकुश, शंख, चक्र, गदाधारी शिव देवता (? ) को नमन किया जाता है ।[5] और धन-धान्य,पुत्र-पौत्र ,आरोग्यादि

---

१. दे०- पीछे, पृ० ६८

२. स्कन्द पु०,माहेश्वर,केदार(कल्याण,पृ० १६)

३. वही, ब्राह्म, चातुर्मास्य माहात्म्य(कल्याण,पृ० ५०१)

४. हरिवंश पु०,विष्णु, अ० १२५; ब्रह्म पु० अ० १३५ तथा १७४; स्कन्द पु०काशी खंड

५. मत्स्य पु०,अ० ७०, पृ० १८८

पाने के लिये वाराहपुराण में सौभाग्य व्रत का विधान दिया है। फाल्गुन शुक्ल तृतीया से प्रारम्भ किये जाने वाले इस व्रतम् में पहले सशक्ति हरिहर की स्वर्ण अथवा रजत मूर्तियों को पंचगव्य से स्नान करायें, फिर उत्तम वस्त्र से वेष्टित कर चन्दन, पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल से पूजन कर मूर्ति के अंगों में निम्नमन्त्रों से पुष्पांजलि देकर पूजन करे –

| | |
|---|---|
| पैरों में – | ओं गंभीराय नम: । |
| कटि में – | ओं सुभगाय नम: । |
| उदर में – | ओं देवदेवाय नम: । |
| मुख में – | ओं त्रिनेत्राय नम: । |
| शिर में – | ओं वाचस्पतये नम: । |
| सर्वांग में – | ओं रुद्राय नम: । |

इस प्रकार पुष्पांजलि अर्पण और पूजन कर मूर्ति के आगे यथाविधि अग्नि को स्थापित कर मधु, घृत और तिल द्वारा "ओं सौभाग्यपतये नम:" मन्त्र से हवन करे। रात्रि को जागरण कर नृत्यगीत-स्तुति से परमेश्वर को प्रसन्न कर प्रात:काल पूजा समाप्त कर केवल गेहूँ का भोजन करे। इस प्रकार दोनों पक्ष का व्रत करने वाला तीन मास पूरा कर आषाढ़मास से तीन मास तक इसी भांति पूजाकर अन्न का पारण करे। का कार्तिक मास से सवां का पारण कर माघ मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को पहली भांति सामग्री सहित पूजन करे और फिर छ: पात्र मधु, घी, तिल, गुड़, नमक, गोदुग्ध के साथ देवमूर्ति किसी दरिद्री वेदपाठी ब्राह्मण को दान करदे।[1]

भविष्यपुराण के विभूतिद्वादशी और सर्व फलत्याग व्रत भी संभवत: हरिहर से ही सम्बद्ध हैं क्योंकि इनमें मूर्ति का स्पष्ट उल्लेख न होकर अनुष्ठान शैव-वैष्णव दोनों की प्रकृति के हैं।[2] इसी पुराण के एक अन्य व्रत का पालन करने से सर्वप्रकार के कल्याण और शिवलोक की प्राप्ति होती है। जिस दिन अष्टमी को सोमवार हो, उस दिन हरिहर का पूजन करे। इसमें ऐसी प्रतिमा स्थापित करे, जिसका दक्षिण भाग

---

१. दे० - अ० ५७

२. दे० - उत्तरार्द्ध, अ० ७५ तथा ८७

शिव रूप और वाम भाग विष्णु रूप हो । मूर्ति को पंचामृत आदि से विधिपूर्वक स्नान कराके दक्षिण भाग में कर्पूर युक्त चन्दन और वाम (विष्णु) भाग में तुरुष्क नामक सुगन्धित द्रव्य युक्त कुंकुम का लेप करे । मूर्ति में शिव भाग के ऊपर नीलम तथा विष्णु भाग के ऊपर मोती चढ़ाये । मूर्ति पर श्वेत तथा रक्त पुष्प चढ़ाकर घृत में पक्का नैवेद्य लगाये, पचीस दीपकों की आरती करे तथा निराहार रहे ।

दूसरे दिन पूजन कर घृत युक्त तिलों का हवन करे तथा व्रती और ब्राह्मणों को भोजन करा यथाशक्ति मिथुन-पूजा करे । इस प्रकार एक वर्ष व्रतकर अन्त में पूर्वोक्त रीति से पूजन कर ब्राह्मण को भोजन कराये और श्वेत-पीत वस्त्र ,वितान,पताका,घंटा, धूपदानी,दीपवृक्ष आदि पूजन के उपकरण दान में दे । चतुरस्र मण्डल में शिव तथा त्रिकोण मण्डल में पार्वती का पूजन कर पचीस दीपकों से धीरे-धीरे नीराजन करे । इस प्रकार पांच वर्ष अथवा भक्तिपूर्वक एक ही वर्ष व्रत करने से हरि-हर लोक में निवास के बाद मोक्ष की प्राप्ति होती है । जो मनुष्य आजन्म इसका पालन करे वह साक्षात् विष्णु रूप हो जाता है ।[१]

६. हरिहर का मूर्ति-विधान - मत्स्य, अग्नि और विष्णुधर्मोत्तर पुराणों में ऐसी मूर्ति के लक्षण मिलते हैं, जिसमें अर्धार्ध शिव और विष्णुवत् हों । परन्तु अन्तिम के अतिरिक्त प्रथम दो में ऐसे मूर्त-स्वरूप को क्रमश: शिवनारायण और रुद्र केशव कहा है, जो हरिहर के ही पर्याय हैं ।[२] मत्स्यपुराण के अनुसार दक्षिण पार्श्व का जटाभार अर्द्धचन्द्र से अलंकृत हो और भुजंगों के हार रूप वलय से विभूषित एक हाथ वरदमुद्रा में हो तथा अन्य त्रिशूल धारण किये हो । वह सर्प का यज्ञोपवीत, अर्धकटि में गजचर्म तथा चरण में नाग, मणि एवं रत्न धारण किये हो । इसी प्रकार वाम पार्श्व की भुजाओं में मणिजटित केयूर हो एवं उसकी मनोहर अंगुलियां (लाल वर्ण) हों । ऊर्ध्वहस्त में शंख तथा अधोकर में चक्र के

---

१. वही, उत्तरार्द्ध, अ० ५२

२. दे० - प्रस्तुत लेखक का लेख : हरिहर के असामान्य स्वरूप का द्योतक : एक चित्र, मानविकीय शोध (अंक १३,१९७० ई०) , पृ० ३५

साथ अधोमुखी गदा भी हो । उसके अर्धकटि में उज्ज्वल आभूषण तथा पीताम्बर के अतिरिक्त चरण में मणिजटित अलंकरण होने चाहिए ।[1] यहाँ प्रारम्भ में भ्रम से वामार्ध में शूलपाणि को बताकर विष्णु के कृष्ण स्वरूप को शिव से समन्वित किया गया है ।

अग्निपुराण में केशव--हरि-को गदा तथा चक्र धारी और रुद्र-हर-को ऋष्टि एवं शूलधारी नियोजित करने का विधान है । उनके पार्श्वों में क्रमश: लक्ष्मी तथा गौरी, नाभिपद्म पर ब्रह्मा तथा शेष अंग एव अनुरूप होने चाहिये ।[2] इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तर में हरिहर के वाम एवं दक्षिण पार्श्वों को क्रमश: सदाशिव और हृषिकेश के अनुकूल नील एवं श्वेत वर्ण नियोजित करने का विधान दिया है । वे पद्म, चक्र, त्रिशूल धारण किये हों और शेष कर वरदमुद्रा में हो । उनके पार्श्वों में क्रमश: गरुड़ तथा वृषभ का निर्माण करे ।[3]

७. <u>हरिहर क्षेत्र</u> - ब्रह्मा के शिरश्छेदन करने पर उनका कपाल शिव से संलग्न हो गया, जिसे छुड़ाने के लिए वह हिमाचल से हरिहर क्षेत्र और वहाँ से अयोध्या होते हुये काशी पहुंचे जहाँ कपाल-मोचन हुआ ।[4] वर्तमान काल में एक हरिहर क्षेत्र बिहार के सोनपुर में है, जहाँ हरिहर का एक प्राचीन मन्दिर भी है । यदि शिव हिमालय से चलकर यहीं होते हुये काशी गये हों, तो अयोध्या मार्ग में नहीं पड़ता । अत: या तो वह हरिहर क्षेत्र के बाद कपालमोचन के लिये पहले अयोध्या और वहाँ से निराश होकर काशी गये थे अथवा प्रस्तुत हरिहर क्षेत्र किसी अन्य स्थान पर होना चाहिये ।

देवीभागवत में ऐसे तीर्थों की सूची दी है, जिनमें दान ग्रहण करने पर कुम्भीपाक नरक मिलता है । इन तीर्थों में वाराणसी, बदरिकाश्रम, गंगासागर, पुष्कर, प्रभास, कामरू, हरिद्वार, त्रिवेणी, वृन्दावन के साथ हरिहरक्षेत्र भी सम्मि-

---

१. दे० - अ० २६०, पृ० ६६८

२. दे०, अ० २०

३. वाराहपुराण, अ० ६४

लित है ।[1] इसी प्रकार भागवत पुराण में पुलहाश्रम का उल्लेख मिलता है, जो टीकाकार के अनुसार हरिहर क्षेत्र है ।[2]

हरिहर क्षेत्रों की यह कल्पना उस समय की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालती है, जब हरिहर की पूर्ण प्रतिष्ठा के पश्चात् उनके नाम पर स्थानों को भी सम्बोधित किया जाने लगा । अन्य देवों को आधार बनाकर भी नगरों तथा क्षेत्रों की स्थापना हुई है, जैसे -- विष्णुप्रयाग, ~~कृष्णनगर~~, विष्णुकांची, कूर्मस्थान, वाराह-क्षेत्र, शूकर क्षेत्र, रामनगर, कृष्णनगर, रुद्रप्रयाग, भास्करक्षेत्र, गिरजाक्षेत्र आदि ।[3]

मूर्ति तथा वास्तुशास्त्रीय लक्षण ग्रन्थ -

इनमें विविध धर्मों तथा सम्प्रदायों के देवताओं की मूर्तियों के लक्षण, उपकरण, स्थापना विधि आदि के अतिरिक्त मन्दिर-निर्माण का विधान है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हरिहर प्रतिमा का उल्लेख केवल शैव प्रतिमाओं के अध्याय में हुआ है, वैष्णव वर्ग में नहीं । इससे सिद्ध होता है कि हरिहर प्रतिमा की पूजा एवं कल्पना शैव परम्परा से प्रादुर्भूत होकर विकसित हुई है । हरिहर के पर्यायों में हरमर्धहरि,[4] हर्यर्धहर,[5] कृष्णाशंकर[6] के अतिरिक्त कुछ -- हरि, हरिरर्ध-[7] पूर्णतया वैष्णव होते हुये भी शिव के विविध स्वरूपों में ही सम्मिलित किये गये हैं ।

मयमत में हरिहर के देवालय निर्माण का उल्लेख है[8] और कई ग्रन्थों में हरिहर की मूर्तिस्थापना विषयक विधान मिलता है । काश्यपशिल्प के अनुसार हरि-

---

१. दे० - स्कन्ध ~~६, अ० ७, स्कन्ध~~ ७, अ० ३४
२. दे०-स्कन्ध ५, अ० ७; स्कन्ध, ७, अ० १४
३. बी०सी०भट्टाचार्य, इण्डियन इमेजेज़, भूमिका, पृ० ३५-३७; विस्तृत विवरण के लिये, दे० दि ज्याग्रेफिकल डिक्शनरी, एन०एल० डे; इंगलिश-संस्कृत डिक्शनरी, ए० बरुआ
४. दे०काश्यपशिल्प, पटल ७२।६७
५. वही, पटल, ७३
६. अपराजितपृच्छा, सूत्र २१३।२८
७. काश्यपशिल्प, पटल ५०।१६ तथा पटल ६०।८
८. दे० - अ० ६।८२

हर की स्थापना सुग्रीव (दिशा) में होनी चाहिये ।[१] और काश्यपज्ञानकाण्ड में कहा है कि पंचमूर्ति विधान से ग्राम के मध्य तथा पूर्व में स्थानक व शयन; दक्षिण, पश्चिम में योगासीन व स्थानक; उत्तर में शयन तथा आसनस्थ ; आग्नेय में स्थानक; नैर्ऋत में वाराह; वायव्य में नरसिंह तथा ईशान में हरिशंकर को स्थापित करना चाहिये ।[२] अपराजितपृच्छा के वापीकूपतडागादि निर्णय नामक सूत्र में भी हरिहर मूर्ति स्थापित करने का विधान है ।[३]

इन ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण विशेषता है मूर्ति-लक्षण । विश्वकर्मवास्तु शास्त्रमें ग्राम,नगर आदि के देवालयों में स्थापित करने या अपनी इच्छानुसार पूजने के लिए हरिहर को वृषमारूढ़ बनाने का उल्लेख है ।[४] वृषभ एकमात्र शिव का वाहन है और हरिहर मूर्तियां या तो वाहन रहित मिलती हैं या उनके दोनों पार्श्वों में वृषभ तथा गरुड़ रहता है । कोई प्राचीन मूर्ति ऐसी नहीं मिली है, जिसमें हरिहर को वृषभ अथवा गरुड़ में से एक अथवा दोनों पर आरूढ़ बनाया गया हो, इसलिए ऐसी मूर्ति अपने में खोज का विषय है ।

काश्यपशिल्प में शिरश्चक्रयुक्त हरिहर को समपाद स्थानक मुद्रा में बनाने का विधान दिया है, जिनके हाथों में परशु, अभयमुद्रा, कटक तथा शंख प्रदर्शित करे और प्रवालवर्ण शिव भाग में जटामुकुट, ललाट पर किंचित् प्रकाशित तृतीय नेत्र और सामान्य नेत्र में उग्रदृष्टि होनी चाहिये । इसी प्रकार श्याम वर्ण विष्णु भाग में मुकुट, नेत्र में शीतल दृष्टि का नियोजन करे । शिव तथा विष्णु भागों को क्रमश: दिगम्बर तथा सर्वाभरण सम्पन्न भी होना चाहिए ।[५] मानसोल्लास सर्वपापनाशक हरिहर में सुधांशुधवल शिव को जटाभार,बालेन्दु, चर्मवसन, कर्ण में नागकुण्डल धारण

---

१. वै० - पटल,६०।८

२. वै० अ० ३६

३. वै० सूत्र ७४।१८

४. वै० अ० ८०

५. वै०,पटल ७३।१-५

किये बनवाना चाहता है, जिनके एक हाथ में शूल हो और अन्य वरद मुद्रा में प्रदर्शित हो । अनेक नागों से उनके पैर आवेष्टित हो । दूसरी ओर अतसीपुष्प सदृश श्याम वर्ण विष्णु भाग नानारत्नमय दिव्य किरीट, कर्ण मेंमकराकार कुण्डल, हाथों में शंख तथा चक्र से सुशोभित हो । उनका पैर नानारत्नों से विभूषित हो तथा वे पीताम्बर धारण किये हों । दूसरी ओर शिव भाग को चर्मवसनधारी होना चाहिये ।[१] इनमें कोई लक्षण असामान्य नहीं है और हरिहर की ऐसी बहुतसी मूर्तियां मिलती हैं, जिनमें यह लक्षण प्राप्त हो जाते हैं । परन्तु अपराजित पृच्छा में हरिहर की ऐसी मूर्ति के लक्षण दिये हैं, जिनके अनुसार दक्षिणाकरों में वरद, अंकुश, दन्त तथा परशु और वामकरों में कपाल, शर, अक्षमाल, पाश तथा दण्डधारी हरिहर को पंचवक्त्र, त्रिनेत्र और वृषभारूढ़ बनाने का विधान है ।[२] वस्तुत: यह हरिहर की मूर्ति तो होनी ही नहीं चाहिये क्योंकि इसमें किसी भी वैष्णव चिह्न का पूर्ण अभाव है । यदि प्रस्तुत लक्षणों में वैष्णव लक्षण सम्मिलित करके हरिहर मूर्ति की स्थापना करें तो ऐसी कोई मूर्ति भी भारतीय कला में अद्यावधि अप्राप्य है । जिस सूत्र में ऐसीमूर्ति का उल्लेख है, उसमें पहले सद्योजात, वामदेव आदि एकादश रुद्रों, फिर द्वादशकला सम्पूर्ण सदाशिव के पश्चात् गणपति का वर्णन है और उसके बाद क्रमश: हरिहर, स्वामिकार्तिकेय तथा वैद्यनाथ के लक्षण होने से यह भी संभावना है कि भुवनदेव के मस्तिष्क में गणपति और शिव की संयुक्तमूर्ति के निर्माण की कल्पना रही हो, क्योंकि दन्त गणपति का अपना आयुध है । इसी ग्रन्थ के अगले सूत्र में कृष्णशंकर मूर्ति का वर्णन है, जो वस्तुत: अन्यों की हरिहर मूर्ति ही है, क्योंकि इसके वामार्ध में मुकुट, कर्ण में मकरकुण्डल, करों में चक्र, शंख तथा दक्षिणार्ध में जटाभार, कर्ण में कुण्डल और करों में अक्षमाल एवं त्रिशूल बनाने का विधान है ।[३] वस्तुत: यहां शिव के साथ कृष्ण का समन्वय किया गया है । जिस प्रकार शंख, चक्र, गदा और पद्म के स्थान -भेद से विष्णु के चौबीस स्वरूप बनजाते हैं, उसी प्रकार कृष्ण-विष्णु - और शंकर के संयोग

---

१. दे०२०।३, अध्याय १।७४६-७५३

२. दे० सूत्र २१२।३८-३९

३. दे० सूत्र - २१३।२८-२९

से बत्तीस प्रकार की मूर्तियाँ बन सकती हैं ।[1] इन लक्षणों में कोई उल्लेखनीय या महत्त्वपूर्ण विशेषता न होते हुये भी भी डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल ने कह दिया है कि अपराजितपृच्छा की कृष्णाशंकर मूर्ति कहीं नहीं मिलती ।[2] वस्तुत: यह हरिहर की सर्वसामान्य मूर्ति है, जो प्रत्येक देश-काल में मिल जाती है । पता नहीं उन्होंने कैसे यह बात कह दी । संभव है उनके मस्तिष्क में अपराजित पृच्छा की 'हरिहरमूर्ति' की कल्पना रही होगी ।

—

---

१. वास्तुशास्त्र, पृ० १७८

२. 'कृष्णाशंकर संयोगाद् द्वात्रिंशद्भेदमूर्त्तय:' - देवतामूर्ति प्रकरण, ६।५८

## अध्याय -- ३

## हरिहर उपासना की परम्परा के पुरातात्त्विक-प्रमाण

( सिन्धुघाटी से चौदहवीं शती वि० )

सिन्धु घाटी में उपलब्ध, भारत के प्राचीनतम पुरातात्त्विक अवशेषों के आधार पर, सैन्धव सभ्यता को शैव माना गया है। यहाँ के लिंग सदृश उपकरणों को भारतीय तथा विदेशी प्राय: समस्त विद्वानों ने शिव का ही प्रतीक बताया है। इनके अतिरिक्त वहाँ की कुछ मोहरों पर निरूपित दृश्यों को पूर्णतया शिवसे सम्बद्ध कर दिया गया है। एक मोहर पर अंकित दृश्य में बैल तथा त्रिशूल सहित एक स्तम्भ है और कोई पुरुष उस बैल की ओर मुंह किए खड़ा है। पुरुष के सम्मुख दो खण्ड का भवन है। भवन को मन्दिर और बैल या त्रिशूल के कारण उसे शिव की आकृति माना गया है[१]। रामचन्द्र दीक्षितार के अनुसार एक मुद्रा पर प्रदर्शित हाथमें धनुषधारी व्यक्ति शिव का शिकारी रूप है[२]। एक ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण दृश्य में योगासन साधे व्यक्ति के दोनों ओर घुटनों के बल दो व्यक्ति और सम्मुख दो नाग प्रदर्शित हैं। इसमें शिव का नागों से सम्बन्ध बताया जाता है[3]। नीले पत्थर में अंकित एक मूर्ति, जो किसी नर्तक की जान पड़ती है, मार्शल के अनुसार शिव की है, जो संभवत: त्रिमुखी रही होगी[४]। मोहरों पर प्राय: निरूपित वृषभ के विषय में डा० सतीशचन्द्र काला का अनुमान है कि वह सिन्धु प्रान्त में शिव का वाहन माना जाता था[५]। सिन्धु-घाटी की बहुचर्चित मोहर है पशुपति वाली, जिस पर एक योगासीन व्यक्ति के दाईं ओर व्याघ्र व हाथी, बाईं ओर महिष व गैंडा तथा नीचे द्विशृंगी मृग प्रदर्शित है।

---

१. आक्र्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया (१६३०-४०), पृ० ६३-६४

२. डा० सतीशचन्द्र काला, मोहें-जो-दड़ो तथा सिन्धु सभ्यता, पृ० ६४

३. माडर्न रिव्यू, भाग १२, पृ० १५७

४. मोहें-जो-दड़ो एण्ड इण्डस सिविलिजेशन, पृ० ४६

५. वही, पृ० ११२

केन्द्रीय आकृति कलाई से बाजुओं तक भुजबन्ध धारण किए है जिसकी शिरोभूषा में दो शृंग संलग्न हैं। वक्ष पर त्रिकोण के ढंग का आभूषण-सा है, जो कई लड़ियों को जोड़कर बनाया गया है। ऊर्ध्वलिंगी इस आकृति के मुख तीन लगते हैं। डा० काला ने यह भी संभावना प्रकट की है कि वह चतुर्मुखी हो, जिसमें चौथा मुख पीछे छिप गया है।[१] यह शिव का पशुपति रूप कहा जाता है।[२] शिव के त्र्यम्बक नाम का 'तीन माताओंवाला देवता' अर्थ लेते हुए उसे तीन देवताओं (जिनकी अलग-अलग मातायें थीं) का समन्वित रूप भी बताया गया है[३]। परन्तु यह क्लिष्ट कल्पना मात्र लगती है। एन०सी०चौधरी ने तो सिन्धुवासियों को स्पष्टत: शिवमूर्ति का उपासक कहा है, जो उन (सिन्धुवासियों) की दृष्टि में हिमालय का निवासी और अत्यन्त शक्तिशाली देवता था। सिन्धुवासी शिव एवं लिंग की नियमित रूप से मन्दिरों में पूजा करते थे।[४]

शिव एवं शैव प्रतीकों के अतिरिक्त कुछ लोगों ने सैन्धव मुहरों पर वैष्णव प्रतीकों को भी खोजा है। वत्स के अनुसार एक मोहरपर बाईं ओर सिर करके एक पक्षी उड़ती दशा में दिखलाया गया है, जिसकी पूंछ तथा पंख गहरी खुदी रेखाओं से प्रदर्शित हैं। पंखों के ऊपर दोनों ओर दो सांप हैं। यह पक्षी प्रागैतिहासिक युग के भगवान् विष्णु का वाहन गरुड़ है।[५] एक मोहर पर प्रदर्शित सिंह एवं मानव की संयुक्त आकृति को डी०डी० कौसाम्बी ने विष्णु के नृसिंहावतार ~~ही मानते हुए उसका~~ पूर्व रूप[६] ( *Prototype* ) और डा० प्राणनाथ ने नृसिंहावतारही मानते हुए मोहर को ईश- ईश-रक्ष-क (भगवान् रक्षक) अभिलिखित बताया है।[७] कौसाम्बी ने मैसो-

---

१. मोहें-जो-दड़ो एण्ड इण्डस सिविलिजेशन, पृ० ६४

२. आक्युलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, वार्षिक विवरण १६२८-२६, पृ० ७४,
मुकर्जी, हिस्ट्री आफ हिन्दू सिविलिजेशन, पृ० २०;
सी०शिवराममूर्ति - जर्नल आफ दि एसियाटिक सोसायटी, भाग २१, अंक २, १६५५,ई०, पृ० ८५ आदि।

३. जर्नल इण्डियासोसायटी आफ ओरियण्टल आर्ट, अगस्त- दिसम्बर, १६३७, पृ० ७५

४. मोहें-जो-दड़ो एण्ड दि सिविलिजेशन आफ ऐन्शियण्टइण्डिया, पृ० ११

५. एक्सकेवेशन ऐट हड़प्पा ~~व०ह०~~, पृ० ३०३   ६. कल्चर एण्ड सिविल०आफ ऐन्शियण्ट इण्डिया, चित्र ५०

७. डेसिफर्मेण्ट आफ हड़प्पा एण्ड मोहें-जो-दड़ो, पृ० १६

पोटामिया की एक मोहर पर निरूपित मत्स्य एवं मानव के संयुक्त रूप को भारतीय मत्स्यावतार का पूर्वरूप कहा है।[1] एक इण्डो-सुमेरियन मोहर पर हर अथवा हरि अभिलेख भी पढ़ा गया है।[2]

सब कुछ होते हुए भी जब तक सैन्धव- लिपि का रहस्योद्घाटन नहीं हो जाता हम वहाँ की संस्कृति के विषय में पूर्णतया प्रामाणिक ढंग से कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि पशुपति-मोहर पर निरूपित मुख्य आकृति को जहाँ शिव माना जाता है, डा० प्राणनाथ ने उसे शिवोपासक बताया है।[3] अब तक फादर हैरास, डा० प्राणनाथ, स्वामी शंकरानन्द, राजमोहननाथ, सुधांशुकुमार रे, एम०वी०एन० कृष्णाराव आदि विभिन्न विद्वानों ने इस लिपि को पढ़ लेने का दावा किया है, परन्तु कोई संतोषजनक परिणाम नहीं निकला। डा० प्राणनाथ ने जिन चिह्नों को हरि और हर का प्रतीक बताया है,[4] उनमें से हरिद्योतक चिह्न लगभग २० और हर द्योतक मात्र ३ मोहरों पर मिलता है।[5] इधर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के निदेशक डा० फतहसिंह का कहना है कि उन्होंने सैन्धव लिपि को पढ़ लिया है और वहाँ की सभ्यता उत्तर वैदिककालीन है और मोहरों पर उपनिषदों के प्रतीक निरूपित हैं।[6]

सिन्धुघाटी के प्रस्तुत अवशेषों के पश्चात् शिव के प्रामाणिक निरूपण का द्योतक गुडिमल्लम शिवलिंग मिलता है। इस जननेन्द्रिय सदृश लिंग में मुख भी उत्कीर्ण है और इसका समय ई०पू० २०० वर्ष माना गया है।[7] लगभग इसी समय का एक अभिलेख भी राजस्थान के घोसुंडी नामक स्थान पर मिला है।[8] दुर्भाग्यवश यह

---

१. वही, चित्र ५१

२. एल०ए० वैडेल, इण्डो-सुमेरियन सील्स डेसिफर्ड, मोहर सं० ८, पृ० ७०

३. वही, पृ० १७ ४. वही, पृ० २, फलक ३

५. जान मार्शल कृत मोहें-जो-दड़ो एण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन, भाग ३, फलक १५-१६४

६. दिनमान, १६ मार्च, १९६९, पृ० ९-१० तथा नवभारत टाइम्स, १० जनवरी, १९६९

७. टी० गणपति राव, डेवलेपमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्रैफी, भाग २, खंड १, पृ०६३-

८. लूडर की लिस्ट आफ ब्राह्मी इन्स्क्रिप्शन्स, सं० ६

खण्डित अवस्था में है तथापि इसमें संकर्षण एवं वासुदेव के उपासना-मण्डप के चारों ओर एक भित्ति के निर्माण का उल्लेख मिलता है।[१]

भीटा में ई०पू० प्रथम शती का एक पंचमुखी शिवलिंग मिला है और इसी शताब्दी की लिंगमूर्ति ट्रावनकोर के 'चेमी इलई' नामक स्थान पर भी मिली है,[२] जिनसे उस समय के शैवधर्म की व्यापकता पर प्रकाश पड़ता है। दूसरी ओर नानाघाट (महाराष्ट्र) की विशाल गुफा का प्रथम अभिलेख[३] वैष्णवधर्म का द्योतक है, क्योंकि लेख के आरम्भ में संकर्षण तथा वासुदेव की स्तुति की गई है।[४] यवन दूत हेलिओडोरस का गरुड़-स्तम्भ उस समय के वैष्णव धर्म की प्रभुता का प्रतीक है, क्योंकि एक विधर्मी को कोई शक्तिशाली धर्म ही आकर्षित कर सका होगा। इस स्तम्भ को उसने देवदेव वासुदेव के सम्मान में स्थापित कराया था और उस पर उत्कीर्ण लेख में उसने स्वयं को भागवत बताया है। उस समय वासुदेव देवाधिदेव रूप में पूजे जाते थे और उनके उपासक ~~भगवान~~ भागवत कहलाते थे।[५]

ईसवी सन् के परवर्ती शक-कुषाण शासक भारत में आकर शैव धर्म से प्रभावित हुए थे, क्योंकि वैमकेडफिसेस ने अपने सिक्कों पर शिव की आकृति को निरूपित कराया है।[६] यहाँ स्थानक शिव के दक्षिण हाथ में त्रिशूल है। एक सिक्के में शिव का वाहन वृषभ भी पार्श्व में खड़ा है और दूसरे में त्रिशूल के अतिरिक्त वह कमण्डलु एवं व्याघ्रचर्म भी धारण किए हैं। इन सिक्कों के लेख में उसने अपने को 'महीश्वरस्य' उपाधि से भी अभिभूषित किया है।[७] कुषाण शासक कनिष्क के मुद्रा-लेख से ज्ञात

---

१. महेश्वरीप्रसाद, वैष्णव,शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० ३

२. डा० यदुवंशी, शैवमत, पृ० ८७

३. लूडर, वही, सं० ११११२

४. वासुदेव उपाध्याय, प्रा०भा०अ० का अध्ययन, पृ० १२६

५. महेश्वरीप्रसाद, वही, पृ० ४

६. लाहौर म्युजियम कैटेलाग आफ क्वाइन्स (व्हाइट हेड), फलक १७, सं० ३१, ३३, ३६ तथा कलकत्ता म्यु०के० आफ क्वा० (स्मिथ), फलक ६८, सं० १-१२

७. 'महरजस रजदिरजस सर्वलोग ईश्वरसमहीश्वरस विम कडफिसस त्रदर', वासुदेव उपाध्याय, वही, पृ० ४८

होता है कि उस बौद्ध शासक ने हिन्दू देवता (शिव), यूनानी देवता ( अरदोक्षा आदि), ईरानी देवता ( मित्र आदि) तथा बौद्ध देवता (बुद्ध) को अपने सिक्कों पर स्थान दिया था ।[१] इन सिक्कों पर शिव चतुर्भुजी हैं और उनके सिर पर आभामण्डल है । वे हाथों में त्रिशूल,डमरु,कमण्डलु और पाश धारण किए हैं ।[२] सिक्कों के लेख में शिव का ईश नाम यूनानी लिपि में लिखा है ( ОΗΡΟ ) । कुछ सिक्कों पर शिव के पास एक मृग भी खड़ा है[३] और कुछ पर उनको त्रिशूल एवं कमण्डलु धारण किए मात्र द्विभुजी दिखाया है ।[४]

इसी समय से हमें शिव और विष्णु का समन्वयात्मक रूप भी परिलक्षित होने लगता है, क्योंकि कनिष्क के ही कुछ ताम्रसिक्कों पर शिव को दक्षिण कर में शक्ति या दण्ड तथा वाम कर गदा पर रखे दिखाया है ।[५] राजघाट (बनारस) से प्राप्त एक खण्डित गोल मोहर पर 'राज्ञो अभयस्य' अभिलेख के साथ मध्य में त्रिवक्री प्रतीक और वाम पार्श्व में वृषभ के अतिरिक्त चक्र,शंख एवं शक्ति के भी चिह्न हैं । बनर्जी ने लेख की ब्राह्मी लिपि की संरचना के आधार पर इसे पहली-दूसरी शती ई० का बताया है ।[६] आगे हुविष्क के सिक्कों पर शिव द्विभुजी एवं चतुर्भुजी दोनों रूपों में प्रदर्शित हैं । इन पर यूनानी लिपि में 'ईश' लिखित मिलता है तथा कुछ सिक्कों पर शिव हिरन के सींगों पर हाथ भी रखे हैं । एक सिक्के पर वह शशांकभूषित हैं[७] और अन्य पर वह धनुर्धारी रूप में प्रदर्शित हैं ।[८] कुछ स्वर्ण सिक्कों पर त्रिमुखी एवं चतुर्भुजी शिव दक्षिण करों में वज्र व कमण्डलु तथा वाम करों में त्रिशूल व गदा धारण किए मिलते हैं ।[९] इसी के समय से एकाधिक देवताओं के मूर्तिशास्त्रीय लक्षणों का पर-

---

१. डा० वासुदेव उपाध्याय,वही, पृ० ४८

२. लाहौर म्यु०कै०आफ क्वा०(व्हाइटहैड),फलक १७,सं० ६५;फलक १८,सं० १०६-१०८

३. का०म्यु०कै०आफ क्वा० (स्मिथ),फलक ७०,सं० ६-१०

४. लाहौर म्यु०कै० आफ क्वा० (व्हाइटहैड),फलक १८, सं० ११०-११४

५. जि०ना० बनर्जी, डेवलैपमैन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्रैफी, पृ० १२२

६. बनर्जी, वही, पृ० १८८

७. कलकत्ता, म्यु०कै०आफ क्वा० (स्मिथ),फलक ८०, सं० ३१

८. वही, फलक ८०, सं० ४६

९. बनर्जी, वही, पृ० १२३ तथा फलक ६, चित्र १६

स्पर संग्रथित करने की परम्परा प्रारम्भ होती है, क्योंकि उसके एक स्वर्ण-सिक्के पर विष्णु और शिव का समन्वित रूप स्पष्ट मिलता है । गार्डनर ने इसे सम्मुखाभिमुखी त्रिमुखशिव बताया है, जो किंचित् अवनत अवस्था में खड़े हैं । वह ऊर्ध्वलिंग हैं और कटि मात्र में परिधान लपेटे हाथों में छाग, चक्र, त्रिशूल एवं वज्र धारण किए हैं ।[१] इनमें से त्रिशूल (स्वाभाविक वाम), वज्र ( अतिरिक्त वाम) और चक्र ( अतिरिक्त दक्षिण) तो स्पष्ट हैं, परन्तु स्वाभाविक दक्षिण का छाग अस्पष्ट है । जो शिव की उत्तर-कालीन मूर्तियों में मिलने वाला कृष्णमृग भी हो सकता है । नि:संदेह आकृति त्रिमुखी एवं शिरश्चक्रयुक्त है । आकृति का ऊर्ध्वलिंग उल्लेखनीय है, जो उत्तर कुषाण से परवर्ती शिव मूर्तियों में सामान्यत: मिल जाता है । डा० यदुवंशी ने इसे त्रिमूर्ति शिव मानते हुए संभावना व्यक्त की है कि वह चतुर्मुखी भी रहा हो सकता है, जिसमें चौथा मुखपीछे छिप गया है ।[२] परन्तु चक्र का उन्होंने उल्लेख भी नहीं किया है जो वैष्णव प्रतीक है । वस्तुत: बनर्जी का यह कथन पूर्ण उपयुक्त है कि प्रस्तुत लांछन में हरिहर की उत्तरकालीन संयुक्त मूर्तियों का प्रारम्भिक रूप प्रदर्शित किया गया है ।[३]

कुषाणों के पश्चात् गुप्त शासक परम वैष्णव होते हुए भी महान् सहिष्णु मिलते हैं । उन्होंने मौखिक सहानुभति प्रकट करते हुए शैव मतानुयायियों को प्रश्रय तथा अपने यहां पदाधिकारी के रूप में नियुक्त किया । अशोक के बारहवें शिलालेख में धार्मिक सहिष्णुता विषयक जो बात कही गई है, वह इस समय पूर्ण परिलक्षित होती है । उदयगिरि (भिलसा) में वैष्णव ही नहीं शैव गुफाओं का भी निर्माण हुआ । वहां की एक गुफा में चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय के एक अभिलेख में उस गुफा का एक शैव-भक्त द्वारा संन्यासियों ( संभवत: शैव) के विश्राम के लिए समर्पित किए जाने का वर्णन है ।

---

१. गार्डनर, ब्रिटिश म्यु०कैट० आफ क्वाइन्स आफ दि ग्रीक एण्ड स्काइथिक किंग्स आफ इण्डिया, फलक २८, चित्र १६, तथा विवरण, पृ० १४८

२. डा० यदुवंशी, वही, पृ० ६२

३. बनर्जी, वही, पृ० १२३-१२४

इसी में यह भी कहा है कि गुफा के समर्पण समारोह के अवसर पर स्वयं चन्द्रगुप्त समर्पण कर्ता के साथ गए थे ।[१] इससे ज्ञात होता है कि परमवैष्णव चन्द्रगुप्त शैवों को अपना संरक्षण प्रदान करते थे । कुमारगुप्त प्रथम के भिलसद् स्तम्भ शिलालेख (४१५-१६) में स्वामी महासेन (शिव) के मन्दिर से सम्बन्धित भवनों के निर्माण का उल्लेख है[१क] और करमदण्डा शिवलिंग प्रशस्ति (४३६ ई० ) 'नमो महादेवाय' से प्रारम्भ होती है । इस सन्दर्भ में सर्वाधिक रोचक है वैन्यगुप्त का गुणैघर ताम्रपत्र लेख (५०७ ई० ), जिसमें क्षेत्र विशेष की सीमा बताते हुए उसके पश्चिम में प्रद्युम्नेश्वर देव-कुल होने का उल्लेख है ।[२] यह प्रद्युम्नेश्वर प्रद्युम्न और ईश्वर का समन्वित रूप हरि-हर ही है । हम आगे दिखायेंगे कि विजयसेन के देवपाड़ा शिलालेख ( १०७५-११०० ई०) में प्रद्युम्नेश्वर के मन्दिर - निर्माण का वर्णन है और राजशाही संग्रहालय में वहीं से प्राप्त दो प्रद्युम्नेश्वर प्रतिमाओं में स्थानक देवता को त्रिशूल एवं अक्षमाल धारण किए दिखाया है ।[३] हरिषेण के अजन्ता गुहालेख में हरि और हर का द्वन्द्व समास के रूप में एक साथ उल्लेख है ।[४] छठीं शताब्दी के ही गन नृपति मल्लदेव नन्दिवर्मा के 'मुदायन्नुर' ताम्रपत्रों में शिव और विष्णु का साथ-साथ स्तवन किया गया है ।[५]

गुप्तकाल की ऐसी कई मोहरें मिलती हैं जिनमें शिव और विष्णु को समन्वित करने का प्रयास किया गया है । डा० विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह ने बसाढ़ (प्राचीन वैशाली) की एक ऐसी मोहर का उल्लेख किया है, जिस पर मध्य में त्रिशूल और दाहिनी ओर एक दण्ड, शंख व चक्र तथा बाईं ओर चन्द्र व पहिए जैसा एक चिह्न है । वह मध्य में त्रिशूल की उपस्थिति को 'गड़बड़' मानते हुए भी स्वीकार

---

१. कार्पस इन्स्क्रिप्शनस्म, इण्डिकरम, भाग ३, फलक २, व, पृ० २१

१क. गोपीनाथ राव, वही, भाग १, खण्ड १, पृ० ८

२. डा० वासुदेव उपाध्याय, वही, मूल लेख भाग, पृ० ७८-८०

३. दे० कैटलाग आव दि आक्यालाजिकल रैलिक्स इन दि म्युजियम, आफ दि वरेन्द्र, रिसर्च सोसायटी, राजशाही, पृ० ११

४. डा० वासुदेव उपाध्याय, वही, मूल लेख, भाग, पृ० १२७

५. डा० जगदीश गुप्त, धर्मयुग, ६ जुलाई, १९५८, पृ० ८

करते हैं कि बहुत सम्भव है कि यह (मोहर) शैव और वैष्णव धर्म के सौहार्दपूर्ण बर्ताव का प्रतीक हो ।[१] पटना संग्रहालय की एक मोहर ( सं० १०४६) पर वृष और शंख एक साथ निरूपित हैं ।[२] मार्शल द्वारा वर्णित भीटा की ४४ वीं मोहर[३] पर सम्मुखाभिमुख वृषभ खड़ा है, जिसके शृंगों के मध्य गोल वस्तु प्रदर्शित है । मुख्य लांछन के पार्श्व में चक्र तथा मार्शल के अनुसार 'एक संदिग्ध प्रतीक' है । इन उपकरणों की पवित्रता इसी से सिद्ध हो जाती है कि वे तीनों पीठिकाओं पर रखे हैं । मोहर पर अभिलेख है -'दण्डनायक श्री शङ्करदत्तस्य ।' निःसन्देह नाम शैव है अतः उसकी मोहर के मध्य में शिव प्रतीक का होना पूर्ण स्वाभाविक है, परन्तु विष्णु के भी अपने उपास्य होने के कारण उसने उनके प्रतीक चक्र को भी सम्माननीय-यद्यपि गौण--स्थान प्रदान किया है । जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने मार्शल के 'संदिग्ध प्रतीक' को वैष्णव माना है, परन्तु उसका नाम नहीं बताया है ।[४] कनिंघम ने न्युमिस्मेटिक क्रानिकिल में जिस निकोलो मोहर का उल्लेख किया है, उसका विवरण अप्रामाणिक एवं अयथार्थ है । वह लिखता है कि मोहर पर दोनों हाथ जोड़े कुषाणशासक (शिरोभूषा एवं परिधान के आधार पर सुविज्ञ) चतुर्भुजी विष्णु के सम्मुख खड़ा है । देवता अपने हाथों में चक्र (एकदम गाड़ी के पहिये जैसा), गदा, वलय जैसी वस्तु एवं एक अन्य गोल उपकरण धारण किए हैं ।[५] कनिंघम ने चतुर्भुजी आकृति को, गदा एवं चक्र के आधार पर, विष्णु बता दिया है । पार्श्विक लेख को वह नहीं पढ़ सका, परन्तु आर०गर्समैन के अनुसार यह तुखारियन लिपि ( ग्रीक लिपि का अत्यन्त घसीट रूप) और तुखारियन भाषा में मिहिर ( सूर्य का ईरानी रूप ), विष्णु एवं शिव लिखा है । परिधान एवं लक्षणों के ही आधार पर गर्समैन ने उपासक को हूण शासक माना है ।[६]

---

१. डा० विन्ध्येश्वरीप्रसाद सिंह, भारतीय कला को बिहार की देन, पृ० १७३

२. डा० परमेश्वरीलाल गुप्त का दि० २६ मई, १९६७ का लेखक को पत्र ।

३. आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, ऐन्युल रिपोर्ट, १९११-१२

४. बनर्जी, वही, पृ० १८५

५. कनिंघम, न्युमिस्मेटिक क्रानिकिल, १८९३, पृ० १२६, २७, फलक १०, चित्र २

६. आर० गर्समैन, *Les Chionites Haphtalites*, पृ० ५५-५८, चित्र ६५, फलक ७, चित्र १ ।

प्रस्तुत आकृति में मिहिर विदेशी देवता है अत: उसके लक्षण निकाल देने पर भारतीय हरिहर मात्र शेष रह जाते हैं। इसी को यों भी कह सकते हैं कि इस शासक ने ईरानी सूर्य के अतिरिक्त भारतीय हरिहर को ग्रहण किया है। यह द्रष्टव्य है कि देवता के दक्षिण कर में चक्र है तथा वाम कर में गदा। यह गदा विष्णु की न होकर शिव की है क्योंकि यह शिवरक्षित की मोहर पर प्राप्त शिव की गंठीली गदा जैसी ही है।

इस सन्दर्भ में प्रयाग संग्रहालय की कुछ मोहरें पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं। अहिच्छत्र से प्राप्त एक ताम्र मोहर में "वाम-विष्णु" अभिलिखित है।[अ] "वामे विष्णु :" यस्यासौ वाम विष्णु:" व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि इसमें द्विगु समास है। अर्धनारीश्वरमूर्तियों के समान हरिहर मूर्ति में विष्णु वाम भाग में रहते हैं। इसके अतिरिक्त एकादश रुद्रों में वाम भी सम्मिलित हैं[१] और संभव है यहां वाम तथा विष्णु का ही समन्वय अभिप्रेत हो। शिव एवं विष्णु-वाचक विभिन्न नामों को लेकर यह योजना परिकल्पित हुई है जैसे हराच्युत,[२] रुद्रकेशव,[३] प्रद्युम्नेश्वर[४] आदि। इस प्रकार द्विगु समास में विग्रह करने से अर्थ होगा वाम और विष्णु (का समन्वितरूप)। संग्रहालय के सहायकाध्यक्ष का यह कथन पूर्ण उपयुक्त है कि मोहर उस मन्दिर की है जिसमें हरिहर की मूर्ति प्रतिष्ठित थी।[५] मोहर में हरिहरवाचक अभिलेख मात्र होने से ज्ञात होता है कि वह किसी प्रतिष्ठान से संबद्ध थी और यह मन्दिर के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता। आगे हम देखेंगे कि हरिहर की मूर्तियां गुप्तकाल से मिलने लगती हैं। अत: इसमें सन्देह को स्थान नहीं रह जाता कि उस समय हरिहर के मन्दिरों

---

अ. संग्रहालय की संख्या सं० ए० एच० २३३०; पाँचवीं शती ई० की गुप्तलिपि

१. एच०एच० विल्सन, विष्णुपुराण, पृ० १०१, पाद टिप्पणी सं० १७, भागवत के अनुसार एकादश रुद्र - १ अज एकपाद, २. अहिर्बुध्न्य, ३. उग्र, ४. भीम, ५. वाम, ६. महान, ७. बहुरूप, ८ वृषकपि, ९. अज, १० भव, ११. रैवत।

२. दि कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया, भाग ४, पृ० १४५

३. अग्निपुराण, ४९।२५

४. वैन्यगुप्त का गुणैधर ताम्रपत्र लेख, विजयसेन का देवपाड़ा शिलालेख

५. आर०आर० त्रिपाठी - जर्नल आफ दि न्युमिस्मैटिक सोसायटी आफ इण्डिया, भाग २७, अंक १, १९६५, पृ० २८-२९

का भी निर्माण होता था । सुनेत से प्राप्त दो अन्य मुद्रित मृत्तिका मोहरों (सं० २६६,२७१) पर 'शंकरनारायणाभ्यां' अभिलेख है । इन पर भी अन्य किसी चिह्न के अभाव में उनका शंकरनारायण (हरिहर) के देवालय से सम्बद्ध होना सिद्ध होता है ।

इण्डियन म्युजियम में सुनेत की ऐसी लगभग दो दर्जन मोहरें हैं। लेखक को भज्झर(रोहतक) आश्रम के आचार्य से ज्ञात हुआ है कि पंजाब में इस प्रकार की मोहरें प्रचुरता से मिलती हैं। यह उस काल में वहां हरिहर-उपासना के बहु-प्रचलन का प्रमाण है। जिन पर एक ओर शंकरनारायणाभ्यां और दूसरी ओर व्यक्ति नाम अंकित हैं । ऐसा समझा जाता है कि इनका वितरण शंकरनारायण के उपासकों में किया जाता था और वे उपासक उन्हें धार्मिक प्रतीक के रूप में अपने पास रखते थे ।[१] वहीं की एक मोहर ( इंडियन म्यूजियम सं० ए २८३२-एन० एस० ४६२४) पर ऊपर त्रिशूल तथा चक्र और नीचे गुप्तलिपि में द्विपार्षदस्य लिखा है । द्विपार्षद का अर्थ त्रिशूल और चक्र से होगा, जो शिव और विष्णु के आयुध हैं । इस प्रकार वह मोहर भी हरिहर मन्दिर से सम्बद्ध रही होगी ।

अब हम गुप्तकालीन प्रतिमाओं को लेते हैं, जहां शिव एवं विष्णु को एक ही शिलापट्ट में निरूपित[२] करने के अतिरिक्त उनकी समन्वित मूर्तियां भी मिलती हैं । साम्प्रदायिक समन्वय की दृष्टि से बिहार से प्राप्त भारतीय संग्रहालय (कलकत्ता) की एक मूर्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि यहां हरिहर के वाम पार्श्व में स्थानक सूर्य एवं दक्षिणपार्श्व में बुद्ध भी प्रदर्शित हैं । केन्द्रीय चतुर्भुजी हरिहर दक्षिण करों में त्रिशूल तथा कपाल (?) और वाम करों में चक्र तथा शंखधारण किए दोहरी पद्म-पीठिका पर खड़े हैं । उनके वामार्ध सिर परमुकुट और दक्षिणार्ध सिर पर जटाएं स्पष्ट हैं । शरीर के अन्य सामान्य लक्षणों के अतिरिक्त पार्श्वों में अनुचर भी हैं । पार्श्व-

---

१. किरणकुमार थपलियाल, स्टडीज इन ऐन्शिएण्ट इंडियन सील्स, पृ० २०५

२. मथुरा संग्रहालय के कुषाणकालीन लघु शिलापट्ट (सं० २५२०) पर अर्धनारीश्वर शिव, चतुर्भुज विष्णु, राजलक्ष्मी तथा कुबेर प्रदर्शित हैं ।

वर्ती सूर्य एवं बुद्ध हरिहर के अनुचर न होकर स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं क्योंकि वे क्रमश: सात अश्वों द्वारा परिचालित रथ और दोहरी पद्मपीठिका पर खड़े हैं तथा सिर पर आभामण्डल भी है । तथापि केन्द्रस्थ एवं बड़े आकार में होने के कारण यहां हरिहर ही प्रमुख हैं ।

प्रयाग संग्रहालय की कुतारी हरिहर-प्रतिमा भी विलक्षण है । यह एक स्तम्भ के पार्श्व में उत्कीर्ण है, जिसके अन्य तीन भागों में वामन, वाराह एवं वासुदेव संकर्षण का निरूपण है ( संग्रहालय सं० २६२ ) । हरिहर का सिर खण्डित है तथापि कर्णाभूषणों में स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है । हरिहर के वाम कर में चक्रपुरुष एवं दक्षिण कर में त्रिशूलपुरुष गुप्तकालीन कलाकार की अद्भुत कला प्रतिभा से प्रसूत हुए हैं । मथुरा एवं उदयगिरि की शिल्पकला में आयुध-पुरुषों का निरूपण गुप्तकाल से मिलने लगता है । इसके अतिरिक्त मुझे हरिहर की ऐसी कोई प्रतिमा नहीं मिली, जो एक ही शिला-पट्ट में विष्णु के विविध रूपों के साथ बनी हो । यहां हरिहर के अतिरिक्त तीन अन्य मूर्तियां विष्णु के विभिन्न रूप होने से सिद्ध होता है कि प्रस्तुत शिल्पी की दृष्टि में हरिहर विष्णु का ही एक स्वरूप था ।

मथुरा संग्रहालय में कम-से-कम चार सिर गुप्तकालीन हरिहर मूर्तियों के हैं[1]। इनमें से गिरधर-टीला से प्राप्त एक सिर नौ इंच ऊंचा है । इस पर दक्षिण पार्श्व में जटाजूट और वामपार्श्व में अलंकृत मुकुट है । शिव का केशपाश सिर के पीछे तक पहुंचता है ( सं० १३३६ ) । वहीं से प्राप्त अन्य हरिहर सिर ( सं० १३३३ ) एक फीट चार इंच ऊंचा है । इसमें दक्षिण पार्श्व में शिव का जटाजूट और वाम पार्श्व में विष्णु का मुकुट प्रदर्शित है । छ: इंच ऊंचा एक अन्य हरिहर सिर जलाघात से विक्षत हो गया है ( सं० २५१०) और मथुरा के अर्जुनपुर मोहल्ले से प्राप्त सात इंच ऊंचा उत्तर-गुप्तकालीन हरिहरसिर कलाकी दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट है(सं०४०१७)। पटनासंग्रहालय में भी साढ़े दस इंच ऊंचा एक गुप्तकालीन हरिहर सिर है(सं०२६६५),जो पर्याप्त विक्षत अवस्था में है । तथापि सिर के वामार्ध में किरीट और दक्षिणार्धमें जटामुकुट स्पष्ट परिलक्षित

---

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल,ए कैटेलाग आफ दि ब्राह्मनीकल इमैजेज इन मथुरा आर्ट

होते हैं । शिव के केशपाश सिर के पीछे तक प्रदर्शित हैं ।

हरिहर की पूर्ण प्रतिमाएं बादामी के उन गुहा मन्दिरों में देखी जा सकती हैं, जिनमें से एक (गुफा सं० ४) का निर्माण दक्षिण के आरम्भिक चालुक्यवंशी मंगलेश ने ५७८ ई० में कराया था । इसमें प्रतिष्ठापित विष्णुप्रतिमा के भारवहन हेतु उसने एक गांव की मालगुजारी लगा दी थी ।[१] इसी गुफा में शेषशायी विष्णु या नारायण, वाराह एवं नरसिंह के साथ हरिहर की स्थानक प्रतिमा है ।[२] हरिहर मूर्ति के वामार्ध में, विष्णु के लक्षण हैं और दक्षिणार्ध में शिव के । उनके स्वाभाविक दक्षिण कर में सर्प आवेष्ठित परशु है तथा अतिरिक्त कर में संदिग्ध गोल वस्तु । स्वाभाविक वाम कर में शंख तथा अतिरिक्त कर कटि हस्त मुद्रा में।वामार्ध सिर पर किरीट मुकुट तथा शरीर पर विष्णु प्रतिमाओं में प्राप्त सामान्य आभूषण हैं । इसी प्रकार शिव भाग के सिर पर चन्द्र कला और कर्ण में सर्पकुंडल है ।[३] अतिरिक्त दक्षिण कर की संदिग्ध गोल वस्तु कपाल हो सकती है और इन लक्षणों के अतिरिक्त वाम कर्ण में, नक्रकुंडल, सिर पर आभामंडल तथा कटि के दक्षिण भाग में नाग भी निरूपित हैं। बादामी की अन्य शैव गुफा ( सं० १) में चतुर्भुजी हरिहर स्वाभाविक वाम कर में अधोमुखी शंख तथा दक्षिण में सर्प आवेष्ठित परशु धारण किए जिस पीठिका पर खड़े हैं, उसकी पट्टिका में नृत्य, संगीतरत वामनाकार शिव गण उत्कीर्ण हैं । हरिहर के दक्षिणार्ध सिर पर चन्द्रकला युक्त जटामुकुट, वामार्धपर किरीट-मुकुट, दक्षिण कर्ण में सर्पकुण्डल तथा वाम कर्ण में नक्रकुण्डल है । उनके दक्षिण पार्श्व में त्रिशूलधारी वृषमुखी नन्दी और पार्वती तथा वाम पार्श्व में वक्ष पर दोनों हाथ रखे गरुड़ और लक्ष्मी की स्थानक आकृतियां हैं । हरिहर के सिर पर आभामंडल है तथा उनका अतिरिक्त वाम कर कटि हस्तमुद्रा में है । अतिरिक्त दक्षिण कर खण्डित है

---

१. इण्डियनऐण्टिक्विटीज, भाग ३, पृ० ३०५, भाग ६, पृ० ३६३

२. फर्गुसन व बर्गेस, केव टैम्पुल्स, पृ० ४०७

३. मैम्वायर्स आफ दि आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ, इण्डिया, सं० २५ ( बास रिलीफ्स आफ बादामी)

जो गोपीनाथ राव के अनुसार अभयमुद्रा में रहा होगा ।[१] हरिहर सिर के दोनों और मालाधारी गन्धर्व मिथुन तथा शीर्ष कोणों पर एक-एक गन्धर्व आकाश में गमन करते प्रदर्शित हैं ।

छठी शती की एक अन्य हरिहर प्रतिमा भुवनेश्वर के शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर समूह के दक्षिणी मन्दिर में संलग्न है । लिंगराज मन्दिर से स्टेशन के मार्ग में रामेश्वर मन्दिर के सामने लक्ष्मणेश्वर,भरतेश्वर एवं शत्रुघ्नेश्वर मन्दिरों में से दक्षिणी मन्दिर के पश्चिमी द्वार पर मध्य में अनुचरों एवं वाहनों युक्त उमा महेश्वर और वाह्यतम पट्टों में मध्यवर्ती ताख के पार्श्वों में शिव के विभिन्न स्वरूपों के साथ हरिहर की प्रतिमा है ।[२]

दक्षिण भारतकेसातवीं शती ई० के सैकड़ों मन्दिर वास्तुकला एवं देवालयों के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं । इन मन्दिरों की एक सामान्य विशेषता यह है कि उनमें शिव के अतिरिक्त विष्णु की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित मिलती हैं । वैष्णव मन्दिरों में इस प्रथा का अभाव होते हुए भी उनमें शिव मूर्ति मिल जाती है ।[३] गुप्तकाल के समान इस शताब्दी में मूर्तियाँ स्वतंत्र एवं मन्दिर में संलग्न दोनों रूप में मिलती हैं । शाहाबाद (बिहार) के मुण्डेश्वरी स्थान से प्राप्त पटना संग्रहालय ( सं०६००८) की स्थानक हरिहर प्रतिमा एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है । समपादमुद्रा में खड़े पीठिकाविहीन हरिहर की शिरोभूषा का अर्धमुकुट एवं अर्ध जटाजूट दूर से ही दृष्टिगोचर होता है । चतुर्भुजी देवता के एक वाम कर में शंख है और दूसरा संभवत: चक्रपुरुष के सिर पर रखा है, जो बढ़कर घुटनों बैठा है । दक्षिण कर में अक्षमाल और कोई अस्पष्ट गोल वस्तु है । दक्षिण में पैर के निकट ही वढ़कर आसीन आकृति आयुधपुरुष की ही हो सकती है । शिव की जानु पर अजिन स्पष्ट है ।

---

१. टी०गोपीनाथ राव, वही, भाग २, खण्ड १

२. देवल मित्र,,भुवनेश्वर, पृ० २८-२६

३. हरेकृष्ण शास्त्री, साउथ इण्डियन इमैजेज़,आफ गार्ड्स् एण्ड गाडेसेज् , पृ० ७२

जगत (उदयपुर) की पहाड़ी पर हरिहर की एक सुन्दर प्रतिमा पूजा में प्रतिष्ठित है। परेवा पत्थर की यह मूर्ति चतुर्भुजी है, जिसमें ऊपर के हाथों में दंड व सनाल कमल है तथा निचले हाथों में सर्प व परशु। जटामुकुट के ऊपर सप्तफणी सर्प का छत्र है, जिसके द्वारा शिव (हर) और विष्णु (हरि) का संयुक्त भाव प्रदर्शित किया गया है।[१] उदयपुर में अन्य हरिहर प्रतिमा बेदला में भी। इसके स्वाभाविक वाम कर में चक्र है, जो लक्षण की दृष्टि से गुप्त कला का स्मरण दिलाता है और मथुरा, सम्भर, नागर आदि की कुषाण एवं गुप्तकालीन प्रतिमाओं के चक्र सदृश हैं। स्वाभाविक वामकर का त्रिशूल स्वयं स्थानक देवाकृति जितना लम्बा है। छठी शती की सुपरिचित मन्दसौर शिवमूर्ति के हाथ में भी ऐसा ही त्रिशूल है।[२] मूर्ति मूलत: मन्दिर में प्रतिष्ठित थी।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के सौजन्य से प्राप्त औसियां हरिहर के दो चित्रों में से एक में वामार्ध सिर पर किरीट मुकुट तथा दक्षिणार्ध सिर पर जटामुकुट प्रदर्शित है। 'माता के मन्दिर' में संलग्न हरिहर के वाम करों में चक्र तथा शंख है और दक्षिण करों में त्रिशूल तथा संदिग्ध वस्तु। मूर्ति के दोनों पार्श्वों में विक्षत मुखी एक-एक स्थानक पुरुष आकृति संभवत: दो अनुचर हो सकते हैं। औसियां की दूसरी हरिहर प्रतिमा विष्णुमन्दिर में संलग्न है। यहां हरिहर के सिर पर जटा एवं किरीटमुकुट के अतिरिक्त मध्यवर्ती अन्य विशिष्ट लक्षण चित्र में अस्पष्ट हैं। ललाट के अर्धत्रिनेत्र एवं सौम्यमुद्रा के कारण मूर्ति अत्यन्त भव्य दृष्टिगोचर होती है। वाम पार्श्व की मानवाकार स्थानक आकृति गरुड़ की होगी और दक्षिण पार्श्व में शिव अनुचर की दो आकृतियां हैं - पहली मानवाकार दक्षिण कर में त्रिशूल धारण किए है और दूसरी मध्य में वृषभ की है। हरिहर के दक्षिण पार्श्विक माला में कपाल भी संग्रथित है। आयुधक्रम की दृष्टि से मूर्ति अत्यन्त रोचक है, क्योंकि वाम करों में चक्र और शंख तथा दक्षिण करों में आदमकद त्रिशूल एवं गदा है। शास्त्रीय दृष्टि से गदा किसी वाम कर में होना चाहिए। ऐसा ही विशिष्ट आयुधक्रम एकलिंगजी (उदयपुर) के विष्णुमन्दिर (१५ वीं शती ई०) की दाहिनी दीवार में संलग्न हरि-

---

१. प्रस्तुत विवरण श्री विजयशंकर श्रीवास्तव के १२ मई ६७ के पत्र के आधार पर दिया है। उनके अनुसार इस प्रकार की प्रतिमा भारतीय मूर्तिकला में अद्यावधि अज्ञात है।

२. स्कल्पचर्स फ्राम उदयपुर म्युजि०, १९६०, भूमिका, पृ० २३ तथा देखिए ललितकला अं० ६,

हर में मिलता है । यहां दक्षिण कर में गदा ही नहीं,वाम कर में डमरू भी प्रद-
र्शित है ।[१]

हरिहर की अन्य प्रतिमा भुवनेश्वर के परशुरामेश्वर मन्दिर में संलग्न है । मन्दिर में जगमोहन की बाड़ के निचले पट्ट में बहुत-से भाग कर दिए गए हैं, जिनमें शिव, सूर्य, नृत्यरत अर्धनारीश्वर शिव-पार्वती आदि के साथ हरिहर मूर्ति भी है ।[२]

दक्षिण भारत के महाबलिपुरम् में इस काल की कम-से-कम दो प्रतिमायें हैं । पहली प्रतिमा धर्मराजरथ में संलग्न है[३] और दूसरी आदिवराहगुफामन्दिर में । समभंगमुद्रा में पद्मासन पर खड़े आदि-वराह गुफा मन्दिर हरिहर के सिर पर छत्र है और वह स्वाभाविक दक्षिण कर में परशु तथा स्वाभाविक वाम में प्रयोग-चक्र धारण किए हैं ।[४]

त्रिचिनापली में अभिलेख रहित गुहा द्वार के दोनों पार्श्वों में एक दूसरे की ओर मुख युक्त दो उपासनागृहों में से वामपार्श्वीय उपासनागृह शिव और दक्षिण-पार्श्वीय विष्णु को समर्पित है ।[५] ऐसा लगता है कि गुहा निर्माता की दृष्टि में दोनों देवता समान थे, इसीलिए उसने उपासना हेतु दोनों को प्रतिष्ठापित किया होगा ।

८ वीं शती में राजा पृथ्वीकोंग महाराज के नागमंगलयर ताम्रपत्रों में प्रारम्भ में विष्णु की आराधना की गई है, तदनन्तर एक शैव भक्त विष्णुगोप की

---

१. देखिए, प्रस्तुत लेखक का लेख;भारत, रविवासरीय साहित्य परिशिष्ट, ७ मई१९६७
२. देवल मिश्र, भुवनेश्वर, पृ० २६
३. JOUVEAU-DUBREUIL के फ्रेंच ग्रन्थ से ए०सी० मार्टिन द्वारा अनूदित आइकनोग्रैफी आफ सदर्न इण्डिया,पृ० २७
४. डा० एस०टी०सत्यमूर्ति संग्रहालय निदेशक,एग्मोर(मद्रास),संग्रहालय का० दि०, २४ जून,१९६७ का पत्र ।
५. ए०सी० मार्टिन, वही, पृ० १२०

सम्मानपूर्वक चर्चा की गई है । यह ताम्रपत्र ७७७ ई० के हैं ।[१] इधर उत्तर भारत के राजस्थान- विशेषत: जोधपुर-जयपुर क्षेत्र में गुर्जर-प्रतिहार युग (८-९ वीं शती ) में हरिहर-उपासना लोकप्रिय रही लगती है । इसीलिए ओसियां में हरिहर के पंचायतन मन्दिर बने, जिनके पिछले प्रधान ताखों में हरिहर प्रतिमाएं प्रतिष्ठापित हैं । पश्चिमाभिमुख पहला मन्दिर एक विशाल चबूतरे पर निर्मित है, जिसके चारों कोनों पर चार गौण देवालय हैं । उत्तर-पश्चिम का देवालय भग्न हो चुका है, परन्तु शेष पूर्णतया सुरक्षित है । पीछे के देवालयपश्चिमाभिमुख हैं और सामने के सम्मुखाभिमुख । मुख्य मन्दिर के द्वाराधियक पर गरुड़ासीन विष्णु हैं औरउसके ऊपर चित्रबल्लरी में लघु पूजा-ताख, जिसके किनारों पर लघु शिखर ( Spires ) हैं । द्वार एवं शिखरों के मध्य दो ताखों में गणपति (उत्तर) तथा संभवत: कुबेर ( दक्षिण) हैं । कुबेर के एक हाथ में चषक तथा दूसरे में मदिरा पात्र है । ऊपर नवग्रह पटल है । गर्भगृह के भीतर प्राचीन वेदिका है, जिसपर तोरण का ऊपरी भाग अथवा अलंकृत ताख रखा है, जिसके मध्य में शेषशायी-नारायण की मूर्ति है । प्रस्तुत मूर्ति मलत: वहां न होकर बाहर के किसी गौण देवालय का भाग रही होगी ।

मन्दिर की दीवारें प्रतिमाओं से अलंकृत हैं । मुख्य द्वार के दक्षिण पश्चिम-दक्षिण के कोण में पश्चिमाभिमुखी निऋति अश्वारूढ़ है । उसके एक हाथ में खड्ग तथा दूसरा कटिहस्त मुद्रा में है । निऋति के पश्चात दक्षिणी दीवार में दक्षिण का अधिपति यम महिषारूढ़ निरूपित है, जिसके दक्षिण कर में कपाल आवेष्ठित गदा है - वामकर खण्डित है । अगले ताख में स्थानक गणेश के पश्चात् मध्यवर्ती प्रमुख ताख में वाम पद असुर के मस्तक पर रखे त्रिविक्रम की मूर्ति है । वह स्वाभाविक दक्षिण कर में गदा तथा वाम में चक्र धारण किए वामाभिमुख खड़े हैं । त्रिविक्रम के अतिरिक्त दक्षिण कर के निकट अश्वसिर है तथा अतिरिक्त वाम में शंख । वाम-पार्श्व में छत्र सम्पन्न वामन के हाथ में एक व्यक्ति जल उंडेल रहा है, जो बलि होना चाहिए । आगे के ताख में दो पक्षियों द्वारा आश्रित आसन पर आरूढ़ चन्द्र है, जिसके सिर सम्मुख चन्द्रकला है । अन्तिम ताख में दक्षिण पूर्व का स्वामी मेषारूढ़

---

१. डा० यदुवंशी, वही, पृ० १५०

अग्नि है ।

द्वार के वाम पार्श्व में पश्चिमाभिमुखी ताख में वरुण मूर्ति है । यह रोचक होगा कि वह मकरारूढ़ न होकर मयूरासीन दिखाया गया है।उत्तरी दीवार में सर्वप्रथम उत्तर पश्चिम के अधिपति वायु का ताख है, जिसमें वह मृग ( Stag ) पर आसीन हैं । अगले ताख में ब्रह्मा और मध्यवर्ती ताख में नरसिंह के पश्चात् महिष-मर्दिनी और कुबेर के ताख हैं । उत्तर के अधिपति कुबेर एक हाथ में तथाकथित थैली धारण किये हैं । उसका वाहन मानव है, जिससे उसे नर-वाहन कहा जाता है ।

पूर्वी दीवार पर उत्तर में पहला ताख उत्तरपूर्व के अधिपति ईशका और दूसरा सूर्य का है । दूसरी ओर दक्षिण में पहला ताख पूर्व के अधिपति इन्द्र का है और दूसरा नष्ट हो चुका है । इसी दीवार पर मध्यवर्ती ताख में हरिहर की स्थानक मूर्ति है । यह ताख मन्दिर द्वार के ठीक पीछे पड़ता है । चतुर्भुजी हरिहर के वाम करों में चक्र तथा शंख है और एक दक्षिण कर में आदमकद त्रिशूल है तथा दूसरा अभयमुद्रा में है । दोनों पार्श्वों में हाथ जोड़े दो मानव आकृतियां घुटनों के बल बैठी हैं, जिनके मुख विक्षत हैं ।

मुख्य और गौण किसी भी मन्दिर में पूज्य उपकरण (मूर्ति ) नहीं है । गौण देवालयों के द्वार एवं स्तम्भ मुख्य मन्दिर के समान ही कलात्मक हैं । दक्षिण-पूर्व के देवालय की दीवारों पर मुख्य ताखों में उत्तर, पूर्व एवं दक्षिण को मुख किए क्रमश: लक्ष्मी-नारायण, सूर्य एवं रैवन्त की मूर्तियां हैं । उत्तर-पूर्व के देवालय की उत्तरी एवं दक्षिणी दीवारों के मुख्य ताखों में क्रमश: गरुड़ासीन एवं स्थानक विष्णु मूर्तियां तथा पूर्वी ताख में सन्दिग्ध मूर्ति है । दक्षिण पश्चिमी देवालय के मुख्य ताखों में चामुण्डा (पश्चिम); ~~दक्षिण)~~ चषक (अतिरिक्तदक्षिणाकर ) , त्रिशूल (स्वाभाविक दक्षिण कर),सन्दिग्ध वस्तु ( स्वाभाविक वाम ) एवं खेटक ( अतिरिक्त वामकर) धारण किए पद्मासनारूढ़ चतुर्भुजी देवी (दक्षिण) तथा अष्टभुजी सिंहारूढ़ देवी (पूर्व) है, जो एक दक्षिण कर अपने सिर पर रखे,दो में पद्म व खड्ग और वाम करों में कलश, धनुष व खेटक धारण किए है । शेष दाएं बाएं हाथों से ऊपर उठे पैर के घुटने पकड़े है ।

दूसरे हरिहर-मन्दिर के गौण-देवालय अत्यधिक खण्डित हैं । उत्तर-पूर्व का तो पूर्णतया समाप्त हो चुका है । पहले मन्दिर से इसमें अन्तर यह है कि इसमें सभा-

मण्डप भी है । इसमें गर्भगृह के प्रवेश-द्वार के आधेयक पर गरुड़ासीन विष्णु है । पहले मन्दिर के समान यहां भी गरुड़ सर्पों की पूंछ पकड़े हैं । द्वाराधेयक के ऊपर बाहर निकले पांच ताखों की एक पंक्ति है, जिनमें से केन्द्रीय ताख में विष्णु और दक्षिण पार्श्व में ब्रह्मा व गणपति तथा वाम पार्श्व में शिव व कुबेर प्रदर्शित हैं । ताखों के मध्यवर्ती रिक्त स्थान में स्थानक संगीतज्ञ और इन सबके ऊपर नवग्रह हैं । मन्दिर का वाह्य भाग अन्य मन्दिर की अनुकृति मात्र है । परन्तु यहां निऋति अश्वारूढ़ न होकर नरारूढ़ है । हरिहर द्वार की पिछली दीवार के प्रमुख ताख में हैं ।

दक्षिण-पूर्वी गौण देवालय केप्रमुख ताखों में रेवन्त (दक्षिण),सूर्य (पूर्व) एवं रेवती युक्त स्थानक बलराम (उत्तर) की मूर्तियां हैं । बलराम के सिर पर पंच-फणी नाग का छत्र है । उत्कीर्ण लेख के अनुसार वह शेषावतार हैं । उत्तर-पश्चिम के गौण-देवालय के प्रमुख ताखों में ताण्डवरत शिव नटेश(पश्चिम), गोद में पार्वती युक्त महादेव ( उत्तर) एवं कल्याण सुन्दर-शिव (पूर्व) निरूपित हैं । शेष दो गौण देवालय नष्ट हो चुके हैं ।

तीसरा मन्दिर पूर्वाभिमुख है और इसमें पंचायतन शैली के गौण देवालयों का अभाव है । इसी कारण आधार का बड़ा चबूतरा यहां अनावश्यक हो जाता है । मन्दिर की अन्य प्रमुख विशेषता है, गुम्वदनुमा सभामण्डप । मन्दिर की बाहरी दीवारों के प्रमुख ताखों में नरसिंह (उत्तर), त्रिविक्रम (पश्चिम) एवं हरिहर (दक्षिण) की मूर्तियां हैं ।[१]

इसी शताब्दी की कई हरिहर मूर्तियां भारत के विभिन्न भागों में प्राप्त हुई हैं । ७४० ई० में निर्मित पट्टडकल के विरूपाक्ष मन्दिर की दीवार में संलग्न हरिहर त्रिभंगी मुद्रा में खड़े हैं । उनका एक वाम कर खण्डित है और दूसरे में शंख है ।

---

१. औसियां मन्दिरों का विवरण मुख्यत: भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की १६०८-६ की वार्षिक-रिपोर्ट पर आधारित है । इसके अतिरिक्त देखिए ललितकला, सं० ८, पृ० १६ तथा मार्ग,भाग १२ अंक २, पृ० ५७, चित्र १० ।

दक्षिण पार्श्व के एक कर में त्रिशूल है तथा दूसरा पाश धारण किए कटिहस्त मुद्रा में है। मूर्ति की दूसरी आकर्षक वस्तु है चक्र, जिसे कल्पना के धनी पल्लव शिल्पी ने वाम कर्ण के पास उत्कीर्ण किया है। हरिहर के वाम पार्श्व में मानवाकार गरुड़ तथा दक्षिण पार्श्व में वृषमुखी नन्दी है। इसी दशक में निर्मित एहोल की रावल-पाडी गुहा की हरिहर-मूर्ति के चित्र में उसके लक्षण अस्पष्ट हैं।

पटना संग्रहालय की महरांवा से प्राप्त हरिहर प्रतिमा ( सं० ११२५७) दैवता को दोहरी पद्मपीठिका पर खड़े प्रदर्शित करती है। इस पीठिका के नीचे अन्य सपाट पीठिका के कारण उसकी ऊंचाई पर्याप्त बढ़ जाती है, जिसके वाम पार्श्व में आकाश-गामी मानवाकार गरुड़ तथा दक्षिण पार्श्व में वृषभ उत्कीर्ण है। समपाद मुद्रा में खड़े चतुर्भुजी हरिहर का एक वामकर खण्डित है और शेष में वह चक्र तथा दक्षिण करों में त्रिशूल एवं अक्षमाल धारण किए हैं।दक्षिण एवं वाम पार्श्वों की स्थानक नारी आकृतियां उमा और लक्ष्मी तथा पुरुष आकृतियां गणों की हो सकती हैं। आभामण्डल युक्त सिर के वामार्ध में जटामुकुट तथा दक्षिणार्ध में किरीट मुकुट है। प्रयाग संग्रहालय की आवक्ष हरिहर प्रतिमा ( सं० ६६५) के सिर पर भी ऐसे ही लक्षण हैं। वाम कर्ण में जहां मकराकार कुण्डल है, दक्षिण में व्यालाकार कुण्डल ।

नवीं शताब्दी का पहला अभिलेख वनमाल वर्मा देव (असम)के पर्वतीय फलकों (८२६ ई०) पर मिलता है। यहां प्रारम्भ में लौहित्य सिन्धु की स्तुति के पश्चात् दूसरे श्लोकमें शिव एवं तीसरे में विष्णु का स्तवन है।[१] कक्कराज सुवर्णवर्ष के सूरत वाले ताम्रपत्रों ( ८२१ ई०) के दूसरे श्लोक में विष्णु और शिव से कल्याणार्थ प्रार्थना की गई है[२]और गुजरात नरेश दन्तिवर्मा के एक शिलालेख ( ८६७ ई०) में भी बुद्ध की स्तुति के पश्चात् दूसरे श्लोक में विष्णु और शिव का स्तवन हुआ है।[३]

बुचकला में निर्मित इस शती के शिव मन्दिर की हरिहर प्रतिमा का मुख

---

१. एपिग्रैफिया इण्डिका,भाग २६, १९५१-५२, पृ० १५७

२. वही, भाग २१,पृ०१४०

३. डा० यदुवंशी, वही, पृ० १४३

एवं दो हाथ विक्षत हैं। हरिहर के वाम कर में चक्र तथा दक्षिण कर में त्रिशूल और उनके ऊपर आकाशगामी गन्धर्व निरूपित हैं। दक्षिण पार्श्व में हाथ जोड़े उपासक और नन्दी के कारण वाम पार्श्व की दो आकृतियों में से एक गरुड़ और दूसरी उपासक की हो सकती है। भांदक (चांदा) से प्राप्त केन्द्रीयसंग्रहालय, नागपुर की हरिहर प्रतिमा ( सं० ए० ५७) में देवता को वामकरों में सादा एवं सपाट चक्र व शंख तथा दक्षिण करों में त्रिशूल एवं अक्षमाल धारण किए पीठिका पर खड़े दिखाया है। हरिहर के दक्षिण पार्श्व में नन्दी, वाम पार्श्व में चवरधारी मानवाकार गरुड़ और सिर पर आभामंडल है। काले पत्थर की इस प्रतिमा में विष्णु के किरीट मुकुट को अत्यन्त दीर्घ प्रदर्शित किया है। चन्द्रभागा नदी से प्राप्त भालावाड़ की हरिहर प्रतिमा की चारों भुजाएं खण्डित हैं तथा वामकरों के चक्र एवं शंख स्पष्ट हैं। मूर्तिकला की दृष्टि से प्रस्तुत प्रतिमा पर्याप्त रोचक है क्योंकि हरिहर के पार्श्वों में नीचे तीन-तीन गौण आकृतियां, ऊपर एक-एक व्याल आकृति और सिर पर आभा मण्डल के बाहर वाम-पार्श्वीय पीठिका पर त्रिशूलधारी आसनस्थ शिव, दक्षिण-पार्श्वीय पीठिका पर श्मश्रुसम्पन्न आसनस्थ ब्रह्मा और सिर के ऊपर केन्द्रीय पीठिका पर आसीन छत्रधारी योगनारायण के दोनों पार्श्वों में दो अन्य आकृतियां ( चित्र में अस्पष्ट ) निरूपित हैं। संभवत: सिर पर पहले किरीट बना कर उसके ऊपर दक्षिणार्ध में जटाजूट उत्कीर्ण करने का प्रयास किया गया है। मुख्य देवता हरिहर के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को अलग से प्रदर्शित करने के कारण प्रस्तुत प्रतिमा साम्प्रदायिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती है क्योंकि मूर्तिकार की दृष्टि में या तो हरिहर त्रिदेवों से भिन्न कोई महान् देवता है अथवा त्रिदेव हरिहर के ही अन्य रूप हैं ( - जैसा कि विष्णु की दशावतार प्रतिमाओं में मिलता है )।

डा० एस०टी० सत्यमूर्ति के अनुसार ६ वीं-१० वीं शती ई० से दक्षिण भारत के मन्दिरों में हरिहर का स्थान निश्चित हो गया था। अब से वहां के मन्दिरों में हरिहर को गर्भगृह की पिछली दीवार के प्रमुख ताख में प्रतिष्ठापित करते थे। उनका कहना है कि इसके अपवाद में कभी-कभी अर्धनारीश्वर अथवा विष्णु की मूर्ति भी मिल

जाती है ।[१] हम देख चुके हैं कि ओसियाँ के पंचायतन हरिहर मन्दिरों में हरिहर का स्थान गर्भगृह की पिछली दीवार का मुख्य ताख ही है । इस प्रकार दक्षिण भारतीय मन्दिरों में भी अब हरिहर को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया था ।

राष्ट्रकूट शासक कृष्ण तृतीय ( ६३६-६६७ ई० ) के दो अभिलेखों के प्रारम्भ में विष्णु के मुरारी और चन्द्रकलाधारी शिव के त्रिपुरारि स्वरूपों का स्तवन किया गया है । इनमें से (ताम्र) फलकों पर उत्कीर्ण ६५८ ई० का लेख करहद में मिला था [१क]और शासन के अन्तिमकाल का दूसरा शिलालेख कन्धार में ।[२] ६८७ ई० के अगले शिलालेख[३] में ऐसे मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है, जिसमें विष्णु, हरिहर और सूर्य की मूर्तियां प्रतिष्ठापित की गई थीं । यह शिलालेख टोंक (राजस्थान) की उनियरा ( UNIARA ) तहसील के नगर ( NAGAR ) ग्राम में मण्डकिला नामक तालाब के पूर्वी तट पर नवनिर्मित विष्णु-मन्दिर की पिछली दीवार में संलग्न है । कुटिल लिपि के इस लेख की भाषा संस्कृत है और पहली तथा उन्तीसवीं पंक्ति के अतिरिक्त पूरी रचना श्लोकों में है। "ओं नम:" से प्रारम्भ होने के पश्चात् प्रथम श्लोक में विष्णु, दूसरे में हरिहर या शंकरनारायण और तीसरे श्लोक में सूर्य की स्तुति है । अगले पांच श्लोकों में मालव नगर का वर्णन और फिर धरकट जाति के नागहरि सेठ का परिचय दिया है, जिसने किसी समय विष्णु मन्दिर का निर्माण कराया था । इसी की चौथी पीढ़ी में नन्दन हुआ था, जिसने उक्त विष्णु मन्दिर के समीप ही हरि (विष्णु),शंकर नारायण (हरिहर) तथा खर (सूर्य) की मूर्तियों,एवं कोष्ठ सम्पन्न मन्दिर बनवाया (-श्लोक २६) । २८ वें श्लोक में प्रस्तुत मन्दिर में देवमूर्तियां

---

१. डा० एस०टी०सत्यमूर्ति का दि० २४ जून,१९६७ का पत्र

१क. एपिग्रैफिया इण्डिका,भाग ४, पृ० २८६

२. वही, भाग ३५, १९६३-६४, पृ० १०६

३. वही, भाग ३४, १९६१-६२, पृ० ७७-७८

की स्थापना-तिथि वैशाख शुक्ल (तृतीया), सं० १०४३ वि०,(३ अप्रैल,९८७ ई०) दी है। दूसरे श्लोक की हरिहर स्तुति में उनसे कल्याण कामना करते हुए कहा है-हरिहर ! जो पार्वती एवं लक्ष्मी के पति हैं, जिनका वाहन नन्दी एवं पक्षीराज गरुड़ है, जिनका शरीर श्वेत एवं श्याम वर्ण है, जो एकात्म (एकांगी) हैं, जिन्होंने त्रिशूल एवं चक्र से अपने शत्रुओं का दमन किया था, जो तीनों लोकों के संहारक एवं रक्षक हैं, जो भस्म एवं कुंकुम से आच्छादित रहते हैं, जो दिगम्बर एवं पीताम्बर-धारी हैं, जो युद्ध में अन्धक एवं भीम असुरों का दर्प दलन करने वाले हैं, आपकी रक्षा करें।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण शिलालेख खजुराहो में प्राप्त हुआ है, जिसमें शिव को एकेश्वर माना है और विष्णु, बुद्ध तथा जिन को उनका अवतार कहा है। यह १०००ई० का है।[१]

खजुराहो के लक्ष्मण (रामचन्द्र) मन्दिर की ड्यौढ़ी में संलग्न धंग के शासन-कालीन ( ९५३-५४ ई०) शिलालेख में बताया है कि उक्त मन्दिर का निर्माण यशो-वर्मन (लक्ष्मनवर्मन्) ने कराया था। ९५४ ई० में यशोवर्मन की मृत्यु के कारण प्रस्तुत मन्दिर का रचनाकाल ९३०- ९५० ई० के मध्य माना गया है।[२] इसी मन्दिर के मण्डप के ऊपर हरिहर की आसनस्थ प्रतिमा है। चतुर्भुजी हरिहर का एक वामकर खण्डित और शेष में चक्र तथा दक्षिण व करों में त्रिशूल एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित है। हरिहर की आसनस्थ प्रतिमाएं बहुत कम मिलती हैं।

खजुराहो से प्राप्त अन्य स्थानक हरिहर प्रतिमा स्थानीय पुरातत्व संग्रहालय की निधि है। हरिहर का दक्षिण स्वाभाविक कर खण्डित होते हुए भी उसमें गृहीत अक्षमाला एवं उसकी वरदमुद्रा स्पष्ट है। अतिरिक्त दक्षिण में त्रिशूल तथा वाम में चक्र और स्वाभाविक वाम पूर्णतया खण्डित है। आभामण्डल युक्त हरिहर के सिर पर दीर्घ जटामुकुट व किरीट मुकुट तथा वाम और दक्षिण कर्ण में भिन्न आकृति के कुण्डल हैं। पीठिका के निम्नवर्ती शिला पट्ट पर उत्कीर्ण तीन लघु आकृतियां संभवत: उपासकों की हैं। हरिहर के दोनों पार्श्वों में त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी

---

१. वही, भाग १, पृ० १४८

२. खजुराहो, कृष्णदेव, पृ० २६

चामरधारिणियों के अतिरिक्त शिलापट्ट के शेष भाग में नन्दी, गणेश,योगनारायण, वराह, नृसिंह, गन्धर्व-मिथुन,व्याल आदि उत्कीर्ण हैं ।

लक्ष्मी विष्णु की और दुर्गा, जिनका वाहन सिंह है, शिव की पत्नी हैं। विष्णु और शिव के समन्वय के अतिरिक्त लक्ष्मी एवं दुर्गा में सौहार्द प्रदर्शन के लिए लक्ष्मी को सिंहवाहिनी प्रदर्शित करने का भी प्रयास हुआ है । ऐसी ही सिंह-वाहिनी गजलक्ष्मी की मूर्ति खजुराहो के पुरातत्व संग्रहालय में है । यहाँ विशाल जटा मुकुट, हार, ग्रैवेयक, अंगद,कंकण, मुक्ताग्रथित मेखला, वनमाला आदि धारण किए चतुर्भुजी देवी समभंग मुद्रा में खड़ी हैं । देवी का अतिरिक्त दक्षिण कर वरदमुद्रा में और अतिरिक्त वाम अमृतघट धारण किए है । दोनों स्वाभाविक करों में गृहीत सनाल पद्मों के ऊपर अभिषेक करते हाथी प्रदर्शित हैं । देवी के दोनों पार्श्वों में खड़ी चामरधारिणीनारियों के नीचे आसनस्थ सिंह की एक-एक आकृति है ।[1]

राष्ट्रीय संग्रहालय,दिल्ली की एक प्रतिमा (सं० ६८।१२७) में देवता को आलीढ़ मुद्रा में आसीन प्रदर्शित किया है । उनके शरीर पर यज्ञोपवीत है । कटि में दोलायमान मेखला संवलित धोती तथा वक्ष पर श्रीवत्स है । भुजाएं पूर्णतया खण्डित होने के कारण उनमें गृहीत आयुधों के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु मुद्रा से परिलक्षित होता है कि उनके एक हाथ में धनुष अवश्य रहा होगा । धनुष विष्णु (शार्ङ्ग) और शिव (पिनाक) दोनों धारण करते हैं, परन्तु श्रीवत्स विष्णु का विशिष्ट चिह्न है । हरिहर के लक्षणों में धनुष का उल्लेख मात्र वामनपुराण[2] ने किया है, परन्तु इसके अनुसार दशभुजी हरिहर के हाथों में शार्ङ्ग और पिनाक दोनों होने चाहिए । तथापि सिर के दक्षिणार्ध में जटामुकुट और वामार्ध में किरीट मुकुट होने से उसकी समन्वयात्मक प्रकृति स्पष्ट हो जाती है और इस आधार पर वह हरिहर मूर्ति है ।[3]

---

१. भा०पु०सं० चित्र सं० १६५६।६० तथा हिन्दुस्तान ( १३।११।६६) , पृ० ६

२. वामनपुराण, ६२।२६-३०

३. वी०एन० शर्मा, जर्नल आफ दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट आफ बड़ौदा,भाग १८ अंक १-२, सितम्बर-दिसम्बर , १९६८

कटारा ग्राम से प्राप्त भरतपुर संग्रहालय की हरिहर प्रतिमा ( सं० २७२) की चारों भुजाएं एवं आयुध नष्ट हो गए हैं, तथापि शिरोभूषा से उसकी द्विधा प्रकृति स्पष्ट परिलक्षित होती है । शिरश्चक्र सम्पन्न हरिहर के वाम पार्श्व में दो और दक्षिण पार्श्व में एक स्थानक आकृति के अतिरिक्त शिला-पट्ट के मध्य एवं ऊपर सिर के समानान्तर एक-एक आसनस्थ आकृति है ।

डा० एस०टी० सत्यमूर्ति के अनुसार मुवरकोयिल के प्रारम्भिक चोल (९००-१०५३ ई०) मन्दिर के गर्भगृह की पिछली दीवार में हरिहर प्रतिमा है ।[१] इसीप्रकार जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने भारतीय संग्रहालय की एक हरिहर प्रतिमा ( सं० ३९६६) का उल्लेख किया है जो शिरोभूषा रहित ११३·६ सें०मी० ऊंची है ।[२]

ग्यारहवीं शती के सोमेश्वरदेव प्रथम के बालगैन्वे शिलालेख के प्रारम्भ में जिन और विष्णु की स्तुति है, परन्तु अन्तिम पंक्तियों में कहा है कि महाराज की इच्छा से प्रभु नागवर्मा ने भगवान् जिन , भगवान विष्णु तथा भगवान् ईश्वर (शिव) के एक-एक मन्दिर का निर्माण कराया ।[३] चालुक्य नरेश भुवनैकमल्ल देव के १०७१ ई० के शिलालेख में बताया है कि उसने बेल्लिगाव नगर के हरिहरादित्य (विष्णु, शिव एवं सूर्य का संयुक्त रूप ) के स्नान एवं नैवेद्य के लिए समस्त अनुष्ठानों के साथ नि:शुल्क भूमि प्रदान की और बलिपुर में योगेश्वर (शिव) तथा हरिहरादित्य के मन्दिर बनवाये ।[४] दक्षिण कैही एक अन्य विख्यात शिलालेख ( ११००ई०) के प्रारम्भ में वाराहरूप विष्णु ,लक्ष्मी-नारायण एवं हरिहर का स्तवन हुआ है ।[५] इसी शताब्दी का अन्य महत्त्वपूर्ण अभिलेख विजयसेन की देवपारा प्रशस्ति है । प्रारम्भ में सेन राजा शैव थे और विजयसेन स्वयं अपने को परम शैव मानता था[६],परन्तु उसने प्रद्युम्नेश्वर का

---

१. दि०२४।६।६७ का लेखक के नाम पत्र ।

२. डेवलेपमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्रेफी,पृ० ६२६

३. एपिग्रेफिया इण्डिका,भाग ६, पृ०१६९

४. एपिग्रेफिया कर्नाटिका, भाग ७ शिकरपूर १२६, पृ० ९९

५. वही, भाग ११, दावणगेर ४५, पृ० ५७

६. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी,हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० ३९

जो मन्दिर बनवाया,उसमें प्रद्युम्न (हरि) और ईश्वर (हर) की संयुक्त प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराई थी । "ओं नमः शिवाय" से प्रारम्भ लेख में हरिहर की संयुक्त मूर्ति का सुन्दर कवित्वमय वर्णन दिया है ।

लक्ष्मीवल्लभशैलजादयितयोरद्वैतलीलागृहं ।
प्रद्युम्नेश्वर शब्दलांछनमधिष्ठानं नमस्कुर्महे ।।[१]

उड़ीसा के गंग शासक भी प्रारम्भ में शैवधर्म से प्रभावित थे, क्योंकि लिंग-राज मन्दिर के जगमोहन की दीवार में संलग्न एक शिलालेख के अनुसार अनन्तवर्मन चोडगंग ने उक्त मन्दिर के दीप हेतु ११९२ ई० में एक ग्राम दान दिया था ।[२] परन्तु बाद के गंग शासक वैष्णव थे, इसीलिए अनंगभीम तृतीय की पुत्री चन्द्रावतीदेवी ने १२७८ ई० में न केवल अनन्तवासुदेव के मन्दिर का निर्माण कराया, वरन् उसके वैष्णव प्रभाव से लिंगराज मन्दिर के उपास्य देव की मूर्ति हरिहर का समन्वित रूप हुई और मन्दिर की उपासना-विधि में विभिन्न वैष्णव संस्कार सम्मिलित कर लिए गए । इतना ही नहीं मन्दिर के भोग-मण्डप के सम्मुख उपासना-स्तम्भ पर वृषभ के साथ गरुड़ मूर्ति भी निर्मित कर दी गई ।[३]

खजुराहो से लगभग दो मील दक्षिण एवं जटकरा ग्राम से दो फर्लांग दक्षिणपूर्व के चतुर्भुज नामक मन्दिर ( ११०० ई० ) को गर्भगृह की चतुर्भुजी प्रतिमा के आधार पर वैष्णव मन्दिर माना जाता है ।[४] गर्भगृह, महामण्डप एवं अर्धमण्डप युक्त यह पश्चिमाभिमुख है । गर्भगृह के आराधियक पर वरद, गदा,चक्र एवं शंखधारी विष्णु अर्धपर्यंक मुद्रा में गरुड़ पर आसीन हैं । मंदिर की बाह्य संरचना के अन्तर्गत मूर्तियों के तीन बांध हैं । इनमें से ऊपरी बांध में वरद,त्रिशूल,(खंडित) एवं कमण्डलुधारी

---

१. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पृ० १७०

२. देवल मित्र, वही, भूमिका, पृ० ११

३. वही, भूमिका, पृ० ११-१२

४. बी०एल० धामा तथा एस०सी०चन्द्र, खजुराहो, पृ० १७

अर्धपर्यंकासीन चतुर्भुजी अर्धनारीश्वर (दक्षिण),वरद, त्रिशूल,नाग एवं कमण्डलुधारी वृषभासीन शिव (पूर्व) और अर्धपर्यंकासीन नरसिंही ( उत्तर )है, जिसकी ऊपरी भुजाएं खण्डित हैं तथा दक्षिणाध: वरदमुद्रा में एवं वामाध: में कमण्डलु है । नीचे के बांध में अग्नि ( खण्डित,दक्षिण दिशा),सप्त अश्वारूढ़, द्विभुजी सूर्य (पूर्व) और वरद, गदा, चक्र व शंखधारी विष्णु (उत्तर) अर्थात् मन्दिर के दक्षिण में अर्धनारीश्वर व अग्नि , पूर्व में शिव व सूर्य तथा उत्तर में नृसिंही और विष्णु की मूर्तियां हैं ।

औसियां के हरिहर मन्दिरों से तुलना करने पर हम देखते हैं कि यह ~~नार~~ भी पश्चिमाभिमुख है और दक्षिण में अग्नि तथा पूर्व में सूर्य व शिव (ईश) की मूर्तियां हैं । औसियां में उत्तरी दीवार के मुख्य ताख में नरसिंह हैं जबकि यहां उनकी शक्ति तथा विष्णु । नरसिंही औसियां के नरसिंह की स्थानापन्न हैं तथा विष्णु त्रिविक्रम ( औसियां दक्षिण) का । महिषमर्दिनी के स्थान पर यहां दक्षिण में अर्धनारीश्वर है । इस प्रकार वैष्णव त्रिविक्रम और नरसिंह के स्थान पर यहां विष्णु और उनके एक अवतार की शक्ति नरसिंही एवं शैव महिषमर्दिनी के स्थान पर अर्धनारीश्वर से कोई शास्त्रीय व्याघात उपस्थित नहीं होता है ।

मन्दिर के गर्भगृह में नौ फीट ऊंची देवाकृति त्रिभंगी मुद्रा में निरूपित है, जिसकी दोनों अतिरिक्त भुजाएं एवं आयुध खण्डित हैं तथा शेष दक्षिण अभय मुद्रा में और वाम ~~सदण्ड~~ सदण्ड मुद्रा तथा डोरी से बन्धी धर्मपुस्तक धारण किये है । इसे प्रारम्भ में तो भारतीय पुरातत्व विभाग विष्णु विग्रह मानता रहा,[1] परन्तु अब चतुर्भुजी दक्षिणामूर्ति शिव माना है ।[2] यह अनिश्चयात्मक स्थिति सम्भवत: शिरोभूषा के कारण रही है, क्योंकि सिर पर किरीट मुकुट के ऊपर जटापाश है । जहां प्रथम के आधार पर उसे विष्णु कह दिया दूसरे के आधार पर

---

१. बी०एल० धामा एवं एस०सी० चन्द्र लिखित खजुराहो का हिन्दी अनुवाद, पृ० २७

२. कृष्णदेव,खजुराहो, पृ० ४३ पाद टिप्पणी ।

शिव । जबकि यह दोनों हरिहर के विशिष्ट लक्षण हैं । प्रिन्स आफ वेल्स संग्रहालय,बम्बई (सं० १५।१३);राजकीय संग्रहालय झालावाड़;बादामी (गुफा १) आदि की हरिहर प्रतिमाओं में किरीट मुकुट के ऊपर दक्षिण पार्श्व में मात्र छोटा-सा केश-पाश निरूपित है।विरुपाक्ष मन्दिर के हरिहर में हम न केवल ऐसी ही शिरोभूषा वरन् त्रिभंगी मुद्रा भी देख चुके हैं । इस प्रकार यह अन्य कुछ न होकर हरिहर मूर्ति है । खजुराहो मन्दिरों के अभिरक्षक श्री शाह ने एक भेंट में बताया कि गर्भगृह के द्वार पर उत्कीर्ण अनुचर आकृतियाँ जय या विजय और शृंगी या भृंगी की हैं, जो क्रमश: विष्णु और शिव के अनुचर हैं ।

जहाँ तक गर्भगृह की पिछली दीवार का प्रश्न है ओड़ियाँ में वहाँ मुख्य स्थान हरिहर को मिलने के कारण हम मन्दिर को हरिहर-समर्पित मानते हैं । परन्तु यहाँ हरिहर प्रतिमा गर्भगृह में प्रतिष्ठापित होने के कारण पृष्ठ भाग में हरिहर को संलग्न करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती और उसके स्थान पर हरिहर के एक भाग शिव की मूर्ति है । द्वाराधियक पर दोनों मन्दिरों में गरुड़ासीन विष्णु हैं । अत: खजुराहो के तथाकथित चतुर्भुज मन्दिर के हरिहर मन्दिर होने में कोई सन्देह नहीं रहता ।

खजुराहो के पश्चिमी मन्दिर समूह के अन्तर्गत नितान्त उत्तर-पूर्व में एक ही चबूतरे पर आमने-सामने विश्वनाथ और नन्दी मन्दिर हैं । मन्दिर में संलग्न शिलालेख से ज्ञात होता है कि १००२-३ ई० तक विश्वनाथ मन्दिर का निर्माण हो चुका था । इसी मन्दिर के मण्डप के वाम पार्श्व ( पश्चिम) में त्रिशूल, चक्र एवं शंखधारी हरिहर की प्रतिमा संलग्न है । मूर्ति के अतिरिक्त दक्षिण का आयुध अस्पष्ट है । मन्दिर की जगती में उत्तर-पूर्व की ओर निर्मित रथिका में ललितासन मुद्रा में आसीन चतुर्भुजी गजलक्ष्मी की मूर्ति है, जिसके हाथों में वरदमुद्रा युक्त अक्षमाल ( दक्षिण अध:) , सदण्ड पद्म (दोनों स्वाभाविक ) तथा अमृतघट (वाम अधह) है । कुण्डल, हार, ग्रैवेयक, कंकण, कटिसूत्र एवं नूपुरधारी लक्ष्मी की प्रतिमा के पादपीठ पर (दुर्गा का वाहन ) आसनस्थ सिंह है । यहीं के कन्दरिया-महादेव मन्दिर के महामण्डप की एक रथिका में लक्ष्मी-नारायण की आलिंगनमूर्ति है, जिसमें लक्ष्मी के चरणों के पास एक सिंह बैठा है ।

दक्षिण में तंजौर के बृहदेश्वर मन्दिर ( ६८५-१०१८ ई० ) के गर्भगृह की दीवार में एक हरिहर प्रतिमा संलग्न है ।[१] इसी प्रकार एक अन्य प्रतिमा गङ्गगयिकौ-ण्डाचोलपुरम् में है, जो ११ वीं शती ई० के द्वितीय दशक की होनी चाहिए, क्योंकि नगर का निर्माता राजेन्द्रचोल १०१२ ई० में सिंहासन पर बैठा था ।[२] कटिहस्त मुद्रा (स्वाभाविक वाम ) में खड़े हरिहर का एक दक्षिण कर वरदमुद्रा में है और दूसरे में संभवत: परशु है। वाम अध: हस्त में शंख है । इसी दशक की एक मूर्ति मेहसाना (गुजरात) के सूर्य मन्दिर में है[३] । यह मन्दिर ऊन्भा से तीन मील पूर्व भन्सर में है । पूर्वाभिमुखी मन्दिर की उत्तरी दीवार पर नटेशमूर्ति है तथा पश्चिम में हरिहर-पितामहार्क(विष्णु, शिव, ब्रह्मा एवं सूर्य ) और दक्षिण में हरिहर । मन्दिर के दक्षिण पार्श्वीय चित्र में चतुर्भुजी स्थानक हरिहर के वाम कर का चक्र एवं दक्षिण कर का त्रिशूल स्पष्ट है । संभवत: इसी शती की एक आवक्ष हरिहर प्रतिमा नैमि-षारण्य के ललितादेवी मन्दिर में एक गौण स्थान पर प्रतिष्ठापित है । इसमें हरि-हर के ललाट पर अर्ध त्रिनेत्र, सिर पर जटाजूट ( दक्षिणार्ध) एवं किरीटमुकुट (वामार्ध) तथा कानों में भिन्न ढंग के आभूषण हैं[४]।

जहां खजुराहो में लक्ष्मी को सिंहवाहिनी निरूपित करके उसे हरिहर की शक्ति प्रदर्शित करने का प्रयास किया है, बंगाल में इसका एक स्पष्ट प्रमाण मिलता है ।[५] सेनों की राजधानी श्रीविक्रमपुर (आधुनिक रामपाल) के भग्नावशेषों में उप-लब्ध एक तीस इंच ऊंची प्रतिमा बंगाल की सेनकालीन मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण है । यहां चतुर्भुजी देवी पूर्ण प्रस्फुटित पद्म के ऊपर आकर्षक त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं, जिसके वाम ऊर्ध्व कर में अलंकृत टोकरी जैसी वस्तु पुष्प-टोकरी अथवा कमण्डलु

---

१. डा० एस०टी० सत्यमूर्ति का दि० २४ जून ,६७ का पत्र ।
२. मद्रास के पुरालेख विभाग की वार्षिक रिपोर्ट १६०८-१६०६ई०, पृ० ६२-६३ ,
३. जर्नल आफ दि ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट एम०एस० यूनिवर्सिटीआफ बड़ौदा, भाग १७, अंक २ (दिसम्बर, १९६७ ) , पृ० १५४ तथा चित्र सं० ६ सूर्य मन्दिर ।
४. चित्र एवं परिचय डा० जगदीश गुप्त के सौजन्य से ।
५. एपिग्रैफिया इण्डिका, भाग १७, १६२३-२४, पृ० ३५६-६०

है और दक्षिण ऊर्ध्व में अंकुश । एक अधःकर वरद मुद्रा में है । देवी के दोनों पार्श्वों में दो परिचारिकायें खड़ी हैं और दो गज कलशों से उसका अभिषेक कर रहे हैं । पद्मासन के नीचे एक सिंह उकडूं बैठा है । जहां गजलक्ष्मी को पद्मारूढ़ - दिखाया जाता है, सिंह दुर्गा का वाहन है । इसलिए यह कहने में कोई संकोच नहीं कि वह गजलक्ष्मी और चण्डी का संयुक्त रूप होने के कारण हरिहर की शक्ति है ।[१] हरिहरदेवी का उल्लेख दक्षिण भारतीय दो अभिलेखों में भी हुआ है । चिननयकनहल्लि (सं० २१) तथा तिपतुर (सं० ६४) ताल्लुकों में उपलब्ध यह अभिलेख एपिग्रेफिया कर्नाटिका के भाग १२ में संग्रहीत हैं ।[⊙] प्रस्तुत भाग सुलभ न हो सकने के कारण विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं हो सका ।

दीनजपुर जिले से प्राप्त लक्ष्मणसेन के एक ताम्रपत्र में ११२२ ई० में भारद्वाजगोत्री ईश्वरदेव-शर्मन नामक ब्राह्मण को एक ग्राम देने का वर्णन है । इसमें लक्ष्मणसेन को एक साथ परम ईश्वर तथा परम वैष्णव कहा गया है और 'ओं नमो नारायणाय' से प्रारम्भ ताम्रपत्र में शम्भु का स्तवन है ।[२] अनन्तवर्मन चोडगंग (१०७८ - ११४७ ई०) प्रारम्भ में शैव था, परन्तु पुरी-कटक विजय के पश्चात् वैष्णव हो गया था और कुछ समय तक शैव एवं वैष्णव दोनों रहा ।[३] अब हम दक्षिण के दावणगेरे ताल्लुका में प्राप्त कुछ अभिलेखों को दे रहे हैं, जिनमें शम्भु और विष्णु के विभिन्न स्वरूपों की संयुक्त स्तुति[५] ही नहीं है, वह हरिहराभ्यां नमः से प्रारम्भ होते हैं और उनमें हरिहर का स्तवन है ।[४] पैंतीसवें शिलालेख (११६० ई०) में शासक हरिहर के शाश्वत एकाकी स्वरूप का स्तवन करता है । वह (हरिहर ) ऐसा मूल है, जिससे

---

१. नलिनीकान्त भट्टसालि, पूर्वोक्त, पृ० ३६० ⊙ एपिग्रैफिया कर्नाटिका, भाग १२, खण्ड १

२. एपिग्रेफिया इण्डिका, भाग १२ (१९१३-१४), पृ० ६-७

३. वही, भाग ३३, (१९५९-६०), पृ० ४३

४. एपिग्रेफिया कर्नाटिका, भाग ११, पृ० २० पर ११२३ ई० का अभिलेख ।

५. वही, भाग ११, पृ० ५० पर ११४३ ई० का अभिलेख । इसी स्तुति इस प्रकार है- स्थाणु और हर की जय हो । जिनके हाथों में अक्षमाल, त्रिशूल, चक्र एवं शंख रहता है ।

~~६. एपिग्रेफिया कर्नाटिका, भाग ११, पृ० २० पर ११२३ ई० का अभिलेख ।~~

उसके भक्तों का हर्ष रूपी कदली वृक्ष उत्पन्न होता है । आगे श्री एवं गिरिजा के प्रिय, कृष्ण एवं श्वेत वर्णी, कौस्तुभ तथा नागों से सुशोभित, गरुड़ तथा वृषभ पर आरूढ़, एक समन्वित स्वरूप में भासमान भगवान् हरिहर से प्रार्थना की गई है कि वह महाराज सोम पर अनुग्रही हों । अन्त में नाल-प्रभु सन्क गवुण्ड तथा अन्य गवुण्डों द्वारा भगवान हरिहर की दैनिक परिचर्या हेतु नागरगण्ड के ˄ ˄ ˄ वूर् में पांच पण दान देने का उल्लेख है ।[१] यह दान किसी हरिहर मन्दिर को ही दिया गया होगा । बयालीसवें शिलालेख ( ११६२ ई० ) में शाश्वत एक स्वरूप हरिहर का अभिवादन करते हुए, उनसे दण्डाधिप वर्म्मरस की मनोकामनाएं पूर्ण करने को कहा गया है । हरिहर अपने निकट पहुंचने वाले व्यक्तियों के आनन्दरूपी कदलीकन्द के पोषक हैं । विष्णु और भव ने संसार-वासियों को अपनी एकता दिखाने के लिए ही एक अभिन्न स्वरूप धारण किया । इसमें हरिहर-स्थान को गया से अधिक शुद्ध, वाराणसी से अधिक पवित्र, प्रयाग से अधिक पुण्य-शाली, गंगा के तटों से अधिक दोषहीन, पम्पा के जल से अधिक स्वच्छ जलसम्पन्न और ˄ ˄ पर्वत से अधिक महान् कहा है ।[२] तैंतालीसवें शिलालेख (११६४ ई०) में कहा है कि महामंडलेश्वर ईश्वर देवरस ने सूर्यग्रहण के दिन १०४ ब्राह्मणों के चरणों का प्रक्षालन कर दक्षिणी गंगे-वाराणासि के स्वयंजात भगवान् शंकर नारायण (हरिहर) की पूजा एवं नैवेद्य हेतु मत्तिय के एक होन्नु का उपहार प्रदान किया ।[३] पांचवें शिलालेख (११६६ ई०) में शम्भु और विष्णु के मत्स्यावतार की एक साथ स्तुति[४] है तथा उन्तालीसवें शिलालेख (११६८ ई०) में हरिहर को अक्षमाल, त्रिशूल, चक्र एवं शंखधारी बता कर उनकी अभिन्न प्रभा का जयगान और विष्णु के मत्स्यावतार तथा शिव के नीललोहित स्वरूप का स्तवन किया है । आगे बताया है कि शंकरनारायण के चरणों के भक्त महा-मण्डलेश्वर विजयपाण्ड्यदेव ने महामन्त्री कुमारविजय पम्मादि दण्डनाथ की प्रार्थना पर भग-वान् हरिहर के अलंकरण एवं प्रकाश हेतु ग्राम दान किया[५]। श्रीहरिहरायनम: से प्रारम्भ बत्तीसवें शिलालेख ( ११७१ ई० ) में हरिहर को कल्पवृक्ष मानते हुए अत्यन्त काव्यमय स्तुति है । उनकी आकर्षक मुस्कान कुसुम हैं, चतुर्भुजाएं शाखाएं, रंजित अंगुलियां नव किसलय तथा नाग फलों से आच्छादित उद्वेष्टित द्राक्षवल्लरी । इसी में विजयपाण्ड्यदेव को भगवान्

---

१. वही, भाग ११, पृ० ४३-४४

२. वही, भाग ११, पृ० ५३-५४

३. वही, भाग ११, पृ० ५६

४. वही, भाग ११, पृ० २५ ५. वही, भाग ११, पृ० ४७-४६

शंकरनारायण का भक्त, उसके महामन्त्री केटरस को शिव एवं विष्णु के ८४ मन्दिरों का निर्माता तथा केटरस के पिता को स्वयंभू शंकरनारायण के पावन पदों एवं उनके अविस्मरणीय अग्रहार कुल्लूर को उपहार देने वाला कहा है।[१]

गुलबर्गा जिले के शिरहल्लि में प्राप्त तैल तृतीय के शिलालेख में सिरिवल्लि अग्रहार की सीमा- विभाजन के लिए तीन हरिहर मन्दिरों के निर्माण का वर्णन है, जिनके परिचालन के लिए दण्डनायक बिम्मलादित्य ने ३६ मत्तर भूमि प्रदान की थी।[२] तैल तृतीय ११५० ई० में सिंहासन पर बैठा था और ११५६ - ११६२ ईसवी के मध्य पदच्युत कर दिया गया।[३]

यहीं पर ११७५ ई० के एक पाल शिलालेख का वर्णन रोचक होगा। गया (बिहार) के गदाधर मन्दिर के निकटवर्ती देवस्थान की दीवार में अभिलेख युक्त एक शिलापट्ट संलग्न है, जो मूलत: विष्णुपाद नामक वैष्णव मन्दिर के लिए उत्कीर्ण हुआ था और वैष्णव है। परन्तु शिलालेख में सर्वोपरि एक शिवलिंग उत्कीर्ण है।[४]

दावणगेर के चवालीसवें शिलालेख (११८० ई० ) में रमा एवं गिरिजा के अधीश्वर, प्रमुख देवताओं द्वारा पूजित चरणों वाले, शंख, चक्र,<<< तथा त्रिशूल-धारी, स्वर्ण एवं सर्पों से विभूषित, गरुड़ तथा वृष पर आरूढ़, भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष भगवान हरिहर से कावण-दण्डनाथ की रक्षा की प्रार्थना है और अभिलेख श्री शंकरनारायणाय नम: से समाप्त होता है।[५] सैंतालीसवें अभिलेख (११८०) के प्रारम्भ में नागरी, तमिल तथा कन्नड़ लिपि में तीन बार ओं नमो हरिहराय मिलता है।[६] कद्रूर के चवालीसवें शिलालेख (११६१ ई० ) में क्षुद्रशासक द्वारा हरिहर को दान देने का वर्णन है[७] और शिकारपुर के ११६२रू(? ) के तीन

---

१. वही, भाग ११, पृ० ४०

२. इण्डियन आक्यॉलाजी : ए रिव्यु, १६५८-५६, पृ० ६२,

३. आक्यॉलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, भाग ४२ (न्यू इम्पीरियल सीरीज़) पृ०

४. एपिग्रेफिया इण्डिका, भाग ३५ (१६६३-६४), पृ० २३३

५. एपिग्रेफिया कर्नाटिका, भाग ११, पृ० ५६-५७

६. वही, भाग ११, पृ० ६६

७. वही, भाग ६, पृ० ६

भिन्न ताम्रपत्रों (१२,४५ व ८६ वें) के अनुसार परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने हस्तिनापुर से दक्षिण-विजय की यात्रा के समय मार्ग में तुंगभद्रा एवं हरिद्रा के संगम पर भगवान् हरिहर की उपस्थिति में सर्पयाग किया ।[१] शीख ताल्लुके में प्राप्त ११६३ ई० के अन्य ताम्रपत्रों में बताया है कि जनमेजय ने प्रस्तुतसर्पयज्ञ पुष्पगढ ग्राम के ब्राह्मणों के लिए किया था ।[२]

कोल्हापुर के प्रसिद्ध महालक्ष्मी मन्दिर के अहाते में हरिहरेश्वर का देवालय है । यह संभवत: ११८२ ई० से प्राचीन होना चाहिए क्योंकि देवस्थान की दीवार पर द्वितीय भोज का एक सं० ११०४ का अभिलेख संलग्न है ।[३]

इस शताब्दी के शासकों ने भी अपने सिक्कों के लांछन में शैव और वैष्णव दोनों प्रतीकों को अपना कर धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया है । चौहानों के सिक्कों में बहुधा एक ओर नन्दी और दूसरी ओर हाथ में शक्ति युक्त सवार और कभी एक ओर लक्ष्मी तथा दूसरी ओर केवल लेख रहता था । इसीप्रकार शहाबुद्दीन गोरी के स्वर्ण-सिक्कों पर एक ओर लक्ष्मी तथा दूसरी ओर नागरीलिपि में 'श्रीमहमदविनिसाम' (मुहम्मदबिनसाम) लेख है और ताम्र-सिक्कों के एक ओर नन्दी व त्रिशूल के साथ 'श्रीमहमद साम' तथा दूसरी ओर चौहान-सिक्कों के समान सवार और 'श्रीहमीर' (अमीर) लेख है ।[४]

बेलूर का चेन्नकेशव और हैलेबिड का होयसलेश्वर मन्दिर प्रारम्भिक होयसल वास्तुकला के अद्वितीय प्रतीक हैं । एक शिलालेख के अनुसार चोलों पर विजय-प्राप्ति के उपलक्ष में विष्णुवर्धन ने १११७ ई० में चेन्नकेशवमन्दिर बनवाया था ।[५]

---

१. ~~वही, भाग ८, पृ० २६~~, वही, भाग ७, पृ० ४०,४८ तथा ५८

२. वही, भाग ८, पृ० २६

३. एपिग्रेफिया इण्डिका, भाग २६ (१६५१-५२), पृ० १३

४. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, ~~(अमीर) व~~ राजपूताने का इतिहास(पहली जिल्द), पृ० ३६-४० ,

५. भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित टैम्पुल्स आफ साउथ,इण्डिया, पृ० ३६

प्रस्तुत मन्दिर की एक दीवार में संलग्न चतुर्भुजी हरिहर के वामकरों में गदा,चक्र तथा एक दक्षिण कर में परशु है । पांचों अंगुलियों में अलंकृत वलय धारण किए उनका शेष दक्षिण कर अभय मुद्रा में है । अलंकरणों से आच्छादित हरिहर के प्रभा- मण्डलयुक्त सिर पर किरीट मुकुट के मध्य संभवत: कपाल उत्कीर्ण है और सिर के ऊपर वल्लरी-निर्मित छत्र समग्र प्रतिमा को आपूरित कर लेता है । हरि-हर के वाम और दक्षिण पार्श्व की स्थानक लघु आकृतियां लक्ष्मी और पार्वती हो सकती हैं । अलंकरण के जिस सूक्ष्म तक्षण हेतु गोपीनाथ राव ने पुरन्दर की हरिहर प्रतिमा के शिल्पी की प्रशंसा की है, प्रस्तुत मूर्ति का कलाकार उससे भी अधिक स्तुत्य है । उसी वर्ष निर्मित होयसलेश्वर मन्दिर की हरिहर प्रतिमा कला की दृष्टि से उतनी श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती है तथापि किरीट मुकुट, छत्र, कर्णा-भूषण, शंख आदि का प्रदर्शन महत्वपूर्ण है । हरिहर के वामकरों में चक्र व शंख है तथा दक्षिण में त्रिशूल व अभययुक्त अक्ष माल । किसी अन्य आकृति के अभाव में दक्षिण पार्श्व में वज्र एवं सर्पधारी दो हाथ आश्चर्यजनक हैं,क्योंकि अष्टभुजी हरिहर का विवरण किसी ग्रन्थ में लब्ध नहीं मिलता । छायाचित्र में वाम पार्श्व पूर्णतया नहीं आ सका है । चक्र का आधा भाग आ पाने के कारण उपर के करों की स्थिति तथा उनके आयुधों के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता । दक्षिण पार्श्व में उत्कीर्ण पार्वती की स्थानक आकृति के होने से लगता है कि संभवत: दूसरी ओर वैसी ही लक्ष्मी भी उत्कीर्ण रही होगी । पार्वती के समीप ही उनके सिर पर चामर हिलाते हुये एक अनुचरी प्रदर्शित है ।

गोपीनाथराव द्वारा प्रशंसित पुरन्दर की हरिहर प्रतिमा सम्प्रति बम्बई के प्रिन्स आफ वेल्स म्युजियम में है ( सं० १५।१३) । इसमें हरिहर के दक्षिण कर में त्रिशूल व अक्षमाल तथा वाम ऊर्ध्व कर में गदा है । अध:वाम कर खण्डित है । दक्षिण पार्श्व में नन्दी और फल-फूल सहित पार्वती खड़ी है तथा वाम पार्श्व में मानवाकार गरुड़ और फलफूल लिए लक्ष्मी । हरिहर के पीछे निर्मित प्रभावली तक में शैव एवं वैष्णव भाग स्पष्ट हैं, क्योंकि दक्षिण भाग सामान्य और वाम में पंचफणी सर्प है । प्रभावली के ऊपर केन्द्रीय आकृति सिंहमुख है ।

दक्षिण पार्श्व में शूलों के ऊपर ब्रह्मा की स्थानक आकृति है। राव ने इसे चालुक्य-कालीन (५५५०-६४२) माना है।[१]

लखनऊ-संग्रहालय के हरिहर के वामकरों में चक्र व शंख है तथा दक्षिण करों में त्रिशूल व ( वरद मुद्रा युक्त ) अक्षमाल। सिर के वामार्ध में दीर्घ किरीट तथा दक्षिणार्ध में जटामुकुट है। त्रिशूल तथा चन्द्र के ऊपर एवं प्रभावली के भीतर दो आकाशगामी गन्धर्व मालाएं लिए हैं। नीचे दक्षिण पार्श्व में नन्दी और (चामरग्राहिणी आकृतिहै ) तथा वाम पार्श्व में चामरग्राहिणी की हाथ जोड़े घुटनों बैठी ऊर्ध्वमुखी आकृति है। हरिहर के दोनों कर्णाभूषणों में भी स्पष्ट अन्तर दिखायी देता है।

कौशाम्बी से प्राप्त पटना संग्रहालय के हरिहर ( सं० ८१६३ ) की दोनों अतिरिक्त भुजाएं खण्डित हैं। स्वाभाविक दक्षिण कर शंख युक्त तथा वाम कर वरद मुद्रा मेंहै। भग्न करों में संभवत: चक्र व त्रिशूल था। नीचे दक्षिण पार्श्व में नन्दी और परिचारिका है तथा वाम पार्श्व में नितान्त त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी आकृति कोई अन्य परिचारिका या परिचारक।गरुड़ का अभाव उल्लेखनीय है। प्रभावली के दोनों ओर निर्मित दो आसनस्थ आकृतियों के ऊपर मालाधारी गन्धर्व आकाश में उड़ रहे हैं।

राजपूताना संग्रहालय की हरिहर प्रतिमा ( सं० १०८४) उसी जनपद के बघेरा स्थान से मिली है। इसके पैरों का अधोभाग तथा दो भुजाएं अर्ध भग्न हैं और शेष वाम अधोकर में शंख व दक्षिण अधोकर में सर्प आवेष्टित त्रिशूल है। जटामुकुट दक्षिणार्ध में न होकर सिर के तिहाई भाग में ही होगा और मस्तक पर केशों की भ्रमरावली है। शिरश्चक्र के दक्षिण पार्श्व में किंचित् लम्बोदर कुबेर और वाम पार्श्व में त्रिशूल ( दक्षिणकर में ) धारण किए कोई अन्य आसनस्थ आकृति निरूपित है जो छायाचित्र में आधी प्रदर्शित है।

इलाहाबाद संग्रहालय के हरिहर ( सं० ५६४) के वामकरों में चक्र व गदा (?) है तथा उनका एक दक्षिण कर त्रिशूल धारण किए है और दूसरा वरद मुद्रा में+

---

१. गोपीनाथ राव, वही, भाग २ खण्ड १, पृ० ३३६

इसकी तर्जनी व अँगूठा के अग्रभाग मिले हैं। नीचे दक्षिण पार्श्व में अण्डित नन्दी तथा अन्य अनुचर और वामपार्श्व में मानवाकार स्थानक गरुड़ तथा आसनस्थ उपासक निरूपित है। पीठिका रहित हरिहर के प्रभामण्डल में दो आकाशगामी गन्धर्व प्रदर्शित हैं।

इसी शताब्दी की एक हरिहर-प्रतिमा जयपुर संग्रहालय में और अन्य मध्यकालीन रेहली (सागर) में मिली है।[1]

यह दिखाया जा चुका है कि गंग शासक शैव थे परन्तु बाद के वैष्णव ( पूर्व पृ०१०३)। परन्तु जिस प्रकार अनन्तवर्मन चोडगंग एक समय परमवैष्णव एवं परममाहेश्वर दोनों था, उसी प्रकार आगे के कई शासक भी अपने को दोनों का उपासक मानते थे। अंगभीम तृतीय ( १२११ - १२३८ ई० ) के जिस शिलालेख में उसे द्रक्षाराम के शिव मन्दिर को दान देने वाला कहा है, उसी में उसने स्वयं को एक साथ पुरुषोत्तम, रुद्र तथा दुर्गा-पुत्र अभिव्यक्त करते हुए परमवैष्णव एवं परम माहेश्वर घोषित किया है।[2] इसी के पुत्र नरसिंहदेव प्रथम के कपिलास शिलालेख में उसके द्वारा कैलास शिखरेश्वर-मन्दिर को दान देने का उल्लेख है और उसने पिता के समान स्वयं को पुरुषोत्तम (विष्णु) के चरणों का दास, परममाहेश्वर तथा जगज्जननी दुर्गा एवं पुरुषोत्तम का पुत्र कहा है।[3] इससे स्पष्ट होता है कि वह महेश्वर और उनकी शक्ति दुर्गा तथा पुरुषोत्तम जगन्नाथ दोनों का भक्त था।

अब हम दक्षिण भारतीय अभिलेखों को लेते हैं। श्रीहरिहराय नमः से प्रारम्भ दावणगेर के पच्चीसवें शिलालेख (१२२४ई०) में पहले हरिहर का काव्यमय स्तवन और फिर हरिहर के प्रसिद्ध हरिहर मन्दिर के निर्माण का विवरण है।[4]

---

१. इण्डियन आर्क्यालाजी : ए रिव्यू (१९५९ - ६० ), पृ० ७०

२. एपिग्रैफिया इण्डिका, भाग ३३ (१९५९-६०), पृ० ४३

३. वही, भाग ३३ (१९५९- ६० ), पृ० ४३,

४. एपिग्रैफिया कर्नाटिका, भाग ११, पृ० ३३

श्री ( अथवा विष ) एवं मोहिनी की महिमा के निवास, हाथ में चक्र ( अथवा नाग) धारी, पक्षिराज (गरुड़) अथवा राकापति (चन्द्रमा) से विभूषित, मनोकामनाओं के पूर्ण करने वाले ( अथवा काम का नाश करने वाले ), अर्जुन हेतु अनुराग से परि-पूर्ण (अथवा श्वेतकान्ति मण्डित ), गोपों ( अथवा वृषभ ) के प्रिय, कान्ति-मान् शुद्ध कमल नेत्र सम्पन्न ( अथवा नेत्रों के रूप में सूर्य-चन्द्र को धारण करने वाले ), आदिपुरुष परमेश्वर, देवों के चूड़ामणि (देवाधिदेव) हरिहर स्नेहपूर्वक सदैव विश्व की रक्षा करें । कुछ लोग हरि को सर्वोत्कृष्ट देवता मानते हैं और कुछ हर को । मनुष्यों के प्रस्तुत सन्देह का निराकरण करने के लिए उन्होंने कूड्लूर में हरि-हर का स्वरूप धारण किया । यशस्वी शिव ने विष्णु का और विष्णु ने शिव का महान् एवं प्रसिद्ध स्वरूप ग्रहण किया, जिससे वेदोक्त एकता-कथन की पूर्ण स्थापना हो सके । कूडल में संयुक्त स्वरूप में अवस्थित तथा संसार द्वारा स्तुत्य भगवान् हरि-हर विश्व की रक्षा करें । जो निराकार हरिहर प्रसिद्ध गुहारण्य में साकार रूप में अवस्थित हैं, जो निष्कलंक, अपरिवर्तनीय, अपार शान्ति एवं उल्लास सम्पन्न, अनादि, अनन्त, अखण्ड, प्रज्ञावान्, वाणी एवं इन्द्रियों से रहित, प्रमुख देवताओं के उपास्य हैं, वह विश्व की रक्षा करें । आगे हरिहर मन्दिर का वर्णन है । अभि-लेख के अनुसार पहले हम्पाडिराय हरिहर-मन्दिर बनवाना चाहता था, परन्तु स्वप्न हुआ कि तुम मेरे आवास (मन्दिर) का निर्माण स्थगित कर दो । आगे चलकर एक श्रद्धालु उत्पन्न होगा, जो मेरे मन्दिर का निर्माण करायेगा' और जब हरिहर ने चोल शासक नरसिंह देव के महामन्त्री पोलाल्व दण्डनाथ से मन्दिर बनवाने को कहा तो उसने शक संवत् ११४५ ( १२२३-१२२४ ई० ) में ११५ स्वर्ण कलशों से जाज्वल्यमान हरिहर मन्दिर को उस क्षेत्र में बनवाया जहां श्रुति के लिए अर्थ, स्मृति के लिए जीवन, मंत्र के लिए शक्ति और तन्त्र के लिए प्रमाण के समान १०४ ब्राह्मण निवास करते थे । प्रस्तुत हरिहर क्षेत्र या गुहारण्य के चार द्वारों पर लक्ष्मीनारायण, स्लेयल्लि, जिगले तथा हालेहालु नामक चार दानवल्ली हैं । यह मन्दिर पर्वत, सूर्य या चकाचौंध उत्पन्न कर देने वाले कलश के समान थी जिसे देखकर यह भ्रम होता था कि वह कमलों का आवास सूर्य है अथवा पुण्य सरोवर में कुमुदिनी । मन्दिर चारों ओर प्रसन्नमुख (मूर्तियों), कुमुदिनियों, स्निग्धस्तम्भों, अलंकृत शीर्ष शृंगों, तक्षण तथा घंटों से सुसज्जित था । शिलालेख के अन्त में पोलाल्व की सप्तपदी (श्लोक ? ) में

हरि चरित का रचयिता कहा है। हौब्बलकेरे के १०४ वें शिलालेख ( १२२८ ई० ) में हरिहर स्तवन और उनके सामन्त चट्टम् के दीर्घ-जीवन, ऐश्वर्य एवं विजय के लिए प्रार्थना की गई है।[१] माण्ड्य के १२१ वें तथा १२२ वें शिलालेखों ( क्रमश: १२३५ ई० और १२३७ ई० ) में हौयसल वीर नरसिंह राय के मन्त्री अड्डायद हरिहर उण्णायक को हरिहर-भक्त कहा है।[२]

हौयसल वीर सोमेश्वर देव के पूर्वजों ने तुङ्गयोनि के तट पर एक हरिहर मन्दिर का निर्माण कराया था, जो कालान्तर में नष्ट हो जाने पर केशवार्य ने उसका जीर्णोद्धार कराया।[३] चिक्कमगलूर के तीसवें शिलालेख ( १२४६ ई० ) के अनुसार बेट्टरस-दण्णायक ने समृद्धि-प्राप्ति के लिए प्रतापपुर के समस्त ब्राह्मणों की उपस्थिति में अन्य चार मठों के साथ हरिहर मठ को भी नि:शुल्क सम्पत्ति प्रदान की[४]। दावणगेरे में प्राप्त १२५४ ई० से १२६७ ई० तक के छ: शिलालेखों में हरिहर के दीप, माल और दैनिक नैवेद्य के लिए दान देने के वर्णन हैं। छप्पनवें शिलालेख में माला तुलसी की बताई है।[५] वहीं के छत्तीसवें शिलालेख (१२६८ ई०) के प्रारम्भ में सोम ने हरिहर को वेदोक्त वैकुण्ठ एवं नीलकण्ठ की अद्वैतता के प्रतिपादन हेतु जगत सुख के रूप में अवतीर्ण, संसार के कर्ता, धर्ता एवं हर्ता, पार्श्व में मानवीय करों में मोक्ष की अक्षय लक्ष्मी युक्त, श्री एवं गौरी के जीवन, सर्पों तथा चन्द्रकला से विभूषित, अभिन्न , . < < < < महत् सत्ता, श्वेत एवं श्याम वर्ण मानते हुए स्वयं को उनके चरण कमलों का भ्रमर और दास कहा है। सोम ने हरिहरनाथ मन्दिर के सामने स्वर्णकलशों से सुसज्जित, विस्तृत एवं आकर्षक पंचखंड के तोरण (द्वार) तथा सोमनाथपुर में जिन विभिन्न मन्दिरों का निर्माण कराया, उनमें नरसिंहेश्वर (नरसिंह + ईश्वर = हरिहर) का मन्दिर भी था।[६] १२७२ ई० और १२७७ ई० के

---

१. वही, भाग ११, पृ० १३०

२. वही, भाग ३, पृ० ५३, ५४

३. वही भाग ३, पृ० ८८, तिरुमकूड्लु-नरसीपूर का १०३ वां शिलालेख, १२३६ ई०

४. वही, भाग ६, पृ० ३७

५. वही, भाग ११, ५०, ५७, ५५, ५६, ४८ तथा ५२ वें शिलालेखों का समय क्रमश: १२५४, १२५५, १२५६, १२६२, १२६३ और १२६७ ई० है।

६. वही, भाग ११, पृ० ४४

दो शिलालेखों में चौड वेग्गेड के पुत्र बीरय्य द्वारा भगवान् हरिहर के निरन्तर प्रकाश एवं वन्यपुष्पों की माला के लिए ४ ग देने का उल्लेख है[1] और हगर के १३४ वें शिलालेख ( १२७५ ई० ) में बताया है कि नरसिंहदेव से युद्ध करते हुए वीर साळणा-मय्य को भगवान् हरिहर के दिव्य चरणकमलों का सान्निध्य ( हरिहर लोक) प्राप्त हुआ ।[2] हरिहराय नमः से प्रारम्भ चिन्नगिरि के दूसरे शिलालेख ( १२७७ ई० ) में रामचन्द्र राय के राज्यकाल में राय राजगुरु रेणुक देव द्वारा भगवान् हरिहर को दान देने का वर्णन है ।[3] ऐसा ही दान रवियन्नर-उळय ने भी किया था ।[4] दावणगेर का उन्नठवां शिलालेख (१२८० ई० ) श्री हरिहरायनमः से प्रारम्भ होता है, जिसमें वाराह रूप विष्णु के पश्चात् हरिहर का काव्यमय स्तवन है - वह हरिहर जिन्होंने आदिवाराह के रूप में पृथ्वी का उद्धार किया था, ^ ^ ^ ^ शुभ कार्य की सदैव रक्षा करें । उद्धार के समय पृथ्वी नीलकमल सदृश लगती थी क्योंकि वाराह का दन्त कमल-दण्ड था, क्षितिज केसर, नक्षत्र पंखुड़ी, मेघ उस पर मधुपान रत भ्रमर, स्वर्णपर्वत उसकी स्वर्णकेसर और कच्छप उसका बीजकोष था । शिलालेख से ज्ञात होता है कि कुरु, काशी-वाराणसी, हिमगिरि, गया, गोदावरी और श्रीनग (श्रीपर्वत) में भी हरिहर का निवास था । यहाँ हरिहर अग्रहार की प्रसिद्धि का कारण यह दिया है कि जब महादेव राय का सेनापति सालेय तिक्कम देव दक्षिणा विजय को आया तो उसने भगवान् हरिशंकर ( हरिहर) पर शंख से जल समर्पित करके समस्त करों को समाप्त कर दिया ।[5] यहीं के उन्चालीसवें शिलालेख ( १२८० ई० ) में भी हरिहर को १० ग धन-राशि अर्पित करने का वर्णन है, जिसका वार्षिक व्याज इस व्यय किया जा सके ।[6]

दावणगेर के शिलालेख में पौलाल्व द्वारा जिस हरिहर मन्दिर के निर्माण

---

१. वही, भाग ११, पृ० ५८

२. वही, भाग ८, पृ० २२५

३. वही, भाग ७, पृ० १७६

~~४. आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, भाग ४२ (न्यू इम्पीरियल सीरीज), पृ० ६३~~

४. वही, भाग ६, पृ० १०३, तारीकैर का पांचवां शिलालेख (१२७६ ई०)

५. वही, भाग ११, पृ० ५६

६. वही, भाग ११, पृ० ५८

का वर्णन है, वह तुंगभद्रा के दक्षिण तट पर स्थित हरिहर नगर ( जि० चित्रदुर्ग) में नदी तट पर है। आकार एवं सामान्य रचना की दृष्टि से यह हान्गल के तारकेश्वर मन्दिर की अनुकृति है। दुर्भाग्यवश मौलिक शिखर नष्ट हो जाने पर उसे ईंट और गारे से बना दिया है। मण्डप में प्रदर्शित अष्टदिक्पालों के मध्य मूलत: हरिहर की मूर्ति थी, जिसे अब मन्दिर के पीछे एक गौण देवस्थान पर प्रतिष्ठापित कर दिया गया है।[1] चिकने काले पत्थरों से निर्मित 'कमलाकार' मन्दिर ६४ खम्भों पर अवस्थित है। मन्दिर के ईशान भाग में एक विशाल शिवलिंग के सामने नंदी की वृषभाकार मूर्ति है और पार्श्व में कालभैरव का मन्दिर, जिसमें वह हरिहर और काशी को तौलते हुए हरिहर को बड़ा बताते हैं। प्रतिवर्ष माघ शुक्ल पूर्णिमा को यहां विशाल मेला भी लगता है।[2]

मन्दिर के गर्भगृह में हरिहर की चतुर्भुजी मूर्ति है, जिसका एक दक्षिण कर अभयमुद्रा में है और शेष में त्रिशूल तथा चक्र व शंख। कण्ठहार, यज्ञोपवीत, मेखला, कटिबन्ध आदि धारण किए हरिहर के सिर पर किरीटमुकुट एवं जटामुकुट है। मूर्ति नीचे घुटनों तक ही बनी है[2] और उसके दोनों पार्श्वों में दो अन्य लघु स्थानक आकृतियां हैं।

बैजनाथ मूर्ति वीथिका के हरिहर पद्मासन पर खड़े हैं। उनके दक्षिण कर में त्रिशूल और वामकर में चक्र हैं। शेष दो भुजाएं नष्ट हो गई हैं। हरिहर के दोनों पार्श्वों में खड़ी दो-दो स्त्री नारी आकृतियों में एक-एक लक्ष्मी और पार्वती की तथा अन्य उनकी परिचारिकाओं अथवा उपासिकाओं की हो सकती है। हर पार्श्व में ऊर्ध्वमुखी वृषभ और हरि पार्श्व में हाथ जोड़े मानवाकार गरुड़ घुटनों के बल बैठा है। हरिहर के आयुधों के ऊपर,शिरश्चक्र में अंशत: समाश्रित दो मालाधारी गन्धर्वयुगल आकाश में उड़ रहे हैं।[3]

---

१, आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया,भाग ४२ (न्यू इम्पीरियल सीरीज, पृ० ६३

~~२, धर्मयुग~~

२, ऐन्युल रिपोर्ट आफ दि मैसूर आर्क्यालाजिकल डिपार्टमैन्ट,१९३७

३, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की छायाचित्र सं० १४७२।६६

दक्षिण में सोमनाथपुर के प्रसिद्ध केशव-मन्दिर की भित्ति में भी एक हरिहर-प्रतिमा है[1] और एक-एक मूर्ति कुन्नकुडि (मन्दिर सं० ३) तथा पिल्लयिर्पट्टि के पाण्ड्य गुहामन्दिरों में है ।[2]

भारतीयों ने ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से पूर्वी द्वीपों में अपने उपनिवेश स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था । इनमें अधिकांश राजा शैव थे और उन्होंने शैवधर्म को राजधर्म स्वीकार किया था । चम्पा के नब्बे प्रतिशत लेखों में शिव की उपासना का उल्लेख मिलता है । इतने पर भी यह राजा असहिष्णु नहीं थे । उनके द्वारा शैव धर्म के साथ बौद्ध और वैष्णव धर्मों के लिए दान देने के उल्लेख मिलते हैं । यही नहीं वहां हरिहर की संयुक्त मूर्तियों की स्थापना तथा उनके लिए दान आदि का भी वर्णन मिलता है । यह लिखना रोचक होगा कि वहां शिव के साथ बुद्ध का भी समन्वय हुआ है । दशावतारों की भारतीय सूची में बुद्ध भी सम्मिलित किए जाते हैं इस दृष्टि से यह भी हरिहर मूर्तियां कही जा सकती हैं । बृहत्तर भारत में हरिहर की स्थिति पर परिशिष्ट में किंचित् विस्तार से विचार किया जायेगा ।

---

---

१. मैसूर पुरातत्व के निदेशक, एम०शेषाद्रि, का दि० ८ मई, १९६६ का पत्र ।

२. डा० एस०टी० सत्यमूर्ति का २४ जून, ६७ का पत्र ।

अध्याय - 4

हरिहर-उपासना की परम्परा के सन्दर्भ में

## मध्यकालीन धार्मिक चेतना तथा विविध सम्प्रदाय

समन्वय के मूल में सहिष्णुता ही नहीं विद्वेष भी निहित रहता है । द्वितीय अध्याय में पुराणों का विश्लेषण करते हुए यह दिखाया जा चुका है कि इस काल में जहाँ सहिष्णुता की भावना अधिक है, विद्वेष का भी नितान्त अभाव नहीं । प्रस्तुत अध्याय में देश के विविध शैव, वैष्णव सम्प्रदायों के परिप्रेक्ष्य में इसका अध्ययन अपेक्षित है । जहाँ तक प्रमुख सम्प्रदायों का प्रश्न है, वह या तो दूसरों के प्रति निरपेक्षता की वृत्ति रखते हैं अथवा सहिष्णुता की भावना । तथापि सदैव ऐसा ही नहीं मिलता है । एक सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा अन्य सम्प्रदाय के अनुयायियों को स्वधर्म में खींचने का प्रयास और इसके लिये यातनायें तक देने के प्रसंग मध्यकालीन साहित्य में प्रायः प्राप्त हो जाते हैं । कभी-कभी सम्प्रदाय-परिवर्तन और उसके बाद पूर्व-सम्प्रदाय की आलोचना तथा नवीन का प्रचार-प्रसार करने की प्रवृत्ति भी मिलती है। तिरुमलिशै (भक्तिसार) की गणना प्राचीन आलवारों में होती है । यह प्रारम्भ में कट्टर शैव थे और इनका नाम शिववाक्य था । शैवधर्म का प्रचार करने के अतिरिक्त इन्होंने शैवग्रन्थ भी रचे थे, परन्तु पेय (महायोगिन् या भ्रान्तियोगिन्) आलवार से पराजित होकर यह वैष्णव हो गये और तब शैव धर्म की आलोचना करते हुए इन्होंने कहा है कि शैव निर्दोष अज्ञानी हैं और विष्णु की पूजा न करने वाले निम्न श्रेणी के हैं[1] । एक जनश्रुति के अनुसार तिरुमंगै (परकाल) आलवार ने प्रसिद्ध शैव-सन्त तिरुज्ञान सबन्धर को शास्त्रार्थ में पराजित किया था । वैष्णव आचार्य रामानुज के अन्तिम वर्षों में एक चोल शासक ने उन्हें वैष्णव धर्म त्याग कर शैव धर्म स्वीकार कराने की चेष्टा की थी । इसके लिये रामानुज को यातनायें भी दी गईं, जिनसे विवश होकर उन्होंने 1096 ई० में होयसल राजाओं की शरण ली[2] । सवाई जयसिंह के शासन काल में वैष्णव तथा शैव आदि अवैष्णवों के संघर्ष ने उग्र रूप धारण कर रखा था । अवध और

1- डा० मलिक मोहम्मद, आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य, पृ० 102,
2- वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० 59,

उसके निकटवर्ती पूर्वी क्षेत्रों में, जहाँ वैष्णव साधुओं की अपेक्षा शैव साधुओं का जोर अधिक था, उनके धार्मिक विद्वेष ने अत्यन्त भयावह रूप धारण कर लिया था[1]। प्रेमलता कृत 'बृहत् उपासना रहस्य' तथा महात्मा रामप्रसाद के जीवन वृत्त 'श्री महाराज चरित्र' में इसका विस्तृत उल्लेख है[2]। ऐसे अनेक अवसर आये, जब शैव साधुओं का वैष्णव अखाड़ों के वैरागी भक्तों से दुर्भाग्य पूर्ण सशस्त्र संघर्ष हुआ था। सम्राट जहाँगीर ने तो उज्जैन निवासी शैव तान्त्रिक जदरूप के वैष्णव विरोधी विचारों से प्रभावित होकर वैष्णवों की कंठी माला और उनके तिलक पर रोक लगा दी थी[3]। मथुरा : ए डिस्ट्रिक्ट मेम्वायर में ग्राउज़ ने लिखा है कि (19वीं शती विक्रमी में) रंगदेशिक स्वामी के समय में जयपुर राज्य के शैव पंडितों ने वैष्णव धर्म पर आक्षेप करते हुए आठ प्रश्नों की एक पुस्तिका प्रकाशित की थी। जयपुर नरेश के आग्रह से रंगदेशिक स्वामी ने भी उसके उत्तर में 'दुर्जन करि पंचानन' नामक एक पुस्तिका का प्रकाशन किया था। परन्तु जब जयपुर नरेश को इससे सन्तोष नहीं हुआ, तब उन्होंने 'सज्जन मनोरंजन' नामक एक समाधान कारक पुस्तिका के साथ ही साथ दूसरी अधिक विद्वतापूर्ण पुस्तक 'व्यामोह विद्रावनम्' प्रकाशित की थी। इसमें अनेक शास्त्रोक्त प्रमाणों से वैष्णव सिद्धान्तों का समर्थन और शैव पंडितों के मत का खंडन किया गया है[4]।

<u>सम्प्रदाय-</u>

जहाँ तक सम्प्रदायगतविद्वेष का प्रश्न है, वैष्णव सम्प्रदायों में अन्य देवता का निषेध सिद्धान्तों में सम्मिलित हो, ऐसा कम ही मिलता है। परन्तु असम का <u>महापुरुषिया सम्प्रदाय</u> इसी अपवाद में आता है। भागवत के ही भक्ति - सिद्धान्तों पर विकसित इस सम्प्रदाय का दीक्षा मन्त्र तो है -'शरणं में जगन्नाथ श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम' और इस सम्प्रदाय के अनुयायी कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म मानते हैं परन्तु उनके अतिरिक्त किसी अन्य के पूजन का

1- प्रभुदयाल मीतल, ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ0 208,

2- लछमी गिरि बक भयउ गोसाईं। प्रभु पद विमुख कंस की नाईं ।।
लै सहाय बहु यती गोसाईं। बहुवैस्नव मारेउ बरियाईं ।।
शस्त्र लिये धावत जग डोलैं। मारहिं निदरि बचन कटु बोलैं।।
उमगेउ खल जिमि नदी तलावा। वैस्नव धर्महिं चहत उड़ावा ।।

/ / /

जहँ वैराग वेष कहुँ पावहिं। ताहि भाँति बहु त्रास देखावहिं ।।
तिनके डर सब लोग डेराने। जँह तँह बैठि यकंत लुकाने ।।
बदलि वेष निज छाप छिपाई। कोउ निज भाँति न देहि देखाई ।।
—दे0 रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ0 119-120,

3- ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ0 283,

4- वही, पृ0 570,

सदैव निषेध करते हैं । इसी प्रकार सनक सम्प्रदाय के संस्थापक निम्बार्क ने सिद्धान्तरत्न नामक दशश्लोकी के आठवें श्लोक में कहा है कि कृष्ण के चरण कमल के अतिरिक्त मुक्ति का दूसरा मार्ग नहीं दिखाई पड़ता । शिव आदि उनकी वन्दना किया करते हैं । यहाँ शिव का पूर्ण निषेध तो नहीं, पर उन्हें विष्णु से निम्न अवश्य माना है ।

महामहोपाध्याय डा० उमेश मिश्र ने शक्ति संगम तन्त्र (1-8) के आधार पर कुछ ऐसे वैष्णव सम्प्रदायों का उल्लेख किया है जिनमें सहिष्णुता का बहिष्कार तथा शैव विद्वेष का अस्तित्व मिलता है[1]। गोकुलेश सम्प्रदाय के लोग ऊपर से कृष्णोपासक लगते हैं, परन्तु यथार्थता शाक्त होते हैं । ये स्मार्त तथा वैष्णव के लौकिक कलह में लगे रहते हैं और शिव तथा विष्णु के ऐक्य भाव को स्वीकार नहीं करते हैं । वीर वैष्णव केवल विष्णु के भक्त होते हैं और अन्य सब देवताओं की निन्दा करते हैं । पांचरात्र शिव के अतिरिक्त विष्णु की भी निन्दा करते हैं और भागवत शिव के यहाँ तक विद्वेषी होते है कि भूल से भी शैव से संसर्ग हो जाये तो तुरन्त स्नान करते हैं ।

इस वैमनस्य अथवा वैषम्य के प्रतिक्रिया स्वरूप अथवा सम्प्रदाय-परिवर्तन के कारण ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं, जहाँ वैष्णव सम्प्रदायों में शैव प्रभाव गहरे तक जड़ जमाये है । कुछ वैष्णव सम्प्रदाय सगुण- उपासना की अपेक्षा निर्गुण-उपासना को अधिक महत्व देते हैं । ये लोग स्वभावतः वेदान्त और विशेषकर अद्वैत वाद के अनुयायी हैं तथा ग्रन्थों के अर्थ निर्गुणोपासनापरक लगाया करते हैं । इनकी एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि यह बहुत सीमा तक नाथ मत से प्रभावित हैं । इस कारण इनकी उपासना पद्धति में काया साधन, तान्त्रिक कार्यक्रम एवं शून्यवाद के प्रभाव लक्षित होते हैं[2] । महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री को नेपाल यात्रा में प्राप्त जो दोहे तथा चर्यापद बौद्धगान ओ दोहा में संग्रहीत हैं, उनके विश्लेषण से कुछ विद्वानों ने यह स्थापना की है कि बंगला तथा कुछ अन्य भाषाओं के वैष्णव साहित्य पर सिद्धों एवं नाथों के साहित्य का प्रभाव निश्चित है[3]। पन्द्रहवीं शती ई० तक उड़ीसा में विष्णु के विभिन्न अवतारों की पूजा प्रारम्भ हो गई थी और उनके मन्दिर भी बन गये थे तथापि किसी-न-किसी रूप में शैव धर्म का अस्तित्व अवशिष्ट रहने से वैष्णवधर्म क्रमशः रूपान्तरित होता रहा । पुरी के जगन्नाथ या पुरुषोत्तम की मूर्ति के प्राचीन इतिहास से

1- भारतीय दर्शन, पृ० 396-398,
2- परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म, पृ० 115,
3- आचार्य विनय मोहन शर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद् के पूना अधिवेशन का भाषण, पृ० 5,

ज्ञात होता है कि उनकी पूजन पद्धति पर शैव तथा तान्त्रिक प्रणालियों का प्रभाव कम नहीं है[1] । बंगाल आदि पूर्वी प्रदेशों के बहुत से शैवों द्वारा वैष्णव धर्म अधिग्रहण करते समय[2] शैव तत्व को लिये आना अस्वाभाविक नहीं है । हठयोग के सम्बन्ध में भी भारत के कुछ प्रदेशों में शैव तथा वैष्णव एक समान हैं । घेरंड संहिता हठयोग का एक मान्य ग्रन्थ है । इसके रचनाकार घेरंड बंगाल के वैष्णव थे, परन्तु नाथ पंथियों में भी यह ग्रन्थ समान रूप से मान्य है[3] । महाराष्ट्र के सन्त कवियों द्वारा शैव तथा वैष्णव दोनों सम्प्रदायों के समन्वय का विश्लेषण आगे विस्तार से किया जायेगा । परन्तु यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि उत्तर मध्यकाल में कृष्ण की ब्रज भूमि में ही वैष्णवों ने शिव को 'परम भागवत' मान लिया था और राधा कृष्ण के अनन्य उपासकों के अतिरिक्त सामान्य जनता कृष्ण की उपासना के साथ-ही-साथ शिव की पूजा-उपासना भी करती थी[4] ।

दक्षिण के आलवार विष्णु के अनन्य उपासक थे, परन्तु अपने उपास्य को सर्व-व्यापक मानते हुए एक आलवार पूछता है कि हे मेरे प्रियतम ! मैं तुम्हें विष्णु रूप में पूजूँ या शिव रूप में ? मेरे ब्रह्म तुम कहाँ नहीं हो ? सारी सृष्टि तो तुम्हारी ही रचना है[5] । जयदेव के समकालीन बिल्वमंगल ने 'कृष्ण कर्णामृत' में राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का माधुर्य भक्ति पूर्ण गायन किया है, तथापि इसी रचना में वे स्वयं को पंचाक्षरी का जप करने वाला शैव बताते हैं[6] । उत्तर भारत के प्रसिद्ध सन्त चरणदास कृष्ण के भक्त थे, परन्तु उनका योगी रूप शैव प्रभाव का परिचायक है । महाराष्ट्र के बहुत से कवियों ने या तो हरिहर के समन्वित स्वरूप का स्तवन किया है अथवा एक ही कवि ने शिव और विष्णु दोनों की स्तुति की है । जहाँ मानपुरी ( समाधि तिथि ज्येष्ठ शुक्ल[5], शक सं० 1652 ) 'निशिदिन' 'गोपाला' का ध्यान करते हैं, वहीं वह उद्बोधित करते हैं कि 'भज मन शंकर भोलानाथ'[7] । रामराय भी हरिहर नाम को जपनीय बताते हुए शिव और विष्णु की तुलना करते हैं कि यदि एक मृगछाला धारण किये है तो दूसरा मुक्तामाला । एक का वाद्य तुरही है तो दूसरे के अधरों पर बंसी है । यदि शिव नीलकंठ हैं तो विष्णु पीताम्बर धारी । एक जटा धारण

1- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, वैष्णव धर्म, पृ० 123,
2- डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, नाथ और संत साहित्य, पृ० 93 ,
3- डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, वही, 5069 ,
4- प्रभुदयाल मीतल, वही, पृ० 495,
5- आचार्य विनयमोहन शर्मा, भा०हि०प० के पूना अधिवेशन का अध्यक्षीय भाषण, पृ० 3 ,
6- शैवावयं न खलु विचारणीयं; पंचाक्षरीजपपरा नितरां तथापि ।
चेतो मदीयमतसी कुसुमावभासं, स्मेराननं स्मरति गोपवधू किशोरम् ॥
—कृष्ण कर्णामृत, 2/24 ,
7- आचार्य विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, भूमिका, पृ० न ,

करते हैं तो अन्य मुकुट । एक के पास शिवलोक है तो दूसरे के पास विष्णुलोक । रामराय कहते हैं कि हरिहर ( के उस समन्वित रूप ) की शरण जाइये, जिसमें से गंगा किसी के सिर पर रहती है और किसी के चरण पर[1]।

शैवों तथा वैष्णवों की इस सहिष्णु तथा विद्वेषात्मक प्रवृत्ति पर किंचित् प्रकाश डालने के पश्चात् उन विविध वैष्णव सम्प्रदायों का क्रमिक अध्ययन उपयोगी होगा, जिन पर किसी - न - किसी रूप में शैव प्रभाव परिलक्षित होता है । इन सम्प्रदायों का विवेचन उन पर शैव-धर्म के प्रभाव की अधिकता के क्रम से किया जा रहा है । ऐसे सम्प्रदायों में सबसे पहले विष्णुस्वामी सम्प्रदाय का नाम लिया जा सकता है, जिसके उपास्य विष्णु के अवतार नृसिंह हैं । जिन्हें विष्णु का रूद्ररूप भी कहा जाता है । जहाँ तक मैं समझता हूँ नृसिंहोपासना एकमात्र इसी सम्प्रदाय में प्रचलित है, यों नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद् में भी नृसिंह को ब्रह्म कहा गया है । आश्चर्य यह है कि रूद्र सम्प्रदाय नाम होते हुए भी इसमें नृसिंह को शिव - विरोधी रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है । यद्यपि पुराणों में शिव के शरभ रूप के द्वारा नृसिंह के वध का वर्णन मिलता है, जिसका सन्दर्भ पूर्व अध्याय में दिया जा चुका है । इस पृष्ठभूमि में नृसिंह उपासक शिव-विरोधी हो सकते थे । एक अन्य दृष्टि से यह सम्प्रदाय भगवान् रूद्र को अपना प्रवर्तक (आद्याचार्य) मानकर शैवों और वैष्णवों में समन्वय स्थापित करता है । ऐसा माना जाता है कि सर्वप्रथम रूद्र ने ही इसका उपदेश बालखिल्य ऋषियों को दिया था और कालान्तर मे वही ज्ञान विष्णुस्वामी को प्राप्त हुआ[2] । इस प्रकार प्रथम उपदेशक के नाम पर इसे रूद्र सम्प्रदाय भी कहा जाता है ।

ब्रह्म सम्प्रदाय -

इस सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार विष्णु ही सर्वोच्च तत्व हैं, जो सर्वज्ञत्व, अनन्तशक्ति आदि अपरिमित अप्राकृत गुणों का निधान हैं । सम्प्रदाय के अनुयायी अपने शरीर पर शंख, चक्र आदि वैष्णव प्रतीक ही नहीं अंकित कराते, अपनी सन्तानों का नाम भी वैष्णव रखते हैं । विष्णु के प्रति इतनी अनन्यता होते हुये भी सम्प्रदाय की समन्वयात्मक प्रवृत्ति इस बात में देखी जा सकती है कि वहाँ शैव सम्प्रदाय वालों के प्रति समान भाव रखा जाता है[3] ।

---

1- वही, भूमिका, पृ0 ब ,

2- ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ0 151 , 3- वैष्णव धर्म, पृ0 90 ,

~~3- आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ गोरखनाथ गहिनीनाथ निवृत्तिनाथ ज्ञानदेव या ज्ञाननाथ भागवत सम्प्रदाय, पृ0 576 , हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृ0 63 ,~~

महानुभाव सम्प्रदाय--

जिस समय महाराष्ट्र में नाथ मत वारकरी सम्प्रदाय में विलीन हो रहा था, उसी समय महानुभाव सम्प्रदाय प्रादुर्भूत हो रहा था। चक्रधर द्वारा प्रवर्तित इस सम्प्रदाय का विकास उत्तर भारत और काबुल तक हुआ है। महानुभाव सम्प्रदाय में कृष्ण-भक्ति को अपनाया गया है। साथ ही श्रीकृष्ण, दत्तात्रेय, द्वारावती के चांगदेव राउल, ऋद्धिपुर के गुंडम राउल और चक्रधर कृष्ण के पंचावतार माने जाते हैं।

सम्प्रदाय के विकास-काल तक महाराष्ट्र में नाथ पंथ पूर्णतः लुप्त नहीं हुआ था। इसलिये महानुभाव पंथ का उससे प्रभावित होना अस्वाभाविक नहीं है और सम्प्रदाय का ज्ञान तत्व नाथों की देन है। इसी प्रकार इस मत में नैतिक चरित्र की महत्ता तथा जाति-पाँति के बहिष्कार पर भी नाथ-प्रभाव परिलक्षित होता है। आचार्य विनयमोहन शर्मा इस पर लिंगायत मत का प्रत्यक्ष प्रभाव न पाते हुये भी दोनों में कुछ आकस्मिक साम्य अवश्य पाते हैं, जैसे - लिंगायत मत में शिव के पंचवक्त्रों के रूप पंचाचार्य की महिमा है और इसमें पाँच कृष्णों का मान है। सामाजिक विषमता दोनों को अमान्य है। इसी प्रकार दोनों सम्प्रदायों में शव की भूमि-समाधि की जाती है[1]।

वारकरी सम्प्रदाय --

यह महाराष्ट्र का एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय है, जिसके उपास्यदेव पंढरपुर के विट्ठलदेव हैं। विट्ठल का एक अन्य नाम पाण्डुरंग है और हेमचन्द्र के अनुसार पण्डरंग या पण्डुरंग शिव को भी कहते हैं[2]। ऐसा माना जाता है कि वारकरी सम्प्रदाय की स्थापना ज्ञानेश्वर ने की थी, परन्तु ज्ञानेश्वर के समकालीन नामदेव कहते हैं कि इस पंथ में हमसे पहले भी अनेक भक्त हो चुके हैं (पूर्वी अनंत झाले)। हाँ इतना स्वीकार किया जा सकता है कि उन्होंने सम्प्रदाय को व्यवस्थित किया हो। ज्ञानेश्वर को ज्ञानदेव और ज्ञाननाथ भी कहा जाता है तथा उनकी गुरु परम्परा नाथों से प्रारम्भ होती है[3]। परन्तु वह अन्त तक नाथ न रहकर वारकरी मत में भागवत मत के पोषक बन गये।

विट्ठल की प्रतिमा के हाथों में चक्र और पद्म चिह्न होने के कारण उन्हें विष्णु - विग्रह माना जाता है। एक आख्यान के अनुसार विट्ठल कृष्ण के बाल स्वरूप हैं,

1- हिन्दी को मराठी सन्तों की देन- पृ0 69,
2- देशीनाम माला, 6/23,
3- आदिनाथ-मच्छिन्द्रनाथ > गोरखनाथ > गहिनीनाथ > निवृत्तिनाथ > ज्ञानदेव या ज्ञाननाथ - — भागवत सम्प्रदाय, पृ0 576, हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृ0 63,

जो अपने भक्त पुंडलीक को वर देने के लिये पंढरपुर आये थे और उसी के संकेत पर वीट (ईंट) पर खड़े हो गये तथा आज तक उसी रूप में खड़े हैं । तुकाराम ने विट्ठल का स्मरण इसी रूप में किया है [1] और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार पण्ढरपुर के विट्ठल विष्णु ही हैं[2]। इतना होते हुए भी प्रतिमा की एक प्रमुख विशेषता है उसके मस्तक पर शिवलिंग की विद्यमानता, जिसकी ओर शंकराचार्य कृत पाण्डुरंगाष्टक में भी संकेत किया गया है[3]। शिवलिंग होने का समर्थन स्वयं ज्ञानेश्वर भी करते हैं [4]। इसी प्रकार निवृत्तिनाथ तथा उनके परवर्ती रामदास की रचनाओं के आधार पर भी विट्ठल के सिर पर शिवलिंग होने की पुष्टि की जाती है[5]। सम्प्रदाय प्रदीप में पण्ढरपुर में विट्ठलनाथ का मन्दिर बतायागया है[6]। यहाँ विट्ठल के साथ नाथ शब्द लगाना शैव प्रभाव का द्योतक है ।

जिस समय वारकरी सम्प्रदाय का विकास हो रहा था, महाराष्ट्रीनाथ पंथ लुप्त होने लगा । इस लोप का एक कारण नाथ पंथियों द्वारा बाह्याचार पर अधिक बल देने से उत्पन्न साम्प्रदायिक विकृति मानी जाती है, तो आचार्य विनयमोहन शर्मा ने इसके न पनपने का मूल कारण इसका ज्ञानमार्गी होकर बिन्दुरक्षा पर अत्यधिक आग्रह बताया है[7]। इनके अतिरिक्त नाथपंथके लोप का एक कारण यह भी था कि महाराष्ट्र में इसका प्रचलन होते समय वारकरी सम्प्रदाय प्रभावशाली थी । इस लोप का परिणाम यह हुआ कि

1- सावळें रूपडें चोरटें चित्ता चें, उभें पंढरीचे विटेवरी ।

× × ×

चित्त मोहियेलें नंदाच्या नंदनें, तुकाम्हणे येणें गरूडध्वजें ।

"हे सांवलिया, तूने अपनी सांवली सूरत से मेरे चित्त को चुरा लिया है । तू पण्ढरपुर में ईंट के ऊपर खड़ा हुआ है । तुका राम कहते हैं कि नन्द के दुलारे ने मेरे चित्त को चुरा लिया है । वह गरूड़ पर चढ़ने वाला नारायण है ।

—भागवत धर्म, पृ0 46 ,

2- देखिये- पृ0 452 - 457

3- महायोगपीठे तटे भीमरथ्यां
वरं पुण्डरीकाय दातुं मुनीन्द्रैः ।
समागत्य तिष्ठन्तमानन्दकन्दं
परब्रह्मलिंगं भजे पाण्डुरंगम् ॥- भागवत सम्प्रदाय, पृ0 569 ,

4- ज्ञानेश्वरी, अ012, पद्य 214-218 ,

5- नाथ और सन्त साहित्य, पृ0 90 ,

6- देखिये - तृतीय प्रकरण, पृ0 69 ,

7- हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृ0 64 ,

नाथ मत का नाश न होकर वारकरी सम्प्रदाय में विलयन हो गया और ऐसी स्थिति में वारकरी सम्प्रदाय में नाथ मत की विशेषतायें आ जाना स्वाभाविक ही था । संभवतः इसीलिये कृष्णभक्तिमूलक होने पर भी इसकी सम्प्रदायगत योग-साधना में शिव को प्रधानता दी जाती है[1]।

वारी का अर्थ है-यात्रा और वारकरी का अर्थ-यात्रा करने वाला । सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार विट्ठल के उपासक को आषाढ़ तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को नियमित रूप से पंढरपुर कीयात्रा करके विट्ठल मूर्ति के दर्शन करने होते हैं । यह धर्मयात्रा अन्य एकादशियों को भी की जा सकती है । परन्तु इस यात्रा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि विट्ठलदेव के मन्दिर में आने से पूर्व यात्री वहाँ के शिव मन्दिर का दर्शन करते हैं[2] । शिव के प्रति इस समान भाव के कारण ही सम्प्रदाय में रामनवमी तथा गोकुलाष्टमी के साथ-साथ महाशिवरात्रि भी मान्य है । डा० श्यामसुन्दर शुक्ल की तो धारणा है कि वारकरी सम्प्रदाय में नाथ योगियों का योग, कश्मीरी शैव मत का ज्ञान तथा वैष्णव भक्ति तिलतंडुलवत् अन्तर्भुक्त है[3]। इसी प्रकार डा० आर०डी० रानाडे ज्ञानेश्वर के 'अमृतानुभव' पर शिव सूत्रों का स्पष्ट प्रभाव पाते हैं[4]।

सम्प्रदाय के प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वारकरी वैष्णव सम्प्रदाय होते हुये भी नाथ मत अथवा शैव धर्म से प्रभावित है, जिसके अन्तर्गत, शिव और विष्णु में अभेद दिखाने के लिए, विष्णु के मस्तक पर शिवलिंग की स्थापना हुई है । तुकाराम का तो कहना है कि भक्ति करने के लिये ही हरिहर हैं । उनमें परस्पर कुछ भी भेद नहीं है, व्यर्थ के विवाद में मत पड़ो । वे दोनों एक दूसरे के हृदय में ठीक उसी प्रकार निवास करते हैं, जैसे चीनी में मिठास । भेद केवल नाममात्र की बात है । वाम और दक्षिण दोनों शरीर के अंग होते हैं[5]।

1- वैष्णव धर्म, पृ० 120
2- वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ०100 तथा नाथ और सन्त साहित्य, पृ० 89
3- हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति, पृ० 211
4- नाथ और सन्त साहित्य, पृ० 90
5- मराठी-हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 89 पर उद्धृत्

हरिहरांभेद, नाहीं करूं नये वाद ।
एक एकाचे हृदयी, गोडी साखरेच्या ठायीं ।
भेदकासीनाऊ, एक वेलांटीच आड ।
उजवे वाम भाग, तुका म्हणे एकचि अंग ।।

यहाँ स्पष्ट है कि तुकाराम हरिहर के उसी समन्वित स्वरूप की ओर संकेत कर रहे हैं, जिसके एक पार्श्व में शिव और दूसरे पार्श्व में विष्णु रहते हैं ।

रामानन्दी सम्प्रदाय –

शक्तिसंगमतन्त्र के अनुसार 'रा' से शक्ति और 'म' से शिव का अभिप्राय लेते हुए रामानन्दी लोग इन दोनों के सामरस्य युक्त आनन्द में मग्न रहते हैं(·)। इस की एक शाखा को योग की प्रमुखता के आधार पर अवधूत मार्गी शाखा भी कहा जाता है। अखाड़ों के नागा प्रायः इसी शाखा के अन्तर्गत आते हैं। इसी का अन्य नाम तपसी शाखा भी है। इस शाखा की प्रमुख गादी गलता में स्थापित हुई थी, जिसकी शिष्य-परम्परा इस प्रकार है –

रामानन्द
↓
अनन्तानन्द
↓
कृष्णदास पयहारी
↓
कील्हदास

नाभाजी कृत 'भक्तमाल' तथा 'रसिक प्रकाश भक्तमाल' से ज्ञात होता है कि गलता में रामानन्दी सम्प्रदाय की गादी नाथपंथियों को यौगिक चमत्कारों से परास्त करके स्थापित की गई थी। अंगोछे में आग उठा लेना, नाथों के महन्त को गधा बना देना, नाथों की मुद्रायें एकत्रित कर लेना आदि घटनायें कृष्णदास को योगी सिद्ध करती हैं। ऐसा समझा जाता है कि कृष्णदास को यह योगसिद्धि अपनी बाल्यावस्था में तत्कालीन नाथपंथियों से प्राप्त हुई होगी और रामानन्दी सम्प्रदाय में दीक्षित होते समय वह उसे यहाँ भी लेते आये। इस योगक्रिया को सम्प्रदाय में बनाये रखने के लिये श्री पयहारी ने अपना उत्तराधिकार कील्हदास के दिया था, क्योंकि इनकी प्रवृत्ति योग की ओर अधिक थी[1]। नाभादास के अनुसार उन्होंने भीष्म की भाँति मृत्यु को स्ववश कर लिया था। कील्हदास ने योग-प्रक्रिया को और आगे भी बढ़ाया और आज के रामानन्दी संन्यासी अपने को अवधूत कहते हैं[2]।

यदि प्रस्तुत शाखा के अतिरिक्त सम्प्रदाय की पूर्व-गुरु-परम्परा का अवलोकन करें, तो ज्ञात होता है कि रामानन्द के गुरु राघवानन्द स्वयं अवधूत थे और अवधूती वेष-भूषा धारण करते थे। रामानन्दी अनुयायियों में से मिहीलाल ने राघवानन्द को अवधूत कहा है तथा रामानन्द को उनका शिष्य बताया है[3]। डा० श्रीकृष्णलाल की धारणा है कि राघवानन्द

1- रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव, पृ० 204,
2- नाथ और सन्त साहित्य, पृ० 78,
3- नाथ और सन्त साहित्य, पृ० 80
(·)- भारतीय दर्शन, पृ० 397;

बाहर से रामानुज सम्प्रदाय में होते हुए भी वस्तुतः योगी-नाथों के उत्तराधिकारी थे और उन्होंने योगी - नाथों से प्राप्त की हुई सामग्री रामानन्द को दी [1] ।

जहाँ तक रामानन्द का प्रश्न है, उन्हें भी प्रारम्भ में शैव माना गया है, जो राघवानन्द के शिष्य होने के पश्चात् वैष्णव मत के सम्पर्क में आये[2] । उस समय समाज में तन्त्र, मन्त्र, कील-कवच आदि तान्त्रिक उपासना के प्रति लोगों का आकर्षण देखकर उन्होंने रामोपासना में भी उसकी व्यवस्था की थी । रामरक्षा की रचना इसी उद्देश्य से हुई थी । इसी प्रकार नाथपंथी उपासकों के आदर्श पर सन्त-जीवन के प्रत्येक कृत्य के लिये उन्होंने पृथक पृथक मन्त्रों की रचना कर सिद्धान्त - पटल का निर्माण किया था [3] । इतना ही नहीं जिस प्रकार उन्होंने वैष्णवमत में नाथ सिद्धों की विचारधारा का प्रवेश कराया, उसीप्रकार नाथ सम्प्रदाय में वैष्णव साधना की कई बातों को भी प्रविष्ट कराने का प्रयत्न किया । योगियों के समक्ष नाम-जप का महत्व सर्वप्रथम उन्होंने प्रस्तुत किया (-योग वैराग नाम मन्त्र बिन फीका) और उन्हें द्वादस तिलक धारण करने की भी राय दी (- द्वादस तिलक सन्त जन करते)।

इससे सिद्ध हो जाता है कि रामानन्द ने शैव और वैष्णव धर्मों के सम्प्रदायों में समन्वय कराने का सफल प्रयास किया था । जिस व्यक्ति ने दोनों मतों के गुण-दोष देखे हों और दोनों में रह चुका हो, उसके द्वारा ऐसा प्रयास स्वाभाविक ही है । इस समन्वय के कारण ही रामानन्द ने एक शिवरामाष्टक कीरचना कर उसमें एक साथ शिव और विष्णु का स्तवन किया है[4]। रामानन्दी सम्प्रदाय के अनुसंधित्सु डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव इसके रामानन्द कृत होने में सन्देह व्यक्त करते हैं और उन्होंने इसका एकमात्र कारण अष्टक में शिव को राम के समान बताना माना है[5]। परन्तु वह भूल जाते हैं कि रामानन्द प्रारम्भ में शैव थे और वैष्णव धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् वह अपने साथ शैव तत्व भी लाये थे । इस धार्मिक समन्वय की स्थिति में उनके द्वारा शिवरामाष्टक जैसी रचना स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी प्रतीत होती है ।

हरिदास सम्प्रदाय-

यह कर्नाटक का एक प्रमुख सम्प्रदाय है, जिसे दासकूट भी कहा जाता है ।

---

1- रामानन्द की हिन्दी रचनायें, भूमिका, पृ० 26 ,
2- रामानन्द की हिन्दी रचनायें, भूमिका, पृ० 48 ,
3- ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास, पृ० 161 ,
4- आगे ~~पृ० तथा~~ परिशिष्ट क,
5- रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव, पृ० 142 ,

इसका मूल दार्शनिक सम्बन्ध मध्व से होने के कारण यह एक वैष्णव सम्प्रदाय है । परन्तु सम्प्रदाय में पण्ढरपुर के विट्ठल, तिरुपति के वेंकटेश तथा उडुपी के कृष्ण एक समान उपास्य हैं । विट्ठल की हरिहरात्मक प्रवृत्ति पर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है, आगे पुरातात्विक प्रमाणों का विश्लेषण करते समय बताया जायेगा कि तिरुपति के वेंकटेश वस्तुतः हरिहर ही हैं । हरिदासों की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वह शिव के प्रति इष्टदेव जैसा भाव ही रखते हैं । कर्नाटक के वीर शैव सम्प्रदाय तथा दासकूटों के सामाजिक नियमों में साम्य के आधार पर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी इस सम्प्रदाय को बहुत सीमा तक वीर शैवों से प्रभावित मानते हैं[1] ।

दत्त सम्प्रदाय —

इस का पुनरुद्धार महाराष्ट्र में 15वीं शताब्दी में हुआ था । इस सम्प्रदाय की गुरुपरम्परा के अनुसार आद्याचार्य शंकर ने सर्व प्रथम विष्णु को अपना शिष्यत्व प्रदान किया था । सम्प्रदाय के उपास्य देव 'दत्त' को शिव, विष्णु और ब्रह्मा का समन्वित रूप कहा जाता है[2], परन्तु नाथपंथियों में 'दत्त' सिद्धि प्रदाता, दिगम्बर और अवधूत कहे गये हैं । महानुभावों में दत्त देवावतार न होकर ईश्वरावतार हैं, जिनका संयुक्त स्वरूप निम्न पंक्तियों से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है—

"जय जय दत्तराज योगी, जय जय महाराज योगी ।
शंख चक्र और त्रिशूल विराजे गले बड़ी वनमाला ।
जोगदंड अवधूत दिगम्बर बनारस रहनेवाला ॥"

दत्त के इस स्वरूप को हम हरिहर कह सकते हैं क्योंकि ब्रह्मा का यहाँ नितान्त अभाव है और हरिहर विग्रह में भी शंख, चक्र, त्रिशूल तथा वनमाला आदि प्रतीक रहते हैं । डा0 केलकर की तो धारणा है कि शैव और वैष्णव मतों के पारस्परिक विरोध का निराकरण करने तथा इन दोनों का समन्वय करके हिन्दू धर्म को व्यापक रूप प्रदान करने के लिये ही दत्त सम्प्रदाय का उदय हुआ[3] ।

पंचसखा धर्म—

चैतन्य के प्रभाव से उत्कल में पाँच ऐसे महान् वैष्णव कवि हुये थे, जिनकी भावना, विचारधारा, योगाभ्यास तथा भगवद्भक्ति की कल्पना में नितान्त साम्य था । इसी

---

1- वैष्णव धर्म, पृ0 121.,

2- हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृ0 76,

3- मराठी - हिन्दी कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 75,

आधार पर उन्हें पंचसखा अथवा एक ही ज्ञानदीपक की पांच शिखायें होने के कारण पंचशिखा कहा जाता है । इन पाँच कवियों के नाम हैं-

1- बलरामदास (जन्म 1473 ई0 )-
2- अनंतदास (जन्म 1475 ई0 )-
3- यशोवंतदास (जन्म 1476) -
4- जगन्नाथदास (जन्म 1476 ई0 )-
5- अच्युतानन्ददास (जन्म 1489 ई0)-

यह पाँचो कवि वैष्णवधर्म के अनुयायी थे और इनकी कविता में वैष्णव भक्तिभाव का ही उद्गार हुआ है । अच्युतानन्द तो कृष्ण की इच्छा से ही अपने को उत्पन्न मानते हैं । ऐसा समझा जाता है कि मुख्यतः यह चैतन्य के परिकर थे । चैतन्य के उत्कल आगमन से वहाँ प्रेमा भक्ति की जो बाढ़ आई, उसे इन कवियों ने घर-घर में पहुँचाने का कार्य किया ।

नगेन्द्रनाथ वसु पंच सखाओं को प्रच्छन्न बौद्ध सिद्ध करते हैं[1]। परन्तु उनकी मीननाथ, गोरक्षनाथ, मल्लिकानाथ आदि नाथों के प्रति भी पर्याप्त आदर की भावना है[2]। उस समय उत्कल प्रदेश में तान्त्रिक धारा या नाथ मत का प्रभाव भी कम नहीं था, और पंचसखाओं ने भी उसे ग्रहण किया है । इसीलिये इनके ग्रन्थों में यन्त्र-मन्त्र, गुरुमहिमा, कुण्डलिनी को जाग्रत कर सहस्रार में शिव के साथ शक्ति के संगम का पर्याप्त वर्णन है ।

नगेन्द्रनाथ वसु पंचसखाओं में एक नाम चैतन्यदास को भी जोड़ते हैं[3]। इन चैतन्यदास ने अपने 'विष्णुगर्भ' ग्रन्थ में ब्रह्म विषयक धारणा व्यक्त करते हुये लिखा है कि यदि उसकी इच्छा हो, तो वह कई रूपों की सृष्टि कर सकता है । वह इच्छानुसार अपनी पसन्द के खेल रचाता है, वैसा ही जीवन यापन करता है और कई रूपों को धारण करता है । कल्पना पुरुष होकर वह सृष्टि करता और पुनः शिव रूप होकर जगत में विहार करता है[4]।

दादू पंथ -

इसकी स्थापना प्रसिद्ध सन्त दादू ने की थी । इसे ब्रह्म सम्प्रदाय या परब्रह्म

---

1- भक्तिमार्गी बौद्ध धर्म (श्री वसु कृत 'दि माडर्न बुद्धिज्म एण्ड इट्स फालोअर्स इन उड़ीसा' का हिन्दी रूपान्तर), तृतीय अध्याय,
2- नाथ और सन्त साहित्य, पृ0 89,
3- नाथ और सन्त साहित्य, पृ0 67,
4- नाथ और सन्त साहित्य, पृ0 110-111,

सम्प्रदाय भी कहते हैं । यह मत नाथ मत से सम्बन्धित है । कालान्तर में सम्प्रदाय के पाँच उपभेद हो गये, जिनमें से बाकी शाखा पर जी0एस0घुरे नाथ पंथियों का विशेष प्रभाव पाते हैं[1]।

सहजिया सम्प्रदाय—

इसका आविर्भाव 16वीं शती के अन्त अथवा 17वीं शती के प्रारम्भ में बंगाल में हुआ था । सहजिया सिद्धान्तों के अनुसार श्रीकृष्ण परमतत्व हैं तथा राधा उनके नैसर्गिक प्रेम की अमित शक्ति स्वरूपिणी हैं । वे भगवान् कृष्ण की 'ह्लादिनी' शक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं । इस प्रकार राधा के स्वयं कृष्ण में ही निहित होने के कारण दोनों को अभिन्न समझा जाता है । राधा एवं कृष्ण के बीच जो वियोग की कल्पना की जाती है वह भगवान् की लीला एवं व्यवस्था मात्र है । सहजिया सम्प्रदाय के अनुयायी भगवान् कृष्ण की नित्य लीला का अनुभव करने तथा उसके द्वारा सदा आनन्दित रहने के लिये उसका सजीव वर्णन किया करते हैं । वे उस नित्य लीला का प्रत्यक्ष अनुभव करके उसकी अनुभूति द्वारा आत्म-विभोर बने रहना चाहते हैं ।

सम्प्रदाय के साधना-सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक मनुष्य अथवा नारी में दो तत्व विद्यमान होते हैं— पहला स्वरूप और दूसरा रूप अथवा सामान्य भौतिक तत्व । पुरुष में स्वरूप कृष्ण का आध्यात्मिक तत्व होता है और नारी में स्वरूप राधा का आध्यात्मिक तत्व । इस प्रकार यह लोग अपने रूप को विस्मृत कर स्वरूप का आरोपण करने की सलाह देते हैं जिससे पार्थिव प्रेम को भी अपार्थिवता प्रदान की जा सके । नर और नारी में कृष्ण तथा राधा के स्वरूप की परिकल्पना में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी शैव तान्त्रिकों के शिव और शक्ति का प्रभाव देखते हैं[2]। इसी प्रकार शैव तान्त्रिकों के समान यह लोग भी मानव देह में सप्त सरोवर तथा उनमें अवस्थित कमलों की कल्पना करते हैं । संभवतः सरोवर शब्द चक्र का ही पर्याय या दूसरा रूप है । परन्तु तान्त्रिक चक्र तथा सहजिया सरोवर में अन्तर अवश्य है । यहाँ सबसे नीचे मूलाधार में घोर सरोवर की परिकल्पना की गई है, जिसमें द्विदल कमल खिलता है । इसके ऊपर नाभि-सरोवर में जड़ कमल तथा पृथु सरोवर में षट्दल कमल का वास है । उदर में शतदल कमल से सम्पन्न मानसरोवर है तथा वक्षस्थल में अष्टदल कमल सम्पन्न क्षीर सरोवर, कण्ठ में चतुर्दल कमल सम्पन्न कण्ठ सरोवर

1- नाथ और सन्त साहित्य, पृ0 96 पर 'इन्डियन साधूज' (पृ0225) से उद्धरण,
2- मध्यकालीन प्रेम साधना, पृ0 30,

और शिर के ऊपर सहस्रदल कमल वाले अक्षय सरोवर का अस्तित्व माना जाता है[1]। नाथों के समान यहाँ काया साधन को भी महत्व दिया गया है ।

सहजिया सम्प्रदाय वालों का तो कहना है कि जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास आदि वैष्णव तथा रूपसनातन, स्वरूप, दामोदर, जीवगोस्वामी आदि वैष्णव आचार्य किसी - न - किसी रूप में मुद्रा-मैथुन युक्त सहज-साधना में प्रवृत्त हो चुके थे[2]।

समर्थ सम्प्रदाय-

अपने संस्थापक रामदास के नाम पर यह रामदासी सम्प्रदाय भी कहलाता है। समर्थ रामदास द्वारा 1644 ई0 में स्थापित यह वैष्णव सम्प्रदाय है, जिसके उपास्य देव राम हैं । वारकरी तथा समर्थ सम्प्रदाय में मूलतः कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वारकरियों द्वारा प्रवर्तित भागवत धर्म को समयानुरूप विकसित करने के लिये ही इस सम्प्रदाय का अभ्युदय हुआ था । इसीलिये सम्प्रदाय में विट्ठल भी उपास्य रूप में मान्य है[3]। समर्थ सम्प्रदाय के मराठवाड़ा में मुनीश्वर अमृतराय, शिवदिन केसरी, महिपति और विदर्भ क्षेत्र में देवनाथ महाराज, दयालनाथ, गुलाबराव महाराज आदि प्रमुख सन्त हुए हैं । इनकी रचनाओं में यत्र-तत्र नाथ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है[4]।

बलोपासना के रूप में यह सम्प्रदाय हनुमतोपासक है । इस सम्प्रदाय का प्रभाव उत्तर भारत में तुलसी आदि पर भी अनुमानित किया गया है ।

बाउल पंथ-

बंगाल के बाउल पंथी वस्तुतः वैष्णव हैं, क्योंकि वे अपने उपास्य को कृष्ण आदि वैष्णव नामों से ही अभिहित करते हैं, परन्तु उनकी साधना-पद्धति पूर्णतः नाथों या तान्त्रिकों के समान है । बाउलों ने मानव शरीर को ब्रह्माण्ड का एक लघु रूप माना है और उसी में सारी सृष्टि की कल्पना की है । उनका यह विचार प्रधानतः प्रचलित तान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुकूल है । इसी प्रकार वे मानव शरीर में इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों का अस्तित्व मानते हैं और मेरुदण्ड में नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान,

1- भागवत सम्प्रदाय, पृ0 485
2- डा0 धर्मवीर भारती, हिन्दी साहित्य कोश, पृ0 835
3- हिन्दी को मराठी सन्तों की देन, पृ0 80
4- भा0 हि0 परिषद् के पूना अधिवेशन में डा0 विनयमोहन शर्मा का प्रवर्तन भाषण, पृ0 13

मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध एवं आज्ञा नामक षट्चक्रों की परिकल्पना कर उनमें भिन्न-भिन्न शक्तियों का अस्तित्व मानते हैं । उनकी यह धारणा तथा मानव शरीर को अधिक महत्व देने और उसे शुद्ध एवं संयत रखने की प्रवृत्ति नाथपंथी योगियों के भी समान है[1]।

क्षितिमोहनसेन ने बाउल परिवारों का इतिहास प्रस्तुत करते हुए बताया है कि मदन बाउल की साम्प्रदायिक परम्परा नित्यनाथ, मूलनाथ और आदिनाथ से संबद्ध है । इन तीन 'नाथों' के आधार पर वह बाउलों का नाथों से प्राचीन सम्बन्ध सिद्ध करते हैं[2]। डा0 सुकुमार सेन का कहना है कि बंगाल में इस समय नाथ मत व्यवहारतः मृतप्राय है और इस मत के अनुयायियों ने अपने को अन्य योग संबद्ध सम्प्रदायों में रूपान्तरित कर लिया जो बाद में वाह्य रूप से वैष्णव हो गये । बंगाल का बाउल मत नाथ मत का रूपान्तर है । यद्यपि बाउल अपने उपास्य को कृष्ण आदि वैष्णव नामों से अभिहित करते हैं, तथापि उन्होंने योगप्रक्रिया एवं उलटवाँसी सम्पृक्त नाथवाणी को यथावत् रहने दिया है[3]।

निरंजन सम्प्रदाय—

इसका नामकरण अपने संस्थापक स्वामी निरंजन भगवान् के नाम पर हुआ है । यह एक सन्त सम्प्रदाय है जिसका विकास वेदान्त से प्रभावित नाथ सम्प्रदाय से हुआ है । इसकी प्रमुख विशेषता है सहनशीलता तथा सहिष्णुता की भावना । निरंजनी लोग विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के रहते हुये भी विश्वबन्धुत्व की कामना करते हैं । उनके अनुसार विभिन्न देवता या अवतार निरंजन की ही अभिव्यक्ति हैं तथा उन देवताओं की पूजा से ऊपर उठ जाना चाहिए । डा0 नगेन्द्रनाथ उपाध्याय इन्हें रामानन्द के वर्ग में रखते हैं[4]।

स्वामीनारायण सम्प्रदाय—

स्वामीनारायण या स्वामी सहजानन्द द्वारा संस्थापित इस सम्प्रदाय को उद्धव सम्प्रदाय भी कहते हैं । स्वामी सहजानन्द ने गुजरात प्रान्त में प्रचलित वल्लभाचार्य के सम्प्रदायगत दोषों का निराकरण करने के लिये 1812 वि0 में इसकी स्थापना की थी । यद्यपि इन्हें भी सम्प्रदाय स्वीकार था, परन्तु इन्होंने चतुर्भुजी विष्णु के स्थान पर द्विभुजी विष्णु को मान्यता दी और विष्णु के अतिरिक्त नर-नारायण, राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण को भी उपास्यवत् माना है । इस प्रकार यह एक वैष्णव सम्प्रदाय है । परन्तु सम्प्रदाय की

1- मध्यकालीन प्रेम साधना, पृ0 43,
2- दि विश्वभारती क्वार्टर्ली, वा019, (1953-54) तथा दि बाउल्स आफ बंगाल (-क्षितिमोहनसेन), पृ068 के आधार पर नाथ और सन्त साहित्य, पृ0 93,
3- दि कल्चरल हेरिटेज आफ इण्डिया, भाग 4, पृ0 280,
4- नाथ और सन्त साहित्य, पृ0 97,

एक विशेषता यह है कि वैष्णव सम्प्रदायों में प्रचलित रूढ़ि के विरुद्ध इसने शिव-भक्ति का भी उपदेश दिया[1] । सम्प्रदाय के अनुसार —

ऐकात्म्येव विज्ञेयं नारायणमहेशयोः ।
उभयोर्ब्रह्मरूपेण वेदेषु प्रतिपादनात् ।।

अर्थात् नारायण और महेश को एक रूप प्रतिपादित कर शैवों तथा वैष्णवों में समन्वय स्थापित किया है ।

वैष्णव सम्प्रदायों की सहिष्णुता एवं समन्वयात्मकता पर किये गये इस सिंहावलोकन के पश्चात् शैव धर्म को भी इस दृष्टि से देखा जा सकता है । यद्यपि शैवों के पाशुपत, कापालिक, कालामुख, वीरशैव, शैवसिद्धान्त, काश्मीर शैवमत आदि बहुत- से सम्प्रदाय हैं, परन्तु प्रस्तुत विवेचन के सन्दर्भ में मात्र अन्तिम दो ही उल्लेखनीय हैं । जहाँ अन्य सम्प्रदायों का वैष्णव धर्म के प्रति निरपेक्ष भाव है शैवसिद्धान्त में अन्य देवता का प्रसाद खाना निषिद्ध है[2] । दूसरी ओर काश्मीर शैवमत में ज्ञान और भक्ति का समन्वय होने तथा विवर्तवाद एवं परिणामवाद के स्थान पर स्वातन्त्र्यवाद या आभासवाद को मानने के कारण वह वैष्णव धर्म के अधिक निकट माना जाता है, जो शिव और विष्णु के एकीकरण की एक निश्चित अवस्था को प्रमाणित करता है[3]।

---

1- गुजराती साहित्य - खण्ड 5 (मध्यकालनो साहित्यप्रवाह), पृ0 215

2- वैष्णव, शैव एवं अन्य धार्मिक मत, पृ0 144

3- मराठी - हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 72

संस्कृत ग्रन्थ : साहित्यिक तथा आचारपरक

शाक्त धर्म में तन्त्र साहित्य का अपना विशिष्ट स्थान है । इनमें से संमोहन तन्त्र (अध्याय 8) में शक्ति, नारायण, शिव और निर्गुण ब्रह्म का एकात्म्य स्थापित करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि शक्ति तथा नारायण एक ही हैं । जो आदिनारायण हैं, वही परमशिव और निर्गुण ब्रह्म हैं । मूर्ख लोग ही राम और शिव में भेद देखते हैं (अध्याय9)। इसी प्रकार कौलावलिनिर्णय (अध्याय 21) में शिवपद और विष्णुपद को एक ही परमपद का नामान्तर बताया है [1] । दूसरी ओर वैष्णवों की वैखानस संहितायें भी एक अन्य प्रकार से हरि-हर के समन्वय की प्रतीक हैं । अप्पयदीक्षित का कहना है कि पांच रात्र मत अवैदिक है और वैखानस मत वैदिक । यह द्रष्टव्य है कि दोनों संहिताओं की अनुष्ठान विधि में पर्याप्त अन्तर हैं । और कांजीवरम तथा तिरुपति के वेंकटेश्वर मन्दिरों में, जहाँ आज भी वैखानस संहिताओं का व्यवहार होता है, शिव और विष्णु दोनों की पूजा होती है तथा दोनों देवताओं का समान आदर होता है[2]। आगे दिखाया जायेगा कि तिरुपति के वेंकटेश्वर मन्दिर की मुख्य प्रतिमा अन्य कुछ न होकर स्वयं हरिहर की है । इसलिये हम यह कह सकते हैं कि वैखानस संहिताओं की पूजा-पद्धति में विष्णु के साथ शिव की उपासना भी विहित है ।

चतुर्वर्ग चिन्तामणि -

हेमाद्रि ने इसके 23वें अध्याय में शंकरनारायणव्रत का वर्णन किया है । व्रत का अनुष्ठान शैव-वैष्णव दोनों पद्धतियों का समन्वित रूप है । इसमें पूर्व-वर्णित उमाशंकर व्रत का अनुष्ठान करने के साथ विष्णु के लिए पीताम्बर, गन्ध, पुष्प, धूप, सुगन्ध, लड्डू तथा दही अर्पित करने का विधान है । इस प्रकार शंकर नारायण का पूजन कर प्रतिमा को चबूतरे पर रखना चाहिए । फिर वेद-वेदांगमें पारंगत दो ब्राह्मण तथा जटा-काषाय धारी दो संन्यासियों को आहूत करे और उनमें शूलपाणि-जनार्दन की कल्पना कर उन्हें विधिवत् भोजन कराये । इसके बाद दोनों से कामना सिद्धकारक क्षमा-याचना करके विष्णु के लिए स्वर्ण तथा शिव के लिए मौक्तिक की दक्षिणा दे । इस प्रकार पूजन करने से विष्णु तथा शिव लोक में विभिन्न प्रकार के भोग प्राप्त करके राजकुल में जन्म मिलता है। इस जन्म में पुत्र तथा सुख प्राप्त होता है और पूर्व-भावों के कारण शंकर-नारायण में समान और शाश्वती भक्ति होती है । पुनः इस जन्म में योग को प्राप्त होकर मोक्ष मिल जाता है ।

1- मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ0 46,
2- मध्यकालीन धर्मसाधना, पृ0 39-40 ,

लक्ष्मीधर भट्ट ने किंचित् पाठ-भेद के साथ यही व्रत कृत्यकल्पतरु में दिया है[1]।

अध्यात्मरामायण

यह एक वैष्णव कृति है, परन्तु इसमें शिव और विष्णु– अथवा उनके अवतार राम– के सम्बन्ध की विविध स्थितियाँ उपलब्ध होती हैं–

1- राम से शिव का आविर्भाव–

यह सबसे अन्तिम काण्ड में वर्णित है और पूरी रामायण में केवल एक ही स्थान पर मिलता है । राक्षसों के राज्य-स्थापन का विवरण देकर अगस्त्य मुनि भगवान् राम के विराट् स्वरूप की कल्पना करते हुये उनका स्तवन करते हैं । यहाँ कहा है कि राम के क्रोध से त्रिनयन महादेव की उत्पत्ति हुई है[2]। वस्तुतः यहाँ ~~कल्प~~ शिव के प्रति कोई हीन भाव व्यक्त नहीं किया गया है वरन् उन्हें राम के विराट् स्वरूप का ही एक अंग बताकर अंग-अंगी भाव प्रदर्शित किया गया है ।

2- वैष्णव ग्रन्थ में शैव-वैष्णव दोनों प्रकार के मंगलाचरण–

राम के विष्णु रूप की प्रधानता के कारण अध्यात्मरामायण का रचयिता वैष्णव प्रतीत होता है परन्तु उसकी शिव के प्रति भी कम श्रद्धा नहीं है । इसीलिये उसने ग्रन्थ के प्रारम्भ में दक्षिणामूर्ति भगवान् शिव का स्तवन किया है[3]और राम की स्तुति अगले काण्ड के प्रारम्भ में की है[4]। शैव मंगलाचरण इसलिये भी आवश्यक था, क्योंकि राम से प्राप्त इस अध्यात्मरामायण को सृष्टि में लाने का श्रेय भगवान् शिव को ही है ।

3- अध्यात्मरामायण के प्रथम वक्ता राम तथा श्रोता शिव–

पार्वती द्वारा पुरुषोत्तम भगवान् राम का तत्व पूछने पर शिव संक्षेप में राम की महिमा सुनाते हैं । परन्तु जब पार्वती उसे विस्तारपूर्वक सुनने का आग्रह करती हैं तो शिव पार्वती के निवेदन पर सहमत होकर कहते हैं कि हे देवि सुनो, मैं तुम्हें गुह्य से भी गुह्य महान् अध्यात्मरामायण सुनाता हूँ, जो पहले मुझे श्रीरामचन्द्र ने ही सुनाई थी[5]।

राम से प्राप्त यह अध्यात्मरामायण संसार में सर्वप्रथम शिव के माध्यम से ही आई ।

---

1- व्रतखण्ड, व्रत खण्ड, पृ0 416-417
2- उत्तर काण्ड, सर्ग 2, श्लोक 68
3- अप्रमेयत्रयातीतनिर्मलज्ञानमूर्तये ।
मनोगिरां विदूराय दक्षिणामूर्तये नमः ॥
4- 1/1/1-2
5- 1/2/4

4- पार्वती राम की उपासिका—

पार्वती भगवान् शिव की शक्ति हैं परन्तु उनकी राम के प्रति अपार श्रद्धा तथा भक्ति है । इसीलिये वह अध्यात्मरामायण का पूजन कर रात-दिन उसी का मनन करती हुई आत्मानन्द में मग्न रहती है[1] ।

5- शिव राम के पूज्य—

राम शिवको अपना उपास्य समझते हैं इसीलिये समुद्र सन्तरण के पूर्व सेतु बन्ध के समय वह रामेश्वर-शिव की स्थापना कर उनका पूजन करते हैं[2]। लंका से वापिस होते समय भी राम सीता को सेतुबन्ध दिखाते हुये कहते हैं कि यह तीर्थ तीनों लोकों से पूजनीय है । यहीं मैंने रामेश्वर महादेव की स्थापना की थी । इसलिये यह अत्यन्त पवित्र है और दर्शन-मात्र से ही सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है[3]।

अध्यात्मरामायण के रचयिता के हृदय में धार्मिक सहिष्णुता होते हुये भी, वह राम की शिव-भक्ति पर अधिक बल नहीं देता है । संभवतः इसी कारण उत्तर काण्ड में वह राम द्वारा करोड़ों शिवलिंग स्थापना का उद्देश्य राम की जनोपदेश प्रवृत्ति बताता है[4]।

6- शिव राम के उपासक—

भगवान् राम महादेव के परमधन हैं[5]। राम द्वारा उद्धार हो जाने के बाद कबन्ध रूप गन्धर्व प्रार्थना करता है कि आपका यह जटा-वल्कल विभूषित धनुष-बाणधारी श्याम रूप सदैव मेरे मन में विराजमान रहे । क्योंकि पार्वती सहित सर्वज्ञ शंकर राम रूप का ही चिन्तन किया करते हैं और काशी में मरने वालों को ब्रह्मवाचक तारक मन्त्र राम-राम का उपदेश करते हुये सदा आनन्दित रहते हैं[6]। यहाँ एक अन्य बात भी ज्ञात होती है कि शिव राम-भक्ति के उपदेशक हैं । इसी प्रकार एक स्थल पर शिव तथा पार्वती को राम का पादोदक धारक[7] तथा शिव को राम का शिष्य कहा गया है[8]। राम का राज्याभिषेक हो जाने

1- माहात्म्य, श्लोक 20,
2-वही 6/4/1,
3-वही 6/14/5-6,
4-वही 7/4/26-27,
5-वही 6/13/31,
6-वही 3/9/49-52,
7-वही 2/2/22,
8-वही 3/8/51,

पर महादेव स्वयं आकर राम का स्तवन करते हैं[1]। इस स्तुति में शिव कहते हैं कि हे प्रभो आपके नामोच्चारण से कृतार्थ होकर मैं पार्वती के साथ काशी में रात-दिन रहता हूँ और वहाँ मरणासन्न पुरुषों को उनके मोक्ष के लिये आपके तारक मन्त्र राम-नाम का उपदेश करता हूँ।

7- सीता और पार्वती का समन्वय—

सीता और पार्वती दोनों के लिये जगज्जननी विशेषण का प्रयोग करके[2] अध्यात्मरामायण का रचयिता उन दोनों को एक ही शक्ति के दो रूप समझता है।

8- राम और शिव का समन्वय—

राम का राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् एक दिन महर्षि नारद राम के दर्शन को आये। यहाँ पर नारद भगवान् राम की जो स्तुति करते हैं उसके अन्तर्गत राम और शिव में तादात्म्य स्थापित किया गया है। नारद कहते हैं कि हे विष्णु रूप भगवान् राम सीता पार्वती हैं और आप शिव। आप ही लोकसंहारकवि रुद्र हैं[3]। आगे उत्तरकाण्ड में भी राम में सर्वदेव समन्वय करते हुये रुद्र को राम का ही रूप कहा है। वह (विद्युत होकर) चमकते हैं, (अग्नि होकर) प्रज्वलित होते हैं, (विष्णु रूप से) रक्षा करते हैं और (रुद्र रूप से) सबका संहार करते हैं[4]।

श्रीशंकरदिग्विजय—

इसके रचयिता माधवाचार्य विजयनगर के शासक हरिहर और बुक्क के समकालीन थे। प्रस्तुत ग्रन्थ अद्वैत के आद्याचार्य शंकर की जीवनी है। इस पर विजयडिण्डिम और (अच्युतराय कृत) अद्वैत राज्यलक्ष्मी नाम से दो प्रसिद्ध टीकायें भी हुई हैं। इस के एकादश सर्ग में विष्णु के नरसिंहावतार को नाश के समय तमोगुण से आच्छादित होकर संसार का हरण करने वाला बताया है। उस समय नरसिंह की 'हर' संज्ञा होती है(श्लोक 65)।

आगे बारहवें सर्ग में शंकर के तीर्थाटन का वर्णन है। जब उन्होंने गोकर्ण तीर्थ से प्रयाण किया तो बहुत ही शीघ्र हरिशंकर नामक पवित्र क्षेत्र में पधारे। यह (हरिशंकर) तीर्थ हरिशंकर-लोक का नामान्तर मात्र था[5]। वहाँ शंकराचार्य ने भेदवादियों के भ्रम

1- वही 6/15/51-63,
2- देखिये क्रमशः, वही 6/13/23, माहात्म्य 20 आदि,
3- वही 2/1/13, 17,
4- वही 7/3/46-48,
5- श्रीशंकरदिग्विजय 12/7,

को दूर करने के लिये अद्वैतवाद को दिखलाने वाले हरिशंकर का पूजन कर श्लेष से एक साथ उनका स्तवन किया[1]। इस स्तुति में प्रत्येक श्लोक से श्लेष के द्वारा दो अर्थ निकलते हैं- एक शिवपरक और दूसरा विष्णु परक । विष्णुपरक अर्थों में उनके अवतारों का वर्णन मिलता है । एक साथ श्लोकों की ग्यारह संख्या एकादश रूद्रों की भी स्मरण दिलाती है ।

देवों द्वारा वन्दनीय, चन्द्रकला के विलासों से सम्पन्न, अनादि श्रुति का आदर के विचार करने वाले, मेना से उत्पन्न दिव्य पार्वती रूप तेज से युक्त, वृषभचारी भगवान् शिव तथा सप्तर्षियों द्वारा वन्दित, महान् प्रलयकाल के समुद्र जल में विलास करने वाले, अनादि, दिव्य मत्स्यरूपधारी, नाव का रूप धारण करके इस पृथ्वी को खींचने वाले भगवान् विष्णु मेरी सदा कुशल करें ।

हे शिव । आप मन्दर नामक वृक्ष को धारण करने वाले तथा विषभक्षक हैं । आप कैलाश पर्वत पर अपनी सुन्दरमूर्ति से नाना प्रकार के विलास करते हैं तथा हे कच्छपरूपी नारायण । आपने मन्दर नामक पर्वत को धारणकर देवताओं को अमृतपान कराया था । आप स्वयं विषादरहित हैं तथा आपने मन्दराचल के धारण करने योग्य सुन्दर स्वरूप धारण किया था, आप मुझ पर अपनी अपार कृपा कीजिये ।

जिन शिवने अत्यन्त महिमा का विस्तार कर सर्पराज वासुकि को अपने सिर पर धारण कर लिया है तथा जिन वराह रूप विष्णु ने पृथ्वी के विस्तार को अपनी दंष्ट्रा से ऊपर उठा लिया है, उन्हें हमलोग सायंकाल में सम्पुटित पद्म के समान अंजलि बाँधकर प्रणाम करते हैं ।

जो पंचवक्त्र हैं, जिनके सिर पर नदी श्रेष्ठ गंगा विराजती हैं । जो गजासुर को मारकर अत्यन्त आनन्दित हुये वह शिव तथा जिन्होंने श्रेष्ठ सिंह रूप धारण कर देवशत्रु हिरण्यकशिपु रूपी हाथी को मार डाला और प्रह्लाद को आनन्दित किया, ऐसे सिंह रूप पुराण-पुरुष को हमारा प्रणाम है ।

जो दक्षप्रजापति के यज्ञ में बलि ग्रहण करने के अभिलाषी हैं, जिन्होंने मनोहर मृग चर्म धारण किया है, जिन्होंने कान्ता से रहित होकर घोर तपस्या की है, जो ब्रह्मचारी हैं तथा जिन्होंने राजा बलि से त्रैलोक्य के हरण करने की इच्छा से सुन्दर मृगचर्म को धारण किया, जिन्होंने स्त्री के सम्पर्क बिना ब्रह्मचर्य पूर्वक तपस्या की, उनको मेरा नमस्कार है ।

जिन के सिर पर (गंगा) जल तथा मस्तक पर चन्द्रमा चमक रहा है, (जिन्होंने युद्ध में अर्जुन को भी जीत लिया) तथा जिन्होंने तलवार उठाकर कार्तवीर्य अर्जुन को जीता था, उन चन्द्रमा सदृश दृश्यमान को पाकर हम लोग सनाथ हैं ।

---

1- वही 12/9-19,

जिन्होंने दस इन्द्रियों के द्वारा प्रवृत्त होने वाले कामदेव को अपने तेज से जला डाला है, जो पार्वती का आलिंगन करते हैं तथा जिनके सम्मुख यह संसार असत्य है, अपने प्रकाशित तेज से जिन्होंने सबसे द्वेष करने वाले दशमुख रावण को मार गिराया, जो भूतनया जानकी के स्तन का आलिंगन करने वाले हैं, वह (राम रूप) हरि-हर मुझे अनन्त ब्रह्मानन्द का अनुभव करायें ।

जिन्होंने धर्म के लिये मूर्तरूप धारण किया है, जो हलाहल पान करने पर भी उज्ज्वकण्ठ हैं, जिनके मस्तक पर रोहिणी के ईश चन्द्रमा विराजमान हैं, जिनकी पताका ऊँचे ताल वृक्ष के समान है, जिन्होंने धर्म के लिये मूर्त स्वरूप धारण किया है, सुरा तथा हल के ग्रहण करने पर भी जिनकी कण्ठ अत्यन्त सुन्दर है, रोहिणी के पति वसुदेव जिनके सिर का चुम्बन लिया करते हैं, वह मन-वाणी से अगोचर साक्षात् ब्रह्म रूप हैं ।

जिनके सिर पर गणेश जी अपनी सूँड़ से जलधार गिराते हैं तथा जिनकी गोद में गणेश जी शोभित हैं । जिनका नाम 'पवित्र' है, जिनकी चित्तवृत्ति अपने भक्तों के कल्याण में लगी रहती है, जिनके मस्तक को चन्द्रमा विभूषित कर रहा है तथा कालिय मर्दन के समय जिन पर सर्प-विष कोई प्रभाव नहीं कर सका, पास की भूमि पर बैठने वाला गरुड़ जिनकी सेवा में उपस्थित था, जिन्होंने पूतना नामक राक्षसी को मोह लिया था, जिनके सिर पर मयूर पुच्छ शोभित होता है, वे प्रसन्न होकर हमारी रक्षा करें ।

जो कामदेव को जीतने वाले, सर्वज्ञता से सब जगह प्रसिद्ध, दया के आधार, दक्ष-यज्ञ के विरोधी, लोगों के अपार सम्मानदायक, ज्ञान के निधान हैं तथा जिन्होंने मीनकेतु को जीत लिया है, जिनकी सर्वज्ञता सर्वप्रसिद्ध है, जो दयागार हैं तथा यज्ञ-विरोधी पुरुषों के आदर देने वाले हैं, उन ज्ञान-निधान के दर्शन करना चाहता हूँ ।

जो मनुष्यों के चित्त विषय के परे, अन्धकारनाशक, मानव मात्र के अन्तः करण में निवास करने वाले तथा जो मानव मन से अगम्य प्रकाशमान होने वाले, तमनिवारक, सज्जनों को स्थान देने के इच्छुक हैं, उन (कल्कि रूप) हरि-हर को मैं प्रणाम कर रहा हूँ ।

इसी में आगे श्री शंकर को हरिशंकर का भक्त दिखाया है, जब वे अपनी माता को स्वर्ग भेजने के लिये पहले शिवगणों और फिर विष्णु के दूतों को बुला लेते हैं[1] ।

**शिवमहिम्नस्तोत्र और उसकी विविध टीकायें--**

गन्धर्व राज पुष्पदन्त ने शिवमहिम्नस्तोत्र में अपने इष्टदेव शिव का स्तवन किया है । परन्तु आगे चलकर परमहंस श्री विश्वेश्वर सरस्वती के शिष्य मधुसूदन सरस्वती

1- वही 14/32-44,

ने इसके इकतीस श्लोकों की टीका करते समय शिव के अतिरिक्त विष्णुपक्षीय अर्थ भी लगाया है । ऐसा प्रतीत होता है कि टीकाकार ने चेष्टापूर्वक हरिपक्षीय अर्थ करने का उपक्रम किया, किन्तु उसे आद्यन्त घटित करने में कठिनाई हुई क्योंकि सम्भवतः पुष्पदन्त का अभिप्राय द्व्यर्थक रचना न रहा होगा । इससे इस युग की शैव-वैष्णव समन्वयपरक प्रवृत्ति के स्वरूप विशेष का बोध होता है। मधुसूदन सरस्वती की यह टीका निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित है[1]। टीकाकार ने हरिहर के एकात्म रूप को निम्न शब्दों में नमन किया है—

> भूति भूषित देहाय द्विज राजेन राजते ।
> एकात्मने नमो नित्यं हरये च हराय च ॥[2]

इसी प्रकार श्रीधर स्वामी ने भी इसकी शिव तथा विष्णु उभय पक्षीय टीका की है । दूसरी ओर हरगोविन्द शर्मन ने पूरे शिवमहिम्नस्तोत्र का विष्णुपक्षीय अर्थ किया है[3]। इसकी एक हरिहरात्मक टीका बोपदेव ने भी की थी, जिसकी एक पाण्डुलिपि काशिक राजकीय संस्कृत महाविद्यालय के सरस्वती भावनपुस्तकालय में सुरक्षित है (•) ।

नीलकण्ठचम्पू—

महाकवि नीलकण्ठ दीक्षित ने इसमें शैव, वैष्णव तथा शाक्त धर्मियों के मध्य सद्भाव उत्पन्न करने के लिये शिव, विष्णु तथा शक्ति का बहुत ही सुन्दर समन्वय किया है[4]।

रत्नसुधानिधि—

एकाम्र-कानन निवासी नारायणानन्द अवधूत स्वामी ने इस गद्य-कृति का प्रारम्भ 'श्री हरिहराभ्यां नमः' से किया है[5]।

हरिहराद्वैतभूषणम्—

दो सौ अट्ठावन कारिकाओं सहित यह ग्रन्थ तीन भागों में विभाजित है ।

---

1- (महावीर प्रसाद) द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ0 253-254,-
2- डा0 जगदीश गुप्त का लेख 'हरिहरोपासना और तुलसी', धर्मयुग 6 जुलाई, 1958, पृ0 8,
3- आफ्रेक्ट, कैटेलागस कैटेलागरम्, जिल्द 1, पृ0 444, जिल्द 2, पृ0 102 तथा जिल्द 3, पृ0 96 के आधार पर (महावीर प्रसाद) द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ0 254, पादटिप्पणी,
(•)- देखिये-वहाँ की ग्रन्थसूची, भाग 5, खण्ड 1, ग्रं0सं0 19445,
4- यदेतद्वामाङ्गं वनजवनकेशान्तनयनं
कदाचित्छम्भोः भवति कमला कौस्तुभधरम्॥ -2/20,
5- राष्ट्रभाषा रजत जयन्ती ग्रन्थ, पृ0 111,

इनमें से पहले भाग में विष्णु, दूसरे भाग में शिव तथा तीसरे भाग में हरिहर के एकात्म स्वरूप की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है ।

विश्वाधिक (यतीन्द्र) सरस्वती तथा गीर्वाणेन्द्र सरस्वती के शिष्य बोधेन्द्र सरस्वती ने ग्रन्थ के तृतीय भाग में वेद, इतिहास तथा पुराणों के आधार पर शिव तथा विष्णु में अभिन्नता दिखाई है । बोधेन्द्र सरस्वती नीलकंठ दीक्षित के गुरु भाई थे और इन्होंने हरिहर के नाम पर वेदान्त का एक अन्य ग्रन्थ 'हरिहरभेदधिक्कार' भी रचा है ।

हरिहरशतकम्—

प्रख्यात अद्वैताचार्य अप्पय दीक्षित ने शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों के विद्वेष भाव को समाप्त कर उन्हें निकट लाने का स्तुत्य प्रयास किया था । एक बार दोड्डुकाचार्य नामक एक वैष्णव ने शतदूषणी नाम से शैव निन्दापरक सौ श्लोकों का गान किया । अप्पयदीक्षित वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने तत्काल ही हरिहरशतकम् की रचना कर दी[क]। कहा जाता है इस घटना से दक्षिण भारत में शिव और विष्णु के भेदभाव की मान्यता कम होती गई ।

भ्रान्त शैव निराकरण—

अप्पयदीक्षित ने प्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थ भगवद्गीता की शिवपरक व्याख्या की है और पुष्टिमार्गी आचार्य गोस्वामी पुरुषोत्तमलाल ने प्रस्तुत ग्रन्थ में अप्पय दीक्षित कृत गीता की शैव व्याख्या का खण्डन किया है ।

नीचे हरिहर विषयक कुछ अन्य ग्रन्थों की सूची दी जाती है—

1- भुवनेश्वरीपटलः[1]— सत्रह पृष्ठों का यह एक तन्त्र ग्रन्थ है । इसमें 'हरिहरात्मकस्तव' भी सम्मिलित है । रचनाकाल तथा रचयिता अज्ञात ।

2- विष्णुशिवयोरष्टोत्तरशतनामावलि[2]— स्तोत्र ।

3- विष्णुरुद्रसंहिता[3]— वैदिक ग्रन्थ । लिपिकाल 1803 ।

4- शिवकृष्ण स्तोत्रम्[4]— स्तोत्र ।

5- शिवाष्टकम्[5]— हरिहराष्टोत्तरशतनामावलि स्तोत्र ।

---

क- अद्वैताचार्य श्री अप्पयदीक्षित, आज, रविवारीय परिशिष्ट (3जून, 1973), पृ0 10,

1- काशिकराजकीय संस्कृत महाविद्यालय, सरस्वतीभवन का पुस्तकालय का सूचीपत्र } भाग 6, ग्रन्थ सं0 24133,

2- वही, भाग5, खण्ड1, ग्र0सं0 17616,

3- वही, भाग 1, खण्ड 1, ग्र0सं0 1284,

4- वही, भाग 5, खण्ड 1, ग्र0सं0 17580,

5- वही, भाग 5, खण्ड 1, ग्र0सं0 19137-

6- शिवताण्डवस्तोत्रम्[1]— हरिहरनवरत्नमालिकायुक्त स्तोत्र ।

7- शिवरामगीता[2]— कैटेलागस कैटेलागरम् के अनुसार यह एक योग ग्रन्थ है[3]।

8- शिवविष्णुस्तोत्र[4]—

9- शंकरनारायणमाहात्म्य[5]—

10- शंकरनारायणाष्टोत्तर-शत्[6]—

11- हरिहर अग्निहोत्रम्— हेमाद्रि ने इसको हरिहरपद्धति तथा हरिहरभाष्य कहा है[7]।

12- हरिहरक्षेत्रमाहात्म्य— देवकीनन्दन शर्मा रचित ।

13- हरिहरचतुरंगम्— गोदावर मिश्र प्रणीत नीति(?) ग्रन्थ ।

14- हरिहरतारतम्य-रामेश्वर अध्वर सुधामणि रचित एक काव्य ग्रन्थ । इसी नाम की एक रचना हरदत्ताचार्य की भी है[8]।

15- हरिहरतारतम्यशतकम्— रामेश्वर कृत स्तोत्र ग्रन्थ[9]।

16- हरिहरदीक्षितीय— कैटेलागस कैटेलागरम के अनुसार यह धर्म ग्रन्थ है[10]।

17- हरिहरनामावलिः — सरस्वती भवन पुस्तकालय (वाराणसी) में इसकी आठ पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनमें से एक का लिपिकाल 1883 है । स्तोत्र ग्रन्थ[11] ।

18- हरिहरनीराजनादुर्गास्तवम्—

19- हरिहरप्रशंसा— एक पौराणिक ग्रन्थ[12]।

20- हरिहरब्रह्म-मानसिक-स्नान-विधि[13] ।

21- हरिहरयोग— एक योग— ग्रन्थ[14] ।

---

1- काशिकराजकीयसंस्कृतमहाविद्यालय, सरस्वतीभवनपुस्तकालय का सूची पत्र भाग 5, खण्ड 2, ग्र0सं0 22952
2- वही, भाग 4, ग्र0सं0 16775
3- वे0पृ0 652
4- कैटेलागस कैटेलागरम्, भाग-1, पृ0 653
5- मोनियर विलियम्स कृत संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, पृ0 1054
6- वही, पृ0 1054
7- कैटेलागस कैटेलागरम्, भाग 1, पृ0 762
8- कैटेलागस कैटेलागरम्, भाग 1, पृ0 763
9- स0पु0 5/2/23350
10- वे0-भाग 1, पृ0 763
11- स0पु0 5/1/18161, 18162, 20152(1883), 21259, 22657, 22862, 23701, 23758
12- कै0कै0, भाग 1, पृ0 763
13- संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, पृ0 1291
14- कै0कै0, भाग 1, पृ0 763

23- हरिहरमण्डलषोडशलिंगोद्भव— एक तन्त्र ग्रन्थ[1]।

24- हरिहरमन्दिर नीराजन आरती[2]—

25- हरिहरविलास- काव्यग्रन्थ[3] ।

26- हरिहरस्तवः — स्तोत्र ग्रन्थ । सरस्वती भवन पुस्तकालय में इसकी चार पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनमें से एक 1938 की है[4]।

27- हरिहरस्तुतिः— स्तोत्र ग्रन्थ[5]।

28- हरिहरस्तोत्रम्— सरस्वती भवन पुस्तकालय में इसकी सात पाण्डुलिपियाँ हैं । इनमें से पाँच के लिपिकाल तथा रचयिता अज्ञात हैं, जबकि एक (सं0 19919) शंकराचार्य कृत है और अन्य (सं0 17969) 1740 की है[6]।
स्तोत्र ग्रन्थ ।

29- हरिहरसगुणनिर्गुणपदावली—

30- हरिहरसंवाद— इस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण शिव से अपने स्वरूप के विषय में पूछते हैं और शिव उसे बताते हैं[7]।

31- हरिहरात्मकस्तवः — स्तोत्र ग्रन्थ । सरस्वती भवन पुस्तकालय में इसकी पाँच पाण्डुलिपियाँ हैं । इनमें से एक (सं0 19536) शक सं0 1752 की है तथा दूसरी (सं0 20303) 1892 की है[8]।

32- हरिहरात्मक स्तोत्रम्—स्तोत्र ग्रन्थ । सरस्वती भवन पुस्तकालय की चार पाण्डुलिपियों में से एक (सं0 18698) 1895 की है और शेष तीन के रचयिता तथा लिपिकाल अज्ञात हैं[9]।

---

1- कै0 कै0, भाग 1, पृ0 763,
2- संस्कृत पुस्तकालय, दरियागंज, दिल्ली की ग्रन्थ सूची, ग्रन्थ सं0 6335,
3- कै0कै0 भाग 1, पृ0 763,
4- स0पु0, 5/1/17970, 20666, 5/2/22027, 22126 (1938),
5- ,, ,5/1/19275,
6- ,, ,5/1/17592, 17593, 17969, 19919, 5/2/20931, 22811 और 22950,
7- ,, , 4/14816, 7/29861 (1940),
8- ,, ,5/1/29536, 20303, 5/2/21177, 21202, 22957,
9- ,, ,5/1/18698, 18699, 19470, 5/2/21767,

33- हरिहरानुसरणयात्रा- नृसिंह भट्ट रचित नाटक[1]।

34- हरिहराष्टकम्- स्तोत्र ग्रन्थ । सरस्वती भवन पुस्तकालय में इसकी एक (20302) स्वतन्त्र पाण्डुलिपि के अतिरिक्त एक अन्य भागवतद्वात्रिंशत्प्रश्नोत्तरी में भी सम्मिलित है । गोविन्दराम व्यास गौड़ कृत द्वितीय पाण्डुलिपि 1935 की है[2]।

35- हरिहराष्टोत्तर शतनामन्- स्तोत्र ग्रन्थ[3]।

36- हरिहरोपाधिविवेचन- अमृतानन्दतीर्थ रचित वेदान्त ग्रन्थ[4]।

37- हरेश्वर स्तोत्रम्- स्तोत्र ग्रन्थ[5]।

38- हस्तामलकम् - शंकराचार्य कृत इस ग्रन्थ में शिवरामस्तोत्र भी संग्रहीत है[6]।

स्तोत्र-

रामानन्दी सम्प्रदाय के संस्थापक रामानन्द की समन्वयात्मक प्रवृत्ति पर पीछे प्रकाश डाला जा चुका है । वहीं पर उनके द्वारा रचित शिवरामाष्टक का भी उल्लेख किया गया है, जिसमें उन्होंने एक साथ शिव और विष्णु एवं राम-रूप का स्तवन किया है । वे एक साथ हरि हर से निवेदन करते हैं कि हे शिव । हे हरि । हे शिवराम । हे सखे । हे प्रभो । हे त्रिविधतापनिवारण विभो । हे अज, जगन्नाथ, यादव (कृष्ण) । मेरी रक्षा करो । हे शिव। हे हरि । मुझे कल्याणकारी विजय प्रदान करो ॥ हे कमल लोचन राम ।- दयानिधे शिव । हे गुरु । हे गजरक्षक (विष्णु) । हे गोपति (कृष्ण) । हे कल्याणकारी भव । हे शंकर । मेरी रक्षा करो । हे शिव । हे हरि । मुझे कल्याणकारी विजय प्रदान करो॥ हे सज्जन-मन-रंजन (शिवराम) । जो पुरुष तुम्हारे मंगल-मन्दिर का आश्रय लेते हैं, उन्हें परम दिव्य सुख प्राप्त होता है । अतएव हे शिव । हे हरि । मुझे कल्याणकारी विजय प्रदान करो ।। हे युधिष्ठिर के प्रियतम (कृष्ण) । हे भूपति । आप विजयी हों । हे पुण्य-

---

1- कै०कै०, भाग 1, पृ० 763,

2- स०पु०, 5/1/20302, 4/16037,

3- ,, 5/1/20854 (शक सं० 1798),

4- कै०कै०, भाग 1, पृ० 763,

5- स०पु०, 5/1/20500,

6- ,, 5/2/21058 (1934),

महासागर के उपार्जनकर्ता । आपकी जय हो । हे दयामय कृष्ण । आपकी जय हो, आपको नमस्कार है । हे शिव । हे हरि । आप मुझे कल्याणकारी विजय प्रदान करें ॥ हे भवभय हारी माधव । हे लक्ष्मीपति । हे सुकवि-मानस-हंस । हे पार्वतीप्रिय । हे जानकीजीवन राघव मेरी रक्षा करो । हे शिव । हे हरि । आप मुझे कल्याणकारी विजय प्रदान करें ॥ हे भूमि मण्डल के मंगलस्वरूप । हे श्रीपति । हे घनश्याम सुन्दर । हे प्र रमापति राम । हे वेद वर्णित गुणसागर । हे गोपते (कृष्ण) । हे शिव । हे हरि । आप मुझे कल्याणकारी विजय प्रदान करें ॥ हे पतितपावन नाम युक्त कल्पलता । तुम्हारा यश नित्य सर्वत्र गाया जाता है तथापि हे माधव । तुम मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हो ? हे शिव । हे हरि । आप मुझे कल्याणकारी विजय प्रदान करें ॥ हे देवाधिदेव । हे दयासागर रमापति । सर्वत्र विजय प्राप्तकर्ता तुम परमेश्वर के नामरूपी धन का आदर्श कोष मेरे पास किस प्रकार संचित हो जायेगा ? हे शिव । हे हरि । आप मुझे कल्याणकारी विजय प्रदान करें ।। हे हनुमत्प्रिय हे चापधारी प्रभु । हे गंगाधारी गुरुदेव । हे विभो । तुम मुझे क्यों भूल गये हो ? हे शिव। हे हरि। मुझे आप कल्याणकारी विजय प्रदान करें ।। जो मनुष्य इस लोकप्रिय सुन्दर शिवराम स्तव का पाठ करता है, वह राम-रमा के चरण,कमलों में प्रवेश पाने में समर्थ होता है । हे शिव । हे हरि । मुझे आप कल्याणकारी विजय प्रदान करें ।। जो प्रातः काल उठकर एकाग्रचित से इस शिवराम स्तोत्र का पाठ करता है, उसकी सर्वत्र कल्याण होता है और वह आराध्यदेव विष्णु को प्राप्त होता है ।।

यह स्मरणीय है कि रामानन्द मूलतः वैष्णव हैं, इसीलिये उन्होंने फलश्रुति में विष्णु को प्रधानता दी है । इसी प्रकार राम और विष्णु दोनों का उल्लेख, राम और कृष्ण का एकत्व, राम के लिये हनुमत्प्रिय और शिव के लिये गुरु विशेषण का प्रयोग भी उल्लेखनीय है । आगे चलकर तुलसी ने शिव को गुरु कहा है।

स्तुतिकुसुमांजलि--

प्रस्तुत काव्य में 39 सर्ग हैं और सभी एक-से-एक अधिक सुन्दर तथा स्तुतिमय हैं । और ऐसा समझा जाता है कि तुलसी की विनयपत्रिका बहुत कुछ इसी से प्रभावित है। इसके रचयिता जगद्धर भट्ट कश्मीर के निवासी थे जो 1350 ई0 में विद्यमान थे ।स्तुतिकुसुमांजलि में विशेषकर शिव के ही विविध स्वरूपों का स्तवन हुआ है, जिससे रचयिता की शैव प्रकृति स्पष्ट है । यद्यपि उसने एक स्थान पर रामचन्द्र द्वारा देवताओं के दुख नष्ट करने , रावण का वध और निर्दोष सीता को प्राप्त करने का कारण राम की शिव-भक्ति को बताया

है तथापि हरिहर के संयुक्त स्वरूप का जितना विशद और उत्कृष्ट स्तवन जगद्धर ने किया है, उतना अन्य किसी कवि ने नहीं । २

स्तुतिकुसुमांजलि में हरिहर-स्तवन की एक अन्य स्थिति वह है, जिसमें स्तुतिकार हरिहर के समन्वित स्वरूप में से हर की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है[1]। यहाँ वह शिव को विष्णु का आश्रयदाता मानता है । फिर यह आश्रय भी ऐसा कि शिव ने अपने अर्धपार्श्व को त्यागकर उसी के स्थान पर विष्णु को धारण कर रखा है । एक स्तोत्र में विष्णु का चरणोदक धारण करने वाले तथा विष्णु के नेत्र से पूजित कामारि के साथ कंसारि कृष्ण का भी स्मरण किया गया है (•)।

स्तुतिकुसुमांजलि में हरिहर की छः स्तुतियां ऐसी हैं, जिनमें एकान्तर यमक की सहायता से शिव और विष्णुपरक अर्थ एक साथ चलते हैं । वस्तुतः हरिहर स्तवन होते हुए भी पहले एक पक्ष का सम्पूर्ण अर्थ लगाया जाता है और फिर अन्य पक्ष का । इनकी एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि हरिहर में शिव तथा विष्णु के विविध स्वरूपों का समन्वय हुआ है । पहली स्तुति में स्तोता अष्ट सिद्धि तथा पिनाकधारी, कैलासवासी आशुतोष और

---

1- "क्लम (परिश्रम से उत्पन्न हुये विषाद) को हरने वाला वह माधव (वसन्त) मुझे उतना आनन्द नहीं देता और मरुस्थल के उपवन में सुशीतल छाया करने वाला धव वृक्ष भी मुझे उतना आनन्द नहीं देता, जितना कि हरिहर स्वरूप को धारण करके उस शरीर के अर्ध भाग में माधव (विष्णु) को धारण करने वाला स्तूयमान भगवान् उमाधव (उमापति) आनन्द देता है (29/4) । तथा जो वक्षस्थल रूपी मन्दिर में लक्ष्मी, कर कमलों में उज्ज्वल पांचजन्य शंख एवं सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले, कंसारि, शेषशायी, गरुड़वाहन भगवान् विष्णु को अपने हरिहर स्वरूप के दक्षिण अर्धभाग में धारण करके आनन्दित करता है और जो अपनी ध्वजा पर वृषभ तथा कर-कमल में पीयूष-कलश को धारण करता हुआ अपना स्मरण और कीर्तन करने वाले विनीत भावुकों को निरन्तर आनन्दित करता है, वह अव्यय-अविनाशी परमेश्वर हमारे पापों का नाश करे (34/4) ।

(•) एक (शिव) तो दूसरे (विष्णु) के श्लाघ्य चरणोदक (पादांगुष्ठ से निःसृत गंगा) को अपने मस्तक पर धारण करते हैं और दूसरे (विष्णु) उन (शिव) को अपने नेत्र-कमल से पूजते हैं । इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के स्वाभाविक बढ़ान गुण-गणों की महिमा को जानने वाले कामारि (शिव) और कंसारि (कृष्ण) आप लोगों को किसी विलक्षण हर्ष-प्रवाह में मग्न करें । कवि

— वही 29/35,

और कंसारि कृष्ण की वन्दना करता है[1], तो दूसरी स्तुति में कालकूट तथा शंखधारी से जनसामान्य के पापों को दूर करने की प्रार्थना है[2]। तीसरी स्तुति में गरुड़ारूढ़ कृष्ण तथा चन्द्र मौलिका स्मरण है[3]। चौथी स्तुति में गरुड़ पर आरूढ़, खंग तथा सुदर्शन धारी, लक्ष्मी से सम्पन्न, बलि-विजयी तथा त्रिपुरान्तक का आश्रय ग्रहण किया गया है[4]। पांचवी स्तुति में कैलाशवासी चन्द्रमौलि और परशुराम को प्रणाम[5] तथा अन्तिम स्तुति में उमासहित सदा शिव और गरुड़ एवं शेष के अनुरागी लक्ष्मी संयुक्त अच्युत नारायण से जनकल्याण की प्रार्थना है[6]।

जगद्धर की अन्य ग्यारह स्तुतियों मे शैव और वैष्णव विशेषणआद्योपान्त एक साथ चलते हैं। भाव तथा शैली दोनों ही दृष्टियों से इन्हें हरिहर की श्रेष्ठतम स्तुतियों में रखा जा सकता है। स्तुतिकुसुमांजलि की अन्य हरिहर स्तुतियों के समान इन में भी शिव और विष्णु के विविध स्वरूपों का समन्वय है।

---

1- मैं नित्य कैलाश पर निवास करने वाले, पिनाक से सुशोभित, अणिमा-महिमा आदि अष्टसिद्धियों से सम्पन्न संयमी पुरुष पर कृपा करने वाले भगवान् शंकर तथा अतीव दानी, गोपाल-बालों के साथ निवास करने वाले, स्वर्ग की भी सम्पन्न एवं महाऋद्धि-शाली कंसासुर के मारने वाले भगवान् कृष्ण (विष्णु) की बड़े प्रेम से वन्दना करता हूँ। —वही 29/11,

2- मुँह में स्थापन करने योग्य, नील कान्तिमय समुद्रजन्मा कालकूट को कर-कमल में धारण करता हुआ और स्वामी कार्तिकेय के दुख का निवारण करने में सदैव तत्पर हर तथा मुखकमल में रखने योग्य, स्वच्छ कान्तिवाले समुद्र जन्मा शंख को कर-कमल में धारण करता हुआ सत्पुरुषों के मायावरण से उत्पन्न हुये दुखों को दूर करने में तत्पर हरि आपके समस्त पापों को दूर करे। —वही 29/13,

3- जो चिरकाल तक शुक्ल-कृष्ण इन दोनों पक्षों में रहने वाले तथा प्रणत लोगों के सन्ताप को दूर करने वाले द्विजराज (चन्द्रमा) को मस्तक पर धारण करते हैं, वह आप ही ईश्वर हैं तथा चिरकाल तक जिसके दोनों पक्षों (पंखों) में निवास किया है, विनता के दुखहर्ता द्विजराज (पक्षीराजगरुड़) को जिसने अपना वाहन बनाया है, वह कृष्ण हैं। —वही 29/21,

4- अहा! आपका कृपापात्र यह मैं अब पुरुषोत्तम, स्वातन्त्र्यशक्तिसम्पन्न, त्रिपुरासुर आदि बड़े-बड़े बलियों को जीतने वाले, अचल शोभा से सम्पन्न, शरणागतों को आनन्दित करने वाले तथा परम मनोहर स्वरूपधारी सदाशिव और राजा बलि के जीतने वाले, गरुड़वाहन अचललक्ष्मी से विराजित, नन्दकनामक खंग और सुदर्शनचक्र धारी, पुराण पुरुष विष्णु रूप शिव का आश्रय लेता हूँ। —वही 29/25

5- हे भावुकों! अतीव स्वच्छ आकृति से विराजमान होकर भी जो प्रभु मस्तक पर चन्द्रमा को धारण करता हैं, उस त्रैलोक्य- उद्धारक, अमूर्तिमान्, अविनाशी कैलाशवासी तथा जो महान् परशु से युक्त होकर भी श्रेष्ठ ब्रह्मणभाव धारण करता है, स्तोताओं के हितैषी उस परशुराम स्वरूप को प्रणाम करो। —वही 29/27,

6- अतीव मनोहर कान्तिवाला जो प्रभु साक्षात् अमृत की सहोदर(मधुर) वाणी वाली एवं

स्तोता मंगल कामना करता है कि गरूड़ तथा वृषभारूढ़, लक्ष्मी, पांचजन्य शंख, कौस्तुभमणि, चन्द्रमा, विष और अमृत धारी हरिहर आप लोगों का कल्याण करें[1]। दूसरी स्तुति में शेषशायी और शेषनागधारी हरिहर[2], तीसरी में पार्वती द्वारा पूजित अर्ध शिव तथा लक्ष्मी द्वारा पूजित अर्ध विष्णु के समन्वित स्वरूप से कल्याणकामना की गई है । इसमें शिव का वर्ण चन्द्र सदृश श्वेत बताया है[3]। चौथी स्तुति में हरिहर ललाट पर अर्ध तृतीय नेत्र और सिर पर गंगा धारण किये हैं[4]। पाँचवीं स्तुति में विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्मा की व्याकुलता का सजीव चित्रण है । हरिहर स्वरूप में अन्य अंगों के समान विष्णु की नाभि भी आधी ही शेष है । ऐसी स्थिति में वहाँ से उत्पन्न पद्म के अत्यन्त संकुचित हो जाने से ब्रह्मा का पीड़ित होना

---

(उ के सहित मा=उमापद वाच्य प्रियतमा पार्वती) को वामांग में धारण करता है, वह अनुराग रखने वाला जो प्रभु अमृत के समान मधुरभाषी और मुख में पंचम (नामक) स्वर को धारण करने वाली प्रियलक्ष्मी को शरीर पर धारण करता है, वह कल्याणदायी अच्युतनारायण आपके अतीव पुष्ट करे । — वही 29/31 ,

1- सत्य (गरूड़) और धर्म (वृषभ) में सुस्थिर हुआ जो (हरिहर) स्वरूप लक्ष्मी, पांचजन्य शंख, कौस्तुभमणि तथा चन्द्रमा, विष एवं अमृत के पारस्परिक सौदर्य-सौहृद (एक ही स्थान-) समुद्र से उत्पन्न होने के कारण सहोदर;भाव के प्रेम ) से होने वाले सुख के अनुभव का एकमात्र आधार है– अर्थात् जिस शरीर में एक पार्श्व में लक्ष्मी, हाथ में पांचजन्य एवं वक्षस्थल पर कौस्तुभम/ का निवास है तथा दूसरी ओर मुकुट पर चन्द्रमा, कण्ठ में विष और करतल में अमृत (शिव के मृत्युंजय स्वरूप के हाथ में अमृतकलश रहता है) का निवास है– वह हरिहर स्वरूप आपका मंगल करे ।—वही 4/1,

2- जिस शरीर में एक ओर (शैव पार्श्व में) जटाजूट को बाँधने के लिये तथा दूसरी ओर (विष्णु पार्श्व में) शय्या के लिये अपने अंगों को पर्याप्त हुये देखकर अपने को कृतार्थ समझता हुआ शेषनाग अत्यन्त हर्षित होता है, वह हरिहर स्वरूप आपके मंगल प्रदान करे । —वही 4/2,

3- जिसका चन्द्रमा के समान स्वच्छ अर्ध (शिव ) भाग तो पार्वती द्वारा नीलकमलों से और भ्रमर-कान्ति के सदृश श्यामल दूसरा अर्ध (विष्णु) भाग लक्ष्मी द्वारा जाती के पुष्पों से पूजित किया हुआ, देवताओं के नेत्ररूप चषकों से पीने योग्य होता है, वह हरिहर स्वरूप आपका कल्याण करे । —वही 4/3,

4- जिसके हरि रूप अर्ध भाग के केशों में स्थित हुये मेघ (विष्णु के केशों में मेघों का निवास माना जाता है–'यस्य केशेषु जीमूताः '), हररूप अर्ध भाग के तृतीय नेत्र की अग्नि और मस्तक पर स्थित देवगंगा के गंभीर झंकार से गर्वित होकर स्थिर विद्युत के आश्चर्यजनक (विद्युत ही स्थिर नहीं, फिर उसका शब्द स्थिर होना वस्तुतः आश्चर्यजनक है) शब्द को धारण करते हैं वह हरिहर स्वरूप आपका मंगल करे ।

— वही 4/4,

स्वाभाविक है । बेचारे[1] अपने शरीर को भी आधा बनाने की सोचते हैं ।[1] इसी प्रकार हरिहर स्वरूप में शिव के ललाट का तृतीय नेत्र भी आधा रह गया है । परन्तु अपने स्वामी के नेत्र रूप सूर्य-चन्द्रमा को पूर्ण आकार में देखकर उसकी क्रोधाग्नि और भी भड़क उठती है[2] । अन्य स्तोत्र में हरिहर के दोनों पार्श्वों में क्रमशः शंख के गृहीत होने और कमल के त्यागने का वर्णन है[3]। आठवीं स्तुति हरिहर की निरंकुशता का विवरण प्रस्तुत करती है । गंगा, जो एक ओर (विष्णु के) पादांगुष्ठ से निःसृत होती है, दूसरी ओर (शिव ने) सिर पर आरूढ़ कर रखी है । यह है हरिहर की उच्छृंखलता[4]। अन्य तीन स्तोत्रों में से एक में हरिहर के श्याम एवं श्वेत वर्ण की उपमा रात्र्यागम और दिनान्त तथा यमुना और गंगा से दी गई है[5]। दूसरे में हरिहर के एक ही मुख से हरि और हर का वार्तालाप

---

1- ब्रह्मा भी जिसके (विष्णु रूप) की अर्धनाभि में निज आधारभूत कमल के अत्यन्त संकुचित रहने के कारण अपनी स्थिति भी अत्यन्त संकुचित हो जाने से सब अंगों के पीड़ित हो जाने पर खिन्न होकर अपने शरीर को भी आधा बनाना चाहते हैं, हरिहर का वह दिव्य स्वरूप आपको परम कल्याण प्रदान करे । —वही 4/5,

2- जिस शरीर में लघुता को प्राप्त होने पर भी अग्नि (शिव के त्रिनेत्र में अग्नि रहती है, जो हरिहर में आधी ही शेष है) अपने साथी सूर्य और चन्द्रमा को प्रभु के दक्षिण-वाम नेत्रों में अखण्डित (पूर्ण शरीर सम्पन्न) देखकर ईर्ष्यावश (क्रोध से) और भी अधिक प्रज्वलित होती है, वह हरिहर स्वरूप आपका कल्याण करे । —वही 4/6,

3- जिस शरीर में एक ओर (शिव पार्श्व में) गुणी (सूक्ष्म तन्तुओं युक्त), सहृदय (कर्णिका सहित), सफल (फल सम्पन्न) और समूल (सनाल) पद्म को हाथ से हटा दिया गया) (अर्थात् उसे हाथ में धारण ही नहीं किया) और दूसरी ओर (विष्णु भाग में) उन (पूर्वोक्त) लक्षणों के विपरीत (अर्थात् निर्गुण) अहृदय (हृदयहीन=कठोर), फलहीन और निर्मूल शंख को भी धारण कर लिया), ~~फलहीन और नि~~ वह मनोहर हरिहर स्वरूप आपका कल्याण करे । — वही 4/7,

4- जिसके एक ओर (विष्णु के) पादांगुष्ठ से निःसृत गंगा का अति अद्भुत (जल अधोगामी होता है, परन्तु यहाँ वही शिव के मस्तक पर -उर्ध्वगामी-होने से अति अद्भुत है), सुमनोहर और निरंकुश (उच्छृंखल - एक ओर पादांगुष्ठ से निकल कर दूसरी ओर मस्तक पर आरूढ़ होने जैसे विरूद्ध कार्य के कारण यह जल निरंकुश है) जल बिना व्यवधान के उसी शरीर के दूसरी ओर (शिव पार्श्व में) मस्तक पर आरूढ़ हो जाता है, वह अत्यन्त अद्भुत, चन्द्र-किरणों के समान स्वच्छ, निरंकुश (स्वतन्त्र-अपने ही पादांगुष्ठ से निःसृत गंगा को अपने ही सिरपर धारण करने के कारण हरिहर को निरंकुश कहा गया है) और शक्ति सम्पन्न हरिहर स्वरूप आपका कल्याण करे । — वही 4/8,

5- जैसे दिनान्त और रात्र्यागम अथवा गंगा और यमुना का सितासित समागम लोगों के ताप और पाप का विनाश करता है वैसे ही उमानाथ और रमानाथ का वह सितासित समागम -हरिहर- आप लोगों के त्रिविध ताप और पाप को दूर करे ।

—वही 29/5,

कराते हुये परस्पर समन्वय भाव का प्रतिपादन कराया गया है[1]। अन्य स्तोत्र में हरिहर की शक्तियों के परस्पर विरोधी वाहनों—गजेन्द्र तथा सिंह— तथा हरिहर के प्रिय गरूड़ और नागराज की मैत्री का वर्णन है[2]।

स्तोत्र समुच्चय—

इसमें श्रीनिवास रचित हरिहर स्तुति के बारह श्लोक संगृहीत हैं । रचयिता के समय के विषय में आड्यार लायब्रेरी (मद्रास) के क्यूरेटर डा० के० पी० रैथल ने अपने एक पत्र में लिखा है कि श्रीनिवास का समय अज्ञात है । पुस्तकालय में संगृहीत पाण्डुलिपियाँ न अधिक प्राचीन हैं और न आधुनिक । हाथ से बना कागज 100 वर्ष पहले का है और ताड़पत्र 150-200 वर्ष पुराना हो सकता है[3]। श्रीनिवास लक्ष्मी और वेंकटेश के पुत्र थे तथा उन्होंने प्रस्तारशेखरः, [4] सुमनोरंजनम् एवं सुदामचरितम्[5] की रचना की है ।

श्रीनिवास ने हरिहर के समन्वित स्वरूप के अतिरिक्त विष्णु और शिव का अलग-अलग स्तवन भी किया है[6] । तथापि ऐसा लगता है कि वह हरिहर के उपासक थे । क्योंकि प्रथम श्लोक में कहा है कि हरि-भक्त हयग्रीव की तथा हर-भक्त गजवदन गणेश की स्तुति करते हैं, परन्तु हम लोग जो एक साथ हरिहर के भक्त हैं, सर्वप्रथम गुरू-मुख की प्रार्थना करते है[7]। श्रीनिवास ने इन श्लोकों की रचना इस प्रकार की है कि एक ही विशेषण से शिव और विष्णुपरक अर्थ एक साथ चलता है[8]। दूसरे श्लोक में कोटि चन्द्रमाओं

1- (शिव-) "हे विष्णु ! आपके सुदर्शन चक्र से मेरी अतीव प्रीति है और आपके साथ अभेद भाव का तो कहना ही क्या ?" तथा (विष्णु-) " हे सदाशिव ! आपके अति मनोहर दर्शन (सुदर्शन) से मेरा अत्यन्त प्रेम है अतः आप और हमारे अभेद का तो कहना ही क्या ?" इस प्रकार (हरिहरात्मक स्वरूप के) शिव और कृष्ण के एक ही मुख से परस्पर कहा हुआ यह सुमनोहर वचन आपको अमित आनन्द प्रदान करे ।
—वही 29/9

2- महापुरूषों की जिस सन्धि में कैलास और क्षीरसागर की कन्याओं (पार्वती तथा लक्ष्मी) के वाहनों (सिंह और गजेन्द्र— गजलक्ष्मी स्वरूप में गज लक्ष्मी का अभिषेक करते हैं) के आपस में स्वाभाविक वैर भाव दूर होकर प्रेम से अति सुमनोहर स्थिति हो जाती है तथा जिस (समन्वय) में नागराज और गरूड़ भी परस्पर निष्कपट मैत्री धारण करते हैं, (शिव और विष्णु का ) वह पारस्परिक सम्मिलन—हरिहर स्वरूप—आप लोगों के कल्याण में सहायक हों ।
—— वही 29/36

3- दि० 26 जुलाई, 1970 का लेखक को लिखा पत्र ।

4- डे० कै० आफ सं० मै० इन दि आड्यार लायब्रेरी, भाग 6 (व्याकरण आदि), पृ०302, क्र०सं० 748

5- वही, भाग 5 (काव्य आदि), क्र०सं० 713 तथा 768

6- दे० क्रमशः स्तोत्रसमुच्चय, भाग 2, पृ० 222—223 तथा भाग 1, पृ० 291-292

7- वही, भाग 2, हरिहर स्तुति, श्लोक 1, पृ० 378

8- लक्ष्मी तथा वेंकट के पुत्र और (वेद की) वाजसनेयी शाखा के अध्ययनकर्ता श्रीनिवास ने हरिहर की एक ही उक्ति में कही जाने वाली स्तुति रची है—
— वही , श्लोक 12, पृ० 379

की कान्तियुक्त मणि मुकुट धारी तथा भस्मांगलिप्त चन्द्रमौलि[1] और तीसरे में कंकण, कुण्डलधारी नीलवर्ण विष्णु तथा नागधारी, कैलाशवासी नीलकण्ठ का समन्वय हुआ है[2]। चौथे श्लोक के हरिहर में तिलकधारी विष्णु तथा ललाट पर अर्ध त्रिनेत्र सम्पन्न कामदेव विजयी का समन्वय है[3]। पाँचवे श्लोक में वैकुण्ठवासी तथा गणेश जनक के समन्वित स्वरूप का स्तवन है[4]। छठे श्लोक के हरिहर हृदय में लक्ष्मी को धारण किये वृषभारूढ़ हैं[5]। सातवें श्लोक में श्री सम्पन्न, स्कन्दजनक,[6] आठवें श्लोक में मायापति, नटराज[7] तथा नवें श्लोक में संसार सागर से पार

---

1- कपिशवर्णी केशधारी, कोटि चन्द्रमाओं की कान्ति से युक्त मणि मुकुटधारी, अनन्त ऐश्वर्य सम्पन्न, मायावी तथा पिशंगी वर्ण की जटाओं से मण्डित, नवचन्द्र से प्रस्फुटित मणि सदृश प्रभा सम्पन्न, पूर्णतया भस्मांगलिप्त, ऋदि्ध-सिदि्ध, उमायुक्त हरिहर हमें कल्याण करें

2- अंगूठी, कंकण और कुण्डलधारी, नीलवर्ण तथा पुत्र गणेश की सूँड से विनोदकर्ता, पर्वत वासी, नागधारी, नीलकंठ हरिहर हमें कल्याण प्रदान करें ।

3- जिनके मस्तक पर शोभायमान तिलक की सुवर्ण सदृश प्रभा के मध्य नेत्र चमक रहे हैं, जो मोहित कामदेव के मद को भी अपने अमित सौन्दर्य से नष्ट कर देते हैं तथा जिनके मस्तक पर तिलक के समान तृतीय नेत्र अपने ज्योतिर्पुंज से सुवर्ण सदृश प्रभा छिटकाता हुआ चमक रहा है, जिन्होंने मूर्ख कामदेव के मद का नाश किया था, वह मायावी तथा ऋदि्ध-सिदि्ध सम्पन्न हरिहर हमें कल्याण प्रदान करें ।

4- इन्द्र के भाई, वैकुण्ठवासी, गणेश के पिता, वेदों से स्तुत्य, लोकवाणी से अवर्णनीय, स्वयं काल, मायावी तथा ऋदि्ध-सिदि्ध सम्पन्न हरिहर हमें कल्याण प्रदान करें ।

5- जो अर्धनारीश्वर और वृषभारोही हैं तथा सागर पुत्री लक्ष्मी के हृदय में धारण किए हैं और सूर्य रूप में वृष राशि पर आरोहण करते हैं वे ऋदि्ध-सिदि्ध सम्पन्न हरिहर हमें कल्याण प्रदान करें ।

6- स्कन्द के जनक, वैभवसम्पन्न, विषम बाण से ब्रह्माण्ड विजयी, देवों के अग्रगण्य, जितेन्द्रिय तथा ऋदि्ध-सिदि्ध सम्पन्न हरिहर हमें कल्याण प्रदान करें ।

7- जो किसी अनियत माया को प्रेरित कर सन्ध्याकाल में कौतुक धारण करते हैं और अपने ताण्डव नृत्य का विविध विलास करते हैं तथा किसी अचिन्त्य माया को अपनी संगिनी बनाकर सृष्टि की सन्ध्या अर्थात् प्रलयकाल में कौतुक धारण करते हैं ( सो जाते हैं )और नटवत् अनेक प्रकार की लीलायें करते हैं वे ऋदि्ध-सिदि्ध सम्पन्न हरिहर हमें कल्याण प्रदान करें ।

पार करने वाले धीवर (विष्णु) और शिव की स्तुति है[1]। दसवें श्लोक की विशेषता है हरिहर का गोपालत्व और वृषभारूढ़ होना[2]। इसी प्रकार ग्यारहवें श्लोक के हरिहर चन्द्रवंश के मूर्धन्य, गोपाल, गरूड़ बिहारी, चन्द्रमौलि, विरूपाक्ष तथा पशुपति हैं[3]।

स्तोत्र भारती-कण्ठहार—

यह गोवर्धन मठ (पुरी) के शंकराचार्य भारती कृष्णतीर्थ महाराज की रचना है। भारती जी ने यह स्तोत्र कारावास में लिखे थे। द्वितीय अध्याय में एक आख्यान का उल्लेख किया जा चुका है, जिसके अनुसार समुद्र मन्थन से प्राप्त अमृत को देवों में वितरित करने के लिये असुरों को विमोहित करने के उद्देश्य से विष्णु ने मोहिनी स्वरूप ग्रहण किया था। मोहिनी के सौन्दर्य पर शिव काम-विमोहित हो गये और उनके संसर्ग से शास्ता अथवा अयनार उत्पन्न हुये। भारती जी ने विष्णु के इसी मोहिनी स्वरूप तथा शिव और शास्ता का एक साथ स्तवन किया है। इन स्तोत्रों में से तीन की रचना 'मोहिनी शंकरशास्तः स्तुति' शीर्षक से हुई है[4] और चार की रचना 'मोहिनीमन्मथशत्रुशास्तः स्तव' शीर्षक से[5]। भारती कृत तीन स्तोत्र ऐसे हैं जिनमें उन्होंने शास्ता के माता-पिता मोहिनी और शिव का ही भजन किया है। इन स्तोत्रों में प्रयुक्त विशेषण मोहिनी (विष्णु) तथा शिव दोनों पर लगाये जा सकते हैं[6]।

1- जिनके अनन्त नामों में से शिव नाम ही जपनीय है, जो स्तुत्य और संसार-सागर से पार करने वाले धीवर हैं, वे ऋद्धि-सिद्धि सम्पन्न हरिहर हमें कल्याण प्रदान करें।

2- जो वृषभगामी, दिग्वसन जितेन्द्रिय गंगा और धनुर्धर तथा स्थाणु हैं और अग्नि जिनका नेत्र पृथ्वी पृथ्वी जिनका रथ है, वे शम्भु गोविन्द रूप हैं।

3- सिर पर चन्द्रधारी, पृथ्वी के पालक तथा चन्द्र वंश के मूर्धन्य, गोपालक, गरूड़बिहारी, विरूपाक्ष, पशुपति की मैं वन्दना करता हूँ।

4- स्तोत्र भारती-कण्ठहार, पृ0 105,

5- स्तोत्र भारती-कण्ठहार, पृ0 106-107,

6- वरदायक चरणों वाले, कमलतुल्य करों वाले, नतजनों की रक्षा को प्रिय मानने वाले, अत्यन्त सुन्दर, देवपूजित, भुजग तुल्य केशों वाले, भक्तों के सर्वस्व अर्पित करने वाले, संसार नाशक, शास्ता के माता-पिता मोहिनी और शिव को मैं हृदय से भजता हूँ॥ 1॥ मुनीन्द्रों से विनुत, देववृन्दवन्दित, स्वर्ण कमल प्रभ, घनतुल्य केशों वाले, संसार शामक, नत को अभीष्ट वस्तु देने वाले, प्रणाम करने वालों को कृतकृत्य करने वाले, श्रम का शमन करने वाले, कृपा वारिधि, शास्ता के माता, पिता मोहिनी और शिव का मैं हृदय से भजन करता हूँ॥ 2॥ भक्तों के प्रिय का सम्पादन करने वाले, गरूडवन्वित (विष्णु) प्रणतजनों के पाप नाशक, मनोज्ञ मुख वाले, कलाओं के दाता, चन्द्रमुखी, स्मरण मात्र से ही अभीष्ट दायक, प्रणत जनों के कष्टहारी, शास्ता के माता-पिता मोहिनी और शिव को मैं हृदय से भजता हूँ॥3॥

— वही, पृ0 107-108,

अब कुछ ऐसे स्तोत्रों का विश्लेषण किया जा रहा है जो कई आधुनिक संकलनों में संग्रहीत हैं । इनके रचयिता का नाम अथवा समय तो नहीं मिलता है, परन्तु वह प्रायः आधुनिक नहीं हैं । सूक्ति सुधाकर की दो सूक्तियों में मुनियों द्वारा पूजित हरि-हर की भक्ति का उपदेश दिया गया है[1]। इसी के दो अन्य श्लोकों में शिव और विष्णु का तादात्म्य स्थापित करते हुये उन्हें एकही सत्ता के दो रूप माना है ।[2] शिव द्वारा अर्धनारीश्वर रूप में अर्ध भाग पार्वती को देने से तथा हरिहर रूप में अर्ध भाग विष्णु को देने से शिव के आश्रितों की दशा बताते हुये किसी याचक कवि ने धारणा व्यक्त की है कि हरिहर में शैव तत्व की प्रधानता है । जिस प्रकार शिव और शक्ति के समन्वय अर्धनारीश्वर को शिव का ही एक स्वरूप समझा जाता है, उसी प्रकार वह भी हरिहर में हरि की सत्ता को गौण करके शिव को महत्ता देता है[3]

---

1- मुनिगण भयंकर या सुन्दर स्वरूप वाले, त्रिनेत्र या द्विनेत्र, उमापति या रमापति शंकर या नारायण को भजते हैं (यहाँ शिव और विष्णु के विशेषण आद्योपान्त एक साथ चलते हैं) । सच्चित्स्वरूप और दयानिधान, देवाधिदेव और सद्धर्मों के आधार, प्रेम का विस्तार करने वाले, संसार के सारभूत शंकर या नारायण का, हे लोगों भजन करो ।

—सूक्ति सुधाकर, हरिहरसूक्ति, श्लोक 2, 3,

2- विष्णु ही शिव हैं और शिव ही विष्णु हैं । इन दोनों में लेशमात्र भी अन्तर नहीं है । इस प्रकार सिद्ध, मुनीश्वर, निरभिमानी, सज्जन और महान् यति सदा कहते हैं। विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ शिव हुये हैं और शिव ही लक्ष्मी युक्त भगवान् विष्णु हुये हैं । इस प्रकार वैष्णवी और शैव दोनों शक्तियाँ सम्मिलित होकर इस सारे विश्व को रचती हैं ।

—वही, हरिहरसूक्ति, श्लोक 1 तथा 4,

2- (यहाँ पर शिव और विष्णु को एक ही सत्ता के दो नाम बताते हुये दोनों में तदात्म्य स्थापित किया गया है, जब कि हरिहर प्रतिमाओं में शिव और विष्णु का समन्वय होते हुये भी दोनों के लक्षण भिन्न पार्श्वों में प्रथक् रहते हैं) ।

3- (हे राजन्) भगवान् शिव का (हरिहरस्वरूप में) आधा भाग तो विष्णु भगवान् ने ले लिया और (अर्धनारीश्वर स्वरूप में) आधा भाग पार्वती ने । इस प्रकार शिव के अस्तित्वहीन हो जाने पर उनके आश्रित निराधार होकर अन्यत्र चले गये । जैसे उनकी जटा की गंगा समुद्र में, चन्द्रकला आकाश में, ग्रैवेयक शेषनाग पाताल में, सर्वज्ञता और अधीश्वरता आपके पास चली गई, परन्तु भिक्षाटन वृत्ति मेरे पास आगई है ।

—संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ, पृ0 123/185,

(एक तरह से यहाँ पर विष्णु और (शिव पत्नी) पार्वती का भी समन्वय हो जाता है, क्योंकि जब शिव का अर्ध भाग विष्णु ने ले लिया और शेष अर्ध पार्वती ने तो शिव के स्थान पर विष्णु और पार्वती का आधा- आधा भाग रह जाता है ।)

स्तुति कुसुमांजलि जैसी कुछ स्तुतियाँ भी अन्य संग्रहों में भी संकलित हैं, जिनमें शैव विशेषणों का प्रथम अक्षर निकाल देने पर वैष्णव अर्थ हो जाता है । ऐसी पहली स्तुति में पंचवक्त्र अर्धनारीश्वर और चक्रपाणि[1] तथा दूसरी स्तुति में रावण के उपास्य वृषभारूढ़ चन्द्रमौलि और गजेन्द्र के मोक्षदाता, प्रद्युम्न के जनक, गरूड़ारूढ़ मुकुटधारी का स्तवन है । स्पष्ट है कि यहाँ कृष्ण और शिव का तादात्म्य है, जिनके चरण-कमलों को ब्रह्मा और शिव से पूजित बताया है ।[2] तीसरी स्तुति में गंगा को कमलदलवत् धारण करने वाले, वृषभध्वज, सृष्टिसंहारक, राम के उपास्य, शुभ्रवर्ण, कैलाशवासी तथा पृथ्वी को कमलदलवत् ले आने वाले, गरूड़ध्वज, ब्रह्मा और शिव के उपास्य, मकरकुण्डल धारी, ~~गरूड़ध्वज, ब्रह्मा और शिव के उपास्य, मकर-कुण्डल धारी~~, गरूड़ारूढ़ शेषशायी से कल्याणार्थ प्रार्थना है । इस स्तोत्र में शिव के अर्धनारीश्वर और विष्णु के कृष्ण, वाराह तथा शेषशायी स्वरूप का अधिग्रहण है[3]। चौथे स्तोत्र में शंकरनारायण

---

1- अर्धभाग में विराजमान नारी रूप से सुशोभित (अबलाढ्य विग्रहश्रीः), देव संपूजित (अमर्त्यनतिः), अक्षमालधारी (अक्षमालयोपेतः), पंचवक्त्र (पंचक्रमोदितमुखः) तथा ~~/~~ शक्ति की अधिकता से सुन्दर देह वाले (बलाढ्यविग्रहश्रीः), मनुष्यों से संपूजित (मर्त्यनतिः) क्षमा के भण्डार (क्षमालयोपेतः), चक्र धारण करते ही प्रसन्न हो जाने वाले (चक्रमोदितमुखः), अजन्मा शंकरनारायण सदैव रक्षा करें ।

—संस्कृत-सूक्तिसागर , पृ0 7/1,
—सुभाषितसुधारत्नभाण्डागारम्, पृ0 22/3,
—बृहत्स्तोत्ररत्नाकर, पृ0 331/3,

(इन स्तोत्रों में हरिहरपरक अर्थ एक साथ भी चल सकता है, जैसे अर्धभाग में विराजमान नारी रूप से सुशोभित, शक्ति प्राचुर्य के कारण सुन्दर देह वाले, देव तथा मानव संपूजित, अक्षमालधारी, क्षमा के भण्डार, पंचवक्त्र, चक्रधारण करते ही प्रसन्न हो जाने वाले अजन्मा भगवान् शंकरनारायण सदैव रक्षा करें )॥

2- गौओं के स्वामी नन्दी के आरोही (गवीशपत्रः), हिमालय पुत्री पार्वती के कष्टहर्ता (नगजार्त्तिहारी), कार्तिकेय के पिता (कुमारतातः), चन्द्रशेखर (शशिखण्डमौलिः), रावण द्वारा पूजित चरण-कमलों वाले (लंकेशसम्पूजितपादपद्मः) तथा पक्षियों के स्वामी गरूड़ के आरोही (वि * ईशपत्रः), गज की पीड़ा दूर करने वाले (गजार्त्तिहारी), प्रद्युम्न रूप कामदेव के पिता (मारतातः), मोरमुकुटधारी (~~शशि~~ शिखण्डमौलिः), ब्रह्मा और शिव द्वारा पूजित चरण-कमलों वाले (क+ ईशसम्पूजितपादपद्मः), अजन्मा भगवान् शंकर- नारायण आपकी रक्षा करें ।

—सं0सू0, पृ07/2, सु0सु0भा0, पृ022/5,
बृ0र0, पृ0 331/4,

3- स्वामी कार्तिकेय के जनक, गंगा को कमलदलवत् धारण किये हुये, शरीर के वाम भाग में पत्नी को धारण करने वाले, प्रलयकाल में जन समूह का नाश कर देने वाले, वृषभध्वज, रामचन्द्र के उपास्य, चन्द्रमा सदृश शुभ्रवर्णी, कैलाशवासी, काम के शत्रु तथा प्रद्युम्न रूप कामदेव के पिता, (वाराह रूप में) पृथ्वी को कमलदल के समान सरलता से ले आने वाले, लक्ष्मी को सदा साथ रखने वाले, गरूड़ध्वज, ब्रह्मा और शिव के उपास्य, (कृष्णरूप में) मकरकुण्डलधारी, गरूड़ारोही और शेषशायी भगवान् शंकरनारायण आपके पाप नष्ट करें ।

के विशेषण हैं—भुजा में नाग, सिर पर गंगा और चन्द्रमा, अर्ध पार्श्व में पार्वती, अंगुली पर गोवर्धन, सिर पर मोर मुकुट, हाथ में गदा और पार्श्व में गौ तथा लक्ष्मी[1]। इस प्रकार के पाँचवें स्तोत्र में कार्तिकेय तथा प्रद्युम्न के पिता, पार्वती तथा लक्ष्मी के सहवासी, शंख तथा आकाशवर्णी, काल, वृषभ तथा गरुड़ के आरोही, गंगा, सर्प, पिनाक, पृथ्वी तथा गोवर्धनधारी का स्तवन है[2]।

हरिहर की दो स्तुतियों में उनकी शक्तियों का वार्तालाप है । पहली में पार्वती और लक्ष्मी परस्पर एक दूसरे की विशेषताओं—जैसे लक्ष्मी की चंचलता, पार्वती का कपाली की पत्नी होना, दोनों की क्रमशः समुद्र तथा हिमालय से उत्पत्ति—पर व्यंग्य करती हैं, जिससे हरिहर मन्द-मन्द मुस्कराते हैं[3] और दूसरी स्तुति में शंकर-नारायण द्वारा गंगा तथा कुब्जा से प्रेम करने पर पार्वती एवं लक्ष्मी का उनके प्रति उपालम्भ है[4] । दो स्तोत्रों में हरिहर के श्वेत

1- हाथ के अग्रभाग में नाग आवेष्टित, गंगा और पार्वती से संयुक्त, सर्प का भुजबन्धधारी, अर्धनारीश्वर तथा अंगुली पर गोवर्धन धारण किये, गौ और लक्ष्मी से संयुक्त, गदा एवं मोरमुकुटधारी, लक्ष्मीसहचर, अजन्मा भगवान् शंकरनारायण आपकी सदैव रक्षा करें ।
—सं०सू०, पृ० 7/5, सु०सु०भा०, पृ० 22/4, शा०र०पृ० 331/5

2- स्वामी कार्तिकेय के पिता, पार्वती के साथ विलास करने वाले, शंख सदृश शुभ्र, काल और वृषभ के आरोही, गंगा एवं सर्पधारी, पिनाक में रुचि रखने वाले तथा प्रद्युम्न रूप कामदेव के पिता, लक्ष्मी के साथ विलास करने वाले, आकाश के समान नीलवर्ण, ऐश्वर्याधिपति, गरुड़ारोही, पृथ्वी एवं गोवर्धनधारी, वैकुण्ठवासी भगवान् शंकरनारायण आपकी रक्षा करें ।
—सं०सू०, पृ०7-8/6, सु०सु०भा०, पृ० 22/6

3- पार्वती ने लक्ष्मी से कहा—'चंचले । कुछ बताओ तो ।' लक्ष्मी बोलीं—'कहो कपाली की पत्नी ।' पार्वती ने पूछा—'तुम्हारे पिता कौन हैं ?' लक्ष्मी ने बताया— ~~लक्ष्मी~~ 'समुद्र।' तो पार्वती ने कहा कि भला समुद्र से सन्तान उत्पन्न होने की बात पर कौन विश्वास करेगा ? लक्ष्मी ने उत्तर दिया— 'वही जो पत्थर से सन्तान उत्पन्न होने पर विश्वास कर सकता है ।' इस प्रकार पर्वतराज हिमालय और सिन्धुराज क्षीर की कन्याओं की वाक्चातुरी सुनकर मुस्कराते हुये हरिहर की प्रसन्नता आपके विघ्न दूर करे ।
— सं०सू०, पृ० 8/9, सु० भ०सू०, पृ०222/348

4- हमें ही पाने के लिये तुमने कामदेव को नष्ट किया तथा समुद्र को मथा था, परन्तु अब कुमार्ग तथा अनेक मार्गों से चलने वाली गंगा और कुब्जा को सिर पर छिपाते तुम्हें लज्जा नहीं आती । इसलिये अब हे हरि-हर । स्वभावतः वक्रगामी तथा दुष्ट स्वभाव वाली गंगा और कुब्जा को ही मनाओ, हमारा गला छोड़ो । इस प्रकार क्रोधपूर्वक पार्वती और लक्ष्मी ने जिन से यह बातें कहीं वे (हरिहर) आपकी रक्षा करें ।
—सं०सू०, पृ० 8/11, सु०सु०भा०, पृ० 22-23/8

एवं श्यामवर्ण की उपमा गंगा और यमुना के संगम से दी गई है[1] तथा एक में शिव और विष्णु के समान विशेषण आद्योपान्त एक साथ वर्णित हैं। इसमें गंगा त्रिनेत्र और मुण्डमालधारी, दक्ष-यज्ञ-विध्वंसक, श्मशानवासी और वृषभारोही कपाली तथा श्रीवत्स, शंख और वनमालधारी, बलि-यज्ञ-विध्वंसक, गरुड़ारोही द्वारकावासी का समन्वय है।[2]

## शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ

मध्यकाल में मूर्ति-निर्माण के गत्यवरोध के साथ नवीन लक्षणों का विकास तथा शिल्पशास्त्रीयग्रन्थों का निर्माण भी अवरुद्ध हो गया। इस काल के उत्तर-भारतीय प्रमुख सूत्रधारों में शिल्परत्न के रचयिता श्रीकुमार के अतिरिक्त मण्डन का ही नाम लिया जा सकता है। मण्डन ने १५ वीं शती में चित्तौड़, एक लिंग जी आदि के कलावैभव का विकास करने के अतिरिक्त देवतामूर्तिप्रकरणम् और रूपमण्डन जैसे शिल्प शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इन दोनों ही ग्रन्थों में अर्धनारीश्वर, कृष्ण कार्तिकेय, हरिहरपितामह, सूर्यहरि कृष्णशंकर, शिवनारायण, हरिहर आदि की

---

१. हरिहर के श्याम और श्वेत वर्ण मिश्रित शरीर की नाभि से निःसृत वह कमल रक्षा करे, जो ऐसा जान पड़ता है मानो गंगा और यमुना के संगम पर ही उत्पन्न हुआ हो।

-- सं०सू०, पृ० ७।३; बृ०र०, पृ० ३३१।२

कोई देवता अपने श्याम और श्वेतवर्ण से तीर्थराज प्रयाग की भांति गंगा और यमुना के संगम की शोभा धारण कर रहा है।

-- सं०सू०, पृ० ८।१०; सु०सु०भा०, पृ० २२।१

२. क्रमशः शंख और कपाल से शोभित हाथों वाले, पुष्प एवं मुण्डमालधारी, द्वारकापुरी और श्मशानवासी, गरुड़ और नन्दी के आरोही, दो और तीन नेत्र सम्पन्न, बलि तथा दक्ष के यज्ञ-विध्वंसकारी, लक्ष्मी एवं पार्वती के प्रिय तथा श्रीवत्स और गंगाधारी हरिहर आपके पाप हरें।

- सं०सू०, पृ० ८।८; सु०सु०भा० पृ० २३।६

संयुक्त मूर्तियों का उल्लेख है । यह ध्यान देने योग्य है कि मण्डन ने इन सबको शिव-मूर्तियों की संज्ञा दी है । जिस प्रकार शंख, चक्र, गदा, पद्म के स्थान-भेद से विष्णु के चौबीस स्वरूपों का निर्माण हो जाता है, उसी प्रकार शिव और विष्णु के समन्वय से बत्तीस प्रकार की मूर्तियाँ बन सकती हैं[१]। परन्तु खेद है कि विस्तार भय से मण्डन ने सभी के लक्षण न देकर अपने दोनों ग्रन्थों में केवल हरिहर-मूर्ति के निर्माण विधान को ही किंचित् शब्द-भेद के साथ सूत्रबद्ध किया है । मण्डन ने हरिहरमें (दक्षिणार्ध) सदाशिव और (वामार्ध) हृषीकेश का समन्वय रखते हुये उन्हें क्रमशः श्वेत और नील-वर्ण बताया है । उनके पार्श्वों में वृषभ तथा गरुड़ का होना आवश्यक है और त्रिशूल-धारी सदाशिव का एक कर वरद मुद्रा में हो तथा चक्रधारी हृषीकेश का स्वरूप-विधान स्वयं रूपमण्डन से भिन्न है क्योंकि मण्डन के अनुसार सदाशिव के सोलहभुजी होते हुये भी उनके किसी भी कर की वरदमुद्रा नहीं होती है ।[३] इसी प्रकार हृषीकेश के वामकरों में पद्म तथा शंख रहता है । वे चक्र दक्षिण ऊर्ध्व में और पद्म वाम ऊर्ध्व में धारण करते हैं ।[४]

आयुध-क्रम की दृष्टि से विद्यार्णव तन्त्र के हरिहर लक्षण रोचक हैं । सम्पादक के अनुसार १५२० ई० से १७२० ई० के मध्य किसी समय रचित इस ग्रन्थ में परम्परा के विरुद्ध हरिहर को वैष्णव मूर्तियों में सम्मिलित करते हुये उन्हें लक्ष्मी-नारायण के समान बनाने का निर्देश है । श्वेत तथा श्यामवर्णी हरिहर के स्वाभाविक दक्षिण कर में त्रिशूल तथा अतिरिक्त दक्षिण कर में शंख होना चाहिये । वह स्वाभाविक वाम में चक्र धारण किये हों तथा अतिरिक्त वाम अभय मुद्रा में हो ।[५]

---

१. कृष्णशंकरसंयोगाद्द्वात्रिंशद्भेदमूर्तयः । — देवतामूर्तिप्रकरणम् , ६।५८

२. वही, ६।५६-५७; रूपमण्डनम् ४।३०-३१

३. रूपमण्डनम् , भूमिका, तालिका १६

४. वही, भूमिका, तालिका १४

५. आइकनोग्रैफी आफ विद्यार्णव तन्त्र, पृ० २५

आयुधों की यह असाधारणता अरकन्डनल्लूर ( द० अर्काट, अरयिनिनादेश्वर शिव मन्दिर), हैलेबिड(हौयसलेश्वर शिव मन्दिर), चिरालि ( त्रिची, विरट्टेश्वर शिव मन्दिर), चिदम्बरम् ( नटराज मन्दिर), एकलिंग जी ( उदयपुर, विष्णुमन्दिर) आदि की हरिहर प्रतिमाओं में भी उपलब्ध होती है ।[१] हरिहर में शिव और विष्णु का समन्वय होते हुये भी अर्धनारीश्वर की भाँति उन्हें प्राय: शिव का ही एक स्वरूप माना जाता है । इसीलिए अधिकांश लक्षण ग्रन्थों में उनकी गणना शैव प्रतिमाओं में हुई है ।[२] तन्त्रकार द्वारा हरिहर में पार्श्व-निर्देश न करने से यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि वह प्रत्येक को किस रूप में समन्वित करना चाहता है । वाम कर का चक्र विष्णु का विशिष्ट आयुध है, परन्तु हरिहर में अभयमुद्रा प्राय: हर की रहती है ।[३] दूसरी ओर दक्षिण पार्श्व में शिव और विष्णु दोनों के प्रतीक क्रमश: त्रिशूल एवं शंख हैं । इस प्रकार दोनों पार्श्वों में शैव और वैष्णव एक-एक प्रतीक होने से उनकी यथार्थ स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती । हाँ, जिन ग्रन्थों में शिव को दक्षिण पार्श्व दिया है वहाँ हरिहर की गणना शैव स्वरूपों में हुई है । इससे इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ हरिहर को वैष्णवमूर्तियों में सम्मिलित करके सम्भवत: तन्त्रकार विष्णु को दक्षिण पार्श्व देते हुये उन्हें महत्ता दे रहा है ।

इस कालावधि के अन्य लक्षण ग्रन्थकार हैं श्री कुमार । इन्होंने लिंग लक्षण बताते हुये हरिहर के लिये अर्धनारायण शब्द का प्रयोग किया है ।[४] इनकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि इन्होंने शैव-प्रतिमाओं के मूर्ति-विधान में हरिहर को सम्मि-

---

१. श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल का लेख - श्री एकलिंग जी का एक अज्ञात विष्णुमन्दिर, राजस्थान भारती ( मार्च, १९६६ ), पृ० ११६ तथा प्रस्तुत लेखक का लेख, 'इनके नाम मीरां मन्दिर क्यों ?' भारत रविवासरीय साहित्य परिशिष्ट, ७ मई, १९६७

२. देवतामूर्ति प्रकरणम् , अ० ४; मानसोल्लास, ३।१; काश्यपशिल्पम्, पटल, ७३; उत्तरकामिकागम, पटल ६० ; शिल्परत्न, अ० २२

३. काश्यपशिल्पम् पटल ७३; शिल्परत्न , अ० २२

४. ~~वही २२।१२१-१२६~~ शिल्परत्न ( उत्तरभाग ), अ०२।४

लित करके आगे शंकरनारायण का स्तवन भी किया है ।[1] श्रीकुमार के अनुसार शिरश्चक्रधारी हरिहर का वामार्ध श्याम वर्ण और दक्षिणार्ध प्रवालवर्ण होना चाहिये । कटक, तूरुण, शंख तथा परशुधारी हरिहर का एक दक्षिणाकर अभयमुद्रा में हो । उनके दक्षिण नेत्र में उग्र दृष्टि हो तथा वाम नेत्र में शीतलता । ललाट के दक्षिणार्ध में किंचित् प्रकाशित तृतीय नेत्र का होना आवश्यक है तथा वह विष्णु और शिव के अनुकूल अलंकरण धारण किये हों ।[2]

## पुरातात्विक प्रमाण

हिन्दी-साहित्य के आदिकाल से ही उत्तरीभारत विदेशी अतिक्रमणों से पददलित हो रहा था । मध्यकाल में और भी अधिक दुर्दशा थी । पूरे समाज के साथ हिन्दू-धर्म भी आक्रान्त था । हिन्दुओं की कंठी-माला, यज्ञोपवीत-धारण, गंगा-यमुना स्नान पर प्रतिबन्ध के अतिरिक्त उनके इष्टदेव -विग्रहों तथा देवायतनों का भी भंजन हो रहा था । बेचारी जनता निरीह बनी यह सब देख और सहन कर रही थी । ऐसी परिस्थिति में हिन्दू धर्म का अन्तर्मुखी हो जाना स्वाभाविक था और इष्टदेव को विशाल देवालय के स्थान पर मन-मन्दिर में प्रतिष्ठापित किया गया । विष्णु और शिव के मूर्त-विग्रहों का स्थान शालग्राम-शिला तथा शिवलिंग ने लिया । मुगल-शासक औरंगजेब तो कट्टर मुसलमान होने के अतिरिक्त कला-विरोधी भी था । ऐसी स्थिति में लक्षण ग्रन्थकारों की बुद्धि तथा शिल्पियों की छेनियां कुण्ठित हो गईं तो कोई आश्चर्य नहीं । शताब्दियों से प्रवाहित भारतीय मूर्तिकला की अक्षुण्ण धारा अवरुद्ध हो गई । यही कारण है कि इस काल में हम नवीन मंदिरों तथा मूर्तियों का निर्माण बहुत कम पाते हैं । यहाँ हरिहर स्वरूप के निर्माण के लिये अब से एक नवीन और सूक्ष्म उपकरण-कागज- का प्रयोग अवश्य मिलने लगता है । सम्भव है पहले भी चित्रशालाओं में देवों को प्रदर्शित किया जाता हो, परन्तु काल के दीर्घ अन्तराल में उनका विनाश अस्वाभाविक नहीं है ।

---

१. वही, २५।७६

२. शिल्परत्न (उत्तर भाग), अ०२२।१२६-१३६

१३७५ वि० —१५०० वि०

मध्यकाल में सर्वप्रथम सोनपुर के हरिहरनाथ मन्दिर को लिया जा सकता है। इसके निर्माणकाल का विवरण तो नहीं मिल सका, परन्तु अनुमानतः यह इसी अवधि का है। गंगा और गंडक के संगम पर स्थित हरिहरक्षेत्र का यह मन्दिर बिहार के सारण जनपद में पड़ता है। प्रतिवर्ष कार्तिक पूर्णिमा को यहाँ एक विशाल मेला लगता है, जिसे एशिया का सबसे बड़ा मेला माना जाता है। एक जनश्रुति के अनुसार वैष्णव और शैव संघर्ष के समय दोनों सम्प्रदायों के प्रतिनिधियों का एक महा सम्मेलन हरि-हर क्षेत्र में हुआ था। उसमें यह निर्णय किया गया कि हरि और हर दोनों ही सर्वेश्वर भगवान के स्वरूप हैं, अतएव उनके उपासकों के मध्य पारस्परिक संघर्ष का अन्त होना चाहिये। ऐसा विश्वास है कि इसी आधार पर हरिहरनाथ की प्रतिष्ठा हुई।[1] इस सम्बन्ध में कुछ आख्यान भी प्रचलित हैं। जैसे जय और विजय नामक दो भाइयों में से जय शैव और विजय वैष्णव था। एक बार राजा मारुत के यज्ञ का निमन्त्रण पाकर दोनों भाई वहाँ एक साथ गये, परन्तु दक्षिणा में प्राप्त सामग्री के विभाजन पर दोनों में विवाद उत्पन्न हुआ और उन्होंने परस्पर एक दूसरे को शाप दे डाला। अगले जन्म में यह दोनों गज और ग्राह हुये। पूर्व जन्म के वैमनस्यवश ग्राह ने गज को पकड़ लिया और गज के आर्तनाद को सुनकर विष्णु ने उसकी प्राण-रक्षा की। उससमय विष्णु ने अपनी तथा शिव की अभिन्नता भी बताई। तभी से यह प्रदेश हरिहर क्षेत्र कहा जाने लगा।[2] एक अन्य मान्यता के अनुसार सीता स्वयंवर में जनकपुर जाते समय भगवान् राम ने यहाँ पर महादेव शिव का पूजन किया था। इसी आधार पर सोनपुर को हरिहरक्षेत्र माना जाने लगा।[3]

मध्यकाल के प्रथम सवा सौ वर्षों में (१३७५ वि० से १५०० वि० तक)

---

१. बिहार के जनसम्पर्क विभाग द्वारा प्रकाशित 'हरिहर क्षेत्र मेला' नामक पत्रक ८१९६८ई०.

२. हरिहर क्षेत्र और पुष्कर के दर्शनीय मेले, साप्ताहिक भारत, रविवार, २२ नवम्बर, १९६४ ई०

३. दि सोनपुर फेयर, लीडर, रविवार, ११ दिसम्बर, १९६६ ई०

दक्षिण भारत में कुछ ऐसे अभिलेख उत्कीर्ण हुये थे, जिनमें हरिहर स्तुति अथवा हरि-हर मन्दिरों के निर्माण, जीर्णोद्धार एवं उन्हें दान देने का वर्णन है। हौसगुन्ड के एक शिलालेख में होयसल शासक वीर बल्लालदेव की आज्ञा से उसके महामन्त्री तोय सिन्गेय-दण्डनायक के पुत्र देवप्प दण्डनायक द्वारा कंचिकादेवी के अलंकरण एवं प्रकाश के लिये एक ग्राम दान देने का उल्लेख है।[1] देवप्प द्वारा यह दान हरिहर देव की साक्षी में देना उसके हरिहर उपासक होने का प्रमाण है। इसी प्रकार सम्राट् जनमेजय ने अपने माता-पिता को विष्णु-लोक प्राप्त कराने के उद्देश्य से हरिहर के सम्मुख उनका श्राद्ध-कार्य किया था। इस श्राद्ध के समय जनमेजय ने तुंगभद्रा, अगस्त्याश्रम, पाषाण तथा भीम नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र भी हरिहर की साक्षी में ही दान किया था।[2] १३६६ ई० के एक शिलालेख में वीर बुक्कण्ण-ओडेयर के पुत्र कम्पण्ण-ओडेयर द्वारा अपने शासनकाल में हरिहरनाथ के स्नानागार[3] तथा १३७७ ई० के शिलालेख में बुक्कराय के पुत्र विरुप्पण्ण ओडेयर के गृहमन्त्री रामरस द्वारा सूर्य ग्रहण के समय अपने इष्टदेव के प्रति अति प्रेम के कारण हरिहरपुर नामक अग्रहार की स्थापना करने का उल्लेख है।[4] अग्रहार के नाम से ज्ञात होता है कि रामरस के इष्टदेव हरिहर ही होंगे।

'हरिहरायनमः' से प्रारम्भ १३७६ ई० के शिलालेख में हरिहर की अत्यन्त काव्यात्मक स्तुति हुई है। शिलालेख में सपत्नी भाव से रहने में कुशल सागर एवं महीधर की पुत्रियाँ लक्ष्मी तथा पार्वती और वर्षा एवं शरद्कालीन मेघों के वर्ण से समन्वित विश्व के उत्पादक तथा संहारक, जगत्कारण भगवान् हरिहर से समृद्धि की प्रार्थना की गई है। इसी शिलालेख में बुक्क पुत्र हरिहर द्वारा चिक्कडक नामक अग्रहार का तिहाई भाग हरिहरको देने का वर्णन है।[5]

---

१. एपिग्रैफिया कर्नाटिका, भाग ८, सागर १३५, पृ० ११६
२. वही, भाग ८, तीर्थहल्लि १५७, पृ० १६५ ( १३६७ ई० के इन ताम्रफलकों की लिपि देवनागरी है )।
३. वही, भाग ४, येलन्दूर ६४, पृ० ३३
४. वही, भाग ८, तीर्थहल्लि १२५, पृ० १८७
५. वही, भाग ११, दावणगेर ३४, पृ० ४२

१३८२ ई० के शिलालेख में कहा है महाराय हरिहरराय ने हरिहरेश्वर की आज्ञा से पम्पाक्षेत्र के विरूपाक्ष तथा हरिहरेश्वर के सम्मुख रामदेवय के पुत्र लिंग रस को शांकरिपुर (ग्राम) प्रदान किया, जिससे हरिहरेश्वरमन्दिर में वेदों और शास्त्रों का गान होता रहे ।[१] दानकर्ता का नाम, दान का साक्षी और उद्देश्य यह सिद्ध करता है कि हरिहरराय हरिहर का भक्त था । उसने यह दान हरिहरेश्वर की आज्ञा से ही दिया था,जो उसके इष्टदेव रहे होंगे ।

१३९७ ई० के दो शिलालेखों में से एक में महामण्डलेश्वर मल्लप-ओडेयर के पुत्र नारायण देव ओडेयर द्वारा अपने चाचा हरिहर महाराय के दीर्घ जीवन, स्वास्थ्य एवं समृद्धि के लिये प्रताप-हरिहरपुर नामक अग्रहार की स्थापना करने[२] तथा दूसरे में हरिय गौड द्वारा सूर्यास्त के समय हरिहरमन्दिर के दक्षिणी द्वार पर प्राण त्यागने का वर्णन है ।[३]

१४१० ई० के शिलालेख में देवराय महाराय द्वारा हरिहर क्षेत्र के ब्राह्मणों तथा भगवान् हरिहर के लिये दान देने का उल्लेख है । इसी शिलालेख के प्रारम्भ में श्री एवं गौरी हेतु मुक्ता-मणि, अभावग्रस्त व्यक्तियों के चिन्तामणि उपनिषदों के शिखामणि अमूल्य देवों के एकाकी अलंकरण मणि, त्रिलोकरक्षक भगवान् हरिहर से कल्याणकामना की गई है ।[४]

हम्पापुर के विरूपाक्षेश्वर मन्दिर का शिलालेख हरिहरदेव के स्मरण से समाप्त होता है[५] और हरिहरेश्वर मन्दिर का शिलालेख (१४२४ ई०) हरिहरायनमः से प्रारम्भ हुआ है । इसमें हरिद्रा बांध में दरार पड़ जाने से भगवान् हरिहर की साज-सज्जा एवं प्रकाश की वृत्ति समाप्त हो जाने और फिर इस कार्य को चलाने के लिये हरिहर भगवान् के ब्राह्मणों को धनराशि देने का वर्णन है । लेख का उत्कीर्णकर्ता मनुकुल उत्पन्न माचिदेव का पुत्र धरणोज इस शासन को उत्कीर्ण कर सकने में हरिहर का अनुग्रह स्वीकार करता है ।[६]

---

१. वही, भाग ११, दावणगेर ६८, पृ० ६३

२. वही, भाग ३, तिरुमकूड्लु-नरसीपुर ६४, पृ० ८१

३. वही, भाग ११, व दावणगेर, ११६।७३

४. वही, भाग ११ ,, २३, पृ० ३१

५. वही, भाग ६, चिक्कमगलूर १४२, पृ० ५५

६. वही, भाग ११,दावणगेर २६,पृ० ३८

जहाँ तक हरिहर की मूर्तियों का प्रश्न है, इस काल में उनकी संख्या नगण्य है । १३३८ ई० में निर्मित शृंगेरी के विद्याशंकर मन्दिर के गर्भगृह से उत्तर में एक ताम्र हरिहर को मिला है । यहाँ वह चक्र ( वाम) तथा त्रिशूल (दक्षिण) धारण किये त्रिभंगी मुद्रा में शवारूढ़ हैं । इस दृष्टि से यह हरिहर की अद्वितीय प्रतिमा है । यद्यपि त्रिभंगी मुद्रा अन्य कुछ हरिहर प्रतिमाओं में भी मिलती है तथापि उनमें ऐसे आसन का सर्वथा अभाव है । सम्भव है यहाँ हरिहर में नटराज का समन्वय हो । प्रमुख आकृति के वाम पार्श्व में करबद्ध मुद्रा में खड़ा व्यक्ति गरुड़ का मानव रूप हो सकता है । हरिहर के शिरश्चक्र में सिर के ऊपर कीर्तिमुख उत्कीर्ण है तथा स्वयं उनका एक वाम कर शंख धारण किये कटिहस्त मुद्रा में है और शेष चतुर्थ कर वरद मुद्रा में । शिरोभूषा में जटा और किरीटमकुट का अन्तर स्पष्ट है । इसी मन्दिर के महामण्डप के दक्षिण में गणपति मूर्ति के स्थान पर शनि की लौह-मूर्ति है । शनि की इस लघु मूर्ति के ~~स्थान पर शनि की लौह-मूर्ति है । शनि की मूर्ति के~~ पार्श्व में हरिहर की धातु से निर्मित मूर्ति है ।[१]

इस काल की अन्य हरिहर प्रतिमा चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ में देखी जा सकती है । महाराणा कुम्भा द्वारा १४४० ई० के लगभग निर्मित इस स्तम्भ के दूसरे खंड पर अर्द्धनारीश्वर तथा हरिहरपितामह के अतिरिक्त मुख्य प्रतिमा हरिहर की है । यहाँ चक्र, शंख (हरि), त्रिशूल तथा बीजौरा (हर)धारी हरिहर अर्धपर्यंक मुद्रा में आसीन हैं । हरि भाग में स्वामी को उठाये मानवाकार गरुड़ तथा हर पार्श्व में वृषभ की लघु आकृति है । स्थानीय परम्परा के अनुरूप मूर्ति की पीठिका पर 'श्रीहरिहर-मूर्तिः' उत्कीर्ण है । जहाँ तक हरिहर की आसनस्थ मूर्तियों का प्रश्न है, वह बहुत कम मिलती हैं । कालक्रम की दृष्टि से खजुराहो के पश्चात् इसी मूर्ति का स्थान है । कुछ अन्य आसनस्थ प्रतिमायें एकलिंग जी के कुम्भश्याम मन्दिर में मिलती हैं ।

---

१. साउथ इण्डियन श्राइन्स, पृ० ६३४

१५०० वि०- १६०० वि०

हरिहर-उपासना विषयक पुरातात्विक साक्ष्यों की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य के भक्तिकाल की उत्तर शताब्दी पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। इस अवधि में मन्दिर और अभिलेखों के अतिरिक्त मूर्तियों की संख्या बढ़ जाती है। यह मूर्तियां जहां देश के उत्तर और दक्षिण दोनों भागों से मिली हैं, अभिलेख दक्षिण भारत के ही हैं। टी० गोपीनाथ राव ने विरूपाक्ष के जिन श्रीशैलम फलकों का सम्पादन किया उनमें से पृथक फलक के दूसरी ओर प्रारम्भ में शम्भु, गणपति और विष्णु की वराह-मूर्ति का स्तवन हुआ है।[1] कई शिलालेखों से ज्ञात होता है कि विजयनगर शासक वीरन सिंह ने सिंहासनारूढ़ होने पर हरिहर[2] और अहोबल[3] ( जि० कर्नूल ) के हरिहर मन्दिरों को सभी प्रकार के दान दिये। प्रताप रुद्र महाराय के पुत्र को अन्य उपाधियों के अतिरिक्त एक साथ परम माहेश्वर और परम वैष्णव कहा जाना[4] उसकी धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक है। नीलकण्ठ प्रभुवर्मा की पत्नी तुलजा बाई हरिहर की भक्त थी क्योंकि उसने परिवार के कल्याणार्थ हरिहर-क्षेत्र में दीपमाला का निर्माण कराया था।[5] १५२० ई० का एक शिलालेख 'श्री हरिहराय नमः' से प्रारम्भ होता[6] है। तथा कृष्णदेव राय के ताम्रपत्रों का प्रारम्भ विष्णु के वराह रूप तथा शिव की स्तुति से होता है।[7] महाराय अच्युतराय के जिस शिलालेख में उसके द्वारा बल्लापुर (अच्युतरायपुर) के दो भाग भगवान् हरिहर के वार्षिक सत्र के लिये देने का उल्लेख है,[8]

---

१. एपिग्रेफिया इण्डिका, भाग १५ (१६१६-२०), पृ० २४
२. एपिग्रेफिया कर्नाटक, भाग ७, शिमोगा १, २६, ८४, ८५ क्रमशः पृ० १, १४, ३३
३. वही, भाग ३, नञ्जन्गूड १६ पृष्ठ ~~८७~~; मण्ड्य ५५, ११५, पृ० ४३, ५२; भाग ४, गुण्डलुपेट जागीर ३०, पृ० ४०; नागमंगल ५८, पृ० १२८
४. वही, भाग ११, दावणगेरे १०७, पृ० ७१
५. वही, भाग ११ ,, ३७, पृ० ४७ ६. वही, भाग ११, दावणगेरे १४६, पृ० ८८
७. एपिग्रेफिया इण्डिका, भाग १३ (१६१६-१७), पृ० १३१, भाग १४ (१६१७-१८), पृ० १६
~~८. एपि० क०, भाग ११, दावणगेरे, १८, पृ० ३८~~

वह "श्री हरिहराय नमः" से प्रारम्भ होता है ।[१] इसी के शासन काल में अन्नजिदेव के पुत्र अवसरदीक्षित ने अवसर-देमरस को मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से भगवान् हरिहर के नैवेद्य हेतु बेलुवहि और गड्ंगनरसि (ग्राम) प्रदान किये थे । प्रस्तुत शासनादेश के सुधारकर्ता करिय-लिपोज ने भी हरिहर मन्दिर के लिये बेलुवहि में कुछ भूमि दी थी ।[२] दावणगेर के एक शिलालेख में अच्युत नरेश मलपण्ण द्वारा श्री एवं गिरिजा से समन्वित हरिहर को कुन्दवाड नामक ग्रामदान करने का वर्णन है । यह दान हरिहर की मध्याह्नकालीन पूजा-अर्चना तथा सत्र में ब्राह्मणों के भोजन हेतु दिया गया था । "श्री हरिहरायनमः" से प्रारम्भ प्रस्तुत शिलालेख में काव्यात्मक स्तुति द्वारा हरिहर से कल्याणार्थ प्रार्थना है ।[३]

मन्दिर --

तिरुणालवेलि में इस शताब्दी का एक हरिहर मन्दिर भी है[४] जिसका स्थानीय नाम शंकरनारायण मन्दिर है । प्रस्तुत मन्दिर में हरिहर की एक कांस्य-प्रतिमा है, जिसका वामार्ध हरिवत् और दक्षिणार्ध हर के समान है । हरिहर को

---

१. एपि० क०, भाग ११, दावणगेर २८, पृ० ३८

२. वही, भाग ११, दावणगेर ३१, पृ० ४०

३. वही, भाग ११, दावणगेर २७, पृ० ३७, दैत्य-संहारक, परम कल्याणदायक, कन्दर्प-दर्प के नाशक, लंका में आतंक उत्पन्न करने वाले, कुरु-सम्राट् के संकल्पहन्ता, त्रिपुर के एकाकी संहारक, त्रिलोक में व्याप्त आतंक के कालान्तक, गुह के नाशक भगवान हरिहर ! समस्त संसार का कल्याण करें । जिन्होंने शैलसुता पार्वती और रमा के प्रणय - कलह में भवानी का पक्ष लिया तथा यह सोचकर कि इससे उनके चरण-कमल संकुचित न हो जायें, तुरन्त ही ह्रासोन्मुख चन्द्ररेख को धारण कर लिया, वह दीप्तिमान है । जिनकी चन्द्रज्योत्स्ना की रश्मियाँ हरिहर के कमल-मुख को आकर्षित करने के लिये रमा के वक्षस्थल पर अवगुण्ठन रूप में आच्छादित हैं और जिससे गिरिजा को ईर्ष्या होती है , पार्श्वों में इन्दिरा तथा शैलसुता युक्त हरिहर का वह स्वरूप तीनों लोकों को कल्याणदायक हो ।

४. साउथ इण्डियन इमैजेज आफ गाड्स एण्ड गाडेसेज्, पृ० १२५

ऊर्ध्व करों में शंख (वाम) और परशु (दक्षिण) है तथा अधोकर वरद (वाम) एवं अभय (दक्षिण) मुद्रा में हैं। समपाद मुद्रा में दोहरी पद्म-पीठिका पर खड़े हरिहर की शिरोभूषा में जटाजूट और किरीट मुकुट का स्पष्ट भेद है। जहां तक हरिहर के मूर्ति-उपकरण का प्रश्न है, डी०आर०थापर के अनुसार हरि की कांस्य प्रतिमाओं का सर्वथा अभाव है,[1] परन्तु हम शंकरनारायण मन्दिर की प्रस्तुत मूर्ति के अतिरिक्त शृंगेरी के विद्याशंकर मन्दिर में भी हरिहर की एक धातु-मूर्ति देख चुके हैं।[2]

मूर्तियां

इस काल की हरिहर मूर्तियां देश के उत्तर और दक्षिण दोनों भागों में उपलब्ध होती हैं। इनकी एक विशेषता इस बात में देखी जा सकती है कि वह एक-एक मन्दिर में एकाधिक संख्या में मिलती हैं। एकलिंगजी (उदयपुर) के कुम्भश्याम मन्दिर में हरिहर की आसनस्थ और स्थानक कई मूर्तियां हैं। मन्दिर के प्रवेश-द्वार के ऊपर आसनस्थ चतुर्भुजी हरिहर की भुजायें भग्न होने पर भी शिरोभूषा में जटाजूट और किरीट मुकुट स्पष्ट है। उनकी पार्श्ववर्ती गौण रथिकाओं में वैष्णवी (वाम) और शिवा (दक्षिण) की स्थानक मूर्तियां हैं। मन्दिर के बाह्य अलंकरण में नियोजित हरिहर की विविध प्रतिमाओं में से ( मार्ग के ओर की ) पूर्वी दीवार की स्थानक हरिहर मूर्ति उल्लेखनीय है। यहां गंगाधारी हरिहर के ऊर्ध्वकरों में अक्षमाल (दक्षिण) और डमरू (वाम) है तथा अधोकरों में गदा (दक्षिण) एवं चक्र (वाम)। अक्षमाल और डमरू शिव के विशिष्ट प्रतीक हैं और गदा तथा चक्र को विष्णु धारण करते हैं। शास्त्रीय विधान के अनुसार हर के दक्षिण करों में अक्षमाल तथा डमरू होना चाहिए था और वाम करों में गदा तथा चक्र। परन्तु शिल्पी की दृष्टि में जब हरि-हर वागर्थाविव संपृक्त हैं, फिर आयुधों के इस पार्श्व विभाजन की भी क्या आवश्यकता। आयुधों की यह असाधारणता हरिहर की कई अन्य प्रतिमाओं में भी मिलती है। मुद्रा की दृष्टि से हरिहर की आसनस्थ प्रतिमाओं की संख्या खजुराहो के बाद सर्वाधिक इसी मन्दिर में है।

---

१. आइकन्स इन ब्रान्ज, पृ० ६१

२. पीछे, पृ०१६४

कुम्भाकालीन अन्य हरिहर प्रतिमा चित्तौड़ के कुम्भस्वामी मन्दिर की जंघा पंक्ति में संलग्न है ।[1] यहां पद्मपीठिका पर समपाद मुद्रा में खड़े हरिहर ऊपर उठे हुये अधोकरों में चक्र (वाम) और आदमकद त्रिशूल (दक्षिण ) धारण किये हैं । उनका स्वाभाविक वामकर शंख धारण किये कटिहस्त मुद्रा में है और शेष में अस्पष्ट वस्तु है । हरिहर के वाम पार्श्व में खड़े चक्रधारी विष्णु-अनुचर के आधार पर दक्षिण-पार्श्विक आकृति को शिव-अनुचर मान सकते हैं । अस्पष्ट वस्तुधारी इस द्विभुजी व्यक्ति की शिरोभूषा पर विदेशी प्रभाव परिलक्षित होता है ।

एकलिंग जी के कुम्भश्याम मन्दिर के समान मदुराई के मीनाक्षी सुन्दरेश्वर शिव मन्दिर (१५ वीं शती ई० ) में भी हरिहर की कई प्रतिमायें हैं । इनमें से एक मूर्ति छायाचित्र में पर्याप्त विकृत लगती है । प्रस्तुत चतुर्भुजी हरिहर के एक वाम कर में शंख है तथा एक दक्षिण कर अभय मुद्रा में है । उनके पार्श्वों में दो उपासक भी खड़े हैं । चन्द्रेख युक्त हरिहर का दोहरा और दीर्घ जटाजूट उन्हें अन्य हरिहर प्रतिमाओं से भिन्न प्रदर्शित करता है । दूसरी मूर्ति में हरिहर के वामकर का गदा पृथ्वी पर रखा है और एक दक्षिण कर में परशु है । उनका अन्य दक्षिणाकर अभयमुद्रा में है तथा चतुर्थ कर में शंख है । वाम पाद विष्णु के अनुकूल अलंकृत है तथा दक्षिणाचरण नग्न । मदुराई की अन्य हरिहर मूर्ति के वाम कर में शंख तथा दक्षिण कर में परशु है । अन्य दक्षिण कर की अभयमुद्रा युक्त हरिहर का चतुर्थ कर कटिहस्त मुद्रा में है । हरिहर के दोनों पार्श्वों में विकराल शार्दूलों का निर्माण असामान्य है क्योंकि यह दुर्गा का वाहन है । यह तीनों मूर्तियां समपाद स्थानक मुद्रा में बनी हैं ।

नागूर (तंजौर) के नागराजस्वामि शिव मन्दिर के हरिहर भी शंख (वाम) तथा परशु (दक्षिण) धारण किये कटि हस्त मुद्रा में खड़े हैं । उनका शेष दक्षिण कर अभयमुद्रा में है । हरिहर के पैरों की वेषभूषा पूर्णतया विष्णु और शिव के अनुकूल है, क्योंकि जहां दक्षिण पाद नग्न है वाम पाद परिधानधारी । मूर्तिकला की दृष्टि से गोल्लवारियम्मागुदि ( श्री शैलम,कुरनूल) के अवशेषों में प्राप्त हरिहर मूर्ति नागूर हरि-हर के ही समान है । यहां वह केवल शंख के स्थान पर चक्र धारण किये हैं । जलवायु से

---

१. वरदा, वर्ष ६, अंक ४ के आधार पर वीरभूमि चित्तौड़, पृ० १८३

विक्षत होने के कारण पैरों की वेषभूषा छाया चित्र में अस्पष्ट है ।

१६०० वि० - १७०० वि०

१७ वीं शती विक्रमी से हरिहर की मूर्तियों और शिलालेखों में पर्याप्त कमी मिलने लगती है । यद्यपि इस काल में हरिहर के एक मन्दिर का निर्माण अवश्य हुआ है परन्तु समग्र दृष्टि से यह नगण्य ही है । सच कहा जाये तो देश जिस विशृंखल और संघर्षमय परिस्थितियों से निकल रहा था, उनमें इसे अस्वाभाविक भी नहीं कहा जा सकता है ।

शिलालेख —

इस काल के सभी शिलालेख दक्षिण भारत के हैं । १५५४ ई० के एक शिलालेख में बयिप्प-नायक के पुत्र कृष्णाप्प-नायक द्वारा नरसिंह जयन्ती के अवसर ~~जयन्ती के अवसर~~ पर हरिहरसत्र के मध्याह्नकालीन भोजन के लिये एक ग्रामदान करने का वर्णन है, जिससे उसके माता-पिता को पुण्य-लाभ हो । लेख के अन्त में दानप्प पुत्र कामरस के कल्याणार्थ कामना की गई है क्योंकि उसने हरिहर के छत्र हेतु ग्राम का दान किया था । श्री हरिहराय नमः' से प्रारम्भ प्रस्तुत शिलालेख की प्रमुख विशेषता है इष्टदेव का स्तवन, जिसमें हरिहर को श्री तथा गौरी के कर वल्लरियों से आवेष्टित कल्पवृक्ष कहा है ।[1] कृष्णाप्प नायक के ही अन्य शिलालेख (१५६१ ई० ) में हरिहर स्तुति के अतिरिक्त हरिहर के स्वरूप निर्माण का कारण भी बताया है । शिलालेख में समस्त लोकों के अधिपति , देवाधिदेव तथा देव-प्रमुख, शैव-वैष्णव आदि सभी की विरोधी धारणाओं के निवारक, मार्कण्डेय के वरदाता, हरि और हर के संयुक्त अवतार, गुहासुर के दर्प-विदारक, जिनके दो चरण-कमल उसके वक्ष पर अवस्थित हैं, जो स्वर्ग-नरक-पृथ्वी नामक तीनों लोकों से पूजित हैं, जो त्रिलोक की मनोकामनायें पूर्ण करने वाले हैं, पावन गुहारण्यवासियों को अभय प्रदाता, तुंगभद्रा के पूर्वी तटवासी , कूडलूरपुर के वरदायक अधिपति भगवान् हरिहर के घी, छत्र, तथा आवश्यक नैवेद्य के लिए कृष्णाप्प द्वारा ग्रामदान का वर्णन है । हरिहर से रक्षा-कामना करते हुये कहा गया है कि कुछ

---

१. एपि०क०, दावणगेर २२, पृ० ३०

लोगों के अनुसार संसार में एकमात्र देवता हरि हैं और अन्य के अनुसार केवल हर। प्रस्तुत सन्देह का निवारण करने के लिये उन्होंने कूडलूर में हरिहर का स्वरूप धारण किया।[१]

दावणगेर क्षेत्र के हरिहरेश्वर और बसवण्ण मन्दिरों में १५६२ ई० के दो शिलालेख संलग्न हैं। इनमें से पहले शिलालेख द्वारा ज्ञात होता है कि चैत्र शुद्ध पूर्णिमा को भगवान् हरिहर तथा उनकी पत्नियाँ - महालक्ष्मी और पार्वती —की रथयात्रा होती थी, क्योंकि विजयनगर शासक सदाशिव महाराय के शासनकाल में उसके तमोती हप्प ने गंगनरसि ग्राम को पुनर्विस्थापित कर प्रस्तुत रथयात्रा के लिये दान किया था। शिलालेख में लक्ष्मी तथा पार्वती की भुजा रूपी वल्लरियों से आवेष्टित कल्पवृक्ष रूप हरिहर से कल्याणकामना की गई है। भगवान् हरिहर ने गुहासुर को रसातल भेज दिया था और वेद उन्हें एकाकी तथा साकार रूप में प्रदर्शित करते हैं। इतने पर भी जो उनमें विभाजन करता है, उसे यह नरक में भेजेंगे।[२] बसवण्ण मन्दिर के शिलालेख में भी समस्त भुवनों के अधीश्वर, देवाधिदेव, शैव-वैष्णव संघर्ष के विनाशक, मार्कण्डेय के वर-दाता, तुंगभद्रा के पूर्वी तटवासी, कूडलूर के अलंकरण, अद्वैतस्वरूपधारी गुहासुर के अभियान के नाशक, भक्तों की मनोकामना पूरक, अवतारी भगवान् हरिहर तथा लक्ष्मी और पार्वती की रथयात्रा के लिये ग्रामदान का वर्णन है।[३] प्रस्तुत दोनों शिलालेखों का प्रारम्भ 'श्रीहरिहरायनमः' से होता है। हरिहर का स्तवन १६०८ ई० के भी एक शिलालेख में हुआ है।[४]

मन्दिर

इस शताब्दी का हरिहर मन्दिर तिरुपति में है। बालाजी नामक इस मन्दिर का निश्चित निर्माण-काल अज्ञात है तथापि कांजीवरम के वरदराज मन्दिर की पूर्वी दीवार के एक अभिलेख से मालूम होता है कि इसका निर्माण लगभग १५७० ई० के पूर्व हो चुका था। इस अभिलेख में विजयनगर शासक वेंकटपतिकालीन मन्दिर के महामन्त्री

---

१. वही, भाग ११, दावणगेर, २६, पृ० २६

२. वही, भाग ११, दावणगेर ३०, पृ० ३६

३. वही, भाग ११, दावणगेर ८३, पृ० ६६

४. वही, भाग ६, शृंगेरि ८, पृ० ६४

ताताचार्य द्वारा मन्दिर के विमान में स्वर्ण लगवाने का उल्लेख है ।[1] यदि मन्दिर इस से २५ वर्ष पूर्व बना हो, तो उसका निर्माण-काल १६ वीं शती ईसवी का मध्य-भाग (लगभग १७ वीं शती वि० का प्रारम्भ) माना जा सकता है ।

मन्दिर के गर्भगृह की प्रमुख प्रतिमा को दक्षिण में वेंकटेश और उत्तर में बालाजी कहा जाता है । हरेकृष्ण शास्त्री के अनुसार वेंकटेश को वेंकटरमन तथा श्रीनिवास भी कहते हैं और यह विष्णु का एक स्वरूप है ।[2] परन्तु जहां तक तिरुपति के बालाजी का प्रश्न है वह शिव और विष्णु के संयुक्त स्वरूप हरिहर की प्रतिमा है । तिरुपति पर्वत को प्रारम्भ में वृष-शैल कहते थे जो मन्दिर की शैव प्रकृति का द्योतक है । बाद में वैष्णव प्रभाव के कारण उसे शेष-शैल कहा जाने लगा ।[3]

डी०आर० थापर के अनुसार हरिहर और वेंकटेश में कोई आधारभूत अन्तर नहीं है । जहां हरिहर में वाम पार्श्व हरि और दक्षिण पार्श्व हर के लक्षणों से सम्पन्न होता है, वेंकटेश में वाम पार्श्व शंकर और दक्षिण पार्श्व नारायण के अनुकूल[4]। परन्तु तिरुपति की वेंकटेश प्रतिमा इन लक्षणों के अनुरूप नहीं है । यहां स्थानक देवता के अतिरिक्त करों में शंख ( ? दक्षिण) और चक्र (वाम) हैं तथा दक्षिण ऊर्ध्व कर अभय एवं वाम ऊर्ध्व कर कटिहस्त मुद्रा में है ।[5] यहां दक्षिण पार्श्व का वैष्णव प्रतीक शंख सन्देहास्पद है जबकि वाम पार्श्व में चक्र स्पष्ट है । फिर पीछे कई प्रतिमाओं में देख चुके हैं कि अभय मुद्रा शिव पार्श्व में और कटिहस्त मुद्रा विष्णु पार्श्व में रहती है । साथ ही वेंकटेश के दक्षिण भाग में शिव का विशिष्ट प्रतीक भुजंग वलय होना थापर महोदय के लक्षणों को निराधार सिद्ध कर देता है । डा० यदुवंशी भी वेंकटेश को हरिहर ही मानते हैं ।[6]

---

१. साउथ इण्डियन श्राइन्स, पृ० ५१०
२. सा० इ०आफ गा० गा०, पृ० ६२ ,
३. वही, पाद टिप्पणी, पृ० ६२
४. आइकन्स इन ब्रान्ज, पृ० ५८
५. एलीमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकनोग्रेफी, भाग १, खण्ड १, पृ० २७१
६. शैवमत, पृ० १४६

मूर्ति—

कुछ दृष्टियों से तिरुपति के वेंकटेश जैसी हरिहर प्रतिमा तिरुप्पोरुर (चिंगलपुट) के कन्दस्वामि सुब्रह्मण्य मन्दिर में देखी जा सकती है। यहाँ हरिहर का वाम ऊर्ध्व कर कटिहस्त मुद्रा में है और दक्षिण ऊर्ध्व कर अभयमुद्रा में। परन्तु उनके अतिरिक्त वामकर में शंख है तथा अतिरिक्त दक्षिण कर में परशु। हरिहर की शिरोभूषा में जटाजूट तथा किरीटमुकुट का अन्तर स्पष्ट है और उनका दक्षिण पैर नग्न एवं वामपाद विष्णु के उपयुक्त परिधान धारण किये है।

१७०० वि० - १८०० वि०

१८ वीं शती विक्रमी हिन्दी-साहित्य के रीतिकाल का पूर्वार्द्ध है। इस अवधि में हरिहर मूर्तियों का अभाव होते हुये भी देव-स्वरूप के निर्माण का एक नवीन उपकरण मिलता है। १६८० ई० के एक ताम्रपत्र में हरिहरलिंग का स्मरण किया गया है।[१] और प्रारम्भिक रीतिकाल में हरिहर के चित्र मिलते हैं। हरिहर के चित्रों का यह प्राचीनतम उदाहरण है। स्वरूप-निर्माण की दृष्टि से यह चित्र अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं, क्योंकि मूर्तियों की लक्षण परम्परा के विरुद्ध इनमें दक्षिण पार्श्व हरि को मिला है तथा वामपार्श्व हर को। राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (सं० ६०। १६७३) में संग्रहीत बसोहली शैली का चित्र चतुर्भुजी हरिहर को आसनस्थ मुद्रा में प्रदर्शित करता है। यहाँ देवता के दक्षिण करों में चक्र तथा शंख है और वाम करों में कपाल तथा डमरू युक्त त्रिशूल। हरि भाग में वनमाला एवं पीताम्बर तथा हर भाग में मुण्डमाल, अजिन एवं नाग है। हरिहर का शिर-स्वरूप चित्रकार की अद्वितीय कल्पना से प्रसूत है क्योंकि यहाँ हरिहर आवक्ष एकाकी होते हुये भी ऊपर द्वैत भाव लिये हैं। चित्रकार ने हर भाग में त्रिनेत्र चन्द्रमौलि का निर्माण करके हरि को पार्श्विक रूप में निरूपित किया है। चित्र में उनका एक ही नेत्र प्रदर्शित है तथा वह किरीट मुकुट के ऊपर मोर पंख धारण किये हैं। संभवत: इसमें शिव के साथ कृष्ण का समन्वय किया गया है। जो भी है शिरोभूषा की दृष्टि से यह हरिहर का अद्वितीय चित्र है।

---

१. एपि० क०, भाग ७, चन्नगिरि ८३, पृ० १६४

हरिहर का अन्य चित्र कांगड़ा शैली का है,[१] जिसमें स्थानक हरिहर शंख (दक्षिण) तथा कपाल (वाम) धारण किये हैं। हरि पार्श्व में पीताम्बर तथा हर भाग में अजिन, मुण्डमाल और नाग के अतिरिक्त चन्द्रेश द्रष्टव्य है। सिर के दक्षिणार्ध में किरीटमुकुट है। श्याम एवं श्वेतवर्णी हरिहर के दक्षिण पार्श्व में करबद्ध मुद्रा में लक्ष्मी, मानवाकार गरुड़ तथा नगर दृश्य और वामपार्श्व में बढ़कर पार्वती, वृषभ तथा शैल-शिखर प्रदर्शित है। दक्षिण कर के अतिरिक्त हरिहर के वामकर में भी अक्षमाल का होना रोचक है क्योंकि यह शैव प्रतीक है जिसे प्रस्तुत चित्र में केवल वाम और होना चाहिये था।

१८०० वि० - १६०० वि०

रीतिकाल के उत्तरार्ध १६ वीं शती वि० में हरिहर के मन्दिर के अतिरिक्त काष्ठमूर्ति भी बनी है। हरिहर के मन्दिर का निर्माण नदिया के प्रसिद्ध राजा कृष्णचन्द्र राय ने कराया था। यह थाना कोतवाली के गंगावास आम्बाटा स्थान पर है। मन्दिर में प्रतिष्ठित हरिहर प्रतिमा का प्रतिदिन नियमित रूप से पूजन होता है। मन्दिर में बंगला लिपि का एक संस्कृत अभिलेख भी है।[२]

इस अवधि की हरिहर प्रतिमा राजकीय संग्रहालय, मद्रास (प्रदर्शन सं० २३८८/ ६६) में संग्रहीत है और उपकरण की दृष्टि से काष्ठ निर्मित होने के कारण यह अपने

---

१. पटना संग्रहालय, प्रदर्शन सं० १०४६

२. लिस्ट आफ एन्शियेन्ट मान्यूमेण्ट्स इन बंगाल, पृ० ११८-११६

* गंगावासे विधिमूल्यानुगता सुकृत क्षोणिपाल: शके ऽस्मिन ।
श्रीयुक्तो वाजपेयी भूविविदित महाराज राजेन्द्रदेव: ।
भैकुं भ्रान्तिमुरारित्रिपुरहरभीदामयहं तांपामरार्ना ।
अद्वैतं ब्रह्मरूपं हरिहरमूमायास्थापयल्लोनायाच ।।

ढंग की एकाकी है । यहां हरिहर के अर्धा दक्षिण कर में चक्र तथा अर्धा वाम में कुरंग है । उनका शेष दक्षिण कर अभय और वाम कर वरद मुद्रा में है । दोहरी पद्म-पीठिका पर समपाद स्थानक हरिहर के सिर पर कीर्तिमुख तथा पार्श्विक आकृतियां लक्ष्मी (दक्षिण) और पार्वती (वाम) ही सकती हैं । छायाचित्र में दोनों कर्णा-भरण भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु शिरोभूषा अस्पष्ट है । जहां तक हरि-हर के पार्श्वों का प्रश्न है प्रस्तुत मूर्ति को प्रस्तर-प्रतिमाओं के विरुद्ध बिम्बों की श्रेणी में सम्मिलित किया जायेगा, क्योंकि यहां शास्त्रीय लक्षणों के प्रतिकूल दक्षिणार्ध हरि-वत् है और वामार्ध हर के समान ।

—

## अध्याय – ५

## मध्यकालीन हिन्दी निर्गुण भक्ति-काव्य की शैव-वैष्णव अन्तश्चेतना –

### प्रेममार्गी सूफी कवि

सूफी धर्म भारत के लिए विदेशी है, जो यहां ईसा की बारहवीं शताब्दी में फारस से आया है। मध्यपूर्व के देशों से भारत का सम्बन्ध अति प्राचीन है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में ही अशोक के एक पुत्र कुस्तन तथा उसके प्रपौत्र विजयसम्भव द्वारा खोतान आदि में बौद्ध धर्म पहुंचने के साथ ही वहां बिहार भी स्थापित हो चुका था। पूर्वी तुर्किस्तान के दक्षिणी भाग में खोतान से लबनोर तक कुछ भारतीय उपनिवेश भी बन गए थे। इस प्रकार वहां के लोकजीवन पर भारतीयता का प्रभाव पड़ने लगा था। कहा जाता है कि सूफियों ने माला का प्रयोग बौद्धों से ही सीखा था।[२] भारत में आने के पूर्व ईसा की नवीं शती के अन्त तथा दसवीं के प्रारम्भ में भारतीय अद्वैत सूफी मत में सिद्धान्तत: प्रवेश पा चुका था। मंसूर हल्लाज ने भारत आकर गुजरात का भ्रमण किया था और उन्होंने भारतीय वेदान्त के अहम् ब्रह्मास्मि के समान 'अन-अल्-हक्' ( मैं ही सत्य हूं ) की उद्घोषणा की थी। इसे कट्टर उल्मा सहन न कर सके और ६२२ ई० में उनका वध कर दिया गया।[३] शाहजहां के पुत्र दाराशिकोह ने तो सूफी मत और अद्वैत का तुलनात्मक विवेचन कर यह बताया था कि इन दोनों में कोई तात्विक अन्तर नहीं है।[४]

---

१. बौद्धधर्म के २५०० वर्ष, पृ० ४३

२. सूफीमत और हिन्दी-साहित्य, पृ० ८२ के अनुसार दि मिस्टिक्स आफ इस्लाम, भूमिका, पृ० १७

३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ५

४. ~~वही, पृ० ८७~~ सूफीमत और हिन्दी-साहित्य, पृ० ८६.

सूफी मत के उद्भावक मुस्लिम-साधक थे, जिन्होंने निखिल विश्व में व्याप्त शाश्वत तथा अमूर्त शक्ति का सर्वत्र आभास पाया । मुस्लिम धर्म में एकेश्वरवाद की प्रधानता है । वह केवल 'एक' के अतिरिक्त किसी अन्य में विश्वास नहीं करते ।[1] मुहम्मद साहब भी एकेश्वरवादी थे । कुरान के 'सूरे इख्लास' में कहा गया है कि अल्लाह एक है,[2] उसके अतिरिक्त कोई अन्य परमात्मा नहीं । वह नित्य, सर्वशक्तिमान् और स्वत: पूर्ण है । न उसका आदि है न अन्त । वही सर्वोच्च सत्ता है, जो अप्रत्यक्ष भी प्रत्यक्ष है ।[3] भारत में आये सूफियों का प्रधान उद्देश्य बहुदेववाद के स्थान पर एकेश्वरवाद की स्थापना ही था ।[4] यद्यपि सूफी-धर्म अखिल भारतीय स्तर पर फैला तथापि उसके काव्यों की अखण्ड परम्परा जिस रूप में हिन्दी-साहित्य में मिलती है, वैसी सम्भवत: अन्यत्र सुलभ नहीं है ।

भारतीय सूफी साहित्य –

सूफी काव्य-परम्परा में सबसे पहले मुल्ला दाऊद का चांदायन मिलता है। चांदायन के प्रारम्भ में कवि ने सृष्टिकर्ता का वर्णन करते हुए उस एक सत्ता में विश्वास प्रकट किया है जो सर्वव्यापक है ।[5] उसने अकेले ही धरती, आकाश, पर्वत, सरिता, सूर्य-चन्द्र, वनस्पति, जीव-जन्तु आदि समस्त सृष्टि की रचना की है । जिस प्रकार चन्द्रमा रात्रि का आधार है, उसी प्रकार वह समस्त राजाओं का राजा सर्वोच्च

---

१. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० १४२

२. तर्जुमा कुरानशरीफ ,अहमद बशीर, पृ० ६०७

३. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ० ४५

उस सर्वशक्तिमान ईश्वर का ही पूजन करना चाहिए । दूसरे की पूजा और उस पर भरोसा नहीं रखना चाहिए । उसके अलावा कोई दूसरा पूज्य होता तो सारी व्यवस्था बिगड़ जाती ।

—सूफी- काव्य-विमर्श, पृ० ३६ पर

कुरआन मजीद, रामपुर १९६६, पृ० ३४६ से उद्धृत ।

४. वही, पृ० ८३

५. चांदायन, कड़वक १।६, २।७, ३।७

है ।[१] एक और अकेले ही उसने समस्त जगत् का निर्माण किया, दूसरा अन्य कोई निर्माता नहीं हुआ है । इस सृष्टि के रचनाकाल में उसका कोई साथी नहीं था और उसके अतिरिक्त किसी अन्य की खोज करना भी व्यर्थ है ।[२]

कुतुबन

कुतुबन कहते हैं कि जब तक शरीर में सांस है, एकमात्र वही परमेश्वर मेरा सहारा है और मुझे उसी की आशा है । वह नित्य है । मैं उसकी आराधना करता हूं और मुझ पर उसका अनुग्रह है । समस्त कार्य छोड़कर दिनरात उसी का जप करना चाहिए क्योंकि अन्त में उसी की आवश्यकता होगी इसलिए अन्य सब युक्तियों को त्याग कर उसी का जप करना चाहिए । उसके आदेश का पालन करने से दोनों लोकों में आनन्द की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य बहुत से लाभ भी हैं । अन्त में एक मात्र वही शेष रहेगा ।[३] एक वही सर्वशक्ति मान है ।[४] उस चित्रकार की खोज उसके चित्र को देखकर करनी चाहिए । जिसकी आत्म दृष्टि उसकी ओर जायेगी उसको वह प्राप्त होकर उसका सम्बन्ध उस परम तत्व से स्थापित हो जायेगा ।[५] वह निराकार, निरंजन, सर्वव्यापक और परमेश्वर है । माता, पिता, बन्धु आदि कोई उसका सम्बन्धी नहीं । वह एक और अकेला है, दूसरा वैसा नहीं है । अन्य का अस्तित्व स्वीकार करने वाला नरक में जाता है । कर्ता वही एक है, दूसरा नहीं । विद्वानों ने भली-भांति विचारकर देखा कि दो में विश्वास करने से दुख होता है ।[६] राक्षस द्वारा पकड़े जाने पर नायक राजकुंअर भी उसी एक से उद्धार की प्रार्थना करता है ।[७]

---

१. वही, ४।७

२. वही, ५।६,७

३. मृगावती, कड़वक ४२७, ४२४।१

४. वही, ४।७,

५. वही, ३।२,३,४

६. वही, १

७. वही, २६६।१-३, २७१।२

मंझन -

मंझन ने मधुमालती में शेख मुहम्मद गौस को बड़े सम्मान के साथ अपना आध्यात्मिक गुरु कहा है ।[१] शेख गौस सूफियों के शत्तारी सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे[२]। इस सम्प्रदाय में केवल एक सत्ता का ही अस्तित्व स्वीकार किया गया है ।[३] जिस प्रकार शेख गौस ने हिन्दुओं के योग ग्रन्थ अमृतकुण्ड का बहरुल हयात के नाम से फारसी अनुवाद किया था,[४] उसी प्रकार इब्नुल अरबी ( मृत्यु १२४० ) ने उसका अरबी अनुवाद कराने में दमिश्क के एक सूफी को सहायता दी थी । इब्नुल अरबी एकमात्र ईश्वर में ही विश्वास करते थे । उनके अनुसार परमतत्व एक है । मंझन इनसे भी प्रभावित माने जाते हैं ।[५]

मंझन की धारणा है कि एक ही स्वरूप समस्त सृष्टि में परिव्याप्त है । वही शिव और शक्ति है तथा वही राजा, रंक आदि विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ है । वही रूप त्रिभुवन, जगत्, पृथ्वी, पाताल और आकाश में विलस रहा है ।[६] वही बहुत से अनुपम भावों में व्यक्त हुआ है । वही समस्त नेत्रों में ज्योति बनकर समाहित है और वही समस्त सागरों में मोती बन कर उत्पन्न हुआ है । वही फूलों में सुगन्ध बनकर व्याप्त है और वही भ्रमरों में विलास कर रहा है । वही सूर्य और चन्द्र है तथा वही आदि-अन्त में अवशिष्ट रहेगा । वही जल-स्थल में अनेक भाव दिखाता है । अपने को गंवाकर देखने पर ही वह दिखाई दे सकता है । ध्यान वही है जो एकमात्र उसी स्वरूप को ध्यान में रखकर किया जाता है ।[७] यहाँ मंझन शुद्ध अद्वैतवादी है जो सृष्टि के कण-कण में उसी का प्रतिरूप पाते हैं ।

---

१. मधुमालती, कड़वक, १४,१५
२. सूफी काव्य विमर्श, पृ० १३२
३. वही, पृ० १५८
४. वही, पृ० १४६
५. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान, पृ० ७
६. मधुमालती, कड़वक, ११६
७. वही, १२०

सारी सृष्टि में वही व्यक्त है, वह सर्वस्व है और उसके अतिरिक्त दूसरा कोई इस सृष्टि में नहीं है ।[1] ग्रन्थारम्भ में मंझन उसका स्मरण करते हुए कहते हैं कि वह आदि का भी आदि और अन्त का भी अन्त है । वही एकमात्र है, दूसरा कोई नहीं है । अन्त में सृष्टि के समस्त रूप उसी के मुख में समाविष्ट हो जाते हैं । प्रमाणों द्वारा तीनों लोकों में एकमात्र उसी का ज्ञान होता है । उसके समतुल्य कहीं भी दूसरा नहीं है । दर्पण रूपी समस्त सृष्टि में उसी का मुख नाना रूपों में आभासित होता है । वह समस्त तथ्यों का ज्ञाता, सभी रसों को लेने वाला, ज्ञानी और समस्त सृष्टि में एकमात्र दैवत है ।[2] वह एक ओंकार प्रेम-प्रीति तथा सुखनिधि का दाता, तीनों भुवनों तथा चारों युगों का अधिपति है ।[3] वह परमेश्वर एक होते हुए भी अनेक होकर प्रकट हुआ है और बहुत से रूप धारण किये हुए भी एकरूप है । वह सांसारिक गतिविधियों के लिए स्वतंत्र (सर्वशक्तिमान) है और संहारक रूप में सार्वकालिक है । वह निर्गुण तथा सर्वव्यापक स्वामी किसी रूप का न होते हुए भी अनेक रूपों वाला है । उस एक ही ज्योति की मूर्तियां (स्वरूप) भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं और उन मूर्तियों के नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं ।[4] वही सम्पूर्ण सृष्टि को अन्न तथा आहार देने वाला, उसका उत्पादक, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता है । वह एक रूप का होते हुए भी अनेक वेशों का है ।[5] जो संसार में अनेक रूपों में परिव्याप्त है उसका वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है । वह निराकार होते हुए भी साकार रूप में सृष्टि में विलास करता है । दूसरा कोई न भूत में था, न वर्तमान में है और न भविष्य में होगा ।[6]

---

१. वही, कडवक, ३१।४

२. वही , ६

३. वही, १।१,३

४. वही, २

५. वही ३।४,६

६. वही,४।१,६,७

मलिक मुहम्मद जायसी –

सूफी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी ऐसे कवि हैं जिनके काव्य में दार्शनिक चिन्तन अपेक्षाकृत अधिक उपलब्ध होता है । जहां उन्होंने आखिरीकलाम के प्रारम्भ में स्रष्टा का महत्व प्रतिपादित कर स्वप्नवत् संसार[१] के प्रलय और उसकी पश्चात्वर्ती स्थिति का वर्णन किया है वहीं अखरावट नितान्त दार्शनिक कृति है, जिसमें भारतीय अद्वैतवाद उपलब्ध होता है । इसी प्रकार पद्मावत के प्रारम्भ में एकेश्वरवाद की स्थापना के बाद ग्रन्थ में अद्वैतवाद, हठयोग आदि भारतीय चिन्तन पद्धतियों का समाहार है ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद में अन्तर स्पष्ट करते हुए एकेश्वरवाद को द्वैतवाद सिद्ध किया है, जिसमें जीवात्मा, परमात्मा और जड़ जगत में तीनों का अलग अस्तित्व रहता है[२] परन्तु एकेश्वरवाद के ही एक रूप सर्वेश्वरवाद में ईश्वर ही जगत् है और जगत् ही ईश्वर ।[३] सर्वेश्वरवाद में ईश्वर और जगत् में अभेद होने के कारण वस्तुत: वह अद्वैतवाद ही है । इसके अनुसार ईश्वर ही एक और अद्वितीय तत्व है और अन्य जो कुछ है वह ईश्वर का आभास है ।[४] इस प्रकार एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद स्थूलत: एक ही हैं ।

पद्मावत के आरम्भ में कवि उस एक सृष्टिकर्ता का स्मरण करता है जिसने सृष्टि-रचना की है । उसने पंचतत्व, तीन लोक, सप्त द्वीप, चौदह भुवन, दिन, रात्रि, सूर्य-चन्द्र, नक्षत्र-तारिका, धूप, शीत , छाया, मेघ आदि रचे हैं ।[५] हिम, समुद्र,

---

१. आखिरीकलाम, १३।३ २. जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० १३०

३. संगमलाल पाण्डेय, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १७५

४. वही, पृ० ८१६

५. पद्मावत, कडवक, पृ० १

पर्वत, नदी-नाला,जलचर , वनस्पति, पशु-पक्षी, भोज्य पदार्थ, औषधि आदि की रचना उसी ने की है । विशेषता यह है कि इन सब की रचना उसने निमेष मात्र में कर डाली । आकाश को तो उसने बिना किसी स्तम्भ अथवा आश्रय के अन्तरिक्ष में यों ही स्थापित कर दिया है ।[१] उसी ने मनुष्य का निर्माण कर उसे महत्ता, अन्न, भोजन आदि दिया । सुख-दुख,राजा-रंक, जीवन-मृत्यु, अमृत-विष, मधुर-तिक्त, कीट-पतंग,जीव-जन्तु, राक्षस, भूत, प्रेत, चाण्डाल, दैव, दैत्य आदि का सृजन उसी के द्वारा हुआ है ।[२] सब कुछ उसी ने दिया है । संसार में जो प्राणी दान देते हैं, वह भी उसी का दिया होता है । इस प्रकार की सृष्टि का सृष्टा वही धनपति है ।[३]आदि में वही था और अन्त में वही शेष रहेगा । उसके समान कोई अन्य नहीं है । जहां सभी नाशवान् हैं एक मात्र वही स्थिर है[४]। ऐसा स्वामी निराकार, वर्णहीन तथा आदर्शनीय है, परन्तु वह सबसे और सब उससे सम्बन्धित होते हैं । वह गुप्त होते हुए भी प्रकट तथा सर्वव्यापी है । उसके न कोई पुत्र है, न माता-पिता , कुटुम्बी अथवा आत्मीय ही । न वह किसी से उत्पन्न हुआ है और न कोई उससे उत्पन्न हुआ है । सृष्टि के समस्त पदार्थ उसकी रचनाएं हैं । एकमात्र वही था, वही है और अन्त में वही शेष रहेगा, जबकि अन्य सब नष्ट हो जायेंगे । वह सर्वशक्तिमान् है जिसने अपनी इच्छानुकूल सृष्टि रचना की ।[५] वह निर्जीव होते हुए भी सजीव है, बिना हाथ के सब कुछ करने में समर्थ है और वाणी-हीनभी वाक्सम्पन्न है।वह बिना शरीर के कार्य करने, बिना श्रवणों के सुनने, बिना हृदय (मस्तिष्क) के विचारने तथा बिना नेत्रों के देखने में सक्षम है । ऐसे ईश्वर को विशेषणों से अन्वित नहीं किया जा सकता । वह निराकार तथा अद्वितीय है । कोई स्थान न होते हुए भी वह सर्वव्यापी है । सृष्टि के समस्त पदार्थों से भिन्न होते हुए भी वह उनमें समाहित है ।[६] घट-घट में व्याप्त वह स्वामी सबके मर्म को

---

१. पद्मावत, कड़वक, २
२. वही, ३,४
३. वही, ५।१,६
४. वही, ६।१,६
५. वही, ७
६. वही, ८

जानता है[(अ)]। वह बड़ा गुणी है जिसका इच्छित तुरन्त घटित हो जाता है।[1]

ऐसे सर्वशक्तिसम्पन्न, निराकार, ब्रह्म की झलक सम्पूर्ण सृष्टि में विद्यमान है, जायसी इसका आभास रचना के बीच-बीच में कराते चलते हैं। कमलों के रूप में उसके नेत्र, जल के रूप में उसका निर्मल शरीर, हंस के रूप में उसकी हँसी तथा हीरों की ज्योति के रूप में उसकी दशन-ज्योति ही इस संसार में परिव्याप्त है।[2] ध्यान से देखने पर वह हर जगह मिल जाता है।[3] गगन के अगणित नक्षत्र, मानव तथा पशु शरीर के रोम, वन के ढाक आदि वृक्ष और पक्षियों के पंख उसके बरौनी रूपी बाण हैं।[4] जगत् का प्रकाश ही उसकी स्मिति है[८]। चन्द्र और सूर्य उसके आभरण हैं[5] अथवा वे उसके पैरों के चूड़े और विद्युत पायल तथा नक्षत्र और तारागण अनवट और बिछुआ हैं।[6]

जायसी ने पूर्ण अद्वैत की स्थिति का वर्णन रत्नसेन की वियोगावस्था के समय आये महेश द्वारा कराया है। वह कहते हैं कि अहंभाव की समाप्ति पर वह परमात्मा ही अवशिष्ट रहता है। जीवित ही एक बार मर जाने से मृत्यु कहाँ रह जाती है, उस समय तो स्वयं ही एकमात्र सत्ता होकर मृत्यु और जीवन स्वयं ही हो जाता है।[7]

कवि अखरावट में कहता है कि सृष्टि के आरम्भ में पृथ्वी, आकाश, सूर्य तथा चन्द्रमा कुछ भी न था। ऐसे में आदि के आदि उस स्वामी ने क्रीड़ामात्र में पूरे संसार की रचना कर डाली। चौदह लोकों में व्याप्त उसका वह खेल अवर्णनीय है।

---

(अ.) वही, ६।८

१. वही, १०।८

२. वही, ६५।८,६; १०७।३

३. वही, ६१।६

४. वही, १०४।५-६

५. वही, ११०।६

६. वही, ११८।६-७

७. वही, २१६।७,८

८. वही, २०६।३

उसने यह सब अकेले ही किया ।[१] उस समय स्वयं वह भी निराकार था, उसका न कोई नाम था, न स्थान तथा न स्वरूप । वह गुप्त से भी गुप्त तथा शून्य से भी शून्य था ।[२]

द्वैत भाव से कार्य नहीं चल सकता और फिर दो भी तो एक से ही होते हैं । अहंकार त्याग देने पर एकात्म भाव स्थापित हो जाता है ।[३] प्रकट तथा गुप्त रूप में बाहर भीतर वही समाया हुआ है । वही देखता, समझता, समस्त ध्वनियों का श्रवण करता है और वही अपनी इच्छानुसार कार्य-संचालन करता है । अन्तर्घट में उसी का निवास है । वह अकेला सांसारिक क्रीड़ाओं में रत है और संसार उसकी क्रीड़ा में विस्मृत है । जब तक मृत्यु नहीं आती तब तक द्वैतभाव का दमन कर लेना चाहिए क्योंकि दोनों के मध्य अन्य कोई नहीं है ।[४] संसार नश्वर और एक मात्र वही निष्कलंक तथा निर्मल स्थिर है । द्वैतभाव की समाप्ति पर ही उसका ज्ञान सम्भव है ।[५] जिस प्रकार एक मियान में दो तलवारें नहीं रहतीं[६] उसी प्रकार एक सृष्टि में दो का अस्तित्व कैसे हो सकता है ।[७]

यह द्वैतभाव आता कहा से है ? इसके लिए जायसी ने कई उदाहरण दिए हैं । जिस प्रकार बालक दर्पण में अपनी ही प्रतिच्छवि को दूसरा बालक समझ लेता है[८] उसी प्रकार माया के कारण जीव को स्वयं तथा परमात्मा में द्वैतभाव का आभास होता है । इसी प्रकार यदि पचास सहस्र घड़ों में पानी भर कर रखा जाये तो सूर्य सब में प्रतिबिम्बित होगा ।[९] अत: वह संसार में उसी प्रकार व्याप्त है जैसे दूध में अदृश्य

---

१. अखरावट, ११,५-७
२. वही, २१,२
३. वही, १५।१०-११
४. वही, ३४।३-११
५. वही, ४२।५-७
६. वही, ४७।१०-११
७. वही, ४५।१०-११; ४६।८-६, ४७।८-६
८. वही, ४४।१०-११
६. वही, ४२।१० -११ .

घी अथवा गम्भीर सागर में मोती ।[1] उसे देखने के लिए नेत्र मल कर अहंकार की कालिमा दूरकर दो, उसकी ज्योति प्रकट हो जाएगी । किसी भी प्रकार से अद्वैत भाव स्थापित हो जाना चाहिए । इसके लिए उतने ही उपाय हैं जितने शरीर में रोम ।[2] यहाँ जायसी किसी भी साधना पद्धति को अपना सकने की छूट दे रहे हैं । उनका यह कथन ऋग्वेद ( १०।१४२।५) के अनुकूल है जिसमें कहा गया है - एकं नियानं बहवो रथास: । गम्य एक ही है किन्तु उस तक पहुँचने के साधन अनेक हैं ।

## नूर मोहम्मद -

१८२१ वि० में रचित नूर मोहम्मद की अनुराग बांसुरी में भी हमें अन्य सूफी कवियों के समान एक ही सत्ता के अतिस्तत्व में विश्वास मिलता है । नूर - मोहम्मद को बहुदेववाद ग्राह्य नहीं, सम्पूर्ण सृष्टि में वही समाया हुआ है इसलिए कवि हर जगह उसी की फांकी देखता है । वही स्वरूप कवि-हृदय में भी परिव्याप्त है । संसार मन्दिर है जिसमें सब कुछ उसी एक की मूर्ति है ।[3]

इस प्रकार दार्शनिक दृष्टि से हिन्दी के सूफी कवियों ने इस संसार को उस आदि ब्रह्म की रचना माना है, जो सृष्टि के आरम्भ से अब तक विद्यमान है और संसार के अन्त में भी रहेगा । वह निराकार, निर्गुण तथा सर्वशक्तिसम्पन्न है । संसार की रचना में उसने किसी की सहायता नहीं ली । संसार के पालन तथा संहार में भी उसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती । ऐसा ब्रह्म बिना किसी विशिष्ट स्थान के सम्पूर्ण संसार में परिव्याप्त है । जायसी ने उसे प्राप्त करने के असंख्य मार्गों में से किसी को भी अपनाने की स्वतन्त्रता दे दी है ।

बौद्धिक अथवा वैचारिक दृष्टि से भी सूफी कवियों ने पूरी उदारता का परिचय दिया है । जायसी सूफियों के अतिरिक्त गोरखपंथियों, हठयोगियों, वेदान्तियों आदि से प्रभावित थे । इन सब के लिए शैव-वैष्णव एक सदृश हैं । कुतुबन ने

---

१. वही, १५। १०-११

२. वही, २५।२

३. अनुराग बांसुरी ७२।६-८

मृगावती में विष्णु तथा शिव दोनों से सम्बद्ध दृष्टान्तों का प्रयोग किया है ।[१] इन कवियों ने शैव-वैष्णव उपमानों का भी प्रयोग किया है ।[२] दाऊद ने गोवर नगर में भागवत तथा शैव दोनों का निवास दिखाया है ।[३] तथा चांदा की दासी बृहस्पति लौरिक से कहती है कि वह शिव तथा विष्णु की उपासना करे तो चांदा उससे अवश्य प्रेम करने लगेगी ।[४] पद्मावत में शिव तथा विष्णु दोनों ही रत्नसेन की सहायता करते हैं ।[५] रत्नसेन सिंहलद्वीप में शिव-मंडप में शिव को नमोनारायण कह कर अभिवादन करता है[६] तथा उसी में नागमती-पद्मावती विवाद के समय रत्नसेन की उपमा हरिहर से दी गई है । पूर्वप्रसंग से पद्मावती स्वयं को ऐसी कमलिनी बताती है जो मानसर में विकसित हुई है ( कड़वक ४३८)। नागमती उसे कमलिनी स्वीकार करते हुए भर्त्सना करती है कि वह अपने कमल गट्टों ( व्याज से कुचों ) को छिपाकर नहीं रखती है ( ४३६।२)। वह पद्मावती से कहती है कि कमल की पंखुड़ियों की तेरी फटी हुई चोली है और ज्यों ही तू सूर्य ( व्याज से रत्नसेन ) को देखती है उसे हंसकर खोल देती है ( ४३६।३) । पद्मावती मानती है कि वह कमलिनी है और सूर्य रूपी रत्नसेन की जोड़ी है । यदि प्रिय अपना है तो उसमें चोरी क्या हुई ? कमलिनी ( स्वयं पद्मावती ) के हृदय में जो गट्टा ( कुच) होते हैं उनको हरिहर ( रत्नसेन) ने हार बनाया ( अपने हृदय पर धारण किया ) तो इसमें क्या घट गया ( ४४०।१,५) । यहां डा० माताप्रसाद गुप्त ने अर्थ किया है, " कमलिनी के हृदय में जो गट्टा होता है उसको हरि और हर ने हार (बनाकर धारण) किया तो इससे क्या घट गया ?"[७] सन्दर्भ रत्नसेन का चल रहा है और पद्मावती

---

१. देखिए कड़वक १०२।२,३,५

२. मृगावती १२३।४; २२८।१ तथा १५३।४; ३५१।४ आदि;
मधुमालती, १६६।१ तथा ६१।६ आदि; पद्मावत ३६।८;४८।१ तथा १०२।३-४; १०४।२; २१६।२; ३५५।४ आदि ।

~~३. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य, पृ० २६६~~

३. चांदायन २०।२-३

४. वही, १७८।३

५. देखिए, कड़वक २६४,

६. पद्मावत, कड़वक, १६५।४

७. वही, ४४०।५.

स्वयं को उसी का उपभोग्य बता रही है । ऐसे में हरिहर रत्नसेन के लिए आया है जो एक वचन में है । हरिहर को द्विरूप मानने से, जैसा कि डा० गुप्त ने अर्थ किया है, पद्मावती अनेकचारिणी ठहरती है, जिसके गट्ट रूपी कुचों का उपयोग दो व्यक्तियों के द्वारा होता है । स्पष्ट है पद्मावती स्वयं को ऐसा नहीं कहेगी और फिर जब वह सपत्नी से अपनी प्रशंसा कर रही है । हरिहर की मूर्तियों तथा चित्रों में उन्हें एक ही माला धारण किए भी दिखाया जाता है । लगता है डा० गुप्त हरिहर के शिल्पगत स्वरूप से अनभिज्ञ हैं इसीलिए उन्होंने ऐसा अनर्थ किया है ।

## ज्ञानमार्गी सन्त कवि

हिन्दी के मध्यकालीन सन्त कवि निर्गुण के उपासक हैं । उनका यह इष्ट सर्वशक्तिमान, सर्वगुणसम्पन्न किन्तु निराकार और घट घट व्यापी है । महत्वपूर्ण यह है कि समस्त सृष्टि में एकमात्र उसी का अस्तित्व है । ब्रह्मनिष्ठ साधक की दृष्टि का समतावादी होना आवश्यक है तभी उसके लिए आत्मोत्थान एवं लोककल्याण कर सकना सम्भव है । इस दृष्टि से वह लोकग्राही भी होता है और लोक में जो भी सत्यं-शिवं-सुन्दरं होता है उसको वह आत्मसात करता चलता है । यही कारण है कि निर्गुणोपासक होते हुए भी सन्त-कवियों में हमें सांख्य-योग, वेदान्त आदिदर्शन तथा शैव,वैष्णव आदि धर्मों की प्रवृत्तियों का स्पष्ट प्रभाव मिलता है । जहाँ उन्होंने ब्रह्म के लिए मुरारि,गोपाल , शारंगपाणि, गोविन्द, रघुनाथ,केशव आदि वैष्णव अभिधानों का प्रयोग किया है; वैष्णवों की सदाचारप्रियता के अन्तर्गत शील, क्षमा, सन्तोष, धैर्य, दैन्य, दया, सत्य, विवेक, साधु-सेवा, अहिंसा, जाति-बहिष्कार आदि को मान्यता दी है; वैष्णव भक्तिसूत्रों से निःसृत विषयासक्ति के त्याग, समता भाव से भगवद् भजन, भगवद् गुणों के श्रवण-कीर्तन,सत्संग, ~~भाव से~~ काम-क्रोध-मद-मत्सर आदि के त्याग, एकान्तवास, कर्मफल के त्याग, भगवद् अनुराग, समर्पण और कारुण्य भाव, पवित्रता आदि को प्रश्रय दिया है वहीं चित्त और प्राण निरोध, पिण्ड और ब्रह्माण्ड के ऐक्य की भावना, वायु-साधना,नाड़ी-साधन, मुद्रा, षट्चक्र ब्रह्मरन्ध्र, कुण्डलिनी-जागरण,सुरति-निरति, सहज की प्रवृत्ति आदि

साधना के तत्वों; यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि है योग के अष्टांग साधनों पर बल दिया है । योग की परम्परा शिव है क्योंकि एक और सिन्धुघाटी की मुद्राओं में उमें शिव के आदिरूप पशुपति योगमुद्रा में मिलते हैं, दूसरी ओर साहित्यिक प्रमाणों से भी इसकी पुष्टि होती है । हठयोग प्रदीपिका की टीका (१-५) में ब्रह्मानन्द ने कहा है कि सब नाथों में प्रथम आदिनाथ हैं जो स्वयं शिव हैं ।[१] सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में भी आदिनाथ को शिव ही माना गया है ।[२] नाथ सम्प्रदाय समग्रत: शैव ही है ।[३] जिसे सिद्धमत, योगमार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत मत, अवधूत सम्प्रदाय आदि नामों से भी जाना जाता है ।[४] कबीर ने अवधू (अवधूत) को सम्बोधन करते समय इस मत को ही बराबर ध्यान में रखा है ।[५] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी की धारणा है कि अद्वैत भाव में द्वैतभाव की कल्पना और निर्गुण भाव में भी सगुण भाव का काल्पनिक आरोप कश्मीरी शैव सम्प्रदाय के प्रत्यभिज्ञा दर्शन की विशेषता है जिसे किसी न किसी रूप में सन्तों ने भी स्वीकार किया है ।[६] इसी प्रकार भगवान् की करुणा में अटूट विश्वास, मुक्त काव्य-रूप की प्रवृत्ति, प्रेम और आनन्द की अभिव्यक्ति, पर्यटनशीलता तथा रहस्याभिव्यक्ति को दक्षिण के सामंजस्यवादी शैवों से आया समझा गया है ।[७] सम्प्रति कुछ सन्त-कवियों की रुद्रविषयक धारणा के परिप्रेक्ष्य में उनकी समन्वयवादी दृष्टि पर विचार करना उपयुक्त होगा ।

### कबीर

कबीर के विचारों को देखने से लगता है कि वह तो शंकर के अद्वैतवाद, योगियों के हठयोग, वैष्णवों की शरणागति- सभी का आपानक है । जहाँ उन्होंने रामानन्द के चरणों में बैठकर उनकी भक्तवाणी से हृदय को आप्लावित किया था,

---

१. आदिनाथ: सर्वेषां नाथानां प्रथम:, ततो नाथसम्प्रदाय: प्रवृत्त ।

२. देदीप्यमानस्तत्वस्य कलासाक्षात् स्वयं शिव:
संरक्षन्तो विश्वमेव धीरा: सिद्धमताश्रया : ।।

३. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० ४

४. वही, पृ० १ ५. वही, पृ० २ ६. उत्तरीभारत की सन्तपरम्परा, पृ० ८७

७. डा० गोविन्द त्रिगुणायत, हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३७३ ।

वहीं नाथ-सम्प्रदाय से प्रभाव ग्रहण कर औंधे कुएँ से प्रस्रवित अमृत-रस का पान किया था । उस समय नाथ-सम्प्रदाय अपनी परिव्याप्ति पर था और फिर मगहर से गोरखपुर निकट भी है । नाथों से प्रभावित होने के कारण ही गढ़वाल में कबीर नाम के साथ 'नाथ' शब्द संलग्न मिलता है ।[१] कबीर ने अपने एक पद में बाह्याडम्बर की निन्दा करते हुए गोरखनाथ की प्रशंसा भी की है[२]। जब शिव शक्ति का जन्म तक नहीं हुआ था कबीर ने तभी से योग की शिक्षा प्राप्त कर ली थी ।[३] अष्टांग योग-साधना के यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि रूपों का उनकी वाणी में विस्तृत वर्णन मिलता है । कबीर ने पिण्ड में स्थित चक्रों की कल्पना भी हठयोगके अनुसार ही की है । वे ध्यान के धनुष पर ज्ञान का बाण रखकर षट्चक्रों का बेधन कर डालते हैं जिससे शून्य मण्डल में प्रकाश होने लगता है ।[४] शरीर रूपी यह गढ़ अत्यन्त दुर्गम है । इसमें जहाँ (ब्रह्मरन्ध्र) पर ब्रह्म का निवास है वहाँ विद्युत जैसा प्रकाश तथा अनहद शब्द की ध्वनि होती रहती है । वहाँ सूर्य-चन्द्र नहीं होते । ऐसे स्थान पर अगम, अगोचर, निरंजन का वास है जो वर्णहीन है ।[५] पिंड में ही ब्रह्माण्ड की कल्पना करते हुए कबीर कहते हैं कि हे अवधूत तुम जिसकी खोज करते फिरते हो वह तो तुम्ही में अन्तर्निहित है । तुममें ही वनखण्ड, गिरिवर, सप्तसिन्धु, तारामण्डल, सूर्य, चन्द्र आदि सब परिव्याप्त हैं और ममत्व का नाश कर सत्य की मुद्रा, शील के आसन, क्षमा की झोली, ज्ञान की विभूति, उल्टी पवन की जटा तथा अनहद नाद की किंगरी द्वारा पारब्रह्म से साक्षात्कार किया जा सकता है ।[६] इस अलक्ष्य पुरुष के निवास स्थल पर बिना वाद्य के झंकार तथा बिना चन्द्रमा के प्रकाश रहता है । उस गगन गुफा में अमृत नि:सृत होता है और काम, क्रोध, मद, लोभ वहाँ भस्म हो जाते हैं, काल की वहाँ गति नहीं तथा अजपा जाप से प्राणी अमर हो जाता है ।[७] अमृत रूपी इस फल का वृक्ष बहुत लम्बा है जो विकट, चिकना तथा

---

१. योगप्रवाह, पृ० १६७ तथा २०३ के आधार पर कबीर, पृ० १६३-१६४

२. कबीर-ग्रन्थावली, पद १७५

३. वही, पद १४३

४. वही, पद १२१

५. वही, पद १३०

६. वही, पद १४२

७. वही, पद १४५

दुर्गम है । तन-मन का विस्मरण कर शील तथा सत्य की खूटियों पर पैर रख गुरु-ज्ञान की डोरी द्वारा ही उस फल को प्राप्त किया जा सकता है ।[1] कबीर ऐसे ही सिद्ध हैं जो सीमा को तोड़ असीम में पहुंच गए हैं और जिन्होंने शून्य में स्थान बना लिया है ।[2] यह स्थान पिपीलिका मार्ग से ही गम्य है ।[3] उनकी गंग-जमुन इड़ा और पिंगला नाड़ियां हैं ।[4]

परन्तु कबीर की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई है ।[5] भक्तमाल, अगस्त्यसंहिता आदि से उनका रामानन्द का शिष्य होना ज्ञात होता है और उन्हीं से कबीर ने भक्ति का पाठ सीखा था । प्रसिद्ध है कि —

भक्ती द्राविड़ ऊपजी लॅाये रामानंद ।
परगट करी कबीर ने सात दीप नौ खंड ।।

कबीर स्वयं जब लगि डींन पड़ै नहीं बांनीं । तब लगि भजि मन सारंगपांनीं ।। (पद ६३।४) का प्रबोधन करते हुए कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने राम-भक्ति का आश्रय नहीं लिया उसकी जन्म लेते ही मृत्यु क्यों नहीं हो गई । कैसा भी स्वरूपवान व्यक्ति हो राम-भक्ति के बिना वह कुरूप ही है ।[6] संसार में भक्ति के अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या है,[7] इसलिए विषय-रसों को त्यागकर हरि भक्ति करनी चाहिए क्योंकि मनुष्य का जन्म बार-बार नहीं मिलता है ।[8] जिसने रघुपति का स्मरण कर नारदी भक्ति नहीं की उसका जन्म व्यर्थ नष्ट चला गया ।[9] इस भक्ति के बिना मथुरा, द्वारिका, जग-

---

१. वही, पद १४६
२. वही, परचा कौ अंग, साखी २१
३. वही सूषिम मारग कौ अंग, साखी २
४. वही, सूषिम मारग कौ अंग, साखी ७
५. आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी, कबीर, पृ० १५२
६. कबीर ग्रन्थावली, पद ६४
७. वही, पद ६७,६६
८. वही, उपदेस चितावनी कौ अंग, साखी ४८
९. वही, पद ८६

न्नाथ आदि की तीर्थयात्रा वाह्याडम्बर है ।[१] स्वयं कबीर को राम के चरणों से अनुराग हो गया है, अब उनके लिए तुलसी का बिरवा ही सम्पत्ति और शार्गधर ही स्वामी है ।[२] वे निष्काम भक्ति को ही श्रेष्ठ मानते हुए[३] उसे ज्ञान और योग दोनों से श्रेष्ठ घोषित करते हैं ।[४] उनके तो संसार में दो ही मित्र हैं - वैष्णव और राम । अभीष्ट राम ही हैं इसलिए वैष्णव तो राम का स्मरण कराने के कारण मित्र हैं ।[५]

अपनी इस वैष्णव भक्ति के परिप्रेक्ष्य में कबीर ने अजामिल, गज, गणिका, सनक,सनन्दन, जयदेव,नारद, ध्रुव,प्रह्लाद, विभीषण, शुकदेव आदि भगवद्भक्तों का स्मरण किया है । इस सूची में ब्रह्मा और शिव का सम्मिलित किया जाना महत्वपूर्ण है ।[६] नरसिंह अवतार की सम्पूर्ण कथा के अधिग्रहण से तो उनका अवतार की भावना में विश्वास भी परिलक्षित होता है ।[७] उन्होंने अपने इष्टदेव को राम,हरि,गोकुलनायक,[८] नरहरि,[९] शार्गपाणि,[१०] गोविन्द,[११] रघुनाथ,[१२] माधव,[१३] केशव,[१४] चतुर्भुज,[१५] मुरारी,[१६] विट्ठल,[१७] दामोदर,[१८] नारायण,[१९] रघुपति,[२०] कमलाकान्त[२१] आदि नामों से अभिहित किया है।

भक्ति के कई भावों, रूपों तथा आवश्यक अंगों का उनकी रचना में उपलब्ध होना उनकी भक्ति विषयक विस्तृत दृष्टि का परिचायक है । समुद्र से कितनी ही लहरें निःसृत होकर प्रत्यावर्तित होती रहती हैं - महत्वपूर्ण तो वह है जो जाकर उसी

---

१. वही, साधमहिमा को अंग, साखी २३
२. वही, पद १३१
३. वही, उपदेस चितावनीं कौ अंग,साखी ४६;पद ५४
४. वही, करनीं कथनीं कौ अंग, साखी २
५. वही,साधमहिमा कौ अंग, साखी ५
६. वही, पद २०,४८
७. वही, पद २६
८. वही, पद १०
९. वही, पद १०, १२३
१०. वही, पद २१,६३, १५५
११ वही,पद २३,४०,६३, ७३
१२. वही, पद २४
१३. वही, पद ३२,३६,३९,४३,७७
१४. वही, सांचयाणाक कौ अंग, साखी ६
१५. वही, पद ७७
१६. वही, पद ८२,१७१ आदि
१७. वही, पद ३९
१८. वही पद ४०
१९. वही, पद १०१
२०. वही पद ८६
२१. वही, पद १३०

में समाविष्ट हो जाये ।[1] समुद्र तथा ऊर्म्मि के रूपक से कबीर ने यहां सायुज्य मुक्ति का महत्व प्रकट किया है । उनकी रचना में दास्य भाव तो परिव्याप्त ही है,[2] वात्सल्य तथा माधुर्य भाव भी मिल जाता है । कबीर का निवेदन है कि हे हरि आप जननी हैं और मैं आपका पुत्र, फिर मेरे अवगुणों को क्षमा क्यों नहीं कर देते । पुत्र कितने ही अपराध करता रहे, मां के केश पकड़कर आघात भी कर दे परन्तु मां उन पर ध्यान नहीं देती है । बालक के दुखी होने पर मां को भी दुख होता है फिर मुझ पर ही कृपा दृष्टि क्यों नहीं ।[3]

इसी प्रकार पति-पत्नी का माधुर्य भाव स्थापित करते हुए कबीर स्वयं को बहुरिया और हरि को पिउ बताते हैं । वधू वासकसज्जा है परन्तु क्षण-भर में उसकी स्थिति खण्डिता अथवा प्रोषितपतिका की हो जाती है और यही कह कर धैर्य रखती है कि वही सुहागिन धन्य है जो स्वामी को प्रिय हो ।[4] परन्तु नारी अवस्था है कब तक सन्तोष किया जाये ।[5] कहना पड़ता है कि हे प्रिय हमारे पास आओ तुम्हारे बिना शरीर दुखी है । जिस प्रकार कामी को नारी और तृषावन्त को जल की लालसा होती है उसी प्रकार तुम्हारे दर्शन बिना व्याकुल होकर मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ।[6] मैंने तुममें लवलीन हो गृह त्याग किया, सेज बैरिन हो गई है, जलहीन मछली के समान तालाबेली हो रही है । अब यदि तुम्हें अपनी इच्छानुसार चलकर दर्शन नहीं देने हैं तो हम अपने प्राणों को त्याग रहे हैं ।[7] परन्तु सच्चा प्रेम होने पर प्रिय कब तक आंख मिचौनी खेलेगा । अभाव तो वास्तविक शृंगार का था और जब प्रेम के वस्त्र, शील-संतोष के कंगन, कुमति-भस्म के काजल से शरीर को आभू-

---

१. वही, साध महिमा कौ अंग, साखी ३२

२. वही, पद १८, साखी ६।१, ८।१६, ११।८, १४।३८, १६। ६,१४ आदि

३. वही, पद ३७

४. वही, पद ११

५. वही, पद १६

६. वही, पद १३

७. वही, पद १५

षित किया तो प्रियतम का आगमन आवश्यक हो गया ।[1] फिर तो इतनी प्रसन्नता हुई कि मंगलाचरण गाने के लिए सखियों को उद्बोधित करना पड़ा । यहां परकीया भाव नहीं है विधिवत् विवाह सम्पन्न होगा जिसमें शरीर-सरोवर की वेदी होगी, ब्रह्मा वेद-मन्त्रों का पाठ करेंगे , तैंतीस करोड़ देवता और आठासी सहस्र मुनि साक्षी होंगे ।[2]

नवधा भक्ति में से कबीर काव्य में सख्य भाव का निरूपण नहीं मिलता है । यह भाव अधिकतर लीला-वर्णन में ही मिलता है, और लीलाओं का चित्रण कबीर में या तो अपवाद रूप में मिलता है या प्रतीकात्मक रूप में । शेष आठों भावों के उदाहरण अल्पाधिक मात्रा में देखे जा सकते हैं ।

श्रवण :-

> ऐसा कोई नां मिलै, रांम भगति का मीत ।
> तन मन सौंपे मिरिग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ।। क०ग्र०,साखी ५।६

कीर्तन :-

इस भाव में कबीर की उन पंक्तियों को देखा जा सकता है जिनमें या तो उन्होंने स्वयं राम-नाम के जाप की बात कही है या दूसरों को उसके जाप हेतु उद्बोधित किया है ।[3]

स्मरण -

कबीर के अनुसार एकमात्र हरि का नाम ही भक्ति और भजन है शेष तो अपार दुख के मूल अथवा कालस्वरूप हैं । इसलिए मन, वचन और कर्म से स्मरण करने

---

१. वही, पद १७

२. वही, पद ५

३. ~~वही, साखी ३।७, १४,१५ तथा पद ७११ , ७४।१, साखी ३।२३ आदि~~
वही, पद ६८।४; ७२।१; १११।४; १३८।१; साखी ३।२,३,४,१६,२५;३२।१४ आदि

पर राम की प्राप्ति अवश्यम्भावी है ।[१]

पादसेवन : राम के चरण मन को भा गए हैं ।[२] इसलिए कबीर ने गृह-परिवार त्याग दिया और प्रेम-प्रीति के साथ चरणों की सेवा करना प्रारम्भ कर दिया है ।[३]

अर्चना :--

जहां एक ओर कबीर मूर्ति-पूजा जैसे बाह्याचारों के कट्टर विरोधी हैं वहीं उनके काव्य में कतिपय उदाहरण पूजन के भी मिल जाते हैं ।[४]

वन्दना -

कबीर की वन्दना शुद्ध साम्प्रदायिक न होकर आध्यात्मिक और अशरीरी है ।

कबीर सबद सरीर मैं, बिन गुन बाजै तांति ।
बाहरि भीतरि रमि रह्या, तातैं छूटि भरांति ।। क०ग्र०साखी, ६।३७

दास्य--

इसका उल्लेख पूर्व-प्रसंग में भी हो चुका है । कबीर उस सामर्थ्यवान का दास है जिसके कारण कभी अहित नहीं हो सकता । वह तो राम के कुत्ते तुल्य हैं जिधर स्वामी चाहता है, ले जाता है ।[५]

आत्मनिवेदन -

कबीर का कहना है कि अहंभाव समाप्त हो जाने पर अगम्य स्थिति प्राप्त हो गई है । हे ईश्वर अब आपके अतिरिक्त मेरा अन्य कोई आश्रय नहीं है तथा मुझमें

---

१. वही, साखी ३।७,१४,१५ तथा पद ७१।१, ७४।१, साखी ३।२३ आदि
२. वही, पद १३१।१,
३. वही, पद १५।२, ७।२; तथा पद १०।७; साखी २५।११ आदि
४. वही, पद ४०।४, ८४।१
५. वही, साखी ११।८, ६।१

अपना था ही क्या, जो कुछ था वह तुम्हारा ही था, फिर 'त्वदीयं वस्तु गोविन्दे त्वमेव समर्पयामि' में मेरे पास से क्या जाता है ।[1]

जब स्वयं को पूर्णरूपेण इष्ट के आश्रित छोड़ दिया जाता है तो भक्ति की यह अनन्यता प्रपत्ति भाव कहलाती है । शरणागति की इस स्थिति के छः प्रकार माने गए हैं –

१. अनुकूलता का संकल्प ( अनुकूलस्य संकल्पः )
२. प्रतिकूलता का त्याग ( प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ) ,
३. भगवान् के रक्षण भाव में विश्वास ( रक्षिष्यतीति विश्वासः )
४. भगवान् के रक्षक रूप का वरण (गोप्तृत्ववरणम्) ,
५. आत्मसमर्पण ( आत्मनिक्षेपः )
६. दैन्य (कार्पण्यम्)

कबीर को एकमात्र उस इष्ट की ही आशा है, वही उनका कल्याण कर सकता है इसलिए उन्होंने अहंभाव त्यागकर अगम्य निवास प्राप्त कर लिया है ।[2] काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, कपट, आशा और तृष्णा भक्त के लिए अष्ट विकार हैं जो उसे भक्ति-मार्ग में आगे नहीं बढ़ने देते । विषय-वासना, दुर्जन तथा संसार भी भक्त को त्याज्य होते हैं । कबीर ने काम, मद, विषय-वासना, असत्य, दुर्जन, तृष्णा आदि को स्वयं त्यागने का संकल्प करके दूसरों को भी ऐसा ही करने के लिए उद्बोधित किया है ।[3]

स्वामी महान् एवं असंख्य गुणों से सम्पन्न है । समस्त पृथ्वी को आधार बनाकर सबसे बड़े वन की लेखनी द्वारा सातों समुद्र की स्याही से भी उन्हें लिखा नहीं जा सकता है । वह सभी प्राणियों की चिन्ता करता है, जन्म के साथ ही

---

१. वही, साखी ३२।११; ६।२ तथा साखी ६।१; ८।११; १८।७१; पद ४३।१, १८६।१ आदि
२. वही, साखी ३२।११
३. वही, साखी ३०।७; २६।१६-१७; १५।४८, ४।२८ आदि

पालन-पोषण का प्रबन्ध करता है ।[1] कबीर को अपने इष्ट के रक्षण भाव में अटूट विश्वास है इसीलिए वे अब किसी अन्य की आशा नहीं करते हैं, ठीक भी है त्रैलोक्य अधिपति जिसका स्वामी हो वह याचना करने अन्यत्र कहां जाये ।[2] यही कारण है कि राम नाम से कबीर का एकात्म हो गया है और वह विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि अब उन्हें नरक तक का कोई भय नहीं है ।[3] नवधा भक्ति के सन्दर्भ में आत्मनिवेदन का भाव देख चुके हैं । तात्पर्य इतना है कि स्वयं को दासानुदास तथा पैरों तले की घास के समान समझना है ।[4]

इसी प्रकार भक्ति के अन्य आवश्यक अंगों में संन्यास,[5] परमात्मा के प्रति अनन्य अनुराग,[6] निरभिमानता,[7] विश्वभर में भगवत स्वरूप के दर्शन,[8] सत्संग, अहिंसा, गुरु-महत्व आदि के प्रचुर उदाहरण मिल जाते हैं । इसीलिए डा० मुंशीराम शर्मा ने कहा है कि वस्तुत: कबीर के जीवन में वैष्णव सम्प्रदाय की सदाचार संवलित प्रेमा भक्ति और भगवान् राम दोनों का ही प्राधान्य अन्तिमसमय तक बना रहा ।[9]

समन्वयात्मक दृष्टि से कबीर ने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को एक ही सत्ता के तीन रूप माना है । उसका रजोगुणप्रधान रूप ब्रह्मा, तमोगुण प्रधान रूप शिव और सत्वगुण-प्रधान रूप विष्णु है ।[10] प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी भावना के अनुरूप विभिन्न रूपों समझता है[11] (- एकं सद् विप्रा बहुधावदन्ति ), परन्तु वह एक ही ज्योति सब ~~ए~~ जगह परिव्याप्त है और उसके अतिरिक्त अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है ।[12]

---

१. वही, साखी ११।८, ६।१२, २।४४, ८।१, ३२।१, ५८,६
२. वही, पद ३८
३. वही, साखी ३२।७; १६।१५
४. वही, साखी १६।४ तथा पद ३६,४०,४२
५. वही, साखी ११।१६, १५।४६
६. वही, साखी ~~११।१६, १५।४६~~ ३।६, ४।१६ आदि
७. वही साखी ६।१,२,६।१, १५।७१ आदि
८ वही. पद ३६।४. ५४।२, साखी ३।६, ४।३५, ६।३७ आदि
९. भक्ति का विकास पृ० ४२६
१०. कबीर ग्रन्थावली, पद १८१।३
११. वही ,साखी ३।१६
१२. वही, पद १०५।४

नानक –

कबीर के समान नानक ने भी योग और भक्ति दोनों के प्रति आस्था प्रकट की है । अमृत धारि, अमृत रस, अनहद सबद्, अलिपत गुफा, उलटिऔकमल, गगनि, दस दुआरि, सहज गुफा, सुंन मंडल, सुंन समाधि जैसे हठयोग के शब्दों का उन्होंने प्रचुर प्रयोग किया है । एक पद में योगी की प्रशंसा करते हुए कहा है कि जो योगी निर्भय है, वह निरंजन का ही ध्यान करता है और ऐसा योगी मेरे मन को अच्छा लगता है ।[१] परन्तु वेशधारी योगियों की उन्होंने तीव्र भर्त्सना की है ।[२] उनका 'शून्य' समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है और इस शून्य में मन को नियोजित करना सबसे बड़ा योग है ।[3] इसी प्रकार एक पद में भक्ति के रूपक द्वारा योग का वर्णन किया है ।[४]

भक्तिमार्ग में वैधी भक्ति के तिलक, माला आदि विधि- विधानों को उन्होंने निस्सार बताते हुए[५] रागात्मिका भक्ति को प्रश्रय दिया है । वे कहते हैं - गुरु की सेवा के साथ भक्ति करूंगा और हरि के नाम में अनुरक्त होऊंगा । हरि का प्रेम ही मेरी शिक्षा-दीक्षा और भोजन है ।[६] राम की भक्ति से ही मुझे सुख प्राप्त होता है[७] और अहर्निश हरि की उपासना करता रहता हूं ।[८] हरि के प्रति उनकी यह अनन्यता तथा प्रीति जल और कमल सदृश है । जिस प्रकार जल रहित कमल का अस्तित्व नहीं उसी प्रकार हरि के बिना नानक का जीवित रहना भी दुष्कर है ।[९]

---

१. नानक वाणी, पृ० २२६, असटपदीआं ७।२

२. वही, पृ० ५०३, असटपदीआं २

३. वही, पृ० ५५६, पद ५१-५२

४. वही, पृ० ५१५, पद ६

५. वही, पृ० ८०२, सलोक १

६. वही, पृ० २१६, असटपदीआं १।६

७. वही, पृ० २३४, गउड़ी, १३।८

८. वही, पृ० ११६, सबद १६।२

९. वही, पृ० १४६, असटपदीआं ११।१

उनकी कामना है कि यदि सारी नदियां गायें, झरने दूध-घी, पृथ्वी शक्कर बन जाये और उनके भोग से मैं नित्य प्रसन्न होऊं, पर्वत मणिजटित स्वर्ण-रजत के, समस्त वनस्पतियां सुस्वाद रसयुक्त मेवा, आवास अटल तथा सूर्य-चन्द्र मेरी सेवारत हो जायें तब भी, हे प्रभु मैं तुम्हारी प्रशंसा तथा स्तुति से विरत न हो जाऊं। दैविक तापों में भी तुम्हारे प्रति मेरी अनन्यता में किसी प्रकार का अभाव न हो।[१] यही नहीं पुनर्जन्म में यदि कोकिल आदि पक्षी की योनि प्राप्त हो तब भी मुझे मेरा प्रियतम प्राप्त हो और मैं उसके अपार रूप का दर्शनकरूं।[२] इस प्रेमाभक्ति से ही मोक्ष सम्भव है[3] और भक्तिविहीन प्राणी दुखी होते हैं,[४] इसलिए नानक दूसरों को भी हरि-भक्ति के लिए उद्बोधित करते हैं।[५]

भक्ति के उपकरणों में नानक ने निम्न विषयों का व्यापक वर्णन किया है :-

१. सद्गुरु की प्राप्ति, उसका अनुग्रह तथा उपदेश,
२. सत्संगति ,
३. परमात्मा का भय और उसकी आज्ञा,
४. नाम- नृसिंह, हरि, राम, मुरारी, वासुदेव,वनमाली, शार्गपाणि आदि।[६]
५. आत्मनिवेदन तथा आत्मसमर्पण,[७]
६. दैन्य ,[८]

---

१. वही, पृ० १८२, सलोकु १४-१६
२. वही, पृ० २१६, सबद १६।३ ,
३. वही, पृ० २०६ सबद १२।२; पृ० १४४, सलोकु २६
४. वही, पृ० १४३, असटपदी आं ७।७
५. वही, पृ० १६४, असटपदीआं ५।१-२
६. वही, पृ० २०४, सबद ६।१ आदि
७. वही, पृ० १२६, पद ३१।१,३; पृ० २६७/असटपदी १४।१;पृ० ३६५,असट०५।८आदि
८. वही, पृ० १२७,सबद २६

७. परमात्मा का स्मरण और कीर्तन,[१]

८. भगवदानुग्रह,

इसी प्रकार भक्ति के माध्यम रूप में नानक ने जिन भावों को ग्रहण किया है, वे हैं –

१. भिखारी तथा दाता,

२. सेवक तथा स्वामी,

३. सखा,

४. पुत्र तथा माता-पिता ,[२]

५. पत्नी तथा पति [३]

अपने इष्ट का स्वरूप बताते हुए नानक कहते हैं कि वह अगम, अपार, अवर्ण, अनादि, अक्षर तथा सर्वव्यापक है। वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। वह स्वयं ही करण तथा कर्ता, गोपी-गोपालक और नदी है। सृष्टि पालन तथा संहार करने वाला वह सर्वशक्तिमान ब्रह्म अद्वितीय और बहुत ही दयालु है। उसके नाम, रूप और गुण अनन्त हैं।[४] तीर्थ, व्रत तथा तप उसी में संन्निहित हैं[५] और गंगा-यमुना केदार, काशी, कांची, जगन्नाथपुरी, द्वारिका, गंगासागर, त्रिवेणी सहित पृथ्वी-आकाश, स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल लोक उसी के विराट् अंक में समाहित हैं।[५क] देवताओं तक को वह रहस्यमय है[६] और वे उसके सेवक हैं।[७] एक ही मूर्ति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की

---

१. वही, पृ० १५७, असटपदी १५।८, पृ० २३७, गउड़ी १६।२

२. वही, पृ० २५०, चउपदा ५।१ ३. वही, पृ० १३८, असटपदी ४।७, पृ० १३६ असटपदी १३।१.

५. वही, पृ० ४६६, सबद, १०।३, असटपदी ५।३, पृ० १५३/आदि

५क वही, पृ० ६०६-६१०, मारूसोलहेर, ४. वही, पृ० २७२, पद ३३।१, पृ० २६३, असटपदी ११।

ब्रह्म के प्रस्तुत स्वरूप की तुलना भगवद्गीता (११।६-२५) के विराट स्वरूप से की जा सकती है जहाँ द्वादश आदित्य अष्टवसु, एकादश रुद्र, अश्विनीकुमार द्वय, उन्चास मरुद्गण पद्मासीन ब्रह्मा, महादेव आदि देवों तथा ऋषियों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों आदि चराचर सहित सम्पूर्ण जगत् को भगवान् में अंतर्निविष्ट देखा गया है।

६. वही, पृ० ७७८, सबद ३।१

७. वही, पृ० ६२८, मारू सोलहे ८।१५, पृ० ६४६, मारू १४।३

रचना उसी ने की है ।[1] वह एक ही है जिसने धरती और आकाश का निर्माण किया[2]। अनन्त नामधारी[3] वह एक ही सत्ता[4] विभिन्न रूप धारण करती है ।[5] उस वासुदेव परमेश्वर ने देखने के निमित्त अनेक वेश धारण किए हैं[6] जिन्हें देखकर नानक को कहना पड़ता है कि हे प्रभु तेरी मूर्ति तो एक ही है किन्तु उसके स्वरूप बहुत होने के कारण धूप आदि पूजा की सामग्री किसे अर्पित करूं ।[7] वेदों ने भी कहा है कि सृष्टि के रचयिता उस एकेश्वर का ही जाप करना चाहिए ।[8] प्रारम्भ में जब पृथ्वी-आकाश, दिन-रात, सूर्य-चन्द्र, सृष्टि-संहार, जन्म-मृत्यु आदि कुछ न था उस समय भी एक ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ न था ।[9]

**मलूक दास -**

डा० रामकुमार वर्मा ने इनके दो ग्रन्थों का उल्लेख किया है -ज्ञानबोध और रामावतार लीला । रामावतार लीला में रामायण के आख्यान का विस्तृत वर्णन है और ज्ञानबोध में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति के साथअष्टांग योग तथा प्रवृत्ति-निवृत्ति का विस्तार से निरूपण है ।[10] अवधूत को देखकर मलूक की वाणी अवरुद्ध हो जाती है । उन्हें कहना पड़ता है कि हे अवधूत वेद पढ़कर पंडित और ज्ञानार्जन कर ज्ञानी भूल गए हैं परन्तु तुम्हारी अद्भुत लीला को कोई नहीं जान सका । कुछ लोग तीर्थाटन से अपने को महान् समझते हैं पर वे भी तुम्हारे रहस्य को नहीं जानते । फिर मैं तुम्हारे विषय में क्या कहूं । मुझे तो तुम्हारा नाम भी नहीं ज्ञात । गगन

---

१ वही, पृ० ५१६, रामकली दखणी ६।१२

२. वही, पृ० ४८२, बिलावलु१।१,३ ३. वही, पृ० ४६३, सबद ३।३

४. वही, पृ० ८६,जपु २२; पृ० १०३, सबद ३।३; पृ० १४१, असटपदी ६।८; पृ० १७७ सलोकु २४-३०; पृ० २२४, गउड़ी ५।७; पृ० २३७, गउड़ी १५।५; पृ० २५०,चउपदा ५।१० आदि ।

५. वही, पृ० २६७, चउपदा २५।४; पृ० २६६, दुपदा ३०।१; पृ० २५० चउपदा ५।४

६. वही, पृ० ३१४, रागु आसा ३२

७. वही, पृ० ७०१,सबद २।२ ८. वही, पृ० ७१३, असटपदी ३।२

६. वही, पृ० ६४६-६४७, मारू १५।१-४

१०. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७२-२७३

मण्डल में जो अनहद नाद हो रहा है मैं तो उसकी जाति-वर्ण से भी अनभिज्ञ हूं ।[१] परन्तु जब से उन्होंने 'अलख पुरुष' के दर्शन किए है, उसके हाथ बिक गए हैं । सुर-असुर, नर,मुनि-गन्धर्व उसके सेवक और दास हैं । उसके दशावतार ही नहीं असंख्य रूप हैं । वह अगम्य और अदृश्य रूप से सदैव साथ रहता है और उसके कारण काल निकट तक नहीं आता है । फिर ऐसे को प्राप्त करने के लिए क्यों न अजपाजाप किया जाये ।[२] मलूकदास ने सृष्टि में चार पदों की कल्पना की है -[३]

१. देवी-देवता,

२. नियम-आचार,

३. माया-मोह,

४. अपरम्पार

इनमें से वह पहले तीनों से विरत होकर अविगत के हाथों बिक चुके हैं । लोग तीर्थ और ठाकुर द्वारा जाने की बात कहते हैं परन्तु परम ज्योति के दर्शन हो जाने से मलूकदास को अन्य कुछ दिखाई नहीं देता है । उन्होंने तो अविनाशी से मित्रता करके शून्य महल में स्थान बना लिया है ।[३] इस शिव नगरी में उनकी सहज से लय लगी हुई है और ज्ञान की लहरें उठने से मोतियों की रिमझिम वर्षा हो रही है । वहां वे अनहद नाद के साथ जगमग ज्योति के दर्शनकर रहे हैं । "आतम" के जागने पर अब वे सीम से असीम में पहुंच गए हैं ।[४]

परन्तु मलूकदास के अविगत और निरंजन ने सन्तों के कल्याणार्थ विविध अवतार (रूप) भी धारण किए हैं ।[५]उसने पांचों पाण्डवों को जलने से बचाया था

---

१. मलूकदास जी की बानी, भेद बानी,शब्द २

२. वही, उपदेश, शब्द १

३. वही, मिश्रित , शब्द १

४. वही, उपदेशी शब्द १३।२-५

५. वही, साखी २३ ,

और द्रौपदी की लाज रखी थी ।[१] शबरी और गज ने किसका कल्याण किया था, जटायु ने कौन-सा विद्यार्जन, व्याध ने कौन-सा न्याय तथा अजामिल ने क्या पुण्य किया था परन्तु भगवान् ने इन सभी का उद्धार कर दिया ।[२] फिर वह मलूकदास का हित-साधन क्यों न करेगा । इसी आस्था से मलूकदास को कहना पड़ता है कि —

'हरि हजरत माँहिं माधव मुकुन्द की सौं,
छाँड़ि के सब राय मेरो दूसरो न कोई है ।।'[३]

कहा जाता है कि एक बार भगवान् ने इनकी गठरी घर पहुँचा दी थी, तभी से यह विरक्त हो गए । बाद में दिन-रात अष्टयामी उपासना में निरत रहते थे और भगवान् को पान के बीड़े का भोग भी लगाया था।[४] एक किंवदन्ती के अनुसार यह जल-समाधि लेकर जगन्नाथ पहुँचे थे और वहाँ जगन्नाथ की जल प्रणालिका के निकट अपने विश्राम की प्रार्थना की थी जिसे स्वीकार कर लिया गया ।[५] परन्तु आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने इसका खण्डन करते हुए उसे दो मलूकदासों के व्यक्तित्व को मिलाने के लिए गढ़ी गई कपोल कल्पित घटना माना है ।[६]

वैष्णव भक्ति के विविध तत्वों में से गुरु-महिमा,[७] दया,[८] अहिंसा,[९] विषय-निन्दा,[१०] शरणागति अथवा आत्मसमर्पण[११] आदि के प्रचुर उदाहरण मलूक की रचना में मिल जाते हैं । अब उन्हें एकमात्र मुरारी का ही आश्रय है क्योंकि उसके

---

१. वही, विनती, शब्द ३।२
२. वही, कबित्त १०
३. वही, कबित्त ५।४
४. रामानन्द सम्प्रदाय और हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव, पृ० २११
५. मलूकदास जी की बानी, जीवन-चरित्र, पृ० ४,५
६. उत्तरी भारत की सन्तपरम्परा, पृ० ५०४
७. मलूकदास जी की बानी, उपदेश, शब्द ५।८
८. वही, साखी ४६; ५१-५३; ५७-५८
९. वही, साखी ५४।५५
१०. वही, चेतावनी, शब्द २।२; उपदेश, शब्द ५।५; साखी ७३-७४
११. वही, मिश्रित, शब्द ४।४; ८।४

समान दूसरा कोई नहीं है ।[१] राम और रहीम ही क्या[२] वह क्षण मात्र में विविध स्वरूप धारण कर लेता है और क्षण मात्र में एकाकी रह जाता है ।[३]

दादूदयाल

सृष्टि का निमित्त शब्द है, जिससे सब लोग बंधे हैं । इसी से सब कुछ उत्पन्न होकर इसी में स्थित रहता है और अन्तत: इसी में समाहित हो जाता है । इस शब्द से ही निर्गुण और निर्मल ज्ञान उपलब्ध होता है ।[४] इसी से पंच तत्व उत्पन्न हुए हैं ।[५] इसलिए दादू भी उससे मोहित हैं ।[६] परन्तु उस तक पहुंचने का मार्ग अत्यन्त दुष्कर है । वहां पैरों से नहीं पहुंचा जा सकता क्योंकि उसका निवास आकाश के शिखर पर है जहां विकट और अवघट घाट है । वहां जाने के लिए मनरूपी घोड़े की सवारी, लौ की लगाम तथा गुरु ज्ञान के चाबुक की आवश्यकता है ।[७] अलक्ष्य देवाधिदेव के उस स्थान पर निरन्तर अनहद नाद, सूर्य और चन्द्रमा के अभाव में भी अत्यन्त जाज्वल्यमान प्रकाश तथा मेघों के बिना वर्षा होती रहती है, जिससे अनन्त आनन्द प्राप्त होता है ।[८] उस शून्य रूपी सरोवर में मन रूप हंस राम-रत्न चुगता रहता है और निर्झर नीरपीता रहता है ।[९] विचार करने पर ज्ञात होता है कि उस अनहद नाद में ही राम का निवास है ।[१०]

---

१. वही, कबित्त१४।२

२. वही, कबित्त ३।५

३. वही, सतगुरु और निज रूप की महिमा, शब्द २।४

४. दादूदयाल की बानी, भाग १, सबद कौ अंग २-४

५. वही, सबद कौ अंग १५, समर्थाई कौ अंग ३७

६. वही, सबद कौ अंग २३

७. वही, गुरुदेव कौ अंग १३५-१३६

८. वही, परचा कौ अंग३;१८-१९; ९०-९१; ११३

९. वही, परचा कौ अंग, ५७,६४,६७

१०. वही, सबद कौ अंग २७

यह राम दादू को वैसे ही प्रिय है जैसे वीर को संग्राम, निर्धन को धन, चातक को (स्वाति का ) और मछली को जल, चकोर को चन्द्र, भ्रमर को सुगन्ध, मृग और श्रवण को संगीत, पतंग को दीपक, नैनों को सुन्दर वस्तु, जिह्वा को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ और प्राणों को शरीर प्रति मोह तथा आकर्षण होता है।[१] वह नैत्रों के बिना देखता और वाणी के बिना बोलता है, कानों के बिना सुनता है, पैरों के बिना चलता है और चित्त के बिना कार्यकरता है।[२] ऐसा स्वामी घट में ही व्याप्त है इसलिए काशी, मथुरा, द्वारिका आदि की तीर्थ-यात्रा व्यर्थ है।[३] दादू की कामना है कि उसकी कथा सुनने के लिए अनन्त श्रवण, उसके दर्शन हेतु अनन्त नैत्र[४] तथा उसके प्रति अनन्य प्रेमाभक्ति दृढ़ हो जाए।[५] हरि की भक्ति विहीन प्राणी को पश्चाताप करना पड़ता है।[६] इसलिए दादू हरि के भक्तों तक पर अपने को न्यौछावर करते हैं।[७] जब उसका अनुग्रह होता है तो समस्त व्याधियों को नष्ट करके अपनी अविचल भक्ति के साथ दर्शन भी देता है।[८] दादू ने भाव-भक्ति के द्वारा उसके दर्शन प्राप्त कर लिए।[९] अब उनके लिए ऋद्धि-सिद्धि, स्वामी-गुरु, ज्ञान-ध्यान, पूजा-पाती, तीर्थ-वैराग्य, योग-भोग, वेद-पुराण, जप-तप, शील-संतोष, शिव-शक्ति, इष्टदेव और मोक्ष आदि सब कुछ वही है।[१०] गोविन्द,[११] केशव,[१२] मोहन[१३] आदि

---

१. वही, बिरह को अंग २०-२६

२. वही, परचा को अंग १६४ भागवत १०।४३।१७ में यही वर्णन कृष्ण और राम-चरित मानस १।११८।५-७ में राम के सम्बन्ध में हुआ है।

३. वही, कस्तूरिया मृग को अंग ८,

४. वही, परचा को अंग ३२०,३२१

५. वही, साध को अंग २८

६. वही, बिनती को अंग २३

७. वही, साध को अंग ४६

८. वही, बिनती को अंग, ३०

९. वही, परचा को अंग ३५३

१०. वही, निहकर्मी पतिब्रता को अंग ५-१२

११. वही, परचा को अंग ३५२; बैसास के अंग १७ आदि

१२. वही, निहकर्मी पतिब्रता को अंग १५ आदि    १३. वही, निह०पति०को अंग, २३ आदि

ही क्या उसके तो अनन्त नाम हैं। चाहे जिस नाम का प्रयोग किया जाये।[१] वह राजसी प्रकृति से रचना, सात्विक प्रकृति से पालन और तामसिक प्रकृति से संहार करता है।[२] संशय की आरसी में अन्य भाव दिखाई देता है परन्तु भ्रम तथा द्विविधा नष्ट हो जाने पर एकमात्र वही रह जाता है।[३] उस एक को पहिचान लेने पर अन्य कुछ शेष नहीं रहता।[४] चर्म-चक्षुओं से अनेकत्व भाव लगता है परन्तु आत्म दृष्टि से देखने पर एक का ही अस्तित्व सिद्ध होता है।[५] मनीषियों ने भी एकेश्वर को ही मान्यता दी है।[६] इसलिए दादू चीख-चीखकर कहते हैं कि मनसा, वाचा, कर्मणा सब प्रकार से विचार करने पर वह अगाध अगोचर ब्रह्म एक ही ठहरता है।[७] यदि आराध्य को प्राप्त करना है तो उस एक की ही उपासना करनी चाहिए।[८] जिन लोगों को वह प्राप्त हो चुका है उनका कहना यही है कि साध्य एक ही है उसकी प्राप्ति के साधन अनेक हैं। विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय अनेक उनके लिए हैं जो अभी साधना के मार्ग में हैं।[९]

परब्रह्म सम्प्रदाय की स्थापना में दादू का प्रमुख उद्देश्य यही था कि प्रचलित परस्पर विरोधी धर्मों तथा सम्प्रदायों में सहिष्णुता के साथ समन्वय लाया जा सके।[१०] हम देखते हैं कि इसके लिए उन्होंने कथनी ही नहीं करनी का भी प्रयोग किया है। जहां एक ओर अल्लाह और राम को एक ही शक्ति के दो नाम बताया,[११]

---

१. वही, सुमिरन को अंग २३
२. वही, साखीभूत को अंग ७
३. वही, दया निर्वैरता को अंग ६
४. वही, निष्कर्मी पतिब्रता को अंग ८२
५. वही, हैरान को अंग २६
६. वही, बिनती को अंग १७
७. वही, निष्कर्मी पतिब्रता को अंग १६, २४; ४६; सुमिरन को अंग २०; पीव पिछाणा को अंग १२; काल को अंग ६२; उपजणि को अंग ५; साखीभूत को अंग २; आदि
८. वही, माया को अंग १८५ ९. वही, माया को अंग १९०-१९१
१०. उत्तरीभारत की सन्त परम्परा, पृ० ४३७
११. दादूदयाल की बानी, भाग १, सुमिरन को अंग २१

वहीं स्वयं शैव योग-मार्ग और वैष्णाव प्रेमा भक्ति को प्रश्रय दिया । यही नहीं एकी नियानं बहुधा रथास:' के अनुसार विविध मत-मतान्तरों को उसी एक की प्राप्ति का माध्यम बताकर सम्प्रदाय-स्थापना के अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मनसा, वाचा, हर प्रकार से प्रयास किया है ।

सुन्दरदास –

सन्तों में सम्भवत: एकमात्र सुन्दर ही सुशिक्षित, बहुश्रुत तथा बहुभाषा-विद् हुए हैं । संस्कृत के पाण्डित्य, हिन्दी के प्रकाण्डत्व के साथ उन्हें फारसी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी आदि भाषाओं का भी ज्ञान था ।[१] उन्होंने ११ वर्ष की अवस्था से काशी में रहकर १६ वर्ष तक संस्कृत, वेदान्त, पुराण, योग आदि की शिक्षा प्राप्त की थी ।[२] यद्यपि उनकी रचना में वेदान्त के अतिरिक्त सांख्यादि अन्य दर्शनों की बातें भी मिलती हैं तथापि उनकी अधिक रुचि वेदान्त में ही है । घटाकाश, स्वर्णाभूषण, लौहास्त्र, मृत्तिका-भाजन, बूंद-समुद्र रज्जु-साँप, सर्प-रज्जु, मृग-मरीचिका आदि के उदाहरणों द्वारा उन्होंने वेदान्त का ही प्रतिपादन किया है। चन्द्र से ज्योत्स्ना और सूर्य से रश्मियों को अलग करके देखना भ्रम ही है । बहुवर्णी किरणें वस्तुत: सूर्य का ही अंश होती हैं,[३] उसी प्रकार विविध जीव ब्रह्म के ही अंश हैं । परन्तु वेदान्तिक दृष्टि से सुन्दरदास द्वैताद्वैत आदि ही नहीं तान्त्रिक अद्वैतवाद से भी प्रभावित हैं । जहाँ शंकर केवल ब्रह्म तत्व का अस्तित्व मानते हुए अन्य सब कुछ मिथ्या मानते हैं, तान्त्रिक अद्वैतवाद के अनुसार परम शिव एकाकी नहीं है । जिस प्रकार एक बीज में दो दालें अन्तर्निहित रहती हैं उसी प्रकार परम शिव में शिव और शक्ति दोनों सन्निहित हैं[४]। इससे प्रभावित हो सुन्दरदास ने ब्रह्म और माया में

---

१. सुन्दर बिलास, सुन्दरदास जी का जीवन-चरित्र, पृ० ४

२. वही, जीवन-चरित्र, पृ० २

३. वही, अद्वैतज्ञान को अंग २३,

४. हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० २३८

वही सम्बन्ध बताया है जो शिव-शक्ति,पुरुष-प्रकृति तथा बीज और उसकी दो दालों में है ।[१]

इसी प्रकार जहां उन्होंने योग का अध्ययन किया था और अजपाजाप आदि हठयोग की शब्दावली[२] तथा शून्य मण्डल के रूपक[३] का प्रयोग किया है । मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति को ही मान्यता दी है । विष्णु के अवतारों में उनका विश्वास है[४] और अनादि, जगतपति अपने इष्टदेव के लिए राम,[५] गोविन्द,[६] हरि,[७] केशव[८] आदि शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है । उनकी कामना है कि प्रभु से स्नेह सम्बन्ध स्थापित कर ऐसी अनन्यता एवं प्रगाढ़ता रहनी चाहिए जैसी मीन की जल,सर्प की मणि, सीप और चातक की स्वाति - बूंद, कमल की सूर्य तथा चकोर की चन्द्र के प्रति होती है ।[९] उस राम का भजन करने से ही कल्याण सम्भव है ।[१०]

सुन्दर के अखण्ड, शाश्वत,सर्वव्यापक आराध्य के विविध स्वरूप वैसे ही हैं जैसे वृक्ष की छाया ।[११] छाया का अस्तित्व सत्य होते हुए भी वह वृक्ष तथा परिस्थितियों के वश है । उसका निर्माण सूर्यादि के प्रकाश की मात्रा तथा दूरी के आधार पर वृक्ष से ही होता है । इसीप्रकार आवश्यकता पड़ने पर ही वह स्वरूप धारण करता है । उसे तत्व-अतत्व, शून्य-अशून्य , ज्योति-अज्योति, शुद्ध-अशुद्ध की परिधि

---

१. सुन्दरविलास,अद्वैतज्ञान को अंग १६

२. वही, शब्द सार को अंग ४

३. वही, विपर्जय को अंग ११-१२

४. वही, निर्गुण उपासना को अंग १।२

५. वही, गुरुदेव को अंग १७, उपदेश चिंतामणि को अंग १ आदि

६. वही, गुरुदेव को अंग २२, उपदेश चिंतामणि को अंग १ आदि

७. वही, गुरुदेव को अंग २४, उपदेश चिंतामणि को अंग १,१२ आदि

८. वही, शब्दसार को अंग २ आदि

९. वही, पतिव्रता को अंग ७

१०. वही, उपदेश चिंतामणि को अंग ३६,कालचिंतामणि को अंग ५,६,१६ आदि

११. वही, निर्गुण उपासना को अंग ५।३

में बांधना अनुचित होगा[1] क्योंकि एक कहने पर अनेक,सा दिखाई देता है बल्कि ऐसा नहीं है । आदि कहने पर अन्त तथा गोप्य कहने पर अगोप्य का भाव आ जाता है परन्तु वह इनमें से कैसा भी नहीं है और जैसा भी कहा जाये वह असत्य है ।[2] सत्य तो यह है कि –

एक को कहै जु कोऊ, एक ही प्रकासत है,
दोऊ ही जु कहै जु कोऊ , दूसरोहू देखिए ।
अनेक कहै जु कोऊ, अनेक आभासै ताहि ,
जाको जैसो भाव तैसो ताहू ही विसेखिए ।।[3]

वेद पुराण आदि ग्रन्थों वशिष्ठ जैसे मुनियों और अर्जुन उद्धव आदि को कृष्ण ने एकेश्वर का ही उपदेश दिया है[4] परन्तु वह भक्त की भावना के अनुसार सूर्य,चन्द, नक्षत्र विद्युत आदि के रूप में प्रकट होता है ।[5] और दुष्टों का संहार करने बाहर आता है ।[6]

अक्षर अनन्य

अक्षर अनन्य के भाव एक शैव मतानुयायी जैसे लगते हैं क्योंकि, इन्होंने शैवों की पारिभाषिक शब्दावली के अतिरिक्त शिव-शक्ति के प्रति श्रद्धा प्रकट कर उनकी भक्ति की कामना की है । एक पद में वे कहते हैं कि हमारा ध्यान सदैव शिव से लगा रहे । सोते-जागते ,आते-जाते, रात-दिन हम उसी का नाम जपते रहें । त्रिभुवन का सार होने के कारण सिद्ध-मुनि ही क्या राम तक उनका ध्यान करते हैं ।

---

१. वही, आश्चर्य को अंग ७
२. वही, आत्म अनुभव को अंग ६
३. वही, आत्म अनुभव को अंग ७
४. वही अद्वैतवाद को अंग ८
५. वही, अपने भाव को अंग ८,
६. वही, अपने भाव को अंग ६।३
७.

शिव-शक्ति की भक्ति विरले को ही उपलब्ध होती है ।[1]

वर्ण्य-विषय की दृष्टि से उनके ग्रन्थों को निम्न वर्गों में बांट सकते हैं –

१. शाक्त –

क. उपासना बोध : इसमें शाक्तागमों द्वारा मान्य ३६ तत्वों में से शुद्ध-विद्या तत्व का विस्तृत वर्णन है ।

ख. ज्ञान पंचासिका : इसमें रचना प्रकृति अथवा माया शक्ति का विस्तृत विवेचन है ।

ग. सिद्धान्त बोध : इसकी रचना विभिन्न साधना-पद्धतियों के विवेचन और शाक्त सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए हुई है ।

घ. अनन्यप्रकाश : इसमें सृष्टि का वर्णन शाक्त मान्यता के अनुसार किया गया है ।

ङ. भवानी स्तोत्र : यह २० स्फुट छन्दों में रचित स्तोत्र, ग्रन्थ है ।

च. उत्तम चरित्र : यह एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमें दुर्गासप्तशती का भावानुवाद है ।

छ. अक्षर अनन्य के चिट्ठा : यह साधना सिद्धान्त , ज्ञानयोग, राजयोग, के साथ शिव-शक्ति के अभेद और शाक्त-तन्त्र में प्रतिपादित साधना सिद्धान्तों का निरूपण है ।

२. शिव-शक्ति समर्थक –

क. शिव-शक्ति - पचीसी : इसमें देव शक्ति के रूप में शिव-शक्ति का वर्णन है ।

ख. साखी : ज्ञानाश्रयी परम्परा से हटकर अक्षर अनन्य ने इन साखियों की रचना क्रमबद्ध रूप में की है । इनमें शिव-शक्ति के अभेद तथा साधना सिद्धान्तों का निरूपण है ।

---

१. अक्षर अनन्य , गुणानबत्तीसी २६; विवेकतरंग ८।३; ६।३; सिद्धान्त बोध - ४६; साखी - ५७ आदि ।

ग. गुणानबत्तीसी यह शिव-शक्ति को चेतन ब्रह्म मानकर उनके स्तवन में रची गई है ।

३. शैव कथानक —

महिमा समुद्र : यह एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें शिवपुराण के काशी खण्ड का कथानक ग्रहण किया गया है । इसमें जलन्धर -वध, ध्रुव-कृष्ण आदि की शिव-भक्ति विषयक कथाओं द्वारा शिव को सर्वश्रेष्ठ देवता और उनकी भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है ।

४. योग —

क. ज्ञानयोग : इसकी रचना साधना, सम्बोधन, धारणा, अनहद नाद और विराट्-ब्रह्म नामक पांच प्रकरणों में हुई है । साधना प्रकरण में परावाक् को सूक्ष्म तथा विराट् रूप में सर्व व्यापक बताते हुए अनहद आलाप को सुनना ही ज्ञानयोग माना है । यह परावाक् या अनहद नाद ही शिवनाद है । सम्बोधन प्रकरण में मनोनिग्रह पर बल है । धारणा में बाह्य चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा चित्त के समाधिस्थ होने का वर्णन है । आगे अनहद (शिव)नाद के भासित होने की स्थिति है । तब ब्रह्म की अनुभूति और पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड के एकात्म का प्रतिपादन है । जब साधक को यह अनुभूति होने लगती है कि मूलाधार चक्र ही पृथ्वी, मणिपूर चक्र नीर, उदर की रिक्तता आकाश, नाभिकमल में अग्नि , प्रत्येक अंग में वायु का संचार है तथा नेत्रद्वय सूर्य-चन्द्र, रोमावली वनस्पतियां, रक्तवाहक धमनियां, सरितायें, त्रिगुण सृजक-पालक-संहारक शक्तियां और आत्मा ही निर्गुण ब्रह्म है तब वह पूर्ण स्थिति प्राप्त कर लेता है ।

ख. सिद्धान्तबोध : इसमें शाक्त-सिद्धान्तों, भक्ति तथा ज्ञानयोग के अतिरिक्त अष्टांग योग के साथ षट्चक्रों का भी विशद वर्णन है ।

ग. शृंगार योग : इसमें अक्षर अनन्य ने योग को सर्वग्राही बनाने के लिए उसका वर्णन सरस तथा आकर्षक रूप में किया है । इड़ा, पिंगला तथा सुषम्ना नाड़ियों के माध्यम से महा-कुण्डलिनी रूप शक्ति का सहस्रार में स्थित शिव से संयोग ही अभीप्सित है । यही सामरस्य तथा निर्वाण की स्थिति है ।

जिस प्रकार पति के साथ सोई पत्नी स्वप्न में बिछुड़कर भटकती है उसी प्रकार अज्ञानावस्था में साधक पिण्ड स्थित कुण्डलिनी-शक्ति को विस्मृत कर इधर-उधर दिग्भ्रमित होता फिरता है। ग्रन्थ में मुग्धा तथा नवागता की प्रेम-क्रीड़ाओं और अभिजातवर्गीय शीलवती-नायिका की चेष्टाओं की शृंगारिक शैली में ही साधना की विविध स्थितियों का वर्णन है। आराध्य के प्रति साधक का प्रेम कामी और कामिनी के समान ही होना चाहिए।

घ. हरिहर-संवाद : इसे 'योगशास्त्र' भी कहा गया है। योग विषयक जिज्ञासाओं के समाधान हेतु कृष्ण कैलाश पर शिव के पास जाते हैं और शिव तथा कृष्ण के संवाद रूप में ही इसकी रचना हुई है। २२५ छन्दों के इस ग्रन्थ में कृष्ण को शिव द्वारा योग-शिक्षा प्राप्त करते चित्रित किया गया है। मनुष्य देवों की, देव ईश्वर की और ईश्वर नाद की उपासना करते हैं। यह नाद भी अनहद में विलीन हो जाता है इसलिए मनुष्य को वही ध्यातव्य है।

ङ. अष्टांग योग : ब्रजभाषा गद्य में रचित इस ग्रन्थ में अष्टांग योग का वर्णन है।

५. भक्ति --

क. सिद्धान्त बोध : भक्ति, योग और ज्ञान मार्गों को एक ही लक्ष्य सिद्धि का माध्यम बताते हुए[१] अक्षर अनन्य ने भक्ति को कायिक, वाचिक और मानसिक - त्रैधा विभाजित किया है। इनमें से किसी भी मार्ग का आश्रय लिया जा सकता है। भक्ति के दसलक्षणों में उन्होंने गुरु-आस्था, तन्मयता, शील, सन्तोष, धैर्य, उत्साह, सत्य, दया, दम तथा आराध्य में चित्त के स्थिरीकरण को रखा है।

ख. निरधारशतक : यह ज्ञान, नीति और भक्तिपरक एक सौ दोहों का संग्रह है। भक्ति का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं कि शरीर तथा संसार क्षणभंगुर हैं और मानव जीवन का लाभ भक्ति ही है।[२]

---

१. वही, सिद्धान्त बोध, १५५

२. वही, निरधारशतक, ३२

६. गणेश स्तुति –

गणेशाष्टक : यह गणेश के स्तवन में ८ त्रिभंगी छन्दों की रचना है ।

७. ब्रह्म-निरूपण –

क. ज्ञानतरंग : इसके अन्तर्गत स्थावर-जंगम, देव-असुर, राम-रावण, कृष्ण - कंस आदि सबको ब्रह्म का ही रूप मानकर ब्रह्म के सर्वव्यापकत्व का निरूपण है ।

ख. विवेकतरंग : इसमें अखिल विश्व में एक ही शक्ति की परिव्याप्ति विवेचित है ।

८. नीति एवं ज्ञान –

क. उत्तर-मालिका : यह कृष्ण - अर्जुन के संवाद रूप में नीति एवं ज्ञानपरक कृति है ।

ख. भक्ति भावना : इसमें राजाओं को नीति का उपदेश है ।

ग. वैराग्य तरंग : रागादि दोषों को विकार बताकर उनसे विरक्ति के लिए इसकी रचना हुई है ।

९. भ्रमरगीत –

प्रेमदीपिका : कृष्ण, उद्धव और गोपियों को लेकर हिन्दी के बहुत से कवियों ने भ्रमरगीत-काव्य रचे हैं । इनकी रचना प्राय: स्फुट काव्य के रूप में हुई है परन्तु अक्षर अनन्य ने परम्परा से हटकर अपने भ्रमरगीत को प्रबन्ध काव्य के रूप में रचा है । इसकी अन्यतम विशेषता है गोपियों के प्रेम-भाव का उसी अनन्यता से वर्णन जिससे निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन किया है । वेदान्त में सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य मुक्तियाँ मानी गई हैं । प्रथम तीन में पुनर्जन्म भी सम्भव है जबकि सायुज्य में साधक की आत्मा का ब्रह्म में विलय हो जाता है । प्रेमदीपिका में अक्षर अनन्य ने उसी की प्राप्ति पर बल दिया है ।

अक्षर अनन्य की रचनाओं के प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने जहाँ शिवपुराण के कथानक को लेकर महिमासमुद्र का प्रणयन किया है वहीं श्रीमद्भागवत को आधार बनाकर प्रेमदीपिका रची है । एक ओर सिद्धान्तबोध तथा

निरधार-शतक में भक्ति का निरूपण है तो ज्ञानयोग, शृंगार योग, हरिहर संवाद, अष्टांगयोग में योग का प्रतिपादन। शैव धर्म से विशेष प्रभावित होने के कारण ऐसे ग्रन्थों की अधिक संख्या होते हुए भी वे कट्टर शैव नहीं हैं। शिव और विष्णु के समन्वय भाव को प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने शिव को (वैष्णव) चक्र धारण किए दिखाया है।[1] इतना ही नहीं शिव प्रेममुग्ध हो कृष्ण से वार्ता सुख प्राप्त करने के लिए नारी रूप में उनके पास आते हैं।[2] हरिहर संवाद की रचना तो कवि ने हरिहर के ही अनुग्रह से की है।[3] त्रिदेव तो एक ही सत्ता के त्रिगुण भेद से तीन रूप विशेष हैं। वे एक से ही तीन हो जाते हैं और तीनों एक हैं - जैसे यज्ञोपवीत के तीन धागे। ज्ञानी उन्हें एक और अज्ञानी भिन्न मानते हैं।[4] वह एक ही ब्रह्मा रूप से सृष्टि, विष्णु रूप से पालन और रुद्र रूपसे संहार करता है।[5]

वे ब्रह्मचारी-संन्यस्त वैरागी, वानप्रस्थी-गृहस्थ, शैव-वैष्णव, ब्रह्मा, राम अथवा कृष्ण के उपासक आदि कोई न होकर निष्पक्ष हैं और सबको मानने वाले भी।[6] शून्य, शब्द, ज्योति, महादेव, ब्रह्मा, विष्णु, ~~रुद्र, शक्ति,~~ राम, कृष्ण आदि उसी एक के विविध नाम तथा रूप हैं।[7] ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शक्ति, लक्ष्मी, पृथ्वी, जल, अग्नि,

---

१. वही, महिमासमुद्र, २५१

२. वही, प्रेमदीपिका ३४-३५

३. " जोग शास्त्र सिद्धान्त मत, निज हरिहर संवाद।
सो भाषा करि कहत हौं, हरिहर कृपा प्रसाद।।" वही, हरिहर-संवाद, ४

४. वही, अक्षर अनन्य के चिट्ठा, ४।६

५. वही, ज्ञानपंचाशिका, २५

६. नहीं ब्रह्मचारी न बिरागी न संन्यासी हम,
नहीं बानप्रस्थ न गृहस्थ अनुसारे हैं।
× ×
आतम प्रकास ग्यान अनुभौ 'अनन्य' भनै,
हम हैं निपच्छ पच्छ सबहैं हमारे हैं।। - वही, वैराग्य तरंग, १३

७. वही, ज्ञानतरंग १; अक्षर अनन्य के चिट्ठा २।१४; ज्ञानपंचाशिका, १६; निरधार-शतक-८८

पवन, आकाश, चन्द्र, सूर्य आदि छोटे-बड़े न होकर उस एक परब्रह्म के अंगस्वरूप हैं, इसलिए किसी एक की उपासना और अन्य की निन्दा नहीं करनी चाहिए।[1] अन्य देवता की निन्दा का उन्होंने कट्टरता से खण्डन किया है।[2] फिर भी उनका परब्रह्म तो विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि सबसे परे[3] शब्द रूप है।[4] शिव, विष्णु आदि तो अपने-अपने लोक के अधिपति हैं, जो जिसकी भक्ति करता है उसे वही मिल जाता है।[5] देवता, अवतार, मनुष्य, पत्थर आदि किसे इष्ट मान लो उसी से फल की प्राप्ति हो जाती है[6] क्योंकि इन सब में वही एक परिव्याप्त है।[7] एक से अनेकत्व भाव तो उसकी लीला है।[8] ज्ञानियों को तो अनेकत्व में भी एकत्व परिलक्षित होता है[9] फिर वेद-वेदान्त में भी तो एक का ही प्रतिपादन है।[10] वह तत्वस्वरूप तो एक ही है[11]

---

१. वही, अक्षर अनन्य के चिट्ठा, १३।६-९३

२. वही, ,, ४।३; १२।१६(उपासना बोध-१८),

३. वही, विवेकतरंग, १४

४. वही, ज्ञानयोग, अनहदनाद प्रकरण-५

५. "भागवत में कृष्ण जू सौं ईश्वर कहत हैं। रामायन में रामजू सौं ईश्वर कहत हैं। बिष्नुपुरान में बिष्नु सौं ईश्वर कहत हैं। शिवपुरान में महादेव जू सौं ईश्वर कहत हैं।....... जु जाकी भक्ति करे सु ताही मिलै। अरु जु आसंका होइ कै इन सब सौं ईश्वर कहे तैं कहौ सु जैसे अपने अपने देस के राजा तैसे अपने अपने लोक के देवता। ता लोक को सोई ईश्वर है। अरु या लोक में सब्ब ही अधिपति है। कोउ काहू को भक्त कोउ काहू को भक्त। जु जाको भक्त है, सु ताही मिलत है।"

—वही, अष्टांग योग, पृ० ५००

६. "देवता सौं अवतार सौं मनुष सौं पाथर सौं जासौं मानि लीजै कै येही हमारे इष्ट हैं, ईश्वर हैं तो वही ईश्वर फलदाता है। जो यह मानि लीजै कै सब ही में है तो वही है। जो एक में मानी तो एक भयौ अरु सब में एक मान्यौ तो एक भयौ। वह तो एक है, मानि भली।"

— वही, अष्टांग योग, पृ० ५१६

७. वही, ज्ञान पंचासिका, ५० ८. वही, विवेकतरंग, ४ ९. वही, ज्ञानतरंग, ७-८

१०. वही, अनन्यप्रकाश, ४४ ११. वही, अष्टांगयोग, पृ० ४८७

सहजोबाई --

सहजोबाई ने 'सतगुरु महिमा का अंग' में अपनी गुरु-परम्परा बताते हुए 'हरि तें गुरु की विशेषता' शीर्षक अंग में अपने गुरु चरनदास को भगवान् से भी अधिक प्रिय माना है। वे हरि को त्यागने के लिए तैयार हैं, परन्तु गुरु को नहीं।[1] गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने चरनदास को ज्ञान, योग तथा भक्ति-तीनों में निष्णात बताया है। जिस प्राणी की जैसी अभिरुचि होती है, उसको वे वैसी ही शिक्षा देते हैं।[2] गुरु-भक्त सहजो ने चरनदास के चरणों में बैठकर योग तथा भक्ति दोनों का उपदेश प्राप्त किया था। यही कारण है कि उनकी रचना में दोनों मार्गों का वर्णन मिलता है। दुष्टों के तानों द्वारा योग और भक्ति की दृढ़ता होने का विश्वास करने से उनकी इन दोनों के ही प्रति आस्था प्रकट होती है।[3] एक स्थान पर उन्होंने स्पष्ट कहा है --

जोगी पावै जोग सूं, ज्ञानी लहै बिचार।
सहजो पावै भक्ति सूं, जाके प्रेम अधार ।।[4]

योग की दृष्टि से सहजो ने जिह्वा और तालु के बिना ऐसा जाप करने का आह्वान किया है जिसमें सहज से ध्यान लगा रहे।[5] उनका कहना है कि निर्वाण प्राप्ति के लिए मन और इन्द्रियों को वश में करके धैर्यपूर्वक अनहद नाद की साधना करनी चाहिए।[6] इसके लिए योग के अष्ट अंगों का पालन आवश्यक है।[7] इस पिपी-

---

१. चरनदास पर तन मन वारूं। गुरु न तजूं हरि कूं तजि डारूं।

--सहजोबाई की बानी, हरि तें गुरु की विशेषता१२।६,

२. वही, सतगुरु महिमा का अंग - ६ मिश्रित पद, पृ० ४६, रागमलार १

३. वही, दुष्ट लक्षण- १८

४. वही, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग ११,

५. वही, अजपा गायत्री का अंग, १

६. वही, सोलह तिथि निर्णय, पांचै १-२, मिश्रित पद, पृष्ठ ५३ राग आसावरी, ३

७. वही, सोलह तिथि निर्णय, आठैं, नौमी,

~~८. त्रिकुटी महल न चढ़ि सकै, तासौं न ठहराय।~~

लिका मार्ग से सहजो स्वयं शून्य में पहुंचचुकी हैं,[१] जहां बिना बिजली के जगमग ज्योति तथा बिना सीप के मोती उत्पन्न होते हैं[२] और वह अमृत-रस का पान करती हैं। यहां के आनन्द का वर्णन नहीं किया जा सकता है।[३] इस शून्य-समाधि की दशा में दिन और रात कुछ भी नहीं होता है।[४] परन्तु सहजो को एकमात्र योग ही स्वीकार्य नहीं। वे शून्य-समाधि निद्रा के लिए ग्रहण करती है। जागते समय तो निष्काम भक्ति और भगवद् नाम का जाप ही श्रेष्ठ है।[५] उनकी योग-साधना भी भक्ति-मय है। इसके अन्तर्गत देह ही मन्दिर है जिसमें हृदय-स्थल पर धूप देनी चाहिए और समता के चन्दन, क्षमा के फूल तथा मधुरवाणी के भोग के साथ अनहद का घंटा बजाना चाहिए।[६]

सहजोबाई ने इष्ट के स्वरूप तथा भक्ति को व्याख्यायित करने के लिए अलग से दो अंगों की रचना की है। 'सच्चिदानन्द का अंग' में उन्होंने बताया है कि वह नित्य, शाश्वत तथा अनादि है।[७] उसका कोई रूप, वर्ण, देह, इष्ट-मित्र, गृह तथा जाति-पांति भी नहीं है।[८] कीचड़ों से वह घटता नहीं और पानी से भीगता नहीं।[९] आग जला नहीं सकती, शस्त्र काट नहीं सकते, धूप सुखा नहीं सकती तथा वायु उड़ा नहीं सकती।[१०] स्पष्ट है कि सहजो का प्रस्तुत वर्णन गीता के आत्म-स्वरूप के विवरण से साम्य रखता है।[११] 'निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग' में

---

१. चिंउटी जहां न चढ़ि सकै, सरसौं न ठहराय।
   सहजो कूं वा देस में, सतगुरु दई बसाय।।   वही, गुरु महिमा, ५३
२. वही, सोलह तिथि निर्नय, छह
३. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५३, राग बसंत -५,६
४. वही, साध लक्षण - ३५; मिश्रित पद, पृष्ठ ४६; राग सोरठा २।२-४
५. वही, साध लक्षण २४
६. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५४-५५, रागबसंत, १
७. वही , सच्चिदानन्द का अंग, १,४,८
८. वही, सच्चिदानन्द का अंग ३
९. वही, सच्चिदानन्द का अंग २
१०. ,, ,, ५
११. श्रीमद्भगवद्गीता २।२०,२३ आदि

⟷ उन्होंने कहा है कि उसके स्वरूप, नाम, कौतुक तथा वेष अनेक हैं ।[1] वह निराकार और निर्गुण ही नहीं साकार तथा सगुण भी है ।[2] भक्तिवश भक्तों के उद्धार तथा दुष्टों के संहार हेतु उसने अयोध्या और ब्रज में अवतार लिए थे ।[3] चौबीस अवतारों में राम तथा कृष्ण पूर्ण अवतार थे, जिनकी महिमा अवर्णनीय है ।[4] वेद जिसे नेति-नेति कहते हैं, ब्रह्मा आदि जिसका ध्यान करते हैं, जो संयम साधन आदि से भी अगम्य है तथा जो अनन्त लोकों का निर्माण और संहार करता है उस आदि निरंजन ने कृष्ण रूप में मुरली-वादन, सखियों के साथ रास-लीला तथा ग्वालों के साथ खेल किया था । नन्द, यशोदा और ब्रजमण्डल धन्य हैं जहां भगवान् ने गोपाल का वेष धारण किया ।[5]

सहजोबाई का मन को उद्बोधन है कि वह मोह-निद्रा में लीन है और गोविन्द का गुण-गान तथा हरि-भक्ति क्यों नहीं करता । गुण-गान करने से कितने पतितों का उद्धार और कितनों की ही विपत्ति का नाश हो गया । बहुत से आवागमन के भव-जाल से मुक्त हो मोक्ष पा गए ।[6] यदि सत्संगति की नाव को चलाने के लिए दृढ़ भक्ति की बल्ली (पतवार) उपलब्ध हो जाये तो सहज ही संसार-सागर से पार उतरा जा सकता है ।[7] चौरासी लाख योनियों में भ्रमण कर मनुष्य जन्म का जन्म मिला है यदि अब भी भक्ति न की तो पुन: चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ेगा ।[8] भक्तिविहीन मानव-जीवन व्यर्थ है[9] इसलिए उनकी यही कामना

---

१. सहजोबाई की बानी, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग; ८ तथा अजपा गायत्री का अंग ८

२. वही, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग १

३. वही, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग ७,६, ४ , १३।६

४. वही, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग, ५

५. वही, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग १२, १३।१-५

६. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ६१, राग बिलावल ,

७. वही, साध महिमा, ७

८. वही, कर्म अनुसार योनि ६५

९. वही, बैराग उपजावन का अंग, ४६; जन्मदशा, ७६; बृद्ध अवस्था ८७; सोलहतिथि निर्नय पढ़िवा

है कि दृढ़तापूर्वक भक्ति कर सकें ।[1]

नवधा भक्ति में सहजो की पूर्ण आस्था है क्योंकि इसके द्वारा स्वयं ही नहीं अन्यों को भी तारा जा सकता है ।[2] भक्ति-मार्ग में चलने के लिए नाम-कीर्तन वह सीढ़ी है जिसके द्वारा आवागमन से भी मुक्ति हो जायेगी ।[3] राम का स्मरण इस प्रकार करना चाहिए कि स्मरणकर्ता और इष्ट के अतिरिक्त किसी अन्य को मालूम तक न हो । बैठे-चलते, खाते-पीते, सोते-जागते प्रत्येक समय स्मरण करे । पुराणों तथा वेदों में भी कहा है कि किसी भी क्षण उसे विस्मृत नहीं होना चाहिए ।[4] इसी प्रकार पाद-सेवन,[5] अर्चन,[6] वन्दन,[7] आत्मनिवेदन[8] साधु-संगति का महत्व[9] आदि विविध स्थितियां सहजो की रचना में विद्यमान हैं ।

सहजो ने एक पद में संसार की नश्वरता का स्मरण दिलाते हुए सत्संगति और हरिहर के नामजाप का प्रबोधन दिया है । उनका कहना है कि जो समय बीत

---

१. और साधन परनाम करि, कर जोड़ूं सिर नाय ।
यही दान मोहिं दीजिये, भक्ति करूं चित लाय ।।
—वही, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग २५

२. सहजो नवधा भक्ति करिजे, आप तिरो औरन कूं तारो ।
- वही, मिश्रित पद, पृ० ६१, राग बिलावल, ५

३. गर्भबास संकट मिटै, जठर अगिन की आंच ।
राम नाम ले सहजिया, मुख सूं बोलो सांच ।।
सील छिमा संतोष गहि, पांचो इन्द्री जीत ।
राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीति ।।
कामक्रोध लोभ मोह मद, तजि भज हरि को नाम ।
निस्चै सहजो मुक्ति ह्वै, लहै अमरपुर धाम ।। —वही, नाम का अंग २४-२६ तथा ४, ५, ७ ;
सोलह तिथि निर्नय : मापस, सात वार निर्नय : दोहा २;
बैराग उपजावन का अंग, १ आदि,

४. बैठे लेटे चालते खान पान व्यौहार ।
जहां तहां सुमरन करै, सहजो हिये निहार ।।
जागत में सुमिरन करै, सोवत में लौ लाय ।
सहजो इकरस ही रहै, तार टूटि नहिं जाय ।।

( आगे जारी )

रहा है वह पुन: वापिस नहीं आयेगा । कुटुम्ब-परिवार वास्तविक हितैषी नहीं है और अन्त समय कोई भी उपयोगी सिद्ध नहीं होगा । केवल सत्संगति और हरिहर के जाप से ही कल्याण सम्भव है ।[1] प्रस्तुत पद में आराध्य के लिए हरिहर शब्द का प्रयोग उस परम्परा का प्रमाण है जिसके अन्तर्गत हरिहर को विष्णु का ही एक रूप माना गया है । सहजोबाई ने एकेश्वर में विश्वास करते हुए[2] उसके विविध अवतारों को मान्यता दी है । इनमें से उन्हें कृष्णावतार ही अधिक प्रिय है, क्योंकि उन्होंने —

१. अवतार के कारणों और परमात्मा के स्वरूप का वर्णन गीता से प्रभावित होकर किया है,[3]

२. कृष्णावतार का विस्तृत विवरण दिया है,[4]

---

पिछले पृष्ठ का शेष — आठ पहर सुमिरन करै, बिसरै ना छिन एक ।
अष्टादस और चार में, सहजो यही विवेक ।।

—वही, नाम का अंग १८-२० तथा १०,१२,१७,२१-२३,२७; बैराग उपजावन का अंग : २४; सात वार निर्नय, ३।६,६।१ आदि

५. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५६, राग ललित १, सात वार निर्नय, ७

६. वही ,, ,पृष्ठ ५४, रागबसंत१

७. वही, ,, पृष्ठ ५७, राग बिलावल,

८. वही, नाम का अंग, १, मिश्रित पद, पृष्ठ ५७, राग बिलावल

९. वही, सोलह तिथि निर्नय, पड़िवा आदि ।

---

१. हरिहर जप लेनी औसर बीतो जाय ।
जो दिन गये सो फिर नहिं आवैं, कर बिचार मन लाय ।।
या जग बाजी साच न जानो, तामें मत भरमाय ।
कोइ किसी का है नहिं बौरे, नाहक लियो लगाय ।।
अंत समय कोइ काम न आवै, जब जम देहि बोलाय ।
चरनदास कहैं सहजोबाई, सत संगत सरनाय ।। —वही, मिश्रितपद, पृष्ठ ५४, रागकाफी

२. वही, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग, १३।७,१४ आदि

३. वही निर्गुन ,, ,, ४,६,७; सच्चिदानन्द, अंग १,४,५ आदि

४. वही, निर्गुन सर्गुन ,, १२,१३ आदि ।

३. गीता के उस कथन को मान्यता दी है कि समस्त चराचर में कृष्णा का ही
निवास है अर्थात् वही परब्रह्म हैं,[१]

और वे स्वयं कहती हैं –

क. गुविंद गुन क्यों नहिं गावो ।

× × ×

ताकी अस्तुति सेस करत है, सिव ब्रह्मादिक सीस नवावै ।।

ख. परो मन हरि गुन गावत जान ।
बिन गोपाल और जो भाखि, तो तोहि गुर की आन ।।

ग. मेरे एक सिर गोपाल और नहीं को भाई ।।[२]

इस प्रकार सहजो बाई के इष्टदेव श्रीकृष्णा हैं और उनके प्रति इतनी अनन्यता है कि
उन्हें कहना पड़ता है –

हरि की भक्ति माहिं चित देवै । पद पंकज बिन और न सेवै ।।
आन धरम कूं संग न लेवै । फलन कामना सब परिहरै ।।[३]

प्रस्तुत पद में आराध्य के लिए हरिहर शब्द का प्रयोग इस का प्रमाण है कि वे हरि-
हर को कृष्णा का ही एक स्वरूप समझती हैं ।

निर्गुण काव्य के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें शैव और
वैष्णाव प्रवृत्तियों का समन्वय तथा एकेश्वरवाद की भावना आद्योपान्त परिव्याप्त है ।
यदि उसमें एकेश्वरवाद की स्थापना के लिए निर्गुण-निराकार के अवतारों में आस्था
प्रकट की गई है तो साधना-मार्ग में शैव योग तथा वैष्णाव नारदी भक्ति-दोनों का
अवलम्ब लिया गया है । सहिष्णुता तथा समन्वय की यह दीर्घकालीन भावना गुरु–

---

१. वही, निर्गुन सर्गुन संशय निवारन भक्ति का अंग ६
२. वही, मिश्रित पद, क्रमश: पृष्ठ ६१, राग बिलावल; पृष्ठ ६०, राग सारंग; ३;
पृष्ठ ६२, राग जैजैवंती २
३. वही, मिश्रित पद, पृष्ठ ५६, राग ललित ६१

परम्परा से विकसित होती रही है । सहजोबाई ने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख शुकदेव से किया है । यह उनके गुरु चरणदास के गुरु अर्थात् सहजो के दादा गुरु थे । सहजोबाई ने बताया कि उनके गुरु चरणदास भक्ति तथा योग दोनों में निष्णात थे और पात्र की अभिरुचि अथवा अनुकूलता के अनुसार उसे इनमें से किसी की शिक्षा देते थे ।[1] चरणदास को भक्ति तथा योग की यह नौका अपने गुरु ~~सुनी~~ ~~गुरु~~ शुकदेव से मिली थी ।[2] हम देख चुके हैं कि स्वयं सहजोबाई को इन दोनों नौकाओं का आश्रय प्राप्त था । चरणदास ने जहां ब्रजचरित्र या ब्रजचरित्रवर्णन, भक्तिपदार्थवर्णन, भक्तिसागर आदि भक्तिपरक कृतियों का प्रणयन किया वहीं अष्टांगयोगवर्णन, योगसन्देहसागर, ज्ञानस्वरोदय आदि योग-ग्रन्थ भी रचे ।[3] योग, भक्ति तथा ज्ञान की समन्वय-साधना के विषय में चरणदास ने स्वयं कहा है -

> योगयुक्ति हरिभक्ति करि, ब्रह्मज्ञान दृढ़ करि गह्यो ।
> आतम तत्व विचारि कै, अजपा में सनि मन रह्यो ।।[4]

चरणदास ने तो चरणदासी सम्प्रदाय का भी प्रवर्तन किया । इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की उपासना होने के कारण इसे वैष्णव समझा जाता है परन्तु रामदास गौड़ ने योग की प्रमुखता मानकर इसे योगमत का एक पंथ माना है ।[5] अन्तत: यह योग और भक्ति दोनों का समन्वय है ।

अन्य ~~एकेश्वरवादी हो गए~~ निर्गुण भक्त-कवियों में धना प्रारम्भ में ~~प्रतिमा~~ मूर्तिपूजक और बाद में एकेश्वरवादी हो गए ।[6] धरमदास प्रारम्भ में शालग्राम तथा

---

१. वही, सतगुरु महिमा का अंग ६; मिश्रित पद, पृष्ठ ५०, रागमलार: १।३

२. वही, ,, ५।१-३

३. उत्तरी भारत की संत-परम्परा, पृ० ६०१

४. वही, पृ० ६०३ पर भक्तिसागर-ज्ञानस्वरोदय (१६३१), पृ० १५६ से उद्धृत

५. हिन्दुत्व, पृ० ७०७

६. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २२२

गोपाल के भक्त थे जबकि आगे चलकर एकेश्वरवादी कबीर के अनुयायी तथा उनके शिष्य बने ।[१] सन्त बाबालाल विशुद्ध एकेश्वरवादी थे और उन्होंने राम या हरि के रूप में सभी धर्मों या सम्प्रदायों के उपास्यदेव परमात्मा को स्वीकार किया था ।[२] यारी साहब ने एकेश्वर में आस्था प्रकट की है[३] तथा किनाराम अघोरी ने भक्त शिवाराम और कालूराम दोनों गुरुओं के मर्यादा-पालन हेतु मारुफपुर, नयीडीह, परानापुर व महुवर में वैष्णव मत तथा रामगढ़ एवं कृमिकुंड (वाराणसी), देवल (गाजीपुर) व हरिहर पुर ( जौनपुर ) में अघोरमत के मठों को स्थापित किया । उनकी वैष्णव भावनाओं वाले पद रामरसाल, रामचपेटा तथा राममंगल में संग्रहीत हैं जबकि विवेकसार योग पर एक ग्रन्थ है ।[४] इसी प्रकार भीखा ने ईश्वर को अधिकतर राम तथा हरि कहा है परन्तु उनकी रचना में अनहद की गूंज रही है ।[५]

—

---

१. वही, पृ० २६६

२. उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा, पृ० ५२६

३. 'अलिफ एक अबिनासी देव'।

—सन्त-साहित्य, पृ० ४०७ पर यारी साहब की रत्नावली , पृष्ठ ७ से उद्धृत

४. उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ ६३१ - ६३२

५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २८६

अध्याय-६

## कृष्ण-भक्ति-काव्य और हरिहर

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में कृष्ण-काव्य का अक्षुण्ण स्थान है। हिन्दू परम्परा में मान्य दशावतारों में राम के बाद कृष्ण ही आते हैं। यद्यपि कृष्ण का उल्लेख वैदिक-साहित्य से मिलता है, तथापि उनमें देवत्व का आरोपण महाभारत से ही उपलब्ध होता है। गीता के कृष्ण विष्णु के पूर्ण अवतार परब्रह्म हैं परन्तु कृष्ण के व्यक्तित्व का विकास हरिवंशपुराण में हुआ है, जहाँ उनके साथ गोवर्धन पूजा, गो-पालन आदि की विविध लीलायें संलग्न हो जाती हैं। वायु, विष्णु, अग्नि, पद्मआदि पुराणों में कृष्ण-चरित का वर्णन है, परन्तु हिन्दी के कवियों को आकर्षित करने वाला कृष्ण का स्वरूप भागवत पुराण में पाया जाता है। यह मध्यकाल का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें भगवान् कृष्ण के अन्य अवतारों के अतिरिक्त उनकी लौकिक-अलौकिक लीलाओं का वर्णन है। परन्तु यह स्मरणीय है कि भागवतकार की रुचि कृष्ण के बाल-जीवन में ही अधिक है और उत्तर-जीवन का उसमें संकेत जैसा कर दिया है। इसमें गोपियों का वर्णन तो है, परन्तु राधा का नहीं। कृष्ण के साथ एकान्त में विचरण करने वाली किसी गोपी के विषय में जानकर अन्य गोपियाँ कहती हैं कि उसने अवश्य कृष्ण की आराधना की होगी तभी तो उनके साथ है। ऐसा समझा जाता है कि इस आराधना शब्द से ही राधा की व्युत्पत्ति हुई। राधा का उल्लेख सर्वप्रथम गोपालतापनी उपनिषद् में हुआ है। हरिवंश तथा भागवत पुराण की विविध-कृष्ण-लीलायें तथा कृष्ण-चरित और राधा ही आगे के कृष्ण-काव्य की प्रमुख आधारभूमि प्रदान करते हैं। अन्य पुराणों के समान इन दोनों पुराणों में भी शिव और विष्णु के पारस्परिक सम्बन्ध के विविध स्तर मिलते हैं। कृष्ण द्वारा शिव पूजन अथवा शिव द्वारा विष्णु-भक्ति, रुद्र-गीत से विष्णु की प्राप्ति, शिव या विष्णु में किसी के भी पूजन से संसार की समस्त वस्तुओं की सुलभता, शिव तथा विष्णु में एकात्म-स्थापन, हरिहर-स्तवन आदि कुछ ऐसी ही

विशिष्ट स्थितियाँ हैं । दूसरे अध्याय में इनका विस्तृत अध्ययन किया जा चुका है ।

साम्प्रदायिक दृष्टि से अष्टछापी कवियों और रसखानि का वल्लभ सम्प्रदाय से सम्बन्ध था । सिद्धान्ततः वल्लभ सम्प्रदाय की भाँति विष्णुस्वामी सम्प्रदाय पर आश्रित है, जिसे रुद्र सम्प्रदाय भी कहा जाता है । शिव-वैष्णव समन्वय की दृष्टि से इस वैष्णव सम्प्रदाय के आद्याचार्य रुद्र माने गये हैं, जिन्होंने इसका उपदेश सर्वप्रथम बालखिल्य ऋषियों को दिया था, जो कालान्तर में विष्णुस्वामी को प्राप्त हुआ । वल्लभ के अनुसार समस्त जगत् का उपादान कारण एकमात्र ब्रह्म है, जो सच्चिदानन्दमय है । एकाकी अच्छा न लगने पर[1] वह अनेक होने की कामना करते हुए जीव, जड़ जगत् तथा अन्तर्यामी आत्मा बन गया । तैत्तिरीयोपनिषद् की 'एकोऽहं बहु स्याम्' मान्यता के आधार पर वल्लभाचार्य ने त्रिदेव समन्वय को स्वीकार करते हुए कहा है कि वह शुद्ध रजोगुण युक्त ब्रह्मा रूप से सृष्टि का निर्माण, शुद्ध सत्व गुणयुक्त विष्णु रूप से पालन और शुद्ध तमोमय शिव रूप से उसका संहार करता है ।[2] उन्होंने अपने बालबोध में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को फलदायक देवता मानकर अन्त में परब्रह्म श्रीकृष्ण को ही सेव्य और आश्रय मानने का उपदेश दिया है ।[3]

काव्य भूमि की दृष्टि से विद्यापति मिथिला के हैं और अन्य अधिकांश कवियों का सम्बन्ध कृष्ण की क्रीड़ा-स्थली व्रज से रहा है । सुदामाचरित्र के प्रणेता हलधरदास का जन्म मुजफ्फरपुर (बिहार) में हुआ था और मीरां राजस्थान की थीं । मथुरा में समन्वय स्रोतस्विनी का प्रवाह कुषाणकाल से मिलता है । कनिष्क के तद्विषयक सिक्के पर शिव की देवाकृति को दक्षिण कर में शक्ति या दण्ड धारण किये और वाम कर गदा पर रखे प्रदर्शित किया है ।[4] वहीं के गिरधरपुर टीला तथा

---

१. स एकाकी न रमते । - बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।३

२. अनन्तमूर्ति ब्रह्म इयविक्ति विभक्तिवत् ।
बहु स्याम् प्रजायेयेति लीलातस्य ह्यभूत् सती ।। - तत्वदीपनिर्णय, पृ० ८७

३. सूर और उनका साहित्य, पृ० २५६

४. जितेन्द्रनाथ बनर्जी, डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइक्नोग्रैफी, पृ० १२२

अर्जुनपुर मुहल्ले से प्राप्त की गई गुप्तकालीन हरिहर मूर्तियाँ सम्प्रति स्थानीय पुरातत्व संग्रहालय की निधि हैं ।[1] राजस्थान जहाँ एक ओर घोसुण्डी अभिलेख ( ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी) के रूप में वैष्णाव धर्म की प्राचीनता का प्रमाण प्रदान करता है, मध्यकाल में वहाँ वैष्णाव के अतिरिक्त शैवों का नाथ सम्प्रदाय भी प्रबल था । इस समय यहाँ शैव और वैष्णाव मन्दिर तथा उनमें हरिहर मूर्तियाँ प्रदर्शित करने के अतिरिक्त हरिहर के मन्दिरों का भी निर्माण हुआ । बिहार (सोनपुर) में हरिहरनाथ मन्दिर का अस्तित्व शैव-वैष्णाव समन्वय का ज्वलन्त प्रमाण है ।

विद्यापति --

विद्यापति किस सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे यह विषय विवादास्पद रहा है । जहाँ पदावली में राधा-कृष्णा का वर्णन होने के कारण उन्हें वैष्णाव सिद्ध करने का प्रयास किया गया है वहीं पिता तथा आश्रयदाताओं के आधार पर शैव माना गया है । इनके अतिरिक्त उन्हें पंचदेवोपासक (महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ), एकेश्वरवादी ( प्रो० जनार्दन )अथवा शाक्त सिद्ध करने का भी प्रयास हुआ है । इन सभी में उन्हें वैष्णाव ~~तथा~~ तथा शैव प्रमाणित करने के तर्क सर्वाधिक प्रबल होने के कारण उनका सिंहावलोकन आवश्यक है ।

विद्यापति की वैष्णावता का परिचय उनकी पदावली से मिलता है , जिसमें उन्होंने राधा-कृष्णा की प्रणय-लीलाओं को आधार बनाया है । चैतन्य महाप्रभु उनके पदों को गाते-गाते इतने भाव विभोर हो जाते थे कि उन्हें मूर्च्छा आ जाती थी । महाप्रभु की शिष्य-परम्परा में विद्यापति के पद आज भी गाये जाते हैं । सहजिया सम्प्रदाय में तो विद्यापति की गणाना सात रसिक भक्तों में होती है। इसी कारण ग्रियर्सन ने उनके पदों को वैष्णाव गीत या भजन कहा है तथा ब्रजनन्दनसहाय, प्रो० विमनबिहारी मजूमदार आदि ने विद्यापति को वैष्णाव माना है । माधव को सम्बोधित करते हुए विद्यापति के कुछ पद तो नितान्त भक्तिपरक हैं, जो उनके हृदय के

---

१. ~~सूर और उनका साहित्य, पृ० २५६~~ देखिये - प्रदर्शनी सं० १३३३, १३३६, ४०१६ तथा २२१०

वास्तविक उद्गार लगते हैं।[१] ऐसे पदों का कवि शृंगारी नहीं भक्त-हृदय है। इसके अतिरिक्त विद्यापति ने श्रीमद्भागवतपुराण को भी मैथिली में लिपिबद्ध कर विष्णु के प्रति अपनी श्रद्धा तथा भक्ति का परिचय दिया है।

विद्यापति की शिव-भक्ति के परिचायक हैं उनके शैव पद, जिनमें उन्होंने उतनी ही निष्ठा से शिव का स्मरण किया है,[२] जितनी हृदयता से वैष्णव पदों में विष्णु का। यदि शृंगारपरक वैष्णव पदों को छोड़ दें तो शेष की अपेक्षा शैव पदों की संख्या अधिक ही सिद्ध होगी। एक पद में तो विद्यापति ने शिव-भक्ति का उद्घोष करते हुए अन्य देवों की उपासना को त्याग देने का विचार भी व्यक्त किया है।[३] संभवत: इसी कारण कहा गया है कि शिव उगना के रूप में विद्यापति के पास रहते थे और उस सान्निध्य के सम्मुख विद्यापति को त्रिलोक का राज्य तक तुच्छ

---

१. तातल सैकत वारि-बिन्दु सम सुत-मित रमनि समाजे।
तोहे बिसरि मन ताहे समरपिनु अब मझु हब कौन काजे।।
माधव हम परिनाम निरासा।

भनइ विद्यापति सेष समन भय तुअ बिनु गति नहिं आरा।
आदि अनादिक नाथ कहाओसि अब तारन भार तोहारा।।
—मित्र तथा मजूमदार सम्पादित विद्यापति, पद, ७६९

तथा —

माधव बहुत मिनति कर तोय।
दए तुलसी तिल देह समर्पिनु दया जनि छाड़बि मोय।।

भनइ विद्यापति अतिसय कातर तरइत इहभवसिन्धु।
तुअ पद-पल्लव करि अवलंबन तिल एक देह दिन बंधु।। वही, पद ७७१

२. विद्यापति-पदावली, भाग १, पद १२५ आदि

३. ईंदचाँद गन हरि कमलासन सबे परिहरि हमे देवा।
भगत बछल प्रभु बान महेसर इ जानि कइलि तुअ सेवा।।
—मित्र-मजूमदार सम्पादित विद्यापति, पद सं० ७७६

था[1]। विद्यापति द्वारा रचित नचारी तथा महेशवाणी आज भी शिवरात्रि आदि शैव पर्वों पर मिथिला के मन्दिरों में गाई जाती हैं। विद्यापति के पिता गणपति ठाकुर तथा आश्रयदाताओं का शैव होना, विद्यापति की चिता के स्थान पर 'विद्यापतिनाथ' नामक शिवलिंग की स्थिति तथा आज भी उसका पूजन यह सब तथ्य विद्यापति के शैव होने की पुष्टि करते हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी का स्पष्ट कथन है कि ये शिव-भक्त थे। शिव की पूजा करते समय भावावेश में निज प्रणीत नचारी गाते-गाते ये नाचने तक लगते थे।[2]

विद्यापति की समकालीन धार्मिक स्थिति देखने से ज्ञात होता है कि उस समय समाज में विष्णु, शिव तथा शक्ति इन तीनों की पूजा प्रचलित थी।[3] डा० उमेश मिश्र ने इस विषय पर विस्तृत विवेचन करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वस्तुत: विद्यापति इन तीनों देवों के उपासक थे।[4] उनका कहना है कि मैथिल लोग अनादि काल से शाक्त,वैष्णव और शैव तीनों होते आये हैं। यह लोग दशमहाविद्यामन्त्र की दीक्षा लेते हैं और कुलदेवता के रूप में शक्ति को स्थापित करते हैं। इनकी पूजा का एक अंग दुर्गासप्तशती तथा देवीभागवतपुराण का पाठ करना भी है। ललाट पर लाल वर्ण का तिलक तथा लाल ही वस्त्र धारण करना इनकी दृष्टि में शुभ है। इसी प्रकार सभी उपनीत ब्राह्मण शालग्राम की पूजा करते हैं। प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व विष्णु-पूजन आवश्यक होता है। यहाँ तक कि श्राद्धादि पितृकर्मों तक में शालग्राम शिला को साक्षी रूप में अपने सम्मुख रखते हैं। प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ तुलसी का पौधा लगाया तथा पूजा जाता है और सभी ब्राह्मण श्रीखण्ड से ललाट पर ऊर्ध्वपुण्ड्र बनाते तथा उसे हृदय एवं बाहों पर लगाते हैं। दूसरी ओर परम ध्येय मोक्ष के प्रदायक शिव को मानते हुए प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ नित्य पार्थिवलिंग का पूजन होता है।शास्त्रज्ञलोग प्रदोषकाल में प्रात:और सायं शिवलिंगका पूजनकरते समय ललाट,बाहु आदि विभिन्न अंगों

---

१. विद्यापति भन उगना सौं काज, नहि हितकर मोर त्रिभुवन राज।।
--वही ,पद सं० ७६२

२. विद्यापति की पदावली,पृ० ३२

३. प्रो० आनन्द मिश्र, विद्यापति, पृ० २-३

४. विद्यापति ठाकुर, पृ० १७८-१८०

पर भस्म लगाते हैं । लोगों का विश्वास है कि किसी भी प्रकार की विपत्ति आने पर बहुत -से पार्थिव लिंगों का पूजन करने से कल्याण हो जायेगा ।

अन्त में डा० मिश्र ने कहा है कि इस प्रकार शक्ति, विष्णु और शिव तीनों को एक ही अनादि परब्रह्म के भिन्न भिन्न स्वरूप जानते हुए मिथिलावासियों ने इनमें अभेद बुद्धि प्राप्त कर ली है । एक प्रकार से इनमें परस्पर-विरोध देख पड़ता है, किन्तु तत्वैकदृष्टि वालों के लिए इनमें कोई भी विरोध नहीं है । इसीलिए मैथिल लोग इनका पूजन एक साथ करते आये हैं, उन्हें इनमें कोई विरोध नहीं मालूम पड़ता और उनके यहाँ संकुचित साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं है ।

शिव और शक्ति के समन्वय का उद्घोष कालिदास बहुत पहले कर चुके हैं । यूनानी लेखक स्टोबास (५०० ई० ) ने बर्डसेन्स लिखित एक अंश उद्धृत किया है, जिसमें ईसा पूर्व दूसरी शती में सीरिया गए एक भारतीय द्वारा अर्धनारीश्वर की मूर्ति का उल्लेख है ।[१] भीटा की गुप्तकालीन मुहरों पर निरूपित अर्धनारीश्वर के पूर्व मथुरा से अर्धनारीश्वर की कुषाणकालीन मूर्तियां मिली हैं ।[२]

शक्ति का सम्बन्ध विष्णु से न होकर शिव से ही माना गया है । अतएव मैथिलों की उपास्य त्रयी में दो भाग शैव पक्षीय और एक भाग वैष्णव पक्षीय सिद्ध होता है । इससे स्पष्टतः यहां शैवोपासना की प्रधानता दिखाई देती है ।

अर्धनारीश्वर मूर्ति में शिव और शक्ति का समन्वय होने के कारण उसे शैव और शाक्त समान रूप से पूजते हैं । परन्तु लक्षण ग्रन्थों में अर्धनारीश्वर को शैव स्वरूपों में सम्मिलित किया गया है तथा उसे शिव का ही एक रूप माना जाता है । पौराणिक आख्यानों में भी शिव द्वारा शक्ति के ग्रहण की बात कही गई है । जब शिव-भक्त भृंगिने परिक्रमा करते समय शिव और पार्वती में से पार्वती को छोड़ दिया तो अपनी अभिन्नता दिखाने के लिए शिव ने पार्वती को अपने ही शरीर में स्थान दे दिया । इसी प्रकार हरि विष्णु और शिव का समन्वय होते हुए भी शैव परम्परा के

---

१. जितेन्द्रनाथ बनर्जी, कल्चरल हैरिटेज आफ इण्डिया, भाग ४, पृ० ३३५

२. राजकीय पुरातत्व संग्रहालय मथुरा में मूर्ति सं० १५।८००।४

अन्तर्गत उसे शिव का एक स्वरूप समझा जाता है, जबकि हरिहर-उपासना को शैव-वैष्णव दोनों समान मान्यता देते हैं ।

जहाँ तक विद्यापति का सम्बन्ध है, दुर्गाभक्ति तरंगिणी तथा तन्त्रार्णव की रचना उनके शाक्त होने की परिचायक है। मिथिला के वैष्णवोचित सभी कार्यों के साथ पदावली में कृष्ण को आधार बनाना और श्रीमद्भागवतपुराण को मैथिली में लिपिबद्ध करना उनकी वैष्णव भक्ति का द्योतक है । पदावली के कृष्ण सामान्य व्यक्ति नहीं, चतुर्भुजी हैं, राधा और कृष्ण की केलि-क्रीड़ा के समय भी विद्यापति इसका ध्यान रखते हैं ।[1] विद्यापति की शैव-भक्ति के प्रमाण ऊपर दिए ही जा चुके हैं । शैव पदों में शिव एकाकी कम ही मिलते हैं या तो शिव-पार्वती के विवाह का सन्दर्भ होगा जिसमें मैना 'जोगिया' को पार्वती देने से मना कर रही होंगी या शिव और पार्वती के हास-विलास, मनोविनोद का चित्रण होगा । ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यापति के काव्य में प्राथमिक महत्ता शक्ति को प्राप्त है क्योंकि उन्होंने एक स्थान पर शक्ति को शिव और विष्णु से अधिक महान् निरूपित किया है । शक्ति के अनन्तर शिव की विशेष महत्ता प्रदर्शित है, किन्तु वैष्णव -धर्म का प्रभाव सद्य तथा विकासोन्मुख होने के कारण वैष्णव भक्ति का उन्मेष शैव और शाक्त भक्ति से अधिक प्रतीत होता है । परन्तु ऐसे पदों की संख्या भी कम नहीं है जिनमें शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप का वर्णन है । इसी प्रकार उन्होंने कई स्थानों पर शिव तथा विष्णु के संयुक्त स्वरूप हरिहर को मान्यता दी है । हरिहर के स्वरूप-वर्णन के अतिरिक्त उन्होंने हरिहर की भक्ति का भी उद्बोधन किया है । जिस तन्मयता से उन्होंने राधा-कृष्ण की शृंगार लीलाओं का वर्णन किया है , उसी भाव विभोरता से शिव-पार्वती के हास-विलास एवं मनोविनोद का भी चित्रण हुआ है । राधा अथवा गोपी जैसे वैष्णव पात्र का वर्णन करते-करते उन्हें शिव का स्मरण हो आता है और उनके कुचों की उपमा 'कनक शंभु' से देने लगते हैं । यह सब इस बात के प्रमाण हैं कि विद्यापति शिव और विष्णु को समान मानते हुए उन्हें एक ही सत्ता के दो भिन्न

---

१. विद्यापति पदावली, भाग २, पृ० २६३, पद ४५

रूप मानते हैं । विद्यापति-काव्य में शिव और विष्णु के इस समन्वय की निम्न स्थितियाँ मिलती हैं —

१. विद्यापति द्वारा शैव तथा वैष्णव दोनों प्रकार के ग्रन्थों की रचना —

कवि ने पदावली में राधा-कृष्ण की शृंगार लीलाओं का वर्णन किया है तथा श्रीमद्भागवतपुराण को मैथिली में लिपिबद्ध किया है । इसके सन्तुलन में दूसरी ओर उन्होंने 'शैवसर्वस्व सार' में शिव-पूजा सम्बन्धी विधि-विधान सन्निविष्ट किए हैं तथा 'शैवसर्वस्वसार' के प्रमाणभूत पौराणिक वचनों का संग्रह 'शैवसर्वस्वसार-प्रमाण भूत-पुराण-संग्रह' के नाम से किया है । यह भी संभावना की जाती है कि विद्यापति ने 'शैवसर्वस्वसार' की रचना के पूर्व पुराणों में यत्र-तत्र बिखरे हुए शिवार्चनात्मक प्रमाणों का संग्रह किया हो ।[१]

२. वैष्णव कूट पद में शैव तत्व-दूती कृष्ण को संकेतस्थल भेजना चाहती है, क्योंकि नायिका वहाँ जा चुकी है । दूती का कृष्ण को नायिका का परिचय देना आवश्यक है । परन्तु वह स्पष्ट न बताकर कहती है कि युवती के नाम में महादेव का वाहन-वृषभ - है अर्थात् नायिका वृषभानुजा है ।[२]

३. वैष्णव पदावली में शैव उपमान —विद्यापति हरि-हर में किसी को भी विस्मृत नहीं कर पाते । राधा अथवा कृष्ण की प्रेमिका के वर्णन में भी वह शिव को ले ही आते हैं । जहाँ उन्होंने नायिका के कुचों को मेरु,सुमेरु,प्रस्फुटित पद्म, चकवा, स्वर्णविल्व आदि की उपमा दी है, वहीं वह उन्हें 'कनक सम्भु' भी कहते हैं, यदि

---

१. वही, भाग १, पृ० ८६-८७

२. 'हरि हरि अरि अरि पति तातक वाहन
 जुवति नामे सो होइ ।
 —वही, भाग १, पृ० २०५, पद १५४

हरि = मेढक; हरि अरि = सर्प ; हरि अरि अरि = गरुड़; हरि.... पति = विष्णु ; तात= सखा; हरि.... तात = विष्णु के सखा महादेव। विद्यापति का शिव को विष्णु का सखा बताना भी उनकी सहिष्णुता एवं समन्वय बुद्धि का ही प्रमाण है ।

नखक्षतमय पीन पयोधर चन्द्रमौलि[१] या भग्न शिव का आभास देते हैं,[१क] तो काम-पीड़िता के (रोने के कारण) काजल से भीगे स्तन कस्तूरी से पूजित कनक महेश लगते हैं।[२] एक स्थान पर स्तनों को महादेव की अधोमुखी होकर समाधि से उपमा दी गई है,[२क] तो दो स्थलों पर उन्हें मुक्तामाल रूपी गंगा से पूजित शिव माना गया है।[३] यदि नायक (कृष्ण) कामदेव से रक्षा के लिए नायिका के कुच युगल रूपी शिव की शरण चाहता है,[४] तो नायिका कामदेव को भस्म करने के लिए अपने स्तनों की शिव के समान पूजा करती है।[५]

४. वैष्णव पात्र की उपमा शिव से — कवि ने काम विदग्ध राधा को शिव माना है। ऐसा होने पर हार रूपी सर्प मलयानिल को पी लेता है (अतः मलयानिल उसे विरहावस्था में कष्ट नहीं दे पाता) और भय भीत होकर कामदेव भी दूर रहता है।[६] दूसरी ओर कामदेव नायिका को शिव समझकर उसे दुख दे रहा है, क्योंकि उसके शरीर का चन्दन लेप भस्म, रेशमी वस्त्र व्याघ्र चर्म, वेणी जटाजूट, फूल-माल गंगा, ललाट का चन्दन-बिन्दु-पूर्णचन्द्र, सिन्दूर तिलक तृतीय नेत्र कण्ठ की कस्तूरी विष तथा मुक्ताहार वासुकि का आभास देते हैं।[६]

---

१. वही, भाग १, पृ० १, पद १

१क वही, भाग १, पृ० २६६, पद १८६

२. वही, भाग १, पृ० २२३, पद १६६

२क. वही, भाग १, पृ०१८६, पद १४०

३. वही, भाग २, पृ० १३६, पद ७, मित्र तथा मजूमदार सम्पादित विद्यापति, पद ६२६

४. विद्यापति पदावली, भाग १, पृ० २८१, पद २०४

५. वही, भाग २, पृ० ४६२, पद २०६

६. वही, भाग १, पृ० ३१६, पद २२७

७. वही, भाग २, पृ०२५८, पद १८

५. एक ही पात्र के लिए शिव और वैष्णव दोनों उपमान — विद्यापतिने आश्रयदाता राजा शिवसिंह को पदों की भनिता में शिव और विष्णु दोनों माना है । वह कृष्ण स्वरूप हैं,[1](भगवान् विष्णु के ) ग्यारहवें अवतार हैं[2] अथवा शिव के अवतार हैं ।[3]

६. वैष्णव पदावली में शिव का स्मरण — पदावली की नायिका जब भी दुखी होती है, विष्णु नहीं, शिव को दुहाई देती है । यह मनोवृत्ति कवि के शिव-भक्त व्यक्तित्व की देन प्रतीत होती है । वह कहती है' शिव शिव कहसन होस्त परिनाम'[4] क्योंकि 'शिव शिव एहि जनम भेल ओल'[5] तथा 'शिव शिव जिव ओ न जाए आस गरुअ भायल रे'[6] । अत: वह मरना चाहती है[7]। ऐसी स्थिति में भी कोई उसके प्राण नहीं ले रहा है ।[8] अन्य कुछ स्थलों पर भी शिव का स्मरण किया है ।[9] इसका महत्त्व उस समय और बढ़ जाता है जब वह कभी-कभी विष्णु का स्मरण करती है ।[10] इससे ज्ञात होता है कि कवि हरि-हर में समान भाव रखने के कारण वैष्णव पदावली में भी शिव को विस्मृत नहीं कर पाता है ।

७. वैष्णवपदावली में शिव और विष्णु का एकसाथ स्मरण — कतिपय स्थलों पर कवि शिव के साथ विष्णु को भी रखना चाहता है । विरह विदग्ध नायिका चाहती है कि हे हरि ! हे शिव ! प्रेम के उत्पन्न होने तक मृत्यु हो जाये ।[11] अधिक दुखी

---

१. वही, भाग २, पृ० ४१६, पद १७३
२. वही, भाग २१ , पृ० ४५८, पद २०६
३. वही, भाग २, पृ० ४२६,पद१८०
४. वही, भाग २, पृ० ४३, पद ३४
५. वही, भाग १, पृ० १०६, पद ७६
६. वही, भाग २, पृ० ४३२,पद १८५
७. वही, सिव सिव जिवन कैओ नहि लैह , वही भाग २, पृ० ८६, पद ७०
८. सिव सिव सिव जाओ दूर जिव । —वही, भाग २, पृ० १२पद ६
९. वही, भाग १, पृ० २५४,पद १८६; भाग २, पृ० ८७, पद ६६ आदि ,
१०. वही, भाग २, पृ० १४२ पद ६
११. वही, भाग १, पृ० ३३७,पद २४०,

होने पर तो नायिका बोल भी नहीं पाती, केवल हरि हरि ! शिवि शिव ही कह पाती है ।[1]

८. हरि-हर का फाग एवं सान्निध्य — कितनी झोलियाँ सिन्दूर से भरी हैं और कितने झोले भस्म से भरे हैं । वसहा, सिंह, मयूर और चूहा- वाहनों पर साज पड़ गए । डमरू डिमिक-डिमिक बोल रहा है । महादेव फाग खेल रहे हैं । भस्म और सिन्दूर-दोनों से एक ही दिन खेल होने लगा । सन्ध्या ने सिन्दूर से सरस्वती को भर दिया और गौरी ने लक्ष्मी को भर दिया , महादेव ने भस्म से पीले वस्त्र को सरो-बर सराबोर करके नारायण को भर दिया । महादेव एक तो नग्न हैं, फिर धतूरा खाते हैं इसलिए और उन्मत्त होकर खेल खेलते हैं । कुछ कहा नहीं जाता । नारायण गरुड़वाहन हैं और महादेव वसहा पर चढ़ते हैं।सुकवि विद्यापति आश्चर्य का गान करते हैं कि फिर भी वे दोनों संसार में साथ-साथ घूम रहे हैं ।[2]

इण्डियन म्युजियम (कलकत्ता) के एक हरिहर चित्र (१४६१७ ।एस ६०७) में हरिहर की शक्तियाँ उन्मुक्त भाव से क्रीड़ारत प्रदर्शित हैं । सम्भव है वह उनके फाग का ही चित्रण हो ।

९. विष्णु और शिव एक ही सत्ता के द्योतक अथवा हरिहर के एकात्म स्वरूप का अस्तित्व - पुरुष परीक्षा में विद्यापति ने मुनिराज वसुक्ति के द्वारा विष्णु और शिव की एकात्मता प्रतिपादित की है और उन्हें एक ही शक्ति के दो रूप बताया है । राजा पारावार के यह पूछने पर कि तैर्थिकों में बड़ा मतभेद है । कोई शिव को अपना आराध्य देव मानते हैं, तो कोई विष्णु को । इनमें से किसको अपना चित्त अर्पित करना चाहिए । मुनि उत्तर देते हैं कि कोई विष्णु को सर्वोपरि बताते हैं और कोई शिव को । परन्तु यह नाम से ही पृथक् हैं । तर्कों से मुनियों ने

---

१.वही, भाग २, पृ० ४६६, पद २१३
२. वही, भाग १, पृ० ३६५, छंद २५६

निश्चय किया है कि विश्व सर्वेश्वर है ।[१] वस्तुत: प्रस्तुत आख्यान के माध्यम से विद्यापति ने शिव और विष्णु को एक ही प्रतिपादित करने का प्रयास किया है ।

कीर्तिलता में विद्यापति को हरिहर के उस स्वरूप का भी स्मरण है, जिसमें आधा भाग हरिवत् रहता है और शेष हर के लक्षणों से सम्पन्न । कीर्तिसिंह और मलिक असलान के युद्ध के समय इब्राहिमशाह की सेना के प्रयाण का वर्णन है । सेना के प्रभाव और आतंक से सूर्य का तेज ढंक गया, आठों दिक्पालों को कष्ट हुआ । पृथ्वी पर धूलि के कारण अन्धकार छा गया । और इसी समय भय के कारण विष्णु और शिव का शरीर मिलकर (हरिहरात्मक रूप ) एक हो गया ।[२]

'विद्यापति पदावली' में कीर्तिलता की रचना के समय विद्यापति को प्रौढ़ माना गया है ।[३] जबकि डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार कीर्तिलता विद्यापति का सर्वप्रथम ग्रन्थ है, जिसे उन्होंने बीस वर्ष की आयु में रचा था । यदि यह विद्यापति की पहली रचना है तो यह नि:सन्देह कहा जा सकता है कि वह जन्म से ही ऐसे वातावरण में पले थे, जहां शिव और विष्णु को अभिन्न समझा जाता था ।

१०. शिव का एक स्वरूप हरिहर -- प्राय: सभी मूर्तिशास्त्रीय ग्रन्थों में हरिहर के लक्षण शैवमूर्ति विधान के साथ मिलने से ज्ञात होता है कि हरिहर शैव परम्परा की देन है । उन्हें शिव का ही एक स्वरूप समझा जाता है । सम्भवत: इसीलिए ऐसी कुछ मूर्तियाँ बनी, जो पूर्णतया हरवत् होते हुए भी कुछ वैष्णव लक्षणों से सम्पन्न रहती हैं और इन्हें हरिहर-विग्रह माना जाता है । विद्यापति के शिव भी कुछ वैष्णव प्रतीक

---

१. 'विष्णुं केऽपि निवेदयंति गिरिजानाथं च केचिद्यथा ।
ब्रह्माणं प्रभुमालपंति भुवने नाम्नैव भेदो ह्ययम ।।
-- पुरुषपरीक्षा, धर्मकथा: (२८-सात्त्विक कथा),श्लोक७

२. 'कन्तार दुग्गदल दमसि कहुँ खोणि खुन्द पक्ष भारभर ।
हरि शंकर तनु एकक रहु.........    ।।
-- कीर्तिलता, पल्लव,४

३. वही भाग १, पृ० ७४

धारण करते हैं। कवि कहता है कि तपोवन में महेश्वर वास करते हैं और भयंकर कष्ट सहन करते हैं। उनके कान में कुण्डल तथा हाथ में चक्र है।[1] इसी प्रकार पार्वती-विवाह के सन्दर्भ में शिव को मुक्तामाल धारी बताया है।[2] चक्र विष्णु का अपना विशिष्ट आयुध है, जिसे दुर्गा और भैरव भी धारण करते हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में शिव के भैरव स्वरूप का अर्थ इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन चल रहा है। और ऐसे में शिव के उग्र अथवा रौद्र रूप का वर्णन नहीं किया जायेगा। साथ ही यहां शिव को वनवासी बताया है, जबकि भैरव श्मशान में रहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि विद्यापति को शिव के उसी - हरिहर रूप की अपेक्षा है जो त्रिशूल के साथ चक्र भी धारण करता है। अन्य स्थान पर शिव का मुक्तामाल-धारी होना भी वैष्णव प्रभाव का द्योतक है। मुक्तामाल विष्णु धारण करते हैं। यहां भी विद्यापति हरिहर के समन्वित रूप को विस्मृत नहीं कर रहे हैं और शिव के साथ विष्णु का एक लक्षण - मुक्तामाल-संलग्न करके उस स्वरूप की रक्षा की है।

११. एक ही सत्ता कालक्रम से हरि और हर रूप धारी - विद्यापति की दृष्टि में हरिहर एक ही शक्ति अथवा सत्ता है, जो कालक्रम से विष्णु और शिव का स्वरूप धारण कर लेती है। कभी पीताम्बर धारण कर लेती है, कभी बाघम्बर। कभी पंचानन स्वरूप होता है, कभी चतुर्भुजी। एक ही स्वरूप कृष्ण (विष्णु) रूप में गोकुल में गाय चराता है और फिर डमरू बजाते हुए भीख मांगता है। उसी ने वामनावतार में पृथ्वी को दान में लिया था और वही भस्म धारण करता है। एक ही शरीर-स्वरूप-नारायण और शूलपाणि के रूप में बैकुण्ठ में और तुरन्त ही कैलास पर वास करता है।[3] इस पद में शैव और वैष्णव लक्षण समान क्रम से नहीं मिलते हैं। यह क्रम कुछ इस प्रकार है -

---

१. मित्र-मजूमदार द्वारा सम्पादित, विद्यापति, पद ६०६

२. वही, पद ६०७

३. विद्यापति, पद ७७३

| पंक्ति | स्वरूप | |
|---|---|---|
| | प्रथम | पश्चात् |
| १. | शिव (हर) | विष्णु (हरि) |
| २ | विष्णु (पीताम्बरधारी) | शिव(बाघम्बरधारी ) |
| ३ | शिव (पंचानन) | विष्णु (चतुर्भुज) |
| ४ | शिव (शंकर) | विष्णु (मुरारि) |
| ५-६ | विष्णु (गोपाल कृष्ण) | शिव(भिक्षाटन मूर्ति) |
| ७-८ | विष्णु (वामन) | शिव (योगी) |
| १० | विष्णु (वैकुण्ठवासी) | शिव(कैलाशवासी) |
| १२ | विष्णु (नारायण) | शिव (शूलपाणि) |

जहाँ हरिहर मूर्ति में आधा-आधा भाग शिव और विष्णु को मिलता है, विद्यापति ने ऐसा कोई भेद न रखते हुए दोनों को नीर-क्षीरवत् मिलाने का प्रयास किया है। कुछ मूर्तियों में भी शिव पार्श्व में वैष्णव लक्षण और वैष्णव पार्श्व में शैव लक्षण मिले रहते हैं।

१२. मंगलाचरण में हरिहर स्तवन - युग की तत्कालीन प्रवृत्ति के अनुकूल विद्यापति ने कई ग्रन्थों के मंगलाचरणों में शिव के समन्वयकारी अर्धनारीश्वर स्वरूप का स्तवन किया है।[1] इसी प्रकार गंगावाक्यावली के मंगलाचरण में हरिहर का स्मरण करते हुए कहा है कि चन्द्रमौलि आपका कल्याण करें जो विष्णु के साथ संयुक्त हैं।[2]

१३. हरिहर-भक्ति का उद्बोधन - विद्यापति ने भणिता में मालति को सम्बोधित करते हुए हरिहर भक्ति का उद्घोष किया है। इस पद की रचना जिस दैन्यावस्था में हुई है, वह कवि की अपनी लगती है। यौवन भर केलिक्रीड़ा करने के बाद वृद्धावस्था में केश श्वेत हो गए, आँख और कान ने अपना कार्य छोड़ दिया है। ऐसे में स्वयं को

---

१. दे० कीर्तिपताका, गोरक्ष विजय, मणिमंजरी के मंगलाचरण,

२. विद्यापतिगीत संग्रह, पृ० ६३ (पादटिप्पणी)।

प्रताड़ना देते हुए कवि कहता है कि शैशव के समय में मां का मधुर दूध पिया। उसके बाद कोमल कच्चे शरीर को कितना दधि-दूध-घी खिलाया है, चोरी करके चन्दन चबाकर अपनी तथा अन्य की स्त्री के साथ मिलन कैसा समझा ( चन्दन घिसने से सुगन्ध प्राप्ति होती है, परन्तु उसे चबाया अर्थात् कामगन्धहीन प्रेम से सन्तुष्ट न रह कर भोग से उन्मत्त हुए )। निर्लज्ज होने के कारण भ्रमर के समान फूल छूते और छोड़ते लज्जा नहीं हुई। (हे मन ! ) वयस छोड़कर कहां गए ? तुम्हारी ही सेवा करते जीवन काटा , तब भी अपने न हुए। कांचन, कर्पूर, ताम्बूल प्रभृति योग्य द्रव्य खोजते-खोजते जीवन की कई दशायें नष्ट हो गई । कोमल-कामिनी के श्रीफलों की छाया में अपने को सुलाया। जिसमें रस और स्वाद नहीं, उसी में समय खोया। मेरा प्रमाद घटा ,वातास ने पीछे लगकर कामाग्नि को जलाया। आज केश कैसे सादा हो गए हैं, मानो वन सूखकर काठ हो गया है। आँख की दृष्टि मलिन, कान से सुनता नहीं, शरीर क्षीण हो गया। सर्प के समान कामना भी विषहीन हो गई है। मुख में भरे दाँत गिर जाने पर थो-थो करके बातें करता हूँ। चलने की क्षमता न होते हुए भी वासना होने के कारण एक ही जगह पर बैठा-बैठा भुवन-भ्रमण करता हूँ। सब छपट दोष हो गया है। जिसके लिए घर-बार किया, जिसे सब कुछ समझा, वह सब असार है। आँख रूपी दोनों पक्षी सब विकार जानकर श्रान्त होकर सो गए। आँख का भ्रू भी काँस फल के समान सादा हो गया। मन को यदि एक दिशा में बाँधकर निरोध करना चाहता हूँ, तो उत्कासि उठती है अर्थात् श्वास-निरोध से योगाभ्यास की क्षमता अब नहीं है। विद्यापति कहते हैं कि मालति सुनो, मन में अब और द्विविधा मत करना। हरिहर के पदपंकज की सेवा करो,वैसा करने से अब और अवसाद नहीं रहेगा।[१]

जिस स्थिति में इस पद की रचना हुई है, वह कवि के अन्तरंग की आवाज है। यौवन रंग-रभस में व्यतीत हो जाने पर वृद्धावस्था में सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं। ऐसे में उस आराध्य की याद आ रही है, जिससे इस दशा में भी कुछ शान्ति मिले और यह आराध्य हरिहर हैं।

---

१. विद्यापति, पद ६१३

अष्टछापी कवि

सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार इन सभी कवियों के उपास्यदेव कृष्ण परमब्रह्म के अवतार हैं । वेद जिसे अगम से भी अगम कहते हैं उसी ने भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों के संहार[1] हेतु प्रेमवश अवतार धारण किया है ।[2] कृष्ण, केशव, नारायण, हरि, पद्मनाभ, माधव, मधुसूदन आदि उसके विविध नाम हैं ।[3] पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र आदि समस्त चराचर ~~जग~~ कृष्ण के मुख में है ।[4] इन कवियों ने ऐसे अलौकिक इष्ट की लीलाओं के गुणगान-स्वरूप ही रचना की है । परमानन्ददास ने तो कृष्ण के प्रति एकनिष्ठता व्यक्त करते हुए[5] यहां तक कह दिया है —

यह मंत्र मोहि गुरून बतायौ स्याम धाम की पूजा ।
यह बासना घटै नहीं कबहूं देव न देखहुं दूजा ।।[6]

और शैवों की उपेक्षा करते हुए उन्होंने कृष्ण-विमुख लोगों को व्रजभूमि त्यागकर काशी जाने के लिए कहा है ।[7] इसी प्रकार नंददास ने अपने जन्मस्थान रामपुर गाँव का नाम बदलकर श्यामपुर कर दिया था ।[8] परन्तु इस प्रकार की असहिष्णुता इनमें गहरे तक नहीं है । ऐसा समझा जाता है[9] कि नंददास तो प्रारम्भ में राम के भक्त थे और उन्होंने राम तथा हनुमान् पर रचना भी की है ।[10] एक छन्द गंगा-स्तवन पर भी है --

जै जै जह्नुनंदिनि, त्रैताप दुख निकंदिनि ,
जै पद सरोज वंदनि, कलि कलुष दोष हारिका ।

---

१. परमानन्दसागर, पद ३१
२. नन्ददास, रूपमंजरी, पंक्ति, ५७७-५७८
३. परमानन्दसागर, पद ५६
४. नन्ददास, दशमस्कन्ध ७।६६-७०; ८।११२-११७
५. परमानन्दसागर, पद ७७७, ६०१,
६. वही, पद ६०३ ,
७. वही, पद ८३६
८. सुकवि सरोज, भाग २, पृ० ६ के आधार पर डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ०५४८ ~~( आगे जारी )~~
९. अष्टछाप-परिचय, पृ०१६५
१०. नंददास, पदावली ६०-१०१; परिशिष्ट (ज) पदावली, सं० 23-24

भगीरथ सौक सौख, पावनजस तिहूं लौक,
सगर-सुवन-कौक हैत किरन कारिका ।
जमपुर कौ पंथ रौकि,पतितन कौऊ सक न टौकि,
सुरपुर बिच करिहि औक, सुकृत सारिका ।
जै सिर धामिनि पुरारि, वैद विदित जस पुकारि,
वंदत सुर मुनि सुरारि विमल वारिका ।
जै हरनि दौष दारिद, कीरति सुजस विस्तारिद,
अघ औघ तरु कुठारिद, जै जह्नु की कुमारिका ।
दासन दै निकट वास, दीजै मति कौ प्रकास
वंदत जस नंददास पीत धवल धारिका ।।[१]

अन्य कवियों मैं कृष्णादास नै गंगा-स्तवन ( पद ११०८), परमानन्ददास नै वामन (पद २०१-२०४), रामनवमी ( पद ३३७-३४३), नृसिंह चतुर्दशी ( पद ३४५-३५० ) तथा गंगा (पद ५८४-५८८) और गौविन्दस्वामी नै वामन जयन्ती ( पद ४८-४६) तथा रामनवमी ( पद १५१-१५४) पर भी रचना की है ।

सूरदास –

वल्लभ सम्प्रदाय कै अष्टछाप का प्रत्यैक पुष्प अपना विशिष्ट महत्व रखता है परन्तु हिन्दी कै काव्यकानन कौ सूर की वाणी नै जितना सुवासित किया है उतना अन्य कौई कृष्ण-भक्त कवि नहीं कर सका है ।जागरूक कवि अपनै युग की परिस्थितियों सै विमुख हौकर नहीं चल सकता और सम्प्रदाय विशेष मैं दीक्षा कै पूर्व की मान्यताओं तथा विचारधाराओं सै उसका पूर्णतया असंस्पृष्ट हौ जाना भी दुष्कर है । सूर साहित्य कौ लैकर भी ऐसा ही विवाद चल रहा है । जहां डा० ब्रजैश्वर वर्मा का मत है कि सूर नै कृष्णैतर समस्त दैवी-दैवताओं का बहिष्कार किया है, वहीं डा० हरवंशलाल शर्मा सूर कौ स्मार्त पथ का विरौधी न मानकर तत्कालीन

---

१. गौसाईं चरित,काशी खण्ड,पंडित संवाद प्रसंग, नंददास कृत विष्णुपद

प्रचलित वैष्णवेतर सम्प्रदायों के सूर साहित्य में उचित प्रतिनिधित्व को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि सूर की रचना में नाथ-योगियों के सिद्धान्तों का इतना उल्लेख है कि कभी कभी तो यह धारणा होने लगती है कि सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले सूर का नाथ-सम्प्रदाय से विशेष सम्पर्क रहा होगा।[अ] प्रस्तुत धारणा को अधिक सम्भाव्य मानते हुए डा० शर्मा ने पहले तो सूर पर शिव-भक्ति का प्रभाव स्वीकार किया है।[१] और फिर दीक्षा के पूर्व उनकी शिव-भक्ति में निष्ठा का विश्वास कर लिया है।[२]

भविष्यपुराण में सूर विषयक जो उल्लेख मिलता है, उससे ज्ञात होता है कि वे चन्द्रभट्ट कुल में उत्पन्न हुए थे और प्रारम्भ में शम्भु अर्थात् शैव धर्मावलम्बी थे, जबकि बाद में हरिप्रिय अर्थात् भगवद् भक्त बन गये।[३]

अन्त:साक्ष्य के आधार पर सूर के कतिपय पदों ( - सूरसागर पद १०६, ७८८,७८९ ) को दृष्टि में रखते हुए डा० मुंशीराम शर्मा का अभिमत है कि सूर एक संस्कृत कुल में उत्पन्न हुए थे और उत्तराखण्ड के अन्य ब्राह्मणों की भाँति इनका वंश भी शैव-सम्प्रदाय का अनुगामी था। सम्भवत: अपनी प्रारम्भिक आयु में सूर भी शैव थे, क्योंकि सूरसारावली के छन्द सं० १००२ में इन्होंने स्पष्ट रूप से अपने को शैव सम्प्रदाय के विधानों के अनुकूल तप करने वाला कहा है।[४]

यह सच है कि सूर की दीक्षा-पूर्व स्थिति पर खेद और क्षोभ है, परन्तु सूरसारावलि के --

गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठ बरष प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन ।। १००२ ।।

---

अ. सूर और उनका साहित्य, परिशिष्ट १, पृ० १-२

१. वही, पृ० ८०

२. "सूर के समय में नाथ-सम्प्रदाय का पर्याप्त प्रभाव था और सूर का इस सम्प्रदाय से घनिष्ठ परिचय था। उनके शिव विषयक पद इस बात के भी परिचायक हैं कि उनकी शैव-भक्ति में निष्ठा थी।" --वही, परिशिष्ट, १, पृ० ६

३. सूरदास इति ज्ञेय: कृष्णलीलाकर: कवि:।
शम्भुर्वै चन्द्रभट्टस्यकुले जातो हरिप्रिय: ।। -भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, तीसरा भाग, अध्याय २२, श्लोक ३०, चतुर्थ खण्ड

४. सूरसौरभ, पृ० ३८-३९

छन्द से उनके शैव होने में सन्देह नहीं रह जाता है । डा० मनमोहन गौतम 'शिव-विधान' पाठ से अर्थ की संगति ही नहीं लगा पाते हैं और उन्होंने यहां पर 'शिव-विधात' पाठ रखकर अर्थ किया है -- शिव और विधाता दोनों ने तपस्यायें कीं ।[2] उनके अनुसार सूर की शिव-साधना प्रामाणिक नहीं है । डा० मुंशीराम शर्मा ने कल्पित करके ऐसी धारणा बनाई है[1]। परन्तु लगता है डा० गौतम सूरसागर को भलीभांति नहीं देख पाये हैं, जहां सूर ने कृष्णोतर उपासना को स्वीकार किया है --

क. अपनी भक्ति देहु भगवान ।
जरत ज्वाला, गिरत गिरि तैं, स्वकर काटत सीस ।
देखि साहस सकुच मानत, राखि सकत न ईस ।।
कामना करि कोटि कबहूं किए बहु पशु-घात ।- सूरसागर १०६

ख. कबहूं न रिझए लाल गिरिधरन, विमल-विमल जस गाइ ।
प्रेम सहित पग बांधि घूंघरू, सक्यौ न अंग नचाइ ।।
श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि नैंकहु रुचि उपजाइ ।
आनि भक्ति करि, हरि-भक्तनि के कबहुं न धोए पाइ ।।-वही१५५

ग. भक्ति बिना जौ कृपा न करते तौ हौं आस न करतौ ।
औघड़-असत-कुचीलनि सौं मिलि , माया-जल मैं तरतौ ।।-वही २०३

घ. जगत-पिता जगदीस-सरन बिनु सुख तीनौं पुर नाहीं ।
और सकल मैं देखे ढूंढ़े , बादर की सी छाहीं ।। - वही ३२३

पहले उदाहरण में पशु-हिंसा की बात कही गई है जो शाक्त अथवा शैव धर्म में ही होती है । सूर-काव्य से उनके शाक्त आचारों का विशेष परिचय नहीं मिलता है । दूसरे तथा चौथे उदाहरणों से वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा के पूर्व उनका अवैष्णव होना निश्चित है । तीसरे पद में उन्होंने औघड़ों के साथ रहने की

---

१. सूरसारावली, पृ० १६७

बात कही है । औघड़ शैव होते हैं । इनका साथ सूर को रुचिकर अवश्य नहीं लगा, परन्तु शिव या शैव-धर्म को वे विस्मृत नहीं कर सके । सूरसागर की रचना भागवत के आधार पर हुई है और दोनों की तुलना के आधार पर हम नीचे कुछ ऐसे प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे सूर की शिव अथवा शैव-धर्म के प्रति प्रच्छन्न आस्था-निष्ठा प्रकट होती है ।

१. शिव की अपेक्षा विष्णु-महिमा के आधिक्य-प्रतिपादन का त्याग — भागवत सप्तम स्कन्ध में एतद्‌विषयक जो उपदेश दिया गया है, उसे सूर ने ग्रहण नहीं किया है ।[१]

२. शिव-भक्ति की अपेक्षा कृष्ण-भक्ति प्रतिपादक आख्यान का संक्षेपीकरण —भागवत में बाण-वध तथा उषा-अनिरुद्ध विवाह के आख्यान द्वारा शिव-भक्ति से कृष्ण-भक्ति को अधिक महत्वपूर्ण दिखाया है । सूर ने इसे केवल दो पदों में कहा है ।[२]

३. शिव आख्यान का किंचित् विस्तार— भागवत के सप्तम स्कन्ध में नृसिंह अवतार, त्रिपुर-वध तथा नारद - उत्पत्ति की कथायें मात्र दृष्टान्त के रूप में दी गई हैं । सूर ने त्रिपुर-वध का वर्णन पच्चीस पंक्तियों के लम्बे वर्णनात्मक शैली के एक पद में किया है ।[३]

४. शैवों के पतन-वर्णन का त्याग —भागवत-चतुर्थ स्कन्ध में तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति, ब्राह्मणों की हीन अवस्था के साथ शैवों के पतन का भी चित्रण है । सूर ने इसे छोड़ दिया है ।

---

१. सूरदास, पृ० ६०

२. वही, पृ० ७७

३. सूरसागर, पद ४२६

५. पति-प्राप्ति के लिए कात्यायनी तथा भद्रकाली-पूजन के स्थान पर शिव-पूजन कराना-

भागवतकार ने चीर हरण-लीला के सन्दर्भ में वर्षा और शरद् के वर्णन, नग्न-स्नान के औचित्य-अनौचित्य की विवेचना आदि के साथ गोपियों से एक मास तक भद्रकाली तथा कात्यायनी का पूजन कराया है। कृष्ण को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए सूर की गोपियां यमुना-स्नान करके नित्य नियमपूर्वक सूर्य तथा शिव की उपासना करती हैं। यहां पूजन की अवधि भी एक मास के स्थान पर एक वर्ष है।

६. शिव कथानक की नवीन सृष्टि - सूर ने चतुर्थ स्कन्ध का प्रारम्भ दत्तात्रेय तथा यज्ञ-पुरुष अवतार की कथाओं से किया है, जो भागवत के अनुसार हैं, परन्तु यहीं पर एक पद में शिव-आहुति का प्रसंग कवि-कल्पना से अनुस्यूत है।

यद्यपि सूर ने एक स्थल पर अन्य देवों की भक्ति को कष्टदायक समझकर (सूरसागर, पद ७५) राधाकृष्ण के प्रति एकान्त अनन्यता प्रकट की है --

श्री राधिका स्याम की प्यारी कृपा बास ब्रज पाऊं।
आन देव सपनेहुं न जानौं, दंपति कौ सिर नाऊं।। सूरसागर, पद १७६२

तथापि उन्होंने कहीं पर अन्य देवों का बहिष्कार नहीं किया है, क्योंकि वे भी कुछ-न कुछ फलदायक अवश्य हैं ( -सूरसागर,पद १६८ )। जिस प्रकार पतिव्रता पति को त्याग कर उसके इष्ट-मित्रों तथा सुहृदों तककी सेवा को तत्पर नहीं होगी, उसी प्रकार सूर को कृष्ण-बलराम के स्थान पर अन्य देव स्वीकार्य नहीं। हां, उनके साथ में तो उन्हें अन्यों के भी पूजन में आपत्ति नहीं।[१] नन्द-यशोदा द्वारा पुत्र-प्राप्ति, गोपियों द्वारा इच्छित वर-प्राप्ति तथा निर्हेतुक रूप में भी शिव-पार्वती और सूर्य की उपासना[२] के मूल में सूर की यह धार्मिक सहिष्णुता तथा समन्वयात्मक भावना ही अंतर्निहित है। रुक्मिणी विष्णुप्रिया कमला का अवतार होकर[३] भी कृष्ण को प्राप्त करने के लिए

---

१. स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं, स्वप्न हूं कौं,माहिं नहिं हृदय ल्याऊं।
—सूरसागर,पद १६७
स्याम-बलराम बिनु दूसरे देव कौं,सपनहूं में नहीं सीस नाऊं। वही, पद ४८२८

२. सूरसागर, पद ६६८;१३८२,१३८४, १३८५, १४००, १४१६, १४१७, १८४१, ४६७६, ४८००, ४८०७; १८०२; १३२०,१३८६ आदि।

३. सूरसारावली, पद ६२३

अम्बिका-पूजन करती हैं ।[१]

सूरदास के इष्ट श्रीकृष्ण सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, अज और अनन्त पर-ब्रह्म पुरुषोत्तम हैं । उनके विराट् स्वरूप में समस्त सृष्टि समाहित है --

रह्यौ घट-घट व्यापि सोई, जोति-रूप अनूप ।
चरन सप्त पताल जाके, सीस है आकास ।
सूर-चन्द्र-नक्षत्र-पावक ,सर्व तासु प्रकास ।। सूरसागर,पद ३७०

सृष्टि के प्रारम्भ में एकमात्र वही थे और निर्माण,पालन तथा संहार कर्त्ता ब्रह्मा-विष्णु-शिव नामक तीन शक्तियाँ ही नहीं समस्त स्वरूप उन्होंने धारण किए हैं ।[२] सृष्टि के साथ संहार भी करने के कारण वेद स्वकृत स्तुति में उन्हें शिव अभिधान ईश भी प्रदान करते हैं ।[३]उषा-अनिरुद्ध विवाह के प्रसंग में त्रिदेव समन्वय की स्थापना करते हुए कृष्ण रुद्र से कहते हैं कि विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा तीनों मेरे ही रूप हैं और तुम्हारी भक्ति मेरी ही भक्ति है । जो तुम्हारी भक्ति करता है, मैं उससे भी प्रसन्न होता हूँ ।[४]जब अखिल विश्व में एकमात्र वही परिव्याप्त है तो किसी भी प्रकार और किसी भी रूप में किया गया भक्ति-भाव उसी को प्राप्त होकर इष्ट की सिद्धि होती है :--

सूर भजि हरि जो जिहिं भाऊ । मिलत ताहि प्रभु तेहि सुभाऊ ।।
-- सूरसागर १५२१

भजै जिहिं भाव जो, मिलै हरि ताहि त्यों भेद-भेदा नहीं पुरुष नारी ।
- वही १६२७

झूठी बात कहा मैं जानों ।
जो मोकों जैसेहि भजै री, ताकों तैसेहि मानों ।। - वही २१८१ ,

---

१. वही, छन्द ६३० -६३३

२. सूरसागर, पद ३६६, ३८१, १५३३,४६२१

३. वही, छन्द ४६२०

४. बिहँसि जगदीस कह्यौ रुद्र जो तुहिं भजै ,
तहाँ मैं जाउं यह प्रन हमारै ।
करै जो सेव तुम्हरी सु मम सेव है,
विष्नु सिव ब्रह्म मम रूप सारै ।।— वही ४८१७

शिव और कृष्ण अथवा विष्णु के इस एकात्म भाव को लेकर सूर-साहित्य में जो स्थितियाँ उपलब्ध होती हैं, उन्हें इन निम्न वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

१. शिव रामकथा के व्याख्याता - शिव के लिए राम का चरित आनन्द-दायक है, इसलिए वे उसका ध्यान करते-करते समाधिलीन हो जाते हैं। समाधि भंग होने पर सती उस रामकथा को सुनने का औत्सुक्य प्रकट करती हैं। रामकथा का प्रकाशन सर्वप्रथम यहाँ शिव द्वारा सती के ही सम्मुख होता है।[1]

२. शिव-कृष्ण-भक्ति के उपदेशक - शिव और पार्वती के अनुसार अश्व-मेध यज्ञ, गया-बनारस-केदार की तीर्थ-यात्रा, त्रिवेणी स्नान, चन्द्रायन-व्रत आदि कुछ भी राम-नाम सदृश नहीं है, इसलिए मानव जीवन प्राप्त करके कृष्ण की भक्ति करनी चाहिए।[2]

३. विष्णु शिव के सहायक - ब्रह्मा से वर पाकर असुरों ने त्रिपुर नामक ऐसे कोट का निर्माण किया, जिसमें बैठकर वे देवों के लिए अजेय हो गए। उन्होंने देवों से जब अमृत का भी अपहरण कर लिया तो देवताओं ने शिव-साहाय्य प्राप्त की। परन्तु जब शिव किसी असुर को मारते थे, तो उसे अमृत पान से जीवित कर लिया जाता था। ऐसे समय असुरों को अमृत से वंचित करके विष्णु ने त्रिपुर-विजय में शिव की सहायता प्रदान की।[3]

४. वैष्णव उत्सवों से शिव को प्रसन्नता - प्रिय के आनन्द में उत्साह की संप्राप्ति स्वाभाविक है। कृष्ण के यज्ञोपवीत संस्कार में शिव न्यौछावर करते हैं[4] और राम के सिंहासनारूढ़ होते समय भी उपस्थित होकर आनन्दित होते हैं।[5]

५. विष्णु और शिव की अन्योन्याश्रित भक्ति - परस्पर समान स्तर होने पर जहाँ निःसंकोच भाव होता है, वहीं दूसरी ओर आदर-भाव भी। प्रत्येक

---

१. महादेव तब थिर करिकै यह चरित कियो विस्तार। - सूरसारावली २५२
२. सूरसागर ३४६
३. वही ४२६
४. वही, ३७१३
५. सूरसारावली ३०४

दूसरे को अपने से अभिन्न मानते हुए भी सम्मान प्रदान करता है । यही कारण है कि विष्णु शिव के भक्त हैं और शिव विष्णु के उपासक । अन्तत: दोनों में लघुता किसकी । किसीकीनहीं, दोनों महान् हैं । इसलिए कि दूसरा महान् समझता है और इसीलिए समान होने पर भी वह स्वयं दूसरे के प्रति श्रद्धा रखते हैं । यही कारण है कि शिव का विष्णु के प्रति उपास्य भाव है । उन्हें कृष्णा के चरण तक प्रिय होने के कारण वे उन (विष्णु) के चरणोदक रूप गंगा को सिर पर धारण करते हैं ।[1] कृष्ण का नाम उनका धन है[2] और वे राम तथा गोविन्द का ही ध्यान करते हैं ।[3] शिव के विभूति तथा समाधि धारण करने का कारण कृष्णा ही हैं ।[4] दक्ष के आगमन पर उनका स्वागत न कर सकने के मूल में शिव का विष्णु के ध्यान में मग्न होना ही है ।[5] वल्लभ सम्प्रदाय में शिव का स्थान भगवान् के प्रमुख भक्तों में माना गया है ।[6]

दूसरी ओर कवि ने शिव -नगरी वाराणसी को मुक्ति-क्षेत्र बताते हुए[6] प्रिया का मान भंग कराते समय कृष्णा द्वारा अपने प्रिय शिव की सौगन्ध दिलाई है[8]। सीता त्रिजटा से कहती हैं कि वह दिन कब आयेगा, जब राम रावण वध के पश्चात उसके सिर शिव को अर्पित करेंगे [9] और युद्ध-भूमि में राम प्रतिज्ञा करते हैं कि मैंने शिव का पूजन जिस रूप में किया है उसे आज प्रत्यक्ष करते हुए दसशीश-माल्य शिव

---

१. वही ६८५;सूरसागर १५, ६२०,११८८

२. वही,११४

३. वही १६०२, ४६२५; १७८२, २२१६, २६३६ आदि ,

४. वही ७४६, ३७८५, ४४१६; सूरसारावली १४८-१५०,

५. सूरसागर ३६६

६. नन्ददास,भूमिका, पृ० २८

७. ~~वही~~,सूरसागर ३४०

८. वही, ३३५०

९. वही, ५२५

को अर्पित करूंगा ।[१] कृष्ण के ब्रह्मत्व में जब नारद को सन्देह होता है तो वे कृष्ण के सम्मुख उपस्थित होते हैं । उस समय कृष्ण अपने विराट् स्वरूप और सर्वव्यापकत्व को प्रदर्शित करते हैं, जिसमें नारद कृष्ण को शिव-पूजन करते दिखाई पड़ते हैं ।[२]

६. कृष्ण पर शिव का आरोपण —कला में कुछ मूर्तियां ऐसी उपलब्ध होती हैं जिनमें शिव या वैष्णव प्रकृति प्रधान हैं और समन्वयात्मक भाव लाने के लिए उनमें अन्य के लक्षणों को आरोपित कर दिया गया है। पण्ढरपुर की विट्ठलमूर्ति में कृष्ण के मस्तक पर शिवलिंग की रचना इसी उद्देश्य से हुई है ।

सूर शिव को विस्मृत नहीं कर पाते हैं, इसीलिए कृष्ण को देखकर उन्हें शिव का ही आभास होता है —

बरनौं बाल-बेष मुरारि ।
थकित जित-तित अमर मुनि-गन, नंदलाल निहारि ।
केस सिर बिन बपन के चहुं दिसा छिटके झारि ।
सीस पर धरि जटा, मनु सिसु-रूप कियौ त्रिपुरारि ।
तिलक ललित ललाट केसरि-बिंदु सोभाकारि ।
रोष-अरुन तृतीय लोचन रह्यौ जनु रिपु जारि ।
कंठ कठुला नील मनि, अंभोज-माल संवारि ।
गरल ग्रीव,कपाल उर इहिं भाइ भए मदनारि ।
कुटिल हरि-नख हिएं हरि के हरषि निरखति नारि ।
ईस जनु रजनीस राख्यौ भाल तैं जु उतारि ।
सदन-रज तन स्याम सोभित, सुभग इहिं अनुहारि ।
मनहुं अंग बिभूति राजति संभु सौ मधुहारि ।
त्रिदस-पति-पति असन कौं अति जननि सौं करै आरि ।
सूरदास बिरंचि जाकौं जपत निज मुख चारि ।।

—सूरसागर ७८७

---

१. वही, ६०१

२. सूरसारावली ६७८

२. सखि री नंदनंदन देखु ।
धूरि-धूसर जटा जुटली, हरि किए हर-भेषु ।
नील पाट पिरोइ मनि गन, फनिग धोखैं जाइ ।
ख़ुनख़ुना कर हँसत हरि, हर नचत डमरू बजाइ ।
जलज-माल गुपाल पहिरे, कहा कहौं बनाइ ।
मुंड-माला मनौ हर-गर, ऐसी सोभा पाइ ।
स्वाति-सुत-माला बिराजत स्याम तन महिं भाइ ।
मनौ गंगा गौरि-डर हर लई कंठ लगाइ ।
केहरी-नख निरखि हिरदै, रहीं नारि बिचारि ।
बाल-ससि मनु भाल तैं लै उर धर्यौ त्रिपुरारि ।
देखि अंग अनंग झझक्यौ, नंद-सुत हर जान ।
सूर के हिरदै बसौ नित, स्याम-सिव कौ ध्यान ।।

-- वही ७८८

पहले पद में कृष्णा के बाल-रूप को देखकर शिव का आभास हो रहा है । यहाँ वैष्णाव और शैव प्रतीक इस प्रकार हैं --

| वैष्णाव प्रतीक (कृष्णा) | शैव प्रतीक |
|---|---|
| उन्मुक्त केश | जटाजूट |
| ललाट पर केशर-तिलक | तृतीय नेत्र |
| ग्रीवा में नीलमणियुक्त कठुला | विषपान से नीलवर्ण ग्रीवा |
| पद्म-माल | कपाल माल |
| हृदय पर केहरि नख | चन्द्रमा |
| धूलि | विभूति |

दूसरे पद के वैष्णाव तथा शैव प्रतीक हैं —

| वैष्णाव प्रतीक | शैव प्रतीक |
|---|---|
| नील सूत्र में संलग्न मणियां | नाग |
| झुनझुना | डमरू |
| पद्म माल | मुण्डमाल |

| वैष्णव प्रतीक | शैव प्रतीक |
|---|---|
| मुक्तामाल | गंगा की ग्रीवा में स्थिति |
| व्याघ्र नख | चन्द्रमा |

डा० ब्रजेश्वर वर्मा का अभिमत है कि यहाँ पर सूर ने शैवों को कृष्ण की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया है।[1] परन्तु सूर की कामना तो श्याम-शिव के समन्वित स्वरूप को धारण करने की है। जिस प्रकार रसखानि ने हरिहर में शिव और कृष्ण का समन्वय रखा है उसी प्रकार सूर ने भी हरि रूप में कृष्ण को ग्रहण किया है। 'कल्याण',[2] एस०पी०एस०संग्रहालय श्रीनगर[3] तथा बसौली शैली वाले राष्ट्रीय संग्रहालय[4] के चित्रों में शिव के साथ कृष्ण का ही समन्वय है। सूर के अभिप्राय की पुष्टि अगले पद की हरिहर-स्तुति से हो जाती है जहाँ उन्होंने कहा है –

> हरिहर संकर नमो नमो।
> अहिसायी, अहि अंग विभूषन, अमित-दान, बल-बिष-हारी।
> नीलकंठ, बर नील कलेवर, प्रेम-परस्पर, कृतहारी।
> चन्द्रचूड़, सिखि-चन्द्र-सरोरुह, जमुना-प्रिय, गंगाधारी।
> सुरभि-रेनु-तन, भस्म विभूषित, वृष-बाहन, बन-वृष-चारी।
> अज अनीह-अविरुद्ध एकरस, यहै अधिक ये अवतारी।
> सूरदास सम रूप-नाम-गुन अंतर अनुचर-अनुसारी।।
>
> –सूरसागर ७८६

यहाँ कवि श्वेत-श्यामवर्णी हरिहर में कोई अन्तर नहीं देख पा रहा है, हरि शेष-शायी हैं तो हर नागधारी। हर का कण्ठ नीलवर्ण है तो हरि का समस्त वपु। एक

---

१. सूरदास, पृ० १३३

२. वर्ष २५, अंक २, फरवरी, १९५१ ई० तथा वर्ष ४७, अंक १, जनवरी १९७३ ई०

३. फलक सं० २३३४, २४४८

४. सं० ६०।१६७३

चन्द्रमा को साक्षात् धारण करते हैं तो दूसरों के मौर-मुकुट में चन्द्रमा है। एक को यमुना प्रिय है तो अन्य को गंगा-पयस्विनी -- तो दोनों ही हैं। एक के शरीर पर गोचारण की धूलि है तो दूसरा भी उनके संसर्ग में है - चराने के निमित्त। फिर असीमदानी, अजन्मा, निरीह, मुक्त एवं एकरस तो हैं ही। हरिहर के विग्रहों में शैव और वैष्णाव लक्षणों युक्त दोनों अर्धांश प्राय: स्पष्ट रहते हैं। परन्तु कुछ ऐसी मूर्तियों का भी उल्लेख किया जा चुका है जिनमें शैव-वैष्णाव अभिधान तिल-तण्डुलवत् मिश्रित प्राप्त होते हैं। यहां कवि दोनों अंशों को स्पष्ट देखते हुए भी उनके विशेषणों में कोई क्रम न रख कर मिला देता है। इससे सूर की उस भावना को बल मिलता है कि हरिहर में शैव और वैष्णाव अंश को भी अलग-अलग देखने की आवश्यकता नहीं। कला में इस प्रकार की कोई कृति उपलब्ध न होने से यह सूरकी मौलिक कल्पना का परिचायक स्तवन है।

सूरसागर एक वैष्णाव रचना है, जिसमें विष्णु के कृष्णावतार की लीलाओं का वर्णन है। इसके कूट पदों में शिव तत्व,[1] शिव उपमानों[2] तथा शैव आख्यानों[3] को अन्तर्निहित कर कवि ने धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया है। इसी प्रकार कृष्णा की दानशीलता और सहनशीलता,[4] राम के जटा-

---

१. सूरसागर १२५३, १२७७, १३०६, २४८६, २७०४, ३३६६, ३६०२ तथा सूरसारावली ६३८, ६५४,६५८ आदि।

२. सूरसागर १६६४, २५५६, २७३२, २७३६, ३०८४, ३२१८, ३२८७, ३४५०, ३८५३, ४०२५, ४७३४, ४७४१ आदि। वक्ष पर माला, गुलाल नख चिह्न, कंचुकी अथवा अधर देखकर कवि को तत्काल शिव-सिर पर गंगा, तपस्यालीन शिव, शिव-सिर पर चन्द्र रेख, पर्णकुटी में शिव, शिव पर जलार्पण तथा चन्द्रमा के भय से पद्म द्वारा शिव को मुक्ता अर्पित करने की स्मृति हो आती है।

३. वही ३८८, ३६८, ४०१, ४३७;
सूरसारावली, ४८।४६ आदि

४. सूरसागर ३६६४

जूट[१] आदि की उपमा शिव से देना, हनुमान् की राम तथा शिव दोनों के प्रति आस्था[२] अथवा कृष्ण और शिव दोनों के द्वारा अर्जुन की सहायता करना[३] आदि भी सूर की समन्वयात्मक प्रवृत्ति के प्रमाण हैं । डा० हरवंशलाल शर्मा के शब्दों में 'सूरदास जी का सूरसागर शताब्दियों से चली आती हुई धार्मिक परम्पराओं का आश्रय स्थल कहा जा सकता है ।...... ऐसा प्रतीत होता है कि सभी साम्प्रदायिक विरोधी भावनायें यहां आकर समन्वित हो गई हैं ।[४]

## सूरेतर अष्टछापी कवि

इन कवियों ने कृष्णेतर देवी देवताओं को अधिक महत्त्व नहीं दिया है तथापि इनकी रचनाओं में शैव वैष्णव सम्बन्ध की विविध कोटियां मिल जाती हैं ।

पहली स्थिति में शिव को कृष्ण से हीन दिखाया गया है, क्योंकि वे कृष्ण के अधीन हैं ।[५] वे कृष्ण के चरण रज सिर पर[६] अथवा कृष्ण के चरणों को हृदय में धारण करते हैं ।[७] उनका महत्त्व अहिल्या ने समझा था , जिनके स्पर्श से वह प्रस्तर से नारी हो गई थी या शिव जानते हैं, जो कृष्ण रूप विष्णु के पादांगुष्ठ से निःसृत गंगा को सिर पर धारण किये रहते हैं ।[८] निगमों के लिए अत्यन्त अगम्य उन कृष्ण हेतु शिव समाधि धारण करते हैं[९] निगमों और वेदों द्वारा नेति-नेति कहलाये

---

१. वही ५०२

२. वही, ५५२

३. वही २८७

४. सूर और उनका साहित्य, पृ० १६१

५. कृष्णदास, पद ८४२; छीतस्वामी, पद १४४

६. नंददास, सिद्धांत पंचाध्यायी, १६५

७. परमानन्दसागर, पद १,४७

८. वही, पद १३४१

९. नंददास, रूपमंजरी, १७६, मानमंजरी नाममाला २७३

जाने वाले मुख के दर्शन करना चाहते हैं ।[१] कृष्ण उनके धन हैं, सर्वस्व हैं ।[२] कस्तूरी का तिलक , कण्ठ में कठुला, लटों में गजमुक्ता तथा पीताम्बर धारी कृष्ण के बाल-स्वरूप पर शिवमोहित हैं,[३] इसलिए वे उन्हें ढूंढ़ते घूमते हैं और मिलने के अभिलाषी हैं[४]। राम-जन्म के समय सुर लालाओं का नृत्य, बधाइयां तथा दान-वितरण हो रहा है जिसे देखकर शिव भी आनन्दित हैं । [५] यही नहीं कृष्ण के हिंडोले को देखकर शिव-ताण्डवलीन हो जाते हैं ।[६] परमानन्ददास ने कृष्णावतार का कारण भुविभार-मोचन तो माना ही है, पर वह शिव आदि की विनय से हुआ है[७]।कृष्ण भी बलराम सहित विनोद लीला सैरा संकर हेत करते हैं ।[८]

अन्य स्थिति में कृष्णादास ने चार पदों ( ४६७, ५३०, ६१२ और ७०३) में शिव का उल्लेख काम-दहन के सन्दर्भ में किया है । नारी-वर्णनों के लिए शिव उपमान रूढ़ होते हुए भी उसका प्रयोग कवि की सहिष्णुता का द्योतक तो है ही क्योंकि यदि वह असहिष्णु होता तो अन्य बहुत-से उपमानों का प्रयोग कर सकता था । कृष्णादास ने हरित चोली तथा मुक्ताहार धारण करने पर कुचों को कमलाच्छादित गंगाधारी शिव माना है ( पद सं० ६७६) तो परमानन्ददास को वे स्वेद बिन्दु युक्त होने पर मोतियों से पूजित शिव लगते हैं ।[९] एक पद में तो कृष्ण ही नवचन्द्र युक्त शिव बन जाते हैं । खंडिता का सन्दर्भ है और कृष्ण के हृदय पर नख चिह्न विद्यमान हैं ।

कर नख उर राजत हैं मानों अरध ससि धरे ।।

—परमानन्दसागर,पद ७१६

---

१. परमानन्दसागर, पद ८२

२. नंददास,परिशिष्ट,(ग) पदावली, पद १०६; दशम अध्याय, एकादश अध्याय,२६

३. परमानन्दसागर, पद ६०

४. वही, पद २१४,४३

५. वही,पद ३/४२; गोविन्दस्वामी, पद १५४

६. परमानन्दसागर, पद ~~७~~६०

७. वही, पद ७

८. वही, पद ५७

९. वही, पद २१६ तथा १४०; नंददास, रूपमंजरी, १४०, रसमंजरी,६३

कृष्ण के जन्म तथा अन्नप्राशन के समय कुल-देवी का पूजन तो परमानन्ददास ने भी कराया है ( पद ३८,५०),परन्तु गोविन्दस्वामी और नन्ददास ने अभीप्सित वर की प्राप्ति के लिए पार्वती के साथ शिव की पूजा कराई है ।[1] परमानन्ददास ने एक पद में शिव तथा विष्णु को समकक्ष रखा है —

तीन मुख्य देवता ब्रह्म, विष्णु अरु महादेवा । —पद सं० ८७६

तथा कुंभनदास ने एक छन्द में एकेश्वरवाद की स्थापना करते हुए कृष्ण से कहलाया है कि मैं ही ब्रह्म रूप से उत्पत्ति, विष्णु रूप से पालन तथा रुद्र रूप से संहार करता हूं—

ब्रह्म रूप उतपति करौं, रुद्र रूप संहार ।
विष्णु रूपरक्षा करौं, सो मैं हौं नंदकुमार ।।
कहत नंद लाडिलौ ।। २३।२२ ।।

हलधरदास

इन्होंने सुदामा चरित्र के अतिरिक्त शिवस्तोत्र तथा श्रीमद्भागवत भाषा का प्रणयन किया था ।[2] जैसा कि स्पष्ट है शिवस्तोत्र में शिव का स्तवन तथा अन्य ग्रन्थ में श्रीमद्भागवतपुराण का भाषा अनुवाद होगा । सुदामाचरित्र में इन्होंने सुदामा की दैन्य दशा, पत्नी की प्रेरणा से मित्र कृष्ण के पास जाने, कृष्ण कृत -सत्कार सुदामा ~~की दैन्य दशा, पत्नी की प्रेरणा से मित्र~~ कृष्ण द्वारा सुदामा को अज्ञात रूप में वैभव-प्रदान , सुदामा के प्रत्यागमन , भव्य अट्टालिकाओं युक्त अपने परिवर्तित गांव के अभिज्ञान में असमर्थ होने और पत्नी द्वारा स्वत्व प्रमाणित करने पर वहां निवास करने का वर्णन किया है । यद्यपि कथानक में नरोत्तमदास के सुदामाचरित से कोई विशेष अन्तर नहीं है, तथापि प्रस्तुत कवि की रचना-प्रेरणा का परिचय महत्वपूर्ण है ।

जबयह जगन्नाथ की यात्रा पर थे तो मार्ग में इन्हें कृष्ण ने स्वप्न में दर्शन दिये । कृष्ण ने हलधरदास को शिव-भक्त कहते हुए आदेश दिया —

---

१. गोविन्दस्वामी, पद ३७५; नंददास, रुक्मिनीमंगल, १६५-२११; दशम स्कन्ध, बाईसवां अध्याय ५-६; परमानन्दसागर, पद ७२३

२. सुदामाचरित्र, भूमिका, पृ० ८५

औचक ही प्रभु सपन मैं, टेरि सुनायौ बैनु ।
जागु जागु रे हलधरा , चन्द्रचूड़ पद रैनु ।।
चन्द्रचूड़ पद जपन करु, जग सपनै की रैन ।
और कछुक तूं कान धरु, सुधा सरिस मो बैन ।।
तूं चरित्र मो मित्र को, करु प्रसिद्ध संसार ।
जासु चाउरी प्रेम ते हम कीन्हीं आहार ।।[१]

यहाँ कवि को शिव-भक्त कहा गया है । परन्तु यह संबोधन स्वयं उसने नहीं कृष्ण ने प्रयुक्त किया है । जहाँ तक कवि की प्रकृति का प्रश्न है उसने तीन छन्दों में शिव का पूर्ण मनोयोग से वर्णन किया है ।[२] जिससे उसकी शिव के प्रति उन्मुखता पूर्ण स्पष्ट हो जाती है । कृष्ण भी उसे शिव-भक्ति का उद्बोधन देते हैं । दूसरी ओर वह कृष्ण के ही आदेश से उनके मित्र का चरित-गान कर रहा है । इससे प्रकट होता है कि कृष्ण अपने तथा शिव के भक्त में कोई अन्तर नहीं समझते हैं । किसी की भी भक्ति से उनका अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है । सुदामा को कृष्ण के पास जाने के लिए प्रेरित करती हुई उनकी पत्नी कहती है कि वे तुम्हें उसी प्रकार अंक में भर लेंगे जिस प्रकार वे शिव का आदर करते हैं —

वे मुरारि प्रेमायतन गहि भिखारि अंकम भरैं ।
वे न मित्र भेंटि विमुख शिव समान आदर करैं ।।५६।।

परन्तु इसी से हलधर को शिव का भक्त नहीं मान लिया जा सकता है क्योंकि वे कृष्ण तथा उनके मित्र सुदामा का वर्णन कर रहे हैं और कृष्ण के भोजन करते समय रामचरितमानस के तापस या सूरसागर के ढाढ़ी के समान पीकदान लेकर उपस्थित होते हैं ।[३] इस सम्बन्ध में डा० सियाराम तिवारी का यह मत ही उद्धृत करना उपयुक्त है

---

१. वही, छन्द १,२,४

२. वही, ३०३-३०५

३. प्रथम दई बीरी दुजहिं तब कृपालजू पै दई ।
पीक पिकन कौं हलधरा सीस पीकदानी लई ।। - वही, २१५

कि हलधरदास की सर्वोच्च भक्त्यात्मक उपलब्धि यह है कि उन्होंने वैष्णव -शैव समन्वय का मार्ग प्रशस्त किया था । जिस कार्य के लिए गोस्वामी तुलसीदास को अत्यधिक श्रेय मिला है उसका मार्ग दिखाने वाले अद्यावधि ज्ञात थोड़े कवियों में हलधरदास प्रमुख हैं । ऊपर विवेचित कृष्ण-शिव की अन्योन्यता एवं पारस्परिक पूज्य भावना में हलधरदास की यह समन्वय भावना द्रष्टव्य है ।[१]

एक छन्द में कवि ने कृष्ण कृत आतिथ्य-सत्कार का वर्णन किया है, जिसकी अन्तिम दो पंक्तियों का मुद्रित पाठ निम्न है —

दीन-चरन हरि आदरैं हरि-तिय धोअन कों गहै ।
जो नर निज आदर चहै तो निसि-बासर हरि हरि कहै ।। १६७ ।।

खड्गविलास प्रेस (पटना) से प्रकाशित सुदामा चरित्र में हरि-हरि के स्थान पर हरि-हर पाठ उपलब्ध होता है । यह प्रति नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) तथा बिहार संस्कृत शिक्षा समिति (पटना) के सहायक शिक्षा निदेशक श्री रामपदार्थ शर्मा की पाण्डुलिपियों पर आधारित है ।[२] पाठ-निर्धारण की दृष्टि से सम्पादक ने समस्त उपलब्ध प्रतियों को पांच वर्गों में विभाजित किया है ।[३] खड्गविलास प्रेस की प्रति इनमें से तृतीय वर्ग में रखी गई है । सभी प्रतियों में से प्रथम शाखा की तेइसवी प्रति प्राचीनतम तथा पाठ की दृष्टि से सर्वाधिक शुद्ध मानी गई है और पाठ-शोध के लिए इसी प्रति को आधार तथा पाठान्तरों के लिए इसी शाखा की प्राचीनतम मुद्रित प्रति इकतीसवीं को ग्रहण किया गया है ।

सभी शाखाओं की प्रतियों को समग्रत: देखकर सम्पादक ने इनमें सामान्यत: दो वर्ग पाये हैं —मुद्रित और हस्तलिखित । पाठचयन के लिए उसने हस्तलिखित प्रतियों का ही आश्रय लिया है इस कारण सम्भव है एक पूर्वाग्रहवश उसके द्वारा मुद्रित प्रतियों का जो पाठ छोड़ा गया है, वही वैज्ञानिक हो सकता है । इस प्रकार सम्भव है कि

---

१. वही भूमिका, पृ० ८४-८५

२. वही, भूमिका, पृ० ६

३. वही, भूमिका, शाखा निर्धारण, पृ० १८-२०

यहाँ १६७ वें छन्द में हरि-हरि के स्थान पर मूलत: हरिहर पाठ ही रहा हो ।
कवि की प्रवृत्ति समन्वयात्मक है ही दूसरी और उसने हरिहरात्मक शैली पर दो छन्दों
में कृष्ण तथा शिव को यथाक्रम स्मरण किया है –

जिन्हें कृष्न को सरन सुभ जिन्ह कृष्न मनायो ।
जिन्ह रीते सिव-चरन उग्र जिन्ह सिव जस गायो ।
जिन्हें कृष्न अनुराग -प्रेम, जिन्ह कृष्न भजे हैं ।
जिन्हें सदासिव - नेम, जिन्हें सिव-रस उपजे हैं ।
तिन्हके भाल नहिंदुख लिखें कजो विधि लिखें तो मिटिपरें ।
ते सब कंत न सपनेहु विधि-रेखा गनना करें ।।७६।।

कृष्नराय के तनै कहो किमि कुष्ठ बदन हैं ।
सिवकुमार किमि गज भया न मुख एक रदन है ।
गरुड़ासन प्रिय गरुर सो किमि विषधर निगलत हैं ।
सिव-ग्रिव बास किमि ग्यान - पुंज फनि विष उगिलत हैं ।
जो प्रिय कृष्न - महेस के सो किमि दूषन अस परें ।
भाल-अंक जे विधि रच्यो बिना भोग कैसे टरें ।।७७।।

तुलसीदास,[1] रसखानि[2] आदि ने हरिशंकरी छन्दों में इसीप्रकार क्रमानुसार वर्णन
किया है । इसलिए इन छन्दों को भी हरिहरात्मक कहना ही अधिक उपयुक्त एवं
न्यायसंगत है । कवि की एतद्विषयक मूल-प्रवृत्ति समग्र रचना से स्पष्ट ही है ।

मीराँबाई

दरद दीवानी मीराँ अपने गिरधर नागर के लिए पैरों में घुंघरू बाँधकर
राजस्थान के मन्दिरों में नाचती घूमती थीं । प्रेम की प्रगाढ़ता को देखकर जनसामान्य
ने उन्हें उन मन्दिरों से इतना संनिविष्ट कर दिया कि वे मीराँ-मन्दिर ही कहलाये
जाने लगे । जबकि वास्तव में उनमें से कुछ तो मीराँ-पूर्व की रचना हैं ।[3] ऐसी तन्मय

---

१. विनयपत्रिका, पद ४६
२. रसखानि ग्रन्थावली, सुजान रसखानि, छन्द सं० २१०,
३. देखिए लेखक कृत इनको नाम मीराँ मन्दिर क्यों ? साप्ताहिक भारत, ७ मई, १६६७ ई०

मीरां के इष्ट का जो स्वरूप प्रकट होता है, उसे दो वर्गों में रख सकते हैं -हरि अविनाशी तथा अन्तर्यामी[1] और कृष्ण-विष्णु रूप । विष्णु रूप में वे अजामिल-गणिका आदि अधमों के उद्धारक और भव-तारक हैं । उन्होंने हिरण्यकश्यप का संहार कर प्रह्लाद, ग्राह का नाशकर गज और चीर बढ़ाकर द्रौपदी की लज्जा का रक्षण किया । वे भक्तों के कल्याण तथा लीलावश विविध अवतार धारण करते हैं कृष्ण रूप में वे यमुना तट पर गायें चराते, वंशी बजाते और ब्रजबालाओं को मुग्ध करते हैं । कटि में पीताम्बर , हृदय पर वैजयन्ती और हाथों में वंशीधारी को मीरां ने गोपाल, मुरारी, मुरलीधारी, नन्दकुमार, श्याम, गिरधर नागर आदि अभिधेयों से सम्बोधित किया है ।

यहां पर उनका योगी रूप विशेष द्रष्टव्य है । इस रूप में वे शरीर पर भस्म, गले में मृगछाला तथा सैली धारण किये रहस्योद्घाटन करते घर-घर घूम रहे हैं। मीरां ऐसे योगी-मुनि की दर्शनाभिलाषी हैं और उपालम्भ देती हैं कि वह एक बार तो हँसकर बोल दे ।[2]उनकी कामना है -

म्हारे घर रमतो ही जोगिया तू आव ।
कानां बिच कुंडल,गले बिच सैली, अंग भभूत रमाय ।।
तुम देख्यां बिण कल न पड़त है, ग्रिह अंगणो णा सुहाय ।
मीरां के प्रभु हरि अबिनासी, दरसण द्यो णा मोकूं आय ।।

-- मीरांपदावली ६८

जब वे योगी को जाने से रोकती हैं तो निवेदन करती हैं कि वह आकर ज्योति में ज्योति मिला दे (ब्रह्म में आत्मा को लीन कर ले ! )[3] परन्तु वह न तो रुकता है और न वापिस आता है । वह तो 'आसण माड़ अडिग होय बैठा' है तो मीरां स्वयं भी योगिनी बन जाना चाहती हैं[4] और सन्देश भेजती हैं -

---

१. मीरां पदावली,पद ६८,६५, ८२,६२,८४, १०१ आदि

२. वही, पद ५८

३. वही, पद ४६

४. वही, पद ४६, ६४

जोगिया ने कहज्यो जी आदेस ।
माला मुदरा मेखला रे वाला खप्पर लूंगी हाथ ।
जोगणि होइ जग ढूंढ़ सूं रे, म्हारा रावलियारी साथ ।।
--मीरांपदावली,११७

प्रो० शम्भुप्रसाद बहुगुणा की धारणा है कि भक्त योगियों और दार्शनिकों की चेतना तथा शब्दावली मीरां के प्राण स्वरों के कम्पन में विद्यमान है । मीरां ने जिस परमपद को अपने जीव का लक्ष्य बनाया है वह गौरव के अगम अगोचर गगन शिखर ब्रह्मरन्ध्र में रहने वाले बालक से भिन्न नहीं है । उसकी प्राप्ति के लिए वे सब कुछ करती हैं । शरीर और मन से योगिनी बनती हैं । सतगुरु से ज्ञान की गुटकी प्राप्त करती हैं और अपने मन जोगी को विषय-वासनाओं से हटाकर उसी के स्थान में लगाती हैं । उसको अपनाने के लिए गंगा इड़ा, यमुना पिंगला के तीर सुषुम्ना में पहुंचकर मध्य रात्रि में प्रेम नदी के तीर ज्योति के दर्शन की अभिलाषा करती हैं ।[1] परन्तु डा० प्रभात जोगी वाले कतिपय पदों को प्रणामी सम्प्रदाय की मीरांबाई ~~तथा~~ तथा अन्य सन्तों का मानते हैं ।[2] उनका कहना है कि ब्रज और द्वारका का निवास, रणछोड़ जी, चतुर्भुजा जी तथा कुम्भश्याम के मन्दिरों की पूजा, जीवगोस्वामी, ~~हि~~-हि/तहरिवंश आदि के सम्पर्क मीरां के योग मत से प्रभावित होने का समर्थन नहीं, विरोध करते हैं । मीरां के समय में उत्तर के कृष्णोपासक प्रेमी भक्तों में नाथ-सम्प्रदाय का प्रभाव तनिक भी नहीं रहा था । अतः मीरां पर उसके प्रभाव की कल्पना निराधार है ।[3] यदि मीरां के कतिपय पदों को प्रक्षिप्त भी मान लें तो शेष के विषय में क्या धारणा बनाई जाये, इसका समाधान डा० प्रभात ने नहीं किया है । जहां तक वैष्णव मन्दिरों से मीरां के सम्पर्क का प्रश्न है, मीरां के वैष्णवत्व को नकारा नहीं जा सकता । देखना यही है कि क्या उन पर नाथ मत का प्रभाव है अथवा नहीं ।

---

१. मीरांस्मृति ग्रन्थ, पृ० ३०-३१
२. मीरांबाई, पृ० ३६३
३. वही, पृ० ३६३, ३६४

क्योंकि वैष्णव होते हुए ऐसा सम्भव होना डा० प्रभात स्वयं स्वीकार करते हैं[१] और चतुर्थ अध्याय में हम स्वयं ऐसा देख चुके हैं। जहाँ तक तीसरे आक्षेप की बात है डा० प्रभात ने मीरा पर नाथमत के प्रभाव को स्वयं स्वीकार कर लिया है। उन्होंने मीरां का सम्बन्ध चित्तौड़गढ़ के राजमन्दिर के पुजारी देवाजी से दिखाया है जो कृष्णादेव पयहारी के शिष्य थे।[२] कृष्णादेव पयहारी तथा रामानन्द पर शैव प्रभाव का अध्ययन हम पूर्वोक्त अध्याय में कर चुके हैं। फिर मीरां पर उस प्रभाव की सम्भावना स्वीकार करने में कोई दुराग्रह क्यों ? डा० प्रभात ने यह भी स्वीकार किया है कि शैव सम्प्रदायों में 'मीरां के प्रभु गिरिधर नागर' छाप के पदों में टेक के रूप में 'भोलानाथ दिगंबर है दुख मीरा टारो रे' जैसी पंक्तियां जोड़ दी गई हैं।[३] उनके अनुसार तलवले मठ की प्रतियां ऐसी ही हैं। यदि मीरां कट्टर वैष्णव होतीं तो ऐसा होना अत्यन्त ही कठिन था। हम नहीं जानते कि तुलसीकी गीतावली और विनयपत्रिका अथवा सूरदास के सूरसागर के पदों को किसी शैव सम्प्रदाय में इस प्रकार से ग्रहण किया गया हो, जबकि इनमें धार्मिक सहिष्णुता ही नहीं समन्वयात्मक प्रवृत्ति भी है। साम्प्रदायिक परिवर्तन तभी सम्भव है जब उस रचना में सम्प्रदाय विशेष का प्रभाव विद्यमान हो।

मीरां का परिवार भी धार्मिक रूप से सहिष्णु ही रहा है और उसमें शैव-वैष्णव दोनों प्रवृत्तियां उपलब्ध होती हैं। पतिकुल एकलिंग जी का भक्त था, परन्तु राणा कुम्भा ने कुम्भश्याम मन्दिर का निर्माण कराया और गीतगोविन्द की टीका रची थी। यह दोनों ही तथ्य उनके वैष्णवत्व को सिद्ध करते हैं। दूसरी ओर पितृकुल में जोधपुर के राष्ट्रकूटों में विजयसिंह परम वैष्णव और मानसिंह नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी थे।[४] इस धार्मिक समन्वय का प्रभाव मीरां पर भी अवश्य होना चाहिए।

---

१. मीरांबाई, पृ० ३६३
२. वही, पृ० १६५-१६६
३. वही, पृ० २८३
४. वही, पृ० १८१

मीरां के समय राजस्थान में नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव था । राजस्थानी इतिहास के मर्मज्ञ रामबल्लभ सोमानी लिखते हैं कि नाथसिद्ध और वीरों की उपासना यहां लम्बे समय से चल रही है । मध्यकाल तक नाथों का बड़ा जोर था । राजस्थान में गोरखनाथ को बहुत मान्यता दी गई है । संगीतराज में देव-पूजनार्थ अन्य देवताओं के साथ गोरखनाथ , मीननाथ, सिद्धनाथ आदि का उल्लेख है । अतएव पता चलता है कि महाराणा कुम्भा के शासनकाल में इनकी पूजा का अत्यधिक प्रचार था । मीराबाई चित्तौड़ में ही हुई थीं । उस पर इन सन्तों का बड़ा प्रभाव था ।[१]

रसखानि—

ऐसा समझा जाता है कि जब यह मक्का जा रहे थे, तो मार्ग में वृन्दावन के सौन्दर्य से इतने अभिभूत हुए कि वहीं विरम गये । वृन्दावन निवास की परिणति विट्ठलनाथ का शिष्य हो जाने में हुई । दो सौ चौरासी वैष्णवन की वार्ता से भी उनका वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होना प्रमाणित होता है । परन्तु अन्य कृष्ण भक्तों की अपेक्षा इनमें समन्वयात्मक प्रवृत्ति अधिक है । रसखानि का अपने इष्ट के प्रति इतना प्रगाढ़ प्रेम है कि वे कामना करते हैं —

जो रसना रस ना विलसै तेहि देहु सदा निज नाम उचारन ।
मो कर नीकी करैं करनी जु पै कुंज-कुटीरन देहु बुहारन ।
सिद्धि समृद्धि सबै रसखानि लहौं ब्रजरेनुका-अंक संवारन ।
खास निवास मिलै जु पै तो वही कालिंदी कूल कदंब की डारन ।।

कहते हैं इनके कृष्ण-भक्त हो जाने पर राजा से इन पर अभियोग चलाने के लिए कहा गया । उस समय उन्होंने अपने उपास्य पर उत्कट विश्वास प्रकट करते हुए उद्घोषित किया[२]—

कहा करै रसखानि को कोऊ चुगुल लबार ।
जो पै राखनहार है माखन-चाखन हार ।।

यद्यपि रसखानि ग्रन्थावली की भूमिका में डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने यही लिखा है कि यह दोहा न प्रेमवाटिका में मिलता है, न इनके काव्यसंग्रह सुजान रसखानि में,

---

१. वीरभूमि चित्तौड़ , पृ० १५०-१५१
२. रसखानि ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ३०

पर है प्रख्यात । इसमें यह स्पष्ट संकेत है कि किसी लबार या चुगलखोर ने इनकी कुछ चुगली अवश्य खाई थी ( पृ० ३० ), परन्तु आगे सुजान रसखानि में इसे १६ वें छन्द के रूप में दिया भी है ।

कृष्ण के ऐसे प्रगाढ़ भक्त रसखानि ने जहाँ 'रसखानि गुविंदहिं यों भजिये जिमि नागरि को चित गागर में '[1] कह कर कृष्ण-भक्ति का उद्बोधन करते हुए अन्य देवों के प्रति उदासीनता भी प्रकट की है[2] और कृष्ण को शिव के लिए अगम्य अथवा उनका भक्त बताया है[3] वहीं बड़े मनोयोग से शिव का स्तवन भी किया है -

यह देखि धतूरे के पात चबात औ गात सों धूलि लगावत हैं ।
चहुं ओर जटा अंटकै लटकै फनि सों कफनी फहरावत हैं ।
रसखानि जेई चितवैं चित दै तिनके दुख दंद भजावत हैं ।
गज खाल कपाल की माल विसाल सों गाल बजावत आवत हैं ।

—सुजान रसखानि २११

हरिहर के एकात्म स्वरूप का वर्णन करते हुए वे कहते हैं — एक ओर किरीट मुकुट सुशोभित है तो दूसरी ओर नाग । एक ओर से मुरली की ध्वनि आ रही है तो दूसरी ओर से नाद की । एक कन्धे पर पीताम्बर है तो दूसरे पर बाघम्बर । उनका श्याम तथा श्वेत वर्ण ऐसा लगता है मानो वे यमुना और गंगा के संगम में डुबकी लगाकर निकले हों ।[4] रसखानि के उपास्य कृष्ण हैं, इसलिए उन्होंने

---

१. वही, सुजान रसखानि, ८

२. वही, ,, ५

३. वही, ,, १२,१४ , प्रकीर्णक १६

४. इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि नागन के गन गाजत री ।
मुरली मधुरी धुनि आधिक ओठ पै आधिक नाद सै बाजत री ।
रसखानि पितंबर एक कंधा पर एक बघंबर राजत री ।
कोउ देखउ संगम लै बुड़की निकसे यहि भेख सों छाजत री ।।

— सुजान रसखानि २१०

शिव के साथ कृष्ण का ही समन्वय देखा है, यद्यपि शिव के साथ वैष्णव भाग में कृष्ण को समन्वित करके अपराजितपृच्छा (२१३।२८-२९) में कृष्णशंकर के लक्षण दिये गये हैं परन्तु वहाँ शैव भाग में जटाभार, कर्णों में कुण्डल, तथा हाथों में अक्षमाल व त्रिशूल और वैष्णव भाग में मुकुट, कर्णों में मकर-कुण्डल तथा हाथों में चक्र व शंख बनाने का विधान है। जहाँ तक तक्षण अथवा आलेख्य-कला का प्रश्न है कोई भी ऐसी मूर्ति या चित्र अद्यावधि अज्ञात है जिसमें रसखानि या अपराजितपृच्छावत् सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों। मूर्तियों की प्राचीनता के कारण उनमें वर्ण-भेद तो मिल नहीं पाता, हाँ अन्य लक्षण पृथक पृथक मिल जाते हैं। चित्रों में श्याम तथा श्वेत का वर्ण-भेद अवश्य प्रदर्शित मिलता है, परन्तु अन्य समस्त लक्षण उनमें भी प्राप्त नहीं होते। सभी उदाहरणों के लक्षणों में इतना वैविध्य उपलब्ध होता है कि शिव तथा विष्णु के विविध स्वरूपों का समन्वय होते हुए भी वैष्णव भाग में कृष्ण का निरूपण अत्यन्त विरल है। एक अठारहवीं[1] तथा तीन प्रस्तुत शताब्दी के अत्याधुनिक चित्रों में शिव के साथ कृष्ण का समन्वय उपलब्ध होता है। प्रथम चित्र में वैष्णवभाग में मोरमुकुट निर्मित होने से उसे कृष्ण का स्वरूप कहा जा सकता है। प्रस्तुत दक्षिणार्ध में सिर पर मयूर पुच्छ के अतिरिक्त कमल-कलिका, हाथों में वलयाकार चक्र व शंख तथा ग्रीवा में अन्य आभूषणों के साथ वनमाल प्रदर्शित है। इसी प्रकार वामार्ध में जटामुकुट, चन्द्रकला, त्रिनेत्र, नाग, कपालमाल तथा हाथों में कपाल व डमरू युक्त त्रिशूल है। दक्षिणार्ध में श्यामवर्ण तथा पीताम्बर और वामार्ध में श्वेत वर्ण तथा बाघम्बर स्पष्ट हैं। निरूपण की विशेषता यह है कि ग्रीवा से ऊपर का भाग संयुक्त होते हुए भी पृथक है, क्योंकि आंशिक वामाभिमुख शिव का एक कान, दोनों नेत्र, नाक तथा मुख और दक्षिण पार्श्विक कृष्ण का एक कान, एक आंख, नाक तथा मुख प्रदर्शित है। अन्य तीन चित्रों में से एक श्रीनगर के एस०पी०एस० संग्रहालय में है और शेष दो कल्याण में प्रकाशित हुए हैं।[2] इन तीनों में वैष्णव प्रतीक चक्र सुदर्शन होने के कारण उस अंश में कृष्ण का समन्वय सिद्ध होता है। डी० डी०कौसाम्बी ने सुदर्शनधारी एक ऐसे हरिहर चित्र को प्रकाशित किया है, जिसे बंगाल

---

१. राष्ट्रीय संग्रहालय(दिल्ली), सं० ६०।१९७३ ; ~~१४७३ - ६३~~

२. कल्याण, वर्ष २५, अंक २, (फरवरी, १९५१) तथा वर्ष ४७, अंक १ (जनवरी, १९७३ )

में कपड़ों पर छापा जाता है ।[1] सम्भवत: यही कुछ ऐसे चित्र हैं, जिनके वैष्णाव अंश में कृष्णा के लक्षण है । परन्तु समग्र रूपांकन की दृष्टि से वे भी रसखानि के वर्णन से साम्य नहीं रखते । इस प्रकार रसखानि की हरिहरात्मक कल्पना उनकी मौलिक कल्पना से अनुस्यूत है ।

नरोत्तम दास, प्रिथीराज आदि अन्य भक्त कवियों के कृष्णा-काव्य में भी समन्वय ही परिलक्षित होता है । वैष्णाव रचनाओं में शिव उपमानों का अधिग्रहणा,[2] श्रीकृष्णा को वर रूप में प्राप्त करने के लिए शिव-पार्वती की आराधना[3] तथा यशोदा को कृष्णा की प्राप्ति के मूल में शिव की संनिहिति बताना[4] शैव-वैष्णाव विद्वेष को हटाकर सौहार्द भाव लाने के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं

इस प्रकार हम देखते हैं कि धार्मिक दृष्टि से कृष्णा-काव्य का स्वर विद्वेषात्मक न होकर समन्वयात्मक ही है । वैष्णाव कवि होकर भी उन्होंने शैव उपमानों तथा प्रत्याख्यानों का अधिग्रहणा ही नहीं शिव का स्तवन तक किया है । समन्वय की अन्यतम स्थितियां वे हैं जहां शिव तथा विष्णु की अन्योन्याश्रित भक्ति, एक की उपासना से अन्य की प्राप्ति और हरिहर के एकात्म स्वरूप का स्तवन है ।

---

१. दि कल्चर एण्ड सिविलिजेशन आफ ऐन्शियैन्ट इण्डिया इन हिस्टारिकल आउट-लाइन, पृ० २०५ चित्र १६

२. वेलि क्रिसन रुकमिणी री, छन्द ८४, ८७,६० आदि

३. वही, छन्द २६; सुदामाचरित, छन्द ६०

४. श्रीकृष्णागीतावली, पद १६

अध्याय -७

## राम-भक्ति-काव्य और हरिहर

वैदिक साहित्य में राम का नाम मिलते हुए भी उनका रामकथा के राम से कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता है । प्राप्त रामकथाओं में वाल्मीकि की रामायण ही आदि रचना है, जिसके आधार पर राम-काव्यों का विकास हुआ । इसके सभी काण्डों में राम को विष्णु का अवतार निरूपित किया गया है । वैदिक साहित्य में अवतारवाद शतपथ ब्राह्मण से मिलता है, जहाँ ब्रह्मा के मत्स्य, कूर्म और वाराह अवतारों का उल्लेख है । परन्तु डा० बुल्के ने वाल्मीकिरामायण के उन सभी अंशों को प्रक्षिप्त माना है, जिनमें राम का अवतरण स्वीकृत है ।[१] शतपथ ब्राह्मण में जो अवतार ब्रह्मा ने धारण किए वे आगे चलकर विष्णु पर आरोपित हो गए । अवतरण की इस भावना तथा राम के महामानवत्व का विकास होने के साथ वायु, विष्णु, मत्स्य, हरिवंश आदि प्रारम्भिक पुराणों और महाभारत में दाशरथि राम भी अवतारों की सूची में सम्मिलित हो गए । महाभारत के नारायणीय उपाख्यान में अवतारों की सूची में वाराह, नृसिंह, वामन, भार्गव राम, दाशरथि राम तथा वासुदेव कृष्ण के नाम मिलते हैं । आगे चल कर राम की भक्ति-भावना को लेकर रामपूर्वतापनीय, राम-उत्तरतापनीय आदि उपनिषदों की भी रचना हुई और अध्यात्मरामायण में राम का देवत्व चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है । राम के इसी अवतार रूप को लेकर हिन्दी में विविध काव्यों की रचना हुई ।

### तुलसीदास

राम के विविध सम्बन्ध स्थापित करते हुए तुलसी ने उन्हें माता, पिता, गुरु, स्वामी, बन्धु और सखा के अतिरिक्त पुत्र तक मान लिया है । इसका कारण

---

१. रामकथा, पृ० १२२-१३२

यही है कि तुलसी अपने को राम के प्रति ही विविध भावों से अर्पित दिखाना चाहते हैं। राम उनके लिए स्वाति का जल हैं। तुलसी के नेत्रों में राम का स्वरूप, कानों में रामकथा, मुख में राम का नाम तथा हृदय में राम का साक्षात निवास है। उन्हें जगत् में जीवन का फल यही लगता है कि राम में ही मन रमण करता रहे। दोहावली, कवितावली आदि के कितने ही छन्दों में उन्होंने राम के प्रति अनन्य निष्ठा प्रकट की है। विनय-पत्रिका तो समग्र रूप से राम की सेवा में ही प्रस्तुत करने के लिए रची गई है। इसमें संसार की असारता का उद्घोष करते हुए उन्होंने अपनी दयनीयता के कारण राम की भक्ति और शरण चाही है। प्रारम्भिक स्तुतियों में तो वे गणेश, सूर्य, शिव, देवी तथा गंगा तक से राम-भक्ति की याचना कर रहे हैं। उन्होंने माता-पिता, गुरु, शारदा, शुक, नारद तथा सन्तों से ही नहीं राम से भी रामभक्ति ही माँगी है।[1] कारण है राम का भक्त-प्रिय होना[2] अर्थात् राम का भक्त होने का अर्थ है राम का प्रिय हो जाना। इसीलिए तुलसीदास राम की भक्ति से रहित मनुष्य का जीवन व्यर्थ समझते हैं।[3] वह तो सींग-पूछहीन पशु अथवा शव के समान है। उसका तो गर्भ में ही नष्ट हो जाना अच्छा होता।[4] राम के प्रति इस निष्ठा के कारण तुलसी को रामबोला तक कहा जाने लगा था[5] और 'रा' पद के श्रवण मात्र से उनका शरीर रोमांचित हो उठता था।[6] राम

---

१. मातु-पिता-गुरु, गनपति, सारद । सिवा-समेत संभु सुक नारद ।।
   चरन बंदि बिनवौं सब काहू । देहु रामपद-नेह-निबाहू ।। विनयपत्रिका, पद ३६,
   सन्त सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु ।
   बालबिनय सुनि कृपा करि राम चरन रति देहु ।। रा०मानस १।३ख
   यह बिनती रघुबीर गुसाईं ।
   देतु रहित अनुराग रामपद बाढ़ै अनुदिन अधिकाई ।। - विनयप०पद १०:

२. रामचरितमासन ७।८५ ख तथा ८६।८-१०

३. कवितावली ७।३८

४. वही ७।४० तथा रा०मानस ६।३१।३-४, ७।७८ क

५. राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम । - विनयपत्रिका, पद ७६

६. 'रा' पद मात्रं श्रवणतोऽप्युद्भूतरोमांकुरं ।-रामू कृत प्रेमनारायण से उद्धृत,
   गोसाईं तुलसीदास, पृ० ११८

को स्मरण दिलाने के लिए वे सीता से कहते हैं कि मुझे मन, वचन तथा कर्म से स्वप्न में भी किसी अन्य का आश्रय नहीं है[1]।

तुलसी ने अपने इष्टदेव राम को कई रूपों में प्रस्तुत किया है। सामान्य दृष्टि से वे दशरथ तथा कौशल्या के पुत्र हैं जो पिता के आदेश से वनवास को जाते हैं। पत्नी का हरण होने तथा भाई को शक्ति लगने पर वे दुःखित होते हैं और युद्ध के समय नाग-पाश में आबद्ध हो जाते हैं। परन्तु यह राम का लौकिक स्वरूप है। उनके अन्य कई रूप निम्नप्रकार हैं :-

१. उपेन्द्र - शचीपति प्रियानुज ( रा० ३।४।६ )।

२. विष्णु(वि० ५४।३) - इस रूप में वे इन्दिरापति (रा०३।४।६), रमारमन (रा० ७।१४।१),वैकुण्ठ तथा क्षीरसागरवासी (रा०१।१८५।२) और शेषशायी (वि०५४।६) हैं।नारायण(वि०६०।१,रा० ४।१।१०),माधव(वि०६२।१,११३।१),गोविन्द (क०७।१३२), केशव(वि०४६।५,१११।१,११२।१),मुरारी(गी०२।४।५),हरि(गी०५।४४।४,७।१६।५,वि० ११८।१,११६।१) आदि उन्हीं के नाम हैं। वही राम के रूप में अवतरित हुए हैं (रा० १।५१।१, १।१२१।२,ब०रा०२७) और कौशल्या राम के इसी रूप की स्तुति करती हैं (रा०१।१६२।छन्द १-४)।

राम का विष्णुत्व भी दो रूप में मिलता है -

क. देवत्रयी के घटक-जब उन्हें ब्रह्मा तथा शिव के साथ जगत-पालक के रूप में ग्रहण किया गया है।

ख. महाविष्णु-शिव और ब्रह्मा के साथ विष्णु का उल्लेख न करके उनके इसी रूप की महत्ता प्रकट की गई है (गी०१।७।३,५।२२।२,रा० १।३५५।५, ३।६।५)।

३. निर्गुण-राम अव्यक्त (वि०५३।३,रा० ३।३२।छन्द २), अरूप(रा०१।२२।१,१।१४१।१), अलख(रा०१।३४१।६, २।६३।७),निरंजन (रा० १।१६८,वि० ५६।५),निराकार(रा०७।७२।६ अखण्ड (रा०१।१४४।४,३।१३।१२,६।६१।१८,६।१११।१५),अविनाशी(रा०१।१२०।६,३।३०।१७,गी०७।३८।१), निर्गुण (रा० १।२०५,वि० ५०।८) आदि हैं।

४. सगुण-इस रूप में राम दीनदयालु(रा०६।७।१,वि०१३६।१,गी०५।३८।५,क०७।७),दीनबन्धु (रा०१।२११,वि०८१।१,गी०१।६२।२,क०७।२१,दो०१७६),भक्तवत्सल(रा० १।१४६।८,३।४।छन्द १),पतितपावन(वि०७७।२,१६०।१,२१०।१,२५२।३, गी०३।१७।२,५।४३।३),देव-मुनि-सन्त-गो-ब्राह्मण आदि के पालक-रक्षक-निस्तारक और आनन्दमंगलदायक (रा०१।१८६।छन्द १,१।२८५।१-२),व्यापक रूप से सर्वरक्षक,सर्वोपकारी,कल्याणकारी,मंगलमूर्ति

---

१. तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की। वि०,पद ४२

(रा०२।१२५।५,वि० ५३।६,५५।३,१३५।३)आदि हैं ।

५. संसार विटप रूप-रामचरितमानस(७।१५।छन्द ५) में वेदों ने राम-स्तुति इसी रूप में की है ।

६. विराट् स्वरूप-यह दो प्रकार से वर्णित है –

क. विश्वरूप-इसका निरूपण मन्दोदरी ने रावण के प्रति किया है (रा० ६।१४से१५) ।

ख. राम में समस्त ब्रह्माण्ड का समाहार-काकभुशुण्डि को राम के इसी रूप का दर्शन होता है(रा० ७।८०।३ से ७।८१ तथा वि० ५४।२-४)।

७. ब्रह्मरूप (रा० १।५१।छन्द, १।१०८।५,१।११६।८,१।१२०।६,१।१६८,२।६३।७,२।१०६।८, २।१२३।२,३।७।३,३।३२।छ०-३;४।२८।७,वि० ४३।१,५०।८,५२।७,५६।३,७६।३,गी०१।२५ ।१;१।६१।४,७।३८।१, दो० ३१ आदि) ।

तुलसी ने जहां एक ओर राम के प्रति एकान्त अनन्यता[1] प्रकट की है वहीं शिव को भी परम हितैषी, गुरु तथा पिता माना है। कितने ही स्थलों पर उन्होंने शिव की महत्ता, कृपालुता तथा शरणागतवत्सलता का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है । शिव-भक्ति का प्रबोधन ही नहीं उन्होंने काशी-वास तथा कल्याण के लिए शिव से कामना भी की है ।[2] तुलसी रामकथा का वर्णन शिव-पार्वती के स्मरण और उनसे प्रसाद पाकर कर रहे हैं –

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनउं राम चरित चित चाऊ ।। मानस १।१५।८

रामचरितमानस में कथा-वर्णन के तत्काल पूर्व और भूमिका के नितान्त अन्त, कथा की ख्याति का वर्णन करने के पूर्व तथा मानस-रूपक की परिसमाप्ति पर कथा आरम्भ करने के समय उन्होंने बार-बार शिव-पार्वती का स्मरण किया है ।[3] वे शिव-पार्वती की भक्ति को राम और सीता की भक्ति के समकक्ष ही रखते हैं –

सेये सीता-राम नहिं भजे न संकर गौरि ।
जनम गंवायो बादिहीं परत पराई पौरि ।। - दोहावली ६६

---

१. रामचरितमानस १।१५।३-४
तथा - मेरे माय बाप गुरु संकर -भवानिये । - कवितावली ७।१६८

२. बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुं दिसि चोर ।
संकर निज पुर राखिये, चितै सुलोचन कोर ।। - दोहावली- २३६
तथा - कवितावली ७।१५७,१६६,१६८ आदि ;विनय पत्रिका १०,१२ आदि

३. रामचरितमानस १।३४।३;१।३५;१।४३

दक्ष-यज्ञ में शिव का भाग न देखकर सती कहती हैं --

सन्त संभु श्रीपति अपवादा । सुनिअ जहां तहं असि मरजादा ।।
काटिअ तासु जीभ जो बसाईं । श्रवन मूदि न त चलिअ पराईं ।।
-- रामचरितमानस १।६४।३-४

तुलसी के राम-काव्य में शिव का आगमन आकस्मिक या अनायास रूप से न होकर सोद्देश्य एवं सप्रयास है। शैव प्रभाव की उस परिव्याप्ति को कई वर्गों में रख कर देखा जा सकता है।--

तुलसी -साहित्य पर शैव प्रभाव --

१. शैव-वैष्णव ग्रन्थों का प्रणयन :

जिस प्रकार कट्टर शिव-भक्त से शैव ग्रन्थों की अपेक्षा की जाती है, उसी प्रकार कट्टर विष्णु-भक्त से वैष्णव ग्रन्थों के ही प्रणयन की सम्भावना की जा सकती है । परन्तु तुलसीदास ने जानकीमंगल के साथ पार्वती-मंगल की रचना करके अपनी सहिष्णुता का परिचय दिया है ।[१] पार्वतीमंगल एक खण्डकाव्य है, जिसमें हिमवान के यहां पार्वती के जन्म से लेकर शिव से उनके परिणाय तक की कथा है । यद्यपि तुलसीदास शिव-पार्वती के विवाह का वार्णन पहले ही रामचरितमानस में कर चुके थे, परन्तु किसी स्वतन्त्र शैव रचना का अभाव उन्हें खटक रहा था । उसके लिए उन्हें जानकीमंगल, जिसकी रचना वे पहले ही स्वतन्त्र रूप से कर चुके थे, के समानान्तर पार्वती मंगल का आख्यान उपयुक्त लगा । इसमें उन्होंने तपस्यारत पार्वती की परीक्षा स्वयं शिव से कराई है, जो वटु वेष में आते हैं । मानस में परीक्षा के लिए सप्तर्षि गये हैं ।पार्वती-मंगल में कवि को यह प्रेरणा कुमारसम्भव से मिल सकती है, जहां शिव स्वयं वृद्ध रूप में जाते हैं । पार्वती के प्रेम की परीक्षा स्वयं न करके अन्य से कराना अधिक उपयुक्त भी नहीं लगता । प्रेमी की परीक्षा प्रेमी को ही लेनी चाहिए । मानस में पार्वती सप्तर्षियों से खुलकर वार्तालाप करती हैं, जबकि यहां उन्होंने सखी के माध्यम से उत्तर दिया है । वटुक रूप शिव का कथन समाप्त होने पर पार्वती कहती हैं --

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा की, १९०९-१०-११ की खोज रिपोर्ट में एक मंगल रामायण का भी उल्लेख है जिसके १९० छन्दों में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन है । डा० रामकुमार वर्मा (हि०सा०का आलो०इतिहास,पृ०३६८) आदि ने इसे पार्वतीमंगलसे भिन्न माना है ।

बोली फिरि लखि सखिहि कांपु तन थर थर ।
आलि बिदा करु बटुहि बेगि बड़ बरबर ।। - ६२

भइ बड़ि बार आलि कहुं काज सिधारहिं ।
बकि जनि उठहिं बहोरि कुजुगुति सवांरहिं ।। - ६६

फिर पार्वती के —

जनि कहहिं कछु बिपरीत जानत प्रीति रीति न बात की ।
सिव साधु निंदकु मंद अति जोउ सुनै सोउ बड़ पातकी ।।- ८

कहने पर शिव साक्षात् प्रकट हो जाते हैं। पार्वती को और क्या चाहिए, उनका मनोरथ सफल हो गया । शरीर में उत्साह तथा हर्ष के संचार को देखकर शिव कहते हैं —

हमहिं आजु लगि कनउड़ काहुँ न कीन्हेउ ।
पारबती तप प्रेम मोल मोहि लीन्हेउ ।। - ७३

मानस में शिव अमंगल स्वरूप में ही पार्वती का वरण करने जाते हैं, जहां उन्हें देखकर बच्चे भयभीत होते हैं । परन्तु पार्वतीमंगल में उन्होंने गणों के साथ सुन्दर मंगलमय वेष धारण किया है --

लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर ।
भए सुन्दर सत कोटि मनोज मनोहर ।। - १११
नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन ।
रोम-रोम पर उदित रूपमय पूषन ।। - ११२
गन भये मंगल वेष मदनमन मोहन ।
सुनत चले हियं हरषि नारि नर जोहन ।। - ११३
संभु सरद राकेस नखत गन सुर गन ।
जनु चकोर चहुं ओर बिराजहिं पुरजन ।।-११४

मानस में शिव की कुरूपता के कारण नारद को आना पड़ता है जो पार्वती के माता-पिता को शिव की यथार्थता बताते हैं कि वे परमेश्वर हैं और पार्वती के पूर्व-जन्म में भी

वही उनके पति थे । इस प्रकार नारद से प्रबोधित होने पर शिव-पार्वती का विवाह होता है । पार्वतीमंगल में नारद के आगमन की कोई आवश्यकता ही नहीं है ।

विवाह सम्बन्धी रीति-रिवाज और माता-पिता की कन्या सम्बन्धी चिन्ताओं तथा विवाहित कन्या की विदाई आदि का वर्णन इसमें जिस सहृदयता पूर्वक हुआ है, उससे कवि की रचना-विषयक निष्ठा एवं मौलिकता का ही परिचय मिलता है।

तुलसी-दल के लेखक इसकी रचना का उद्देश्य शैव-वैष्णव समन्वय न मानकर कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि पुराणों में वर्णित शिव तथा उमा की कथा से गोस्वामी जी विशेष रूप से प्रभावित थे । यही कारण है कि पार्वती-मंगल तथा रामचरितमानस दोनों में स्वतन्त्र रूप से गोस्वामी जी ने इस कथा का सुन्दर चित्रण किया है ।[1] परन्तु डा० माताप्रसाद गुप्त, सद्गुरुशरण अवस्थी,[2] डा० विमलकुमार जैन[3] आदि इसकी रचना में शैव-वैष्णव समन्वय की भावना को भी निहित मानते हैं ।

२. शैव स्तुतियाँ तथा मंगलाचरण –

ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण रखने की परम्परा है, जिसमें अपने इष्टदेव को स्मरण कर उनसे कल्याण-कामना कीजाती है । तुलसी-साहित्य में मंगलाचरण तथा स्तुतियों का निम्न रूप उपलब्ध होता है –

१. रामलला नहछू : शारदा तथा गणेश के साथ गौरी से विनती ।[4]

---

१. देखिए, पृ० ३७-३८

२. तुलसी के चार दल, पृ० १९९ , २०२

३. तुलसीदास और उनका साहित्य, पृ० १५१-१५२

४. आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो ।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो ।।
जेहि गाये सिधि होय परम निधि पाइय हो
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइय हो ।। - १

२. जानकी-मंगल : गणेश तथा शिव-पार्वती से करबद्ध प्रार्थना ।[१]

३. पार्वती-मंगल : यह एक शैव रचना है, परन्तु तुलसीदास ने इसके प्रारम्भ में सीता तथा धनुर्धारी राम का स्मरण किया है ।[२]

४. रामाज्ञाप्रश्न : इसके प्रारम्भ में सरस्वती तथा गणेश के साथ सूर्य, शिव, पार्वती और लक्ष्मी-नारायण का स्मरण करने के अतिरिक्त[३] ग्रन्थ के मध्य तीन स्थलों पर शिव-पार्वती के स्मरण को मंगलदायक कहा है --

गिरा गौरि गुर, गनप हर मंगल मंगल मूल ।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, होइ ईस अनुकूल ।। १।१।३
रमा रमापति गौरि हर सीता राम सनेहु ।
दंपति हित संपति सकल, सगुन सुमंगल गेहु ।। ७।४।५ ,

तथा गुरु गनेस हर गौरि सिय रामलखन हनुमान ।
तुलसी सादर सुमिरि सब सगुन बिचार बिधान ।। ७।७।४

५. दोहावली - छन्दों के प्राप्त क्रम-विधान के अन्तर्गत इसके प्रारम्भ में तो नहीं परन्तु मध्य में एक स्थल पर राम और सीता के साथ शिव और पार्वती की भक्ति का भी प्रबोधन है ।[४] एक सोरठे में काशी-निवास

---

१. गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति ।
सारद सेष सुकबि श्रुति संत सरल मति ।।
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं ।
सिय रघुबीर बिबाहु जथामति गावौं ।। -१-२

२. बिनइ गुरहि गुनिगनहि गिरिहि गननाथहि ।
हृदयं आनि सिय-राम धरे धनु भाथहि ।। - १

३. बानि बिनायकु अंब रबि गुरु हर रमा रमेस ।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, मंगल देस बिदेस ।। १।१।१

४. सपने सीता राम नहिं भजे न संकर गौरि ।
जनम गंवायौ बादिहीं परतपराई पौरि ।। - ६६

का महत्व [1] तथा एक सोरठे और दो दोहों में शिव से प्रार्थना की गई है । [2]

६. कवितावली – इसका प्रारम्भ तो राम के बाल स्वरूप की झांकी से होता है, परन्तु उत्तरकाण्ड सम्पूर्ण रूप में स्तुतियों तथा आत्मपरिचय से युक्त है । इस काण्ड के प्रारम्भ में राम की कृपालुता, राम और राम-भक्ति की महत्ता, राम के प्रति निवेदन, राम-नाम की महत्ता तथा नाम में विश्वास, राम-प्रेम की प्रधानता, राम-भक्ति की याचना, कवि-वर्णन आदि के साथ सीतावट, चित्रकूट, प्रयाग तथा गंगा का वर्णन है । १४६ वें छन्द से आगे चौबीस छन्दों में शिव के स्वरूप, उनकी कृपालुता, आशुतोष प्रकृति तथा महानता का गुणगान करने के अनन्तर उनसे कल्याण-कामना की गई है । चार कवितों में काशी की महामारी की भीषणता दिखाते हुए शिव से और फिर दो कवितों में जगज्जननी पार्वती से उसके शमन हेतु प्रार्थना है । सम्भवत: कलि कुचाल तथा काशी की महामारी के कारण यहाँ कवि को शिव का विकराल रूप ही प्रिय है । उनके अर्धनारीश्वर स्वरूप का स्मरण करते हुए कहा गया है –

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर ।
सीस गंग, गिरिजा अर्धंग, भूषन भुजंगबर ।
मुंडमाल, बिधु बाल भाल, डमरु, कपालु कर ।
बिबुध वृन्द-नवकुमुद-चन्द, सुखकन्द सूलधर ।
त्रिपुरारि, त्रिलोचन, दिग्बसन, विषभोजन, भवभयहरन ।
कह तुलसिदासु सेवतु सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन ।। – १४६

शिव आशुतोष ऐसे हैं कि जाने या अनजाने में भी बेल और धतूरे के दो पत्ते अथवा आक के दो फूल मात्र से प्रसन्न होकर 'सुरेसहू की सम्पदा सुभाय सों', दे देते हैं । ब्रह्मा इससे

---

१. मुक्ति जन्म महि जानि ग्यान खानि अघ हानिकर ।
जहं बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न ।। – २३७

२. जरत सकल सुर वृंद विषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपालु संकर सरिस ।-२३८

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुं दिसि चोर ।
संकर निज पुर राखिये, चितै सुलोचन कोर ।।-२३६,

बीसी आपुहीं पुरिहिं लगाये हाथ ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ।।-२४०

~~(क्रमश: आगे जारी)~~

तंग आकर पार्वती से कहते हैं -

विष, पावकु ब्याल कराल गरें, सरनागत तौ तिहुं ताप न डाढ़े ।
भूत बैताल सखा, भव नामु, दलै पल मैं भव के भय गाढ़े ।।
तुलसी सुदरिद्र सिरोमनि, सो सुमिरे दुख दारिद होहिं न ठाढ़े ।
भौन मैं भांग, धतूरोई आंगन नागे के आगे हैं मागने बाढ़े ।। - १५४
नागो फिरै कहै मागनो देखि न खांगो कछू, जनि मागिये थोरो
रांकनि नाकप रीभि करै तुलसी जग जो जुरैं जाचक जोरो ।

उन्हें कठिनाई यह है कि -

नाक संवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकहि नेकु निहोरो ।

इसलिए हे गिरिजा ! अपने पति को समझा लो, यह बड़ा बावला तथा भोला दानी है ( - कवित्त १५३) ।

ऐसे अमितदानी से क्या वस्तु दुर्लभ है और फिर जब उनसे कोई सम्बन्ध भी हो तब अति उत्तमता । इसीलिए तुलसी का कहना है -

भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
अपनो समाज सिव आपु नीकें जानिये ।
नाना वेष,बाहन, बिभूषन, बसन,बास,
खान-पान, बलि-पूजा बिधि को बखानिये ।
राम के गुलामनि की रीति, प्रीति सूधी सब
सबसों सनेह, सबही को सनमानिये ।
तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथ ही के
मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानिये ।। - १६८

फिर ऐसे आशुतोष और कृपालु महामारी से रक्षा क्यों नहीं करेंगे । कवि उद्विग्न होकर कह उठता है -

गौरीनाथ, भोरानाथ, भवत भवानीनाथ !
बिस्वनाथपुर फिरी आन कलिकाल की ।
संकर-से नर, गिरिजा-सी नारीं कासीबासी,
बेद कहीं, सही ससिसेखर कृपाल की ।

छमुख-गनैस तैं महैस कै पियारे लोग
बिकल बिलोकियत,नगरी बिहाल की ।
पुरी-सुरबैलि कैलि काटत किरात कलि
निठुर निहारियै उघारि डीठि भाल की ।। - १६६

इस प्रकार कवितावली के शिव-स्तवन में किसी प्रकार की कृत्रिमता न होकर पूर्ण आत्मीयता है । वह कलिकाल से ग्रसित एक भक्त जन का हृदयोद्गार है जो अपने याचना सलिल से इष्टदेव को द्रवित कर देने के लिए पर्याप्त है ।

## ७. विनयपत्रिका -

यह कवि के दैन्य एवं राम के प्रति निवेदन का विवरण है जिसे कवि ने एक पत्रिका के रूप में अपने इष्टदेव के पास भेजा है । प्राचीनकाल में राजा के पास ~~प्रार्थना के रूप में अपने इष्टदेव को~~ सन्देश भजनेकेपूर्व दरबारियों को प्रसन्न करना आवश्यक होता था। उसी रूप में तुलसी ने राम के पास अपनी विनयपत्रिका पहुंचाने के लिए प्रारम्भ में विविध देवों का स्तवन किया है । स्तुति के इन तिरसठ पदों में पहले तो स्मार्त देवों में से गणेश, सूर्य, शिव और देवी की स्तुति है और फिर क्रमश: गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट,हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, राम, श्रीरंग,नर-नारायण तथा बिन्दुमाधव का वर्णन तथा उनका स्तवन है । गणेश, सूर्य तथा देवी की प्रत्येक और गंगा की दो स्तुतियों में उनसे राम-भक्ति की याचना है । गणेश तथा सूर्य के लिए एक-एक पद की रचना कर तुलसी ने बारह शैव पदों का प्रणयन किया है । संख्या की दृष्टि से इतने पद केवल हनुमान् (पदांक २५ से ३६ ) को मिले हैं, जिन्हें तुलसी ने रुद्रावतार ही माना है और राम के लिए पूरी विनयपत्रिका होते हुए भी यहाँ पर केवल चौदह (पदांक ४३ से ५६ ) पद ही रखे हैं । इनमें से एक (४६ वां ) पद तो शिव और विष्णु के समन्वित हरिहरात्मक स्वरूप का स्तवन है, जिसे हरिशंकरी पद कहा जाता है । प्रस्तुत अध्याय के अन्त में इसका विस्तृत अध्ययन किया जायेगा । इस प्रकार रामपरक स्तोत्रों की संख्या भी तेरह ही रह जाती है अर्थात् शिव परक से केवल एक अधिक ।

कवितावली के समान यहाँ भी कवि को शिव का रौद्र स्वरूप ही रुचिकर है। यद्यपि कई स्तोत्रों में शिव की आशुतोष प्रकृति का वर्णन है, परन्तु उनके कामारि, त्रिपुरारि, श्मशानवासी, नाग और मुंडमालधारी स्वरूप को कवि विस्मृत नहीं कर पाता है। यही कारण है कि एक स्तोत्र में तो शिव के भैरव रूप का स्तवन है (पदांक ११)। पंचायतन के अन्य घटक गणेश, सूर्य तथा देवी के समान छ: पदों में तो शिव से भी राम-भक्ति की कामना है।[१] पर शेष में तुलसी ने उनके अवढरदान को विशेष महत्व दिया है। 'दानी कहुँ संकर सम नाहीं' न होने के कारण' को 'जाँचिये संभु तजि आन' तथा 'जाँचिये गिरिजापति कासी, जासु भवन अनिमादिक दासी।' दान में वे विष्णु से भी महान् हैं —

जोग कोटि कर जो गति हरि सों, मुनि माँगत सकुचाहीं।
वेद-विदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतंग समाहीं ।। - ४-३

इसीलिए विवश होकर ब्रह्मा को जगज्जननी भवानी से निवेदन करना पड़ता है कि —

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद बड़ाई भानी ।।
निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परमसयानी ।।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत, हौं आयो नकबानी ।।
दुख-दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ।। - पद ५

---

१. देहु काम-रिपु राम-चरन-रति, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ।।-३।४,
तुलसिदास जाचक जस गावै। विमल भगति रघुपति की पावै ।। - ६।५,
देहु काम-रिपु राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेद-मति ।।-७।५,
तुलसिदास हरिचरन-कमल बर, देहु भगति अबिनासी ।।_८।५
देहि कामारि। श्रीराम-पद-पंकजे भक्ति अनवरत गत भेद माया ।।_१०।८
करि कृपा हरिय भ्रम-फंदकाम। जेहि हृदय बसहिं सुखरासि राम ।। - १४।८

एक स्तोत्र में कवि ने शिव-भक्ति के लिए उद्बोधित किया है और अन्य में वह शिव के शरणागत है -

शंकरं, शंप्रदं, सज्जनानंददं, शैल-कन्या-वरं, परमरम्यं ।

काम-मद-मोचनं, तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भावगम्यं ।।

तज्ञमशान-पाथोधि-घट-संभवं, सर्वगं, सर्वसौभाग्यमूलं ।

प्रचुर-भव-भंजनं, प्रणात-जन-रंजनं, दास तुलसी शरण सानुकूलं ।। १२।१५

तुलसी द्वारा शैव-वैष्णव समन्वय का प्रयास करने से काशी के शैव उनसे असन्तुष्ट होकर उनका विरोध करने लगे थे । शैवों की इस यातना से रक्षा के लिए तुलसी शिव से ही प्रार्थना करते हैं ( पद ८ ) ।

प्रस्तुत शैव स्तोत्रों में शिव को अवढरदानी के अतिरिक्त काशीपति (६।१, ६।५), देवाधिदेव (६।४), राम-भक्ति प्रदायक (६।२), अघोर के साथ परम रम्य (१२।१) , विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविन्दं (१२।२) कहा गया है । उनकी भक्ति से संसार के समस्त पदार्थ सुलभ हो जाते हैं ( - ६।३) ।

ग्यारहवीं स्तुति में शिव को 'भैरव-रूप राम-रूपी रुद्र' कहा जाना महत्वपूर्ण है । इसका अर्थ है तुलसी भैरव और राम में कोई अन्तर नहीं समझ रहे हैं । इस संबंध में देवपाणि (नौगांव, असम) से प्राप्त नवीं शताब्दी तथा विरुपाक्ष मन्दिर (पट्टड-कल) की आठवीं शताब्दी की दो हरिहर मूर्तियों की ओर अनायास ध्यान आकर्षित हो जाता है । दोनों मूर्तियां स्थानक हैं जिनमें से प्रथम के वाम पार्श्व में गरुड़ तथा पद्म और दक्षिण पार्श्व में वृषभ स्पष्ट है । मुखाकृति पूर्णतया अघोर एवं विकराल है (-गौहाटी संग्रहालय, सं० २४५४) । दूसरी मूर्ति के एक वामकर में गदा तथा एक दक्षिण में त्रिशूल के साथ कटिहस्त और त्रिभंगी मुद्रा प्रदर्शित है । मुख पर स्मित भाव होते हुए भी एक दक्षिण कर में मुण्डका होना विशिष्ट लक्षण है । दोनों ही मूर्तियां हरिहरा-त्मक हैं । राम-रूपी रुद्र से तुलसी का बंधु, गुरु, जनक, जननी, विधाता के विविध सम्बन्ध स्थापित करना भी महत्वपूर्ण है ।

८. रामचरितमानस -

तुलसी की सर्वप्रमुख कृति यही है । काण्डों में विभाजित होने के कारण कवि को प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में मंगलाचरण का अवसर प्राप्त हो गया है । प्रत्येक

काण्ड में शैव-वैष्णव स्तुति की स्थिति निम्न प्रकार है –

क. बालकाण्ड – एक श्लोक में वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती तथा विघ्नविनाशक गणेश ~~में वाणी~~ का स्तवन करके अगले श्लोक में श्रद्धा विश्वास रूपी भवानी -शंकर की वन्दना है । फिर तीन श्लोकों में क्रमश: शंकररूप गुरु , वाल्मीकि तथा हनुमान् और रामवल्लभा सीता के बाद अखिल ब्रह्माण्ड नायक राम की वन्दना है ।

संस्कृत स्तोत्रावली के बाद पुन: भाषा के सोरठों में प्रार्थना है जिनमें से तीसरे सोरठे में क्षीरशायी भगवान् विष्णु से हृदय में निवास की कामना करके शिव से अनुकम्पा की याचना है –

कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमन, करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा । मर्दन मयन ।। - १।४ ,

कृपा वही कर सकता है जो शक्तिसम्पन्न हो, तो शिव कामदेव का नाश करने वाले हैं। साथ ही वे कृपालु हैं और दीनों पर उनका स्नेह है, फिर कृपा कटाक्ष प्राप्त हो ही जायेगा ।

ख. अयोध्याकाण्ड – यहां वंशस्थ तथा इन्द्रवज्रा दो श्लोकों के पूर्व प्रारम्भ में एक शार्दूल विक्रीडित वृत्त में पार्श्व में पार्वती, मस्तक पर गंगा , ललाट पर चन्द्रमा, कण्ठ में विष, हृदय पर नागधारी भस्म विभूषित तथा चन्द्रवत् शुक्लवर्ण सर्वेश, सर्वान्तियामी, महादेव शिव शंकर से रक्षा की प्रार्थना है । आकार की दृष्टि से शैव और वैष्णव स्तुतियाँ चार-चार पंक्तियों में ही हैं और क्रम-विधान की दृष्टि से शैव स्तुति पहले रखना महत्त्वपूर्ण है ।

ग. अरण्यकाण्ड - यहां भी राम के पूर्व धर्म रूप वृक्ष के मूल, विवेक रूप समुद्र को आनन्ददायक पूर्ण चन्द्र ,वैराग्य रूप कमल को प्रस्फुटित करने हेतु सूर्य, पाप रूप घोर अन्धकार के नाशक, मोह रूप मेघसमूह को विच्छिन्न करने हेतु पवन, सदृश, त्रितापहारी, कल्याणकारी, ब्रह्मकुल-कलंक-नाशक, रामचन्द्र के प्रिय भगवान शंकर का स्तवन है । यहां उन्हें श्रीरामभूपप्रियं कहना उल्लेख्य है । रामराजा हैं और उन्हें शिव प्रिय हैं । आकार की दृष्टि से शैव और वैष्णव दोनों ही स्तुतियां एक-एक शार्दूलविक्रीडित छन्दमें हैं ।

घ. किष्किन्धाकाण्ड —यहां संस्कृत के दो छन्दों में केवल राम-लक्ष्मण की स्तुति करके शिव स्तुति भाषा के दो सोरठों में है । पहले सोरठे में मोक्षदायक, ज्ञान-खानि तथा पाप विनाशक काशी में रहने के लिए प्रबोधन है, जहां शिव और पार्वती निवास करते हैं और दूसरे सोरठे में तुलसी ने अत्यन्त दीनतापूर्वक स्वयं को फटकारा है कि —

जरत सकल सुर बृंद, बिषम गरल जेहिं पान किय ।
तेहि न भजसि मनमंद, को कृपाल संकर सरिस ।।

यह द्रष्टव्य है कि किसी भी वैष्णव स्तुति में कोई कामना न करके पहली में राम-लक्ष्मण को भक्तिप्रदायक तथा दूसरी में राम-नाम के प्रेमियों को महान् कहा है । इस प्रकार शिव स्तुति का महत्व अधिक है जहां स्वयं को काशी-वास तथा शिव-भक्ति के लिए प्रबोधन है ।

ङ. लंकाकाण्ड - स्रग्धरावृत्त की पहली वैष्णव स्तुति में राम की वन्दना के अनन्तर शार्दूलविक्रीडित छन्द में काशी के अधिपति, गुणासागर, जगतवन्द्य, पार्वती के पति, काम विनाशक भगवान् शिव को नमन किया गया है जो शंख तथा चन्द्रमा के समान उज्ज्वल-वर्ण हैं और बाघम्बर तथा काल-कराल सर्पों के भूषण धारण किये हैं । साथ ही जिन्हें गंगा और चन्द्रमा प्रिय हैं । अगले छन्द में प्रार्थना है कि —

यो ददाति सतां शम्भुः कैवल्यमपि दुर्लभम् ।
खलानां दण्डकृद्योऽसौ शंकरः शं तनोतु मे ।।

अर्थात् सज्जनों को दुर्लभ कैवल्य तथा खलों को दण्ड देने वाले भगवान् शंकर मेरे कल्याण का विस्तार करें ।

च. उत्तरकाण्ड —प्रथम स्रग्धरावृत्त में राम को नमन करके तृतीय वृत्त में शिव का स्तवन है जो कुन्द, इन्दु तथा शंख के समान गौरवर्ण, जगज्जननी पार्वती के पति, अभीष्ट सिद्धिदायक, काम नाशक, कमलनेत्र तथा करुल कारुणिक हैं ।

मानस-मंगलाचरण की इन शैव-वैष्णव स्तुतियों को एक तालिका के रूप में निम्नप्रकार से रखा जा सकता है --

| | | बालकाण्ड | अयोध्या | अरण्य | किष्किन्धा | लंका | उत्तर | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| प्रथम स्थिति | संस्कृत | शिव-पार्वती | शिव | शिव | लक्ष्मण युक्त राम | राम | राम | ३ शैव<br>३ वैष्णव |
| | भाषा | राम | < | < | < | < | < | १ वैष्णव |
| द्वितीय स्थिति | संस्कृत | राम | राम | सीता तथा लक्ष्मण-युक्त राम | < | शिव | शिव | २ शैव<br>३ वैष्णव |
| | भाषा | शिव | < | < | शिव | < | < | २ शैव |

अ

तालिका १: रामचरितमानस के शैव-वैष्णव स्तुति युक्त ~~तालिक~~ —१ काण्डों में स्तुतियों का स्थिति क्रम ।

इसी प्रकार की एक तालिका शैव-वैष्णव स्तुतियों के छन्दों तथा पंक्तियों की संख्या के विषय में भी निम्न रूप में बनाई जा सकती है --

| | | बाल काण्ड | अयोध्या | अरण्य | किष्किन्धा | लंका | उत्तर | कुल | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| संस्कृत छन्द | शैव | १ | १ | १ | | २ | १ | ६ | -३ |
| की संख्या | वैष्णव | १ | २ | १ | २ | १ | २ | ९ | +३ |
| स्तुति पंक्ति | शैव | २ | ४ | ४ | | ६ | २ | १८ | -१२ |
| संख्या | वैष्णव | ४ | ४ | ४ | ८ | ४ | ६ | ३० | +१२ |

| | | | बाल काण्ड | अयोध्या | अरण्य | किष्किन्धा | लंका | उत्तर | कुल |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| भाषा की स्तुति | छन्द संख्या | शिव | १ | | | २ | | | ३+१ |
| | | वैष्णव | १ | | | | १ | | २-१ |
| | पंक्ति संख्या | शिव | २ | | | ४ | | | ६+२ |
| | | वैष्णव | २ | | | | २ | | ४-२ |

तालिका - २ : रामचरितमानस के जिन काण्डों के प्रारम्भ में शैव-वैष्णव मंगलाचरण एक साथ हैं, उनके छन्दों तथा पंक्तियों की संख्या ।

पहली तालिका से ज्ञात होता है कि अरण्यकाण्ड तक संस्कृत में पहले शैव स्तुति है और फिर वैष्णव, परन्तु किष्किन्धाकाण्ड से इस क्रम में विपर्यय हो जाता है और वहां से आगे निरन्तर वैष्णव स्तुति प्रथम तथा शैव स्तुति द्वितीय स्थान पर मिलती है । विशेष तथ्य यह है कि सुन्दरकाण्ड में शिव-स्तवन का नितान्त अभाव है और वहां राम के बाद हनुमान की स्तुति है । इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि मानस का अधिष्ठाता होने के कारण प्रारम्भिक काण्डों में शैव स्तुति पहले है, परन्तु किष्किन्धा काण्ड में रुद्रावतार हनुमान् के सेवक भाव से आ जाने के कारण शैव स्तुतियों को द्वितीय स्थान दिया गया है । सुन्दरकाण्ड में शिव के स्थान पर हनुमान की स्तुति का भी यही अभिप्राय है ।[१] वहां पर हनुमान्-स्तवन में कहा है --

> अतुलित बलधामं हेम शैलाभदेहं
> दनुजवन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
> सकलगुणानिधानं वानराणामधीशं
> रघुपतिप्रिय भक्तं वातजातं नमामि ।।

---

१, मानस पीयूष, किष्किन्धा काण्ड, पृ० ६

यहाँ हनुमान् के लिये जिन विशेषणों का प्रयोग हुआ है, वे सब शिव की भी विशेषतायें हैं। हनुमान् वानराधीश हैं तो शिव पशुपति। हनुमान् को रुद्रावतार पिछले काण्ड में ही मान लिया गया है। समुद्र-लंघन के समय अंगद हनुमान् से कहते हैं - राम काज लगि तव अवतारा।' जिसे सुनते ही हनुमान् को अपने यथार्थ स्वरूप का बोध हो जाता है। सुन्दरकाण्ड के नायक हनुमान् हैं ही, इसलिए यहाँ पर तुलसी ने हनुमत्स्तुति शैव-स्तुति के स्थानापन्न रूप में ही रखी है। क्रम-विधान की एक सम्भावना यह भी है कि शैव-वैष्णव समन्वय की दृष्टि से तीन स्थानों पर शैव स्तुति पहले दे दी (-बाल,अयोध्या और अरण्य काण्ड) तथा तीन स्थानों पर वैष्णव स्तुति को प्रथम स्थान दे दिया ( -किष्किन्धा,लंका,उत्तर)।

मानस के मंगलाचरणों की शैव स्तुतियों की महत्ता के विषय में स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती की धारणा है कि शिव का स्तवन बालकाण्ड में विश्वरूप तथा गुरुरूप से , अयोध्याकाण्ड में विश्वास रूप से और अरण्यकाण्ड में गुरु रूप से किया गया है। किष्किन्धाकाण्ड में संस्कृत श्लोकों में उनका मंगल नहीं किया गया पर राम-नाम से मुक्तिदायक होने के कारण मंगलाचरण सोरठा दो में काशी के सम्बन्ध में उनका मंगल किया और सुन्दरकाण्ड में उनके अवतार रूप की वन्दना है। इस तरह सातों काण्डों में उनका मंगल करके बताया है कि राम-भक्ति के इच्छुक को शिव-भक्ति करना आवश्यक है।[१]

काण्डों की मध्यवर्ती वैष्णव स्तुतियों के समान उत्तरकाण्ड की एक शैव स्तुति विशेष महत्व रखती है। पूर्वजन्म में भुशुण्डि कट्टर शैव होकर वैष्णवों से ईर्ष्या भाव रखते थे। एक बार जब उनके सहिष्णु गुरु ने शिव को राम-भक्त बताया तो भुशुण्डि का हृदय क्रोधाग्नि से दग्ध हो गया। एक दिन शिव - मन्दिर में नाम जाप करते हुए गुरु के आने पर भुशुण्डि ने उनका सत्कार नहीं किया। गुरु की इस अवमानना के कारण शिव ने आकाशवाणी से भुशुण्डि को शाप दे दिया। दारुण

---

१. वही, उत्तरकाण्ड, पृ० ६-१०

शाप को सुन कर गुरु ने एक अष्टक में शिव का स्तवन किया । इसके दो छन्दों में शिव के निर्गुण, दो छन्दों में सगुण तथा दो छन्दों में निर्गुण-सगुण मिश्रित स्वरूप एवं चरित का वर्णन करने के अनन्तर दो छन्दों में प्रसन्न होने, दुःख हरने एवं रक्षा की प्रार्थना है --

न यावदुमानाथ पादारविन्दं । भजंतीह लोके परे वा नराणां ।।
न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं ।।
न जानामि योगं जपं नैव पूजां । नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यं ।।
जरा जन्म दुःखौघतातप्यमानं । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ।।

-- उत्तरकाण्ड १०८।७-८

अर्थात् हे उमापति ! जब तक मनुष्य आपके चरणकमलों को नहीं भजते तब तक उन्हें इस लोक तथा परलोक में सुख और शान्ति प्राप्त नहीं होती और न उनके सन्तापों का नाश होता है अतः समस्त जीवों के हृदयवासी भगवन् प्रसन्न हो जाइये । मैं योग, जप और पूजा कुछ भी नहीं जानता हूं । हे शम्भु ! मैं सदा-सर्वदा आपको ही नमस्कार करता रहता हूं । हे प्रभु ! हे ईश्वर ! हे शम्भु ! मैं आपको नमस्कार करता हूं, वृद्धावस्था तथा पुनर्जन्म के दुखों से दग्ध इस दुखी को बचा लीजिए ।

इस अष्टक में अपने कल्याण तथा मोक्ष की कामना है । कहीं पर भी भुशुण्डि की कल्याण-कामना न होने से स्पष्ट है कि यह एक स्वतन्त्र स्तुति है, जिसे तुलसी ने भुशुण्डि के गुरु की ओर से आरोपित करके रख दिया है । स्वतन्त्र अस्तित्व का एक प्रमाण उसकी फलश्रुति भी है, जिसके अनुसार

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतोषये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति ।।

(- शिव को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण द्वारा कहे गये इस रुद्राष्टक का भक्तिपूर्वक पाठ करने से भगवान् शिव सदैव प्रसन्न हो जाते हैं । )

जहां तक स्मरण है मानस की किसी वैष्णव स्तुति में इस प्रकार की फलश्रुति नहीं है । साथ ही यह एकमात्र शैवस्तुति है जिसे कथा के मध्य में रखा गया है ।

यदि यही कह दिया जाता कि ब्राह्मण द्वारा विविध प्रकार से शिव स्तुति करने पर शिव प्रसन्न हो गये तो भी कथाक्रम में व्याघात न आता और न कोई अभाव ही लगता। परन्तु तुलसीदास यहां पर प्रसंगवश एक शैव स्तुति अवश्य लाना चाहते हैं जो उनकी शैव प्रवृत्ति की परिचायक है । यहां पर स्तुति में औपचारिकता का निर्वाह न होकर पूर्ण आत्मीयता और भक्त-हृदय से नि:सृत नितान्त दैन्य का प्रदर्शन है ।

इस प्रकार तुलसीदास ने रामचरितमानस जैसे वैष्णव ग्रन्थ में वैष्णव के साथ शैव स्तुतियां रखकर शिव के प्रति अपनी श्रद्धा तथा धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वय भाव का ही परिचय दिया है ।

### ३. पात्रों का शैवत्व-वैष्णवत्व

समग्र राम-साहित्य के पात्र दो वर्गों में विभाजित दिखाई देते हैं -- रामपक्षीय और रावणपक्षीय । रावण पक्ष वाले राक्षस हैं तो राम पक्षवालों को मानव कहा जा सकता है यद्यपि राम की सेना में वानर-भालू आदि भी सम्मिलित हैं । इसलिए इन्हें आर्य और अनार्य की संज्ञा से अभिहित करना अनुपयुक्त नहीं होगा । राम पक्ष के आर्य हैं और रावण पक्ष के अनार्य ।

अवध में अपने तथा मिथिला में सीता के अवतरण से राम का सम्बन्ध दोनों स्थानों से है । इस दृष्टि से रामपक्ष के प्रमुख पात्र अवध एवं मिथिला के निवासी हैं । दूसरी ओर राक्षसों का सम्बन्ध लंका से है । राम पक्ष के मिथिला तथा अवध के प्राय: सभी प्रमुख पात्र राम के अवतरण से परिचित हैं । कौशल्या तो उनका विराट् स्वरूप देख चुकी हैं । राम के अवतार का एक कारण मनु-शतरूपा की तपस्या से प्रसन्न हो विष्णु का उनके पुत्र रूप में जन्म लेने का वर भी था । इस प्रकार इन सब को वैष्णव अथवा विष्णु-भक्त होना चाहिए । कहने की आवश्यकता नहीं कि वे वैष्णव हैं । राम का जन्म होते ही कौशल्या --

> कह दुइ कर जोरी, "अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनन्ता ।
> माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनन्ता ।।
> करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति सन्ता ।
> सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकन्ता ।।" -- बालकाण्ड१९२।५-८

कह कर राम की स्तुति करती हैं । दशरथ 'राम चरन चितु लाइ' ( रा० १।३५५ ) सोने को जाते हैं । परन्तु इन सब की शिव के प्रति पूर्ण आस्था एवं निष्ठा है । प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व गणेश अथवा पार्वती के साथ शिव का पूजन किया जाता है, मांगलिक एवं महान् कार्यों में शिव की अनुकम्पा समझी जाती है तथा कल्याण-कामना हेतु शिव से प्रार्थना की जाती है । यहां प्रमुख पात्रों के शैवत्व के प्रमाण देखे जा सकते हैं --

१. दशरथ :

सपन सगुन सुनि राउ कह कुलगुरु आसिरबाद ।
पूजिहि सब मन कामना, संकर गौरि प्रसाद ।। - रामाज्ञाप्रश्न ४।१।५,

< <

बाजत अवध गहागहे अनन्द बधाये ।
नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाये ।। - गीतावली १।६।१,४
घर घर मुद मंगल महागुन-गान सुहाये ।।
गनप गौरि हर पूजि के गोवृन्द दुहाये ।।

< <

तेहिं रथ रुचिर बसिष्ठ कहुं, हरषि,चढ़ाइ नरेसु ।
आपु चढ़ेउ स्यन्दन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु ।।-रा०मानस १।३०१

< <

जइ कहेउ पगु धारिय मुनि अवधेसहि ।
चले सुमिरि गुरु गौरि गिरीस गनेसहि ।। - जानकीमंगल १२८

< <

समउ जानि गुर आयसु दीन्हा । पुर प्रबेसु रघुकुलमनि कीन्हा ।।
सुमिरि सम्भु गिरिजा गनराजा । मुदित महीपति सहित समाजा ।।
--रा०मा० १।३४७।७-८

नृप कर जोरि कह्यो गुर पाहीं ।
तुम्हरी कृपा असीस नाथ। मेरी सबै महेस निबाहीं ।।-गीतावली २।१।१,

प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं । यह लालसा एक मनमाहीं ।।-रा०मानस,
२।४।४,

प्रिया! वचन कसकहसि कुभांती । भीर प्रतीति प्रीति करि हांती ।।
मोरें भरतु-रामु दुइ आंखी । सत्य कहउं करि संकरु साखी ।।-वही,२।३१।५-६

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।।
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ।।- वही २।४४।७-८

२. कौशल्या आदि राम की मातायें :-

मातु सकुल कुलगुरु वधू, प्रिय सखी सुहाई ।
सादर सब मंगल किये महि-ममि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई ।।
--गीतावली १।१५।१

दिये दान बिप्रन्ह बिपुल, पूजि गनेस पुरारि ।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु , पाइ पदारथ चारि ।। - रा०मानस १।३४५

रूप सील बय बंस गुन, सम बिबाह भये चारि ।
मुदित राउ रानी सकल, सानुकूल त्रिपुरारि ।।
विधिहरिहर अनुकूल अति, दसरथ राजहिं आजु ।
देखि सराहत सिद्ध सुर, संपति समय समाजु ।। - रामाज्ञाप्रश्न १।७।५-६,

३. भरत :

बिप्र जेवाइं देहि दिन दाना । सिव अभिषेक करहिं विधि नाना ।।-रा०मानस
२।१५७।७

पति देवता सुतीय मनि, सीय साँथरी देखि ।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पबि तें कठिन बिसेषि ।।-वही २।१६६

^ ^

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएं । संकरु साखि रहेउं एहि घाएं ।। - वही २।२६२।५

^ ^

४. वसिष्ठ :

मोरें जान भरत रुचि राखी । जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ।। - वही २।२५८।८,

५. अवधवासी :

असही दुसही ह मरहु मनहि मन, बैरिन बढ़हु बिषाद ।
नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु संकर-गौरि-प्रसाद ।। - गीतावली १।२।१०

^ ^

विप्रबधू सनमानि सुआसिनि, जन-पुरजन पहराइ ।
सनमान अवनीस, असीसत ईस-रमेस मनाइ ।। - वही १।२।११

राम के जन्मोत्सव पर दशरथ ने विप्रबन्धुओं तथा सुवासिनियों का सम्मान कर अपने आश्रित और पुरवासियों को वस्त्रादि दिये । उस समय उन्होंने शिव तथा विष्णु दोनों को एक साथ मनाते हुए राम को आशीर्वाद दिया ।

^ ^

पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक-जन भए दानी ।
'यों प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होउ महेस - भवानी ।। - वही १।४।६

^ ^

नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि ।
चारु फल त्रिपुरारि तोको दिए कर नृप-घरनि ।। - वही १।२८।१

^ ^

ईस मनाइ असीसहि जय जसु पावहु ।
न्हात खसै जनि बाट गहरु जनि लावहु ।। - जानकीमंगल,२६

सबकें उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु ।
आप अछत जुबराज पद, रामहिं देउ नरेसु ।। - रा०मानस २।१

६. जनक

गुर-हर-पद-नेहु, गेह बसि भो बिदेह । - गीतावली १।८८-२

७. जनक-पत्नी

सेवक राउ करम मन बानी । सदा सहाय महेसु भवानी ।।-रा०मानस२।२८५।४

८. मिथिलावासी

सुकृत संभारि, मनाइ पितर-सुर,सीस ईसपदनाइकै ।
रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब अपनो-सो हितु चितु लाइ कै ।।
--गीतावली १।७०।४ ,

जग जननि लोचन लाहु पाए सकल सिवहिं मनावहीं ।
बरु मिलो सीतहि सांवरो हम हरषि मंगल गावहीं ।। -जानकीमंगल७

सीय राम हित पूजहिं गौरि गनेसहि ।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि ।। - वही ११४

प्रेम-बिबस मांगत महेस सों, देखत ही रहिये नित ए, री ।। -गीतावली
१।७८।२

अनुकूल नृपहिं सूलपानि हैं ।
नीलकंठ कारुन्यसिन्धु हर दीनबन्धु दिनदानि हैं ।। - वही १।८०।१

मन मैं मंजु मनोरथ हो, री ।
सो हर-गौरि प्रसाद एक तें कौसिक कृपा चौगुनो भो,री ।-वही १०४।१

नयनन की फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी ।-वही १।१०५।६

कहहिं परस्पर नारि बारि-बिलोचन पुलक तन ।
सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ।।- रा०मानस १।३११

६. राम-वन-गमन के समय मार्गवासी :

सखी ! भूखे प्यासे, पै चलत चित चाय हैं
इन्ह के सुकृत सुर संकर सहाय हैं ।। - गीतावली, २।२८।२

तुलसी के चरित नायक राम शिव के उपासक ही नहीं, शिव-भक्ति के उद्घोषक भी हैं। उनके विषय में आगे अलग से देखा जायेगा ।

जिस प्रकार राम-पक्ष के लोग वैष्णव होते हुए शिव के प्रति श्रद्धालु अथवा शिव के उपासक हैं, उसी प्रकार रावणपक्षीय राक्षस मूलत: शैव होकर राम के प्रति भक्ति भाव रखते हैं। राम स्वयं जानते हैं कि 'बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर' (रा०मानस,६।४५।४ ) । लंकादहन के समय रावण मन्त्रियों से कहता है कि शिव मेरे स्वामी है (-कवितावली ५।२१) । अंगद भी रावण को शिव-भक्त मानते हैं ( - रा० मानस, ६।२०।३) और अपनी महत्ता प्रदर्शित करने के लिए रावण अंगद से कहता है --

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला । हरगिरि जान जासु भुज लीला ।।
जान उमापति जासु सुराई । पूजेउँ जेहि सिर-सुमन चढ़ाई ।।
सिर सरोज निज करन्हि उतारी । पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ।।
--रा०मानस ६।२५।१-३

यही रावण नाक-कानविहीन शूर्पणखा के आने पर सोचता है --

खर दूषन मोहि सम बलवन्ता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवन्ता ।।
सुररंजन भंजन महि भारा । जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा ।।
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ । प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ ।। वही ३।२३।२-४

तथा सीता - हरण के समय --

मन महुँ चरन बन्दि सुख माना ।। - वही ३।२८।१६ ,

रावण की मृत्यु के बाद मन्दोदरि राम रूप ब्रह्म को नमन करती है ( रा० मानस ६।१०४ के पूर्व छन्द) और मृत्यु के समय मेघनाद समस्त कपट त्याग कर —

रामानुज कहं रामु कहं, अस कहि छोड़ेसि प्रान ।। रा०मानस ६।७६

कुम्भकर्ण राम-भक्ति के लिए रावण को प्रबोधित करता है -

अजहूं तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना ।। - वही ६।६३।

और राम के दर्शनों की सम्भावना से स्वयं को कृतार्थ समझता है —

अब भरि अंक भेंटु मोहि भाई । लोचन सुफल करौं मैं जाई ।।
स्याम गात सरसीरुह लोचन देखौं जाइ ताप-त्रय-मोचन ।।
राम रूप गुन सुमिरत, मगन भयउ छन एक ।

-- वही ६।६३ तथा अर्द्धालियां,

मारीच राम के द्वारा मृत्यु को श्रेयस्कर मानते हुए सोचता है --
निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं ।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ।।
निर्बानदायक क्रोध जाकर, भगति अबसहि बसकरी ।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी ।।

रा०मा०३।२६

और राम का बाण लगने पर मन में राम का स्मरण अवश्य करता है ।

हनुमान द्वारा मारे जाने पर कालनेमि भी राम-राम कहकर ही प्राण त्यागता है ( रा०मानस ६।५८।६) ।

राक्षसों में विभीषण का व्यक्तित्व शिविष्ट स्थान रखता है । वह राम का स्मरण करके सोकर उठता है ( रा०मानस ५।६।३ ) और हनुमान से कहता है --

तात कबहुं मोहि जानि अनाथा । करिहहि कृपा भानुकुलनाथा ।। वही५।७।२

वही विभीषण कुबेर के यहां शिव से राम की शरण में जाने का निर्देश पाकर —

चले मनहि मन कहत विभीषन सीस महेसहि नाइ कै ।।
अनायास अनुकूल सूलधर मग मुदमूल जनाइकै ।
कृपासिन्धु सनमानि, जानि जन दीन लियो अपनाइकै ।। गीतावली५।२८।१,५

आगे अपने भविष्य की प्रसन्नता के कथन से ज्ञात होता है कि शिव विभीषण के गुरु हैं और राम स्वामी । यद्यपि यहाँ विभीषण को कुबेर के यहाँ शिव अनायास मिल जाते हैं, परन्तु वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय ( ५।८६।४) तथा पश्चिमोत्तरीय (५।६१।१४-६२) पाठों और माधवकन्दली (५।४०), कृत्तिवास रामायण (५।३६), रंगनाथ रामायण ( ६।१४), एकनाथ रामायण (५।३७) तथा तोरवे रामायण (६।२) में उसे कैलास पर वैश्रवण तथा शिव से मिलने के लिए जाते दिखाया है ।[१] संस्कृत साहित्य में दशरथ तथा जनक का शैवत्व भी वाल्मीकि,[२] आनन्द,[३] भावार्थ,[३] कृत्तिवास,[४] काश्मीरी[४] आदि कई रामायणों, पद्म,[४] स्कन्द[५] आदि पुराणों तथा भट्टिकाव्य,[५क] बृहत्कोशलखण्ड,[६] सत्योपाख्यान[७] आदि कई ग्रन्थों में मिलता है ।

४.शैव उपमान

जिस प्रकार काव्य का प्रतिपाद्य भाव पक्ष कवि की अभिरुचि तथा वातावरण का प्रतिफलन होता है, उसी प्रकार उसका कलापक्ष भी इन्हीं से व्यवस्थित होता है । जुलाहा होने के कारण ही कबीर के काव्य में कपड़ा बुनने से सम्बन्धित उपमान प्राय: मिल जाते हैं । परन्तु संकीर्ण मनोवृत्ति वाले परम्परावादी भी हो सकते हैं । इसीलिए कहा जाता है कि रस,अलंकार आदि के सम्बन्ध में शैवों का एक नियत दृष्टिकोण रहा है । उनकी मान्यता रही है कि शिव से सम्बन्धित जिन-जिन उपमानों और रसों का विनियोग होता आ रहा है उन्हीं की परम्परा बनी रही ।[८]

---

१. रामकथा, पृ० ५३५ की पहली पाद टिप्पणी

२. वही, पृ० ३०७,३४४

३. वही, पृ० ३४६

४. वही, पृ० ३४५

५. वही, पृ० १५६

५क. वही, पृ० १८७

६. वही, पृ० ३४५,३५५

७. वही, पृ० ३४५

८. डा० कमला भंडारी, मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव,भूमिका,पृ०८

हठधर्मिता के आधार पर तुलसी के राम-साहित्य में केवल वैष्णव उपमान होने चाहिए थे, परन्तु यहां पर कतिपय प्रमुख शैव उपमान द्रष्टव्य हैं-

हिमवान की पत्नी मयना

जनक वाम दिसि सोह सुनयना । हिमगिरि संग बनी जनु मयना ।। रा०मा० १।३२४।४

कालिका

महामोह महिषेसु बिसाला । रामकथा कालिका कराला ।। - वही १।४७।६

कैलास

जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू । हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू ।। वही २।२५३।६

पार्वती का मन

पारबती मन सरिस अचल धनु चालक । - जानकीमंगल ६३

पार्वती

गंग गौरि सम सब सनमानीं । - रा०मानस, २।२४५।२

साधु बिबुध कुल हित गिरिनन्दिनि ।। - वही १।३१।६

काशी

जीवन मुकुति हेतु जनु कासी ।। वही १।३१।११

हिमवान्-गिरिजा-शिव

हिमवन्त जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी विस्व फल कीरति नई ।। वही १।३२४ के ऊपर छन्द ४

संकल्पि सिय रामहि समरपी सील सुख सोभामई ।
जिमि संकरहि गिरिराज गिरिजा हरिहि श्री सागर दई ।। -जानकीमंगल१८,

शिव की विभूति -

सुकृति संभु तन विमल बिभूती । - रा०मानस १।१।३

भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी ।। १।१० के ऊपर छन्द

शिव का जटाजूट

मन्दाकिनि मंजुल महेस जटाजूट सो । - कवितावली ७।१४१

शिव

मरकत बरन , परन,फल मानिक से
लसै जटाजूट जनु रुख वेष हरु है । - वही ७।१३६

जातरूप मनि-जटित मनोहर, नूपुर जन-सुखदाई ।
जनु हर-उर हरि बिबि रूप धरि, रहे बर भवन बनाई ।। विनयपत्रिका६२।४

ए कौन कहाँ ते आये ?
किधौं रबि-सुवन,मदन-ऋतुपति,किधौं हरि-हरवेष बनाये । - गीतावली
१।६५।१,३

कोउ कह नर नारायन हरि हर कोउ ।
कोउ कह विहरत बन मधु मनसिज दोउ ।। - बरवैरामायण २।२२

नलिन नयन,सिर जटा-मुकुट,बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग ।
-- गीतावली ३।४।३

उपमानों के प्रयोग का एक उद्देश्य भावों का उत्कर्ष भी होता है । इसलिए उपमान वही लिए जाते हैं जो महत्वपूर्ण हो । उनकी महत्ता में विश्वास तथा उनका अधिग्रहण कवि की प्रवृत्त्यात्मक अन्त:चेतना का परिचायक है ।

५. शिव अन्तर्कथायें

अन्तर्कथाओं का सन्निवेश काव्य-रचयिता की प्रवृत्ति का प्रतीक है । भक्त तथा भगवान् के उदाहरण भक्त अथवा धार्मिक प्रवृत्ति वाले कवि के काव्य में ही एक-

सम्भाव्य हैं । इन कथाओं के अध्ययन से उस कवि की साम्प्रदायिकता का परिचय भी सहज ही पाया जा सकता है । कट्टर वैष्णव के काव्य में शिव आख्यान का अभाव अस्वाभाविक नहीं है । पहले तो वह उनसे अनभिज्ञ ही होगा और फिर शिव की महिमापरक घटनाओं का प्रचारक वह क्यों बनेगा । शरभेश, विष्णवानुग्रह या चक्रदान, लिंगोद्भव जैसे आख्यानों की तो उसके काव्य में कल्पना तक नहीं की जा सकती । परन्तु तुलसीदास ने अपने काव्य में जटायु, भुशुण्डि, अहल्या, द्रौपदी, नारद, वाल्मीकि, अजामिल, गणिका आदि के कितने ही वैष्णव आख्यानों के अतिरिक्त मदन-दहन, त्रिपुर-अन्धक-जलन्धर-वृक आदि के वध, विषपान, कर्णघंट, गुणानिधि आदि शैव आख्यानों को सन्दर्भित किया है । शिव के कामान्तक तथा त्रिपुरान्तकस्वरूप से तो तुलसी इतने प्रभावित हैं कि कई स्थलों पर उन्हें कामारि तथा त्रिपुरारि नामों से अभिहित किया है। सम्प्रति तुलसी-साहित्य में प्राप्त कतिपय प्रमुख शैव अन्तर्कथाओं का विवरण दिया जा रहा है ।

क. मदन-दहन

(रा०मानस १।४, १।५०।३, १।३१५।२, १।३२४ । प्रथम छन्द , ३।४ स्तुति, ६।प्रथम श्लोक, ७।५१।२, ७।५५।२, विनयपत्रिका २१८।३, गीतावली ७।६।३, ७।१६।७, दोहावली ४२५ कवितावली १।१० आदि )

एक समय असुरों का अत्याचार इतना बढ़ गया कि देवता भयभीत हो गये । मालूम हुआ कि शिव के पुत्र को सेनापति बनाकर युद्ध करने से ही असुरों पर विजय प्राप्त की जा सकती है । उस समय सती-दाह के पश्चात शिव अखण्ड समाधिलीन थे और सती ने हिमवान् के यहाँ पार्वती-रूप में जन्म ले लिया था तथा नारद से प्रेरित हो शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए वे भी तपस्यारत थीं । प्रश्न था शिव की समाधि किस प्रकार भंग हो और वे पार्वती से विवाह कर देव सेनानी पुत्र उत्पन्न करें । उद्देश्यपूर्ति के लिए देवों ने काम को सहमत किया कि वह शिव की तपस्या भंग कर उनमें शृंगार-भाव उत्पन्न करे । जब काम ने पुष्पवाण से शिव को लक्षित किया कि शिव समाधि से जाग्रत हो गए । काम को इस रूप में देखकर उन्होंने क्रोधित हो तृतीय नेत्र से उसे भस्म कर दिया ।

इसी आख्यान के आधार पर तुलसी ने शिव को कामारि, कामरिपु, मर्दन-मदन,

मनोजनशावन, मदन-मद-मोचन, मदनारि, अनंग-अराती कहा है और मानस के बालकाण्ड में ८५ वे दोहे से ८७ वें दोहे तक हिमवान् के यहां पार्वती रूप में सती-जन्म, शिवको प्राप्त करने के लिए पार्वती की तपस्या शिव की समाधि और काम-भस्म की कथा को अनुस्यूत किया है। शिल्पशास्त्र में यह शिव की कामान्तकमूर्ति कहलाती है।

ख. त्रिपुर-वध

(रा०मानस १।४६, १।५७।८, १।६४।५, १।७४, १।२२०।७, १।३११, १।३४५, २।२२६।८, ६।२५।३, ६।११४, ७।५२।६, ७।५४।१; विनयपत्रिका ३।२, ६।४, ४६।६, गीतावली ७।७।३, ७।१६।७ आदि)

देवों से पराजित होकर मय दानव ने घोर तपस्या की। तपस्या से प्रसन्न होने पर ब्रह्मा ने उसे वर देना चाहा। मय ने किसी से भी अजेय त्रिपुर के निर्माण का वर चाहा, जिसमें रहकर असुर देवों को परास्त कर सकें। परन्तु ब्रह्मा अमरत्व का वर देने को सहमत नहीं हुए। तब मय ने कहा कि उस त्रिपुर को शिव के अतिरिक्त अन्य कोई नष्ट न कर सके। ब्रह्मा ने ऐसा वर दे दिया, जिसके अनुसार मय द्वारा निर्मित त्रिपुर शिव के अतिरिक्त अन्य सब को अजेय था। त्रिपुर-निर्माण के उपरान्त असुरों ने देवों को आक्रान्त कर दिया। अन्त में देवों ने शिव की शरण ली। शिव ने एक ऐसा बाण मारा जिससे त्रिपुर जलकर भस्म हो गया।[१]

शिल्पशास्त्र में शिव के इस स्वरूप को त्रिपुरान्तकमूर्ति कहते हैं। अपराजित पृच्छा के अनुसार उसे दशभुजी होना चाहिए,[२] परन्तु तंजौर के बृहदेश्वरमन्दिर की

---

१. मत्स्यपुराण, अ० १२६-१४०

२. एकवक्त्रं दशभुजं नृत्यन्तं त्रिपुरान्तकम्।
सिंहचर्मपरिधानं मृगचर्मोत्तरीयकम्॥
रक्ताम्बरधरं देवं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
कपालमालाभरणं शशांककृतशेखरम्॥
खट्वांगखेटकधरं धृतखड्गकपालकम्।
त्रिशूलादिन कण्ठा च शार्ङ्गविधारिणम्॥
पाशांकुशधरं देवं कुंडलाभ्यामलंकृतम्।
हरं संस्थाप्य नृत्यन्तं बलयाकारसंस्थितम्॥ - अपराजितपृच्छा २१३।१७-२०

एक सुन्दर कांस्य-प्रतिमा में उसे चतुर्भुजी प्रदर्शित किया गया है ।[१] तुलसी ने शिव के इस रूप को त्रिपुरारि तथा त्रिपुर आराती कहा है ।

ग. अन्धक ( विनय पत्रिका ४६।६)

हिरण्याक्ष-पुत्र अन्धक ने ब्रह्मा से वर प्राप्त कर लिया कि मेरी मृत्यु ज्ञान प्राप्त होने पर हो अन्यथा मैं सदैव जीवित रहूँ । इस प्रकार वह विश्वविजयी बन गया और देवता मन्दराचल को पलायन करने को बाध्य हो गए । परन्तु वहां भी अन्धक द्वारा आतंकित किये जाने पर उन्होंने आर्तनाद से शिव को पुकारा । अन्धक तथा शिव का भयंकर युद्ध हुआ जिसमें शिव के त्रिशूलाघात से अन्धक को बैठ जाना पड़ा । उस समय शिव का ध्यान होने से आशुतोष प्रसन्न हो गए (- अन्धक में भी भगवत्-ध्यान का ज्ञान संचरित हो गया ) और उसे अनन्य भक्ति का वर प्रदान किया ।

घ. जलन्धर ( विनयपत्रिका ४६।७) :

शिवपुराण (रुद्रसंहिता, युद्ध खण्ड, अध्याय १३-२४) में जलन्धर, कीर्तिमुख और शुम्भ-निशुम्भ का एक विस्तृत आख्यान है । इसके अनुसार एक समय इन्द्र और बृहस्पति शिव से मिलने कैलास गए । परन्तु उनकी भक्ति की परीक्षा हेतु शिव ने दिगाम्बर रूप में उनका मार्ग अवरुद्ध कर लिया । इन्द्र द्वारा कई बार शिव का पता पूछने पर दिगम्बर ने कोई उत्तर दिया जिससे इन्द्र ने वज्राघात करना चाहा । इससे दिगम्बर भी क्रुद्ध हो गए और इन्द्र के स्तम्भित हाथ को देख बृहस्पति ने उनके यथार्थ स्वरूप को पहिचान क्षमा प्रार्थना की । शिव ने अपनी क्रोधाग्नि को समुद्र में निक्षिप्त कर दिया, जिसने तत्काल शिशु रूप धारण कर अपने रुदन से पृथ्वी को प्रकम्पित तथा स्वर्ग और सत्यलोक को बधिर कर दिया । ब्रह्मा के आने पर शिशु ने उनके गले में हाथ डालकर उन्हें आकर्षित करना चाहा, परन्तु ब्रह्मा को वह स्पर्श प्राणघातक लगा । इस कारण उनको अश्रुपात होने से ब्रह्मा ने उसका नाम जलन्धर रखा और कहा कि यह दैत्याधिपति होकर कार्तिकेय के समान अतुलित बलशाली होगा जिसे रुद्र के अतिरिक्त कोई नहीं मार सकता ।

---

१. डेवलेपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्रैफी, पृ०४८६

समय पाकर जलन्धर ने अमरावती तक पर विजय प्राप्त कर ली और नारद से प्रेरित हो सर्वांगसुन्दरी पार्वती को प्राप्त करने के लिए उसने एक बार अपने दूत सैंहिकेय को शिव के पास भेजा । दूत का उद्देश्य जान शिव से एक गण उत्पन्न हुआ जिसने दूत को भयभीत कर दिया । यह गण कीर्तिमुख कहलाया ।[1] दूत ने वापिस आकर जलन्धर को सब समाचार सुनाया जिसे सुनकर जलन्धर ने कैलास पर आक्रमण कर दिया । माया मय युद्ध में नृत्यव संगीतरत अप्सराओं को देख शिव के अस्त्र स्खलित हो गए । उस समय शुम्भ-निशुम्भ को युद्धभूमि में छोड़,कामातुर जलन्धर पार्वती के पास पहुंचा परन्तु उसे पहिचान कर वह अन्तर्धान हो गईं । पार्वती ने विष्णु से उसकी पतिव्रता पत्नी वृन्दा का सतीत्व नष्ट करने को कहा और विष्णु अपने उद्देश्य में सफल हुए । इस-प्रकार अन्त में शिव ने जलन्धर का वधकर देवों का परित्राण किया ।[2]

६०. दक्ष-यज्ञ-विध्वंस (विनयपत्रिका ४६।७)

दक्ष-यज्ञ में शिव का भाग न देखकर सती ने योगाग्नि से अपना शरीर त्याग दिया । इसका समाचार पाकर शिव ने वीरभद्र नामक एक गण को उत्पन्न किया जिसने जाकर दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर डाला ।

रामचरितमानस में तुलसी ने इस आख्यान का किंचित् विस्तृत वर्णन किया है ( - बालकाण्ड ६०।५ से ६५।४) ।

प्रस्तुत पांचों आख्यानों से सम्बद्ध कामान्तक,त्रिपुरान्तक,अन्धकासुर वध, जलन्धरहर तथा वीरभद्र मूर्तियों की गणना शिव की दस संहारमूर्तियों में की जाती है । यद्यपि उनका निर्माण बहुत पहले से हो रहा था परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि तुलसी इनके मूर्ति शास्त्रीय स्वरूप से परिचित थे ।

---

~~१. डेवलपमैन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्रैफी, पृ० ४८७~~

१. कीर्तिमुख के लिए द्रष्टव्य प्रस्तुत लेखक का लेख - 'कीर्तिमुख;भारतीय कला का एक आलंकारिक अभिप्राय' राजस्थान भारती लोक संस्कृति अंक (मार्च,१९७१ )

२. जलन्धर की कथा स्कन्दपुराण (वैष्णव खण्ड, अ० २०-२१) तथा आनन्दरामायण (१।४।२०-११२) में भी मिलती है।

च. विषपान (विनयपत्रिका ३।२ ,रामचरितमानस १।१३६।८,कवितावली ७।१४६,१५०
१५१,१७० आदि)

देवासुरों द्वारा समुद्र मन्थन करने पर सर्वप्रथम कालकूट विष प्राप्त हुआ । परन्तु उसकी ज्वाला से दिग-दिगन्त दग्ध होने लगे । उस समय भक्तवत्सल शिव का स्मरण किया गया । शिव ने उसका पान कर लिया पर हृदय में इष्टदेव का निवास होने के कारण उसे कण्ठ में अवरुद्ध कर लिया । इसी से कण्ठ नीला हो गया और वे नीलकण्ठ तथा नीलग्रीव कहलाये ।

छ. ज्योतिर्लिंग (गीतावली १।८६।२) :

ज्योतिर्लिंग या प्रकाश-स्तम्भ की कल्पना प्राचीन थी ।[१] यजुर्वेद ( २३।४८) में ब्रह्म को सूर्य के समान कहा गया है ( - ब्रह्म सूर्यसमं ज्योति : ) । परन्तु शैव आचार्यों ने इसी को आख्यान का रूप दे दिया । लिंग (अ०१७-१६),वायु (अ० ५५),कूर्म (पूर्वार्द्ध, अ० २६) तथा शिवपुराण (अ० ५-८) के अनुसार सृष्टि-रचना को लेकर ब्रह्मा तथा विष्णु अपनी अपनी महत्ता का प्रतिपादन करते हुए विवाद करने लगे । उसी समय एक ज्योतिर्पुंज प्रकट हुआ । विष्णु ने उसका पता लगा लेने वाले को महान् मानने की शर्त रखी । हंस रूप से ब्रह्मा ने ऊर्ध्व तथा वाराह रूप से विष्णु ने अधोगमन किया । परन्तु कोई भी उसके आद्यन्त का अन्वेषण करने में समर्थ न हुआ । अन्त में शिव साक्षात प्रकट हुए ।

शैव सिद्धान्तों के अनुसार तीन तत्वों - शिव ,सदाशिव तथा महेश में से महेश की पच्चीस लीलामूर्तियों में एक लिंगोद्भवमूर्ति भी है । कारण, सुप्रभेद, उत्तर-कामिक तथा अंशमद्भेद आगमों और शिल्परत्न, श्रीतत्वनिधि आदि में इसके शिल्प - शास्त्रीय लक्षण दिये गये हैं । तंजौर के शिलालेख में लिंगोद्भव को लिंगपुराणदेव कहा गया है ।[२]

---

१. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० ६८

२. किंग्स साउथ इण्डियन इमेजेज आफ गाड्स एण्ड गाडेसेज, पृ० ६३

ज. कर्णघंट (विनयपत्रिका २२।४)

काशी का एक ब्राह्मण शिव का कट्टर भक्त था । वह हर समय अपने कानों में घंटे बांधे रहता था जिससे अन्य देवता का नाम तक सुनाई न पड़े । जिस स्थान पर वह रहता था उसे आज भी कर्णघंटा कहते हैं ।[१]

झ. गुणानिधि (विनयपत्रिका ७।३) :

प्रस्तुत आख्यान से शिव की दानी प्रकृति पर प्रकाश पड़ता है । गुणानिधि नामक एक ब्राह्मण चौरकार्य करता था । एक शिवालय का घंटा ऊँचे पर था, इसलिए उतारने में असमर्थ हो वह शिवमूर्ति पर चढ़कर उसे खोलने लगा । मूर्ति पर चढ़ने से शिव उसे सर्वस्व समर्पित मान प्रकट हो गये और वरदान के साथ उसे कैवल्य पद प्रदान किया ।

६. शिव अभिधान

शैवों के पाशुपत मत में पशुपति, पाश और पशु तीन ही सत्तायें हैं । शैव सिद्धान्त में भी यही तीन परमतत्त्व या पदार्थ माने गये हैं । शिव पशुपति हैं । वे जीवात्माओं के कर्मों के अनुसार भोग और उनके साधनों को उत्पन्न करते हैं । वे सब कुछ करते हैं और सर्वद्रष्टा हैं । जीव पशु हैं जो पाश से मुक्त होने पर नित्य एवं निरतिशय ज्ञान-क्रियाशक्तियों से सम्पन्न होकर चैतन्य रूप शिव बन जाते हैं । यद्यपि वे शिव हो जाते हैं तथापि स्वतन्त्र नहीं होते प्रत्युत नित्यमुक्त शिव के अधीन रहते हैं । पाश चार प्रकार के हैं -- मल, कर्म, माया और रोध शक्ति। तुषतण्डुलवत् पशु (आत्मा) की ज्ञान एवं क्रिया शक्ति को तिरोहित कर देने वाला पाश मल है, फलेच्छुक व्यक्तियों का कृत्य कर्म पाश है । प्रलय के समय जिसमें समस्त संसार परिमित हो जाता है और सर्जनकाल में जिससे उद्भूत होता है, वह माया पाश है । रोध-शक्ति शिव की शक्ति है, जो अन्य तीन पाशों में अधिष्ठित होकर पशु के यथार्थ स्वरूप को छिपा देने के कारण स्वयं भी पाश कहलाती है । पशु पति के शक्तिपात अर्थात् अनुग्रह से पाशमुक्त होता है और यही उसकी मुक्तावस्था है ।[२]

---

१. वियोगी हरि, विनयपत्रिका, पृ० ६८ की दूसरी टिप्पणी।

२. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० १४२-१४४ तथा हिन्दी साहित्य-कोश, पृ० ७७४

तुलसीदास ने विनयपत्रिका में कहा है —

विधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत ।
पसु लौं पसुपाल ईस बांधत छौरत नहत ।।_१३३।३

यहाँ जीव को पशु तथा ब्रह्म को पशुपाल कहा है । तुलसी नाम का पर्याय भी दे देते हैं - हिरण्याक्ष को हाटकलोचन, हिरण्यकश्यप को कनककसिपु (मानस १।१२२।६), प्रताप-भानु को प्रतापरवि (वही १।१५३), दशरथ को दसस्यन्दन (गी० १।२।६) । इसी - प्रकार यहाँ पशुपति के लिए उन्होंने पशुपाल शब्द गढ़ लिया है । ईश भी शैव अभि-धान है । जीव के लिए पशु शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी हुआ है —

तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु ,
जदपि है निकट सुरसरि- तीर ।।_विनयपत्रिका १६६।३

रामचरितमानस में कई स्थानों पर राम के लिए निरंजन शब्द का प्रयोग हुआ है —

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कह गावहीं ।
—अरण्यकाण्ड ३२ वें दोहे के पूर्व स्तुति,

तग्य कृतग्य अग्यता भंजन । नाम अनेक अनाम निरंजन ।।
_उत्तरकाण्ड ३४।६

निर्मल निराकार निरमोहा । नित्य निरंजन सुख संदोहा ।।
_उत्तरकाण्ड ७२।६

डा० कमला भंडारी का कहना है कि भारतीय दर्शन में उस शब्द का प्रयोग निराकार शिव के लिए हुआ है । योग के ग्रन्थों में इसका प्रचुर प्रयोग है । तुलसीदास तथा अन्य सगुणभक्त कवियों द्वारा इसके प्रयोग पर वह शैवपरम्परा का ही प्रभाव मानती हैं ।[1] डा० भंडारी ने अलख शब्द को भी शैवों से आगत बताया है ।[2] तुलसीदास कहते हैं —

---

१. मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव, पृ० १६३

२. वही, पृ० २०१

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अविगत अलख अनादि अनूपा ।। रा०मानस२।६३।७
वैसे अलख और निरंजन शब्दों के शैवेतर प्रयोग भी प्राचीन साहित्य में पाना दुष्कर नहीं है ।

७. शैव दर्शन

शैव दर्शन में आगमशास्त्र, स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञाशास्त्र नाम से त्रिक् प्रसिद्ध है । आगम शास्त्र में अनुभूति, स्पन्द में सैद्धान्तिक विस्तार और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में सिद्धान्तों का तर्कबद्ध रीति से संग्रथन है । प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है - फिर से पहचान, पुन: स्वरूप प्राप्ति । इस शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य वसुगुप्त और उनके शिष्य सोमानन्द हैं । प्रत्यभिज्ञासूत्र, प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, प्रत्यभिज्ञा-विवृत्ति-विमर्शिनी, भास्करी, परमार्थशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, तन्त्रालोक, प्रत्यभिज्ञा-हृदय आदि इस दर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं । वसुगुप्त के शिवसूत्र के आधार पर अनेक शिष्य भट्टकल्लट ने स्पन्दकारिका और स्पन्दवृत्ति की रचना की ।

स्पन्दशास्त्रियों ने जगत्-रचना के निमित्त कर्म सदृश किसी प्रेरक कारण अथवा प्रधान जैसे उपादान कारण की आवश्यकता का दृढ़ता से खण्डन किया है । वे वेदान्तियों के समान न तो ईश्वर को उपादान कारण मानते हैं और न उनका यही विचार है कि माया अथवा भ्रम उन प्रतीतियों को उत्पन्न करता है, जो कि असत्य हैं । उनके अनुसार चैतन्य, परा संवित्, अनुत्तर, परमेश्वर, स्पन्द तथा परमशिव उस परमतत्त्व के ही अभिधान हैं जो परम स्वतन्त्र है । वह अपनी स्वातन्त्र्य शक्ति से सम्पन्न होकर स्वेच्छा से स्वभित्ति अर्थात् अपने ही आधार में जगत् का उन्मीलन करता है -

स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति । - प्रत्यभिज्ञाहृदय, सूत्र २

वह स्वयं में जगत् को इस प्रकार प्रतिभासित करता है जैसे कि जगत् उससे भिन्न हो यद्यपि वस्तुत: ऐसा है नहीं । जिस प्रकार भवन या नगर दर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं किन्तु दर्पण उनसे प्रभावित नहीं होता, उसी प्रकार अपने में प्रतिभासित जगत् से ईश्वर अप्रभावित रहता है । वह उस रूप में भी नहीं है जैसा जगत् में देखते हैं । अत: वह जगत् का उपादान कारण भी नहीं है । वसुगुप्त ने एक श्लोक में उपादान आदि सामग्री तथा भित्ति के बिना संसार रूप चित्र के विस्तारक शूली या शिव की इस रूप में वन्दना की है --

निरुपादान संभारमभिआवैव तन्वते ।
जगत् चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ।।

अर्थात् कलाओं के स्वामी उस शूलिन् को मैं प्रणाम करता हूं जो किसी भित्ति (आधार) तथा उपकरण समूह का सहारा लिए बिना शून्य में ही इस विचित्र संसार रूपी चित्र की रचना करता है ।

लौकिक चित्रकार उपकरणों के द्वारा किसी उपादान पर ही चित्र रचना करता है, परन्तु परमशिव ऐसे विलक्षण कलाकार हैं जो सामग्री तथा आधार के अभाव में भी सृष्टि-रचना कर डालते हैं । इस विलास का कारण उनकी स्वातन्त्र्य या इच्छा शक्ति ही है ।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं विनयपत्रिका के निम्न पद की रचना इसी शैव सिद्धान्त के आधार पर हुई है --

केशव ! कहि न जाइ का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र हरि ! समुझि मनहिं मन रहिये ।
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं, तनुबिनु लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे ।।
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं ।।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।।
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ , जुगल प्रबल कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपनपहिचानै ।।- पद १११

चित्रकार व्यक्ति विशेष मूर्त या साकार होता है परन्तु यहां तो निराकार चित्रकार ने उपकरण तथा उपादान के बिना ही स्वेच्छा से शून्य रूप स्वभित्ति पर सृष्टि-रचना कर डाली है । सामान्य लौकिक चित्र से इसकी स्थितिपूर्णतया विपरीत है । वह धोने से मिटता है यह नहीं, वह किसी प्रकार की भावना से असम्प्रक्त

---

१. वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत, पृ० १४७-१४८, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८७६, ८७०; हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्रथम भाग), पृ० ५१६, तथा मध्वकृत सर्वदर्शनसंग्रह, सूत्र १४,

रहता है, पर इसे नष्ट होने का भय है, उसे देखकर आनन्द की संप्राप्ति होती है, पर इसे देखकर विषाद एवं भय की अनुभूति होती है । इस रचना की एक विशेषता यह है कि इसमें ममता-मोह की मृगमरीचिका भी परिव्याप्त है जिसमें विषय रूप मगर का निवास है । जो भी मृगतृष्णा से आकर्षित होता है उसे विषय-वासनायें नष्ट कर डालती हैं । इस रचना में ईश्वर उपादान कारण न होने से यह सत्य भी नहीं है और न माया अथवा भ्रमवश इसकी प्रतीत होने के कारण असत्य ही है, साथ ही सत्यासत्य कहना भी भ्रान्ति है । अत: यह अपने प्रकार का अनुपम तथा अद्वितीय चित्र है ।

तुलसीदास ने सब कुछ तो शैव दर्शन से ग्रहण किया परन्तु परमशिव के स्थान पर केशव (विष्णु) को स्थानापन्न कर दिया है । इससे सिद्धान्त में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया । कुछ ऐसा ही वर्णन मलिक मुहम्मद जायसी ने भी किया है--

चेले समुझि गुरु सौं पूछा । धरती सरग बीच सब छूछा ।।
कीन्ह न थूनी, भीति, न पारा । केहि बिधि टेकि गगन यह राखा ।।
--अखरावट,५०।१-२

तथा - निमिख न लाग करत ओहि, सबइ कीन्ह पल एक ।
गगन अन्तरिख राखा, बाजुखम्भ बिनु टेक ।। --पद्मावत १।२

पर जायसी के वर्णन में शैव सिद्धान्त उस तरह सन्दर्भित प्रतीत नहीं होता जैसा तुलसी के पूर्वोक्त पद में मिलता है ।

डा० कमला भंडारी के अनुसार शैव उपासकों ने कर्म को आवागमन का कारण माना है । जब तक कर्म है तब तक आवागमन से मुक्ति नहीं होती । इस प्रकार वे तुलसी के -

आकर चारि लच्छ चौरासी । जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी ।।
फिरत सदा माया कर प्रेरा । काल करम सुभाव गुन घेरा ।।
--रा०मानस ७।४४।४-५

कथन पर शैव प्रभाव मानती हैं ।[१] जबकि कर्म सिद्धान्त गीता तथा उपनिषद्-साहित्य

---

१ मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव, पृ० १६०

में भी मिलता है और उसकी एक वैष्णव परम्परा भी है ।

शैवत्व के वर्म से डा० भंडारी को तुलसी में शैव अद्वैतवाद के भी दर्शन होते हैं । वह लिखती हैं कि शैवदर्शन में शिव की दो अवस्थायें मानी गई हैं — लयावस्था और भोगावस्था, जिनको तिरोभाव और आविर्भाव भी कहा गया है । उनकी अव्यक्त अवस्था तिरोभाव और व्यक्त अवस्था आविर्भाव अवस्था है । भंडारी की दृष्टि से यह शैव अद्वैतवाद है और तुलसी ने परमेश्वर तथा जीव और परमेश्वर तथा जगत् के अद्वैत सम्बन्ध को " वारि और वीचियों " के समान मान कर इसी सिद्धान्त का अनुसरण किया है ।[१]

ऊपर विनयपत्रिका में प्राप्त पाशुपत मत की शब्दावली का उल्लेख किया गया । उससे तुलसी पर इस मत का प्रभाव भी परिलक्षित होता है । सम्भव है "तुलसीदास यहि जीव मोह-रज्जु, जोई बांध्यो सोइ छोरै ।" ( विनयपत्रिका १०२।५) कहने में भी तुलसीदास के मन में प्रच्छन्न रूप से पाशुपत मत की धारणा रही हो, यों यहां पर पाश मोह का है जिसे पाशुपत मत का माया पाश कहा जा सकता है ।

## ८. शैव-ग्रन्थों का प्रभाव :

जागरूक कवि अपनी युगीय चेतना के प्रति सजग रहने के साथ पुरातन से भी असंश्लिष्ट नहीं होता । वह अपने पूर्ववर्ती साहित्य तथा वातावरण को जानने के लिए उत्सुक रहता है । इसी क्रम में यदि गोस्वामी तुलसीदास नानापुराणनिगमागम निष्णात हों तो आश्चर्य नहीं । फिर एक सारग्राही व्यक्ति इनसे मधु भी संचित करता चलता है । परन्तु वह संचय तथा प्रभाव वहीं से ग्रहण करता है जिसके प्रति श्रद्धालु होता है । जहां विचारों में असंगति होगी वहां से प्रभाव ग्रहण का प्रश्न नहीं उठता । इस प्रकार किसी के काव्य में पूर्ववर्ती रचना अथवा रचनाकार से सैद्धान्तिक तथा वैचारिक आधार पर प्रभाव संयोजन उसकी तद्विषयक समशील विचारधारा का प्रमाण है ।

तुलसी ने —

---

१. मध्यकालीन हिन्दी कविता पर शैवमत का प्रभाव, पृ० १७६-१७८

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्-

रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि ।

कहकर अपनी सारग्राहिता के सम्बन्ध में स्वयं प्रमाण दे दिया है । इस क्वचिदन्यतोऽपि में पं० सीताराम चतुर्वेदी ने लगभग ढाई सौ ग्रन्थों की सूची दी है जिनसे तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना में साहाय्य ग्रहण किया ।[१] इन ग्रन्थों में विविध रामायणों, गीतगोविन्द, जानकीस्तवराज, प्रसन्नराघव, भगवद्गीता, महाभारत, रामरक्षास्तोत्र, वैष्णवधर्मरत्नाकर आदि वैष्णव रचनाओं के साथ आदि शक्ति-संहिता, उमासंहिता, कुमारसम्भव, गणेश्वरसंहिता, शिव महिम्नस्तोत्र, रुद्रयामल, रुद्रसंहिता, शिवसंहिता, श्वेताश्वतरोपनिषद् प्रभृति लगभग पच्चीस ऐसे ग्रन्थों के नाम हैं जिन्हें शुद्ध रूप में शैव कहा जा सकता है । निगमागमसम्मत की स्वीकृति तुलसीदास ही देते हैं और आगम ग्रन्थ शैव हैं, जिनका प्रादुर्भाव ईशान के संवमुखों से हुआ ।[२]

तुलसीदास ने पुरातन प्रभाव कथात्मक तथा रचनात्मक दो रूपों में ग्रहण किया है । समग्र रूप से उनके दर्शन का प्रमुख आधार अध्यात्मरामायण और कथाविस्तार का आधार वाल्मीकिरामायण है तथापि उन्होंने नवीन घटनाओं का संयोजन हनुमन्नाटक, प्रसन्नराघव, भागवतपुराण तथा रघुवंश से किया है । अहल्या का शिला होना सर्वप्रथम रघुवंश ( ११।३४) में मिलता है ।[३] प्राचीनता को आधार मानने पर प्रस्तुत घटना तथा मानस के प्रारम्भ का विनम्र निवेदन तुलसी ने यहीं से ग्रहण किया है । नारद-मोह तथा विष्णु शाप का प्रसंग महाभागवतपुराण तथा अद्भुत रामायण में होते हुए भी तुलसी ने शिवपुराण के शैव आधार का अधिग्रहण किया है । सती-मोह तथा अनुसूया का सीता को पातिव्रत्य उपदेश भी इसी के अधिक निकट है । रचनात्मक स्तर पर शिव चरित के संवाद तो शिवपुराण के लगभग शब्दशः अनुवाद हैं । सम्प्रति प्रमुख शैव ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में इस प्रभाव की अन्विति द्रष्टव्य है ।

---

१. तुलसी ग्रन्थावली (प्रथम खण्ड) के अन्त में संलग्न दो पृष्ठ

२. टी०ए० गोपीनाथ राव, एलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकनोग्रैफी, भाग २, खण्ड २, पृ० ३६७-३६८

३. रामकथा, पृ० ३०१

क. शिवपुराण ( सती खण्ड २४।४३-४४)

शृणु मद्वचनं देवि न विश्वसिति चेन्मन: ।
तव रामपरीक्षां हि कुरु तत्र स्वया धिया ।।
विनश्यति यथा मोहस्तत्कुरु त्वं सति प्रिये ।

मानस १।५२।१,३

जौं तुम्हरे मन अति संदेहू । तौ किन जाइ परीछा लेहू ।।
जैसें जाइ मोह भ्रम भारी । करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ।।

रुद्र संहिता, पार्वती खण्ड (२८।१,४,५,७)

दाक्षायणी गता तत्र यत्र यज्ञो महाप्रभ: ।।
आगतां च सतीं दृष्ट्वाऽसिक्नी माता यशस्विनी ।
अकरोदादरं तस्या भगिन्यश्च यथोचितम् ।।
नाकरोदादरं दक्षो दृष्ट्वा तामपि किंचन ।
नान्योपि तद्भयात्तत्र शिवमायाविमोहित: ।।
भागानपश्यद्देवानां हर्यादीनां तदध्वरे ।
न शम्भु भागमकरोत्क्रोधं दुर्विषहं सती ।।

मानस १।६३।१-४

पिता भवन जब गई भवानी । दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी ।।
सादर भलेहिं मिली एक माता । भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता ।।
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता । सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ।।
सतीं जाइ देखेउ तब जागा । कतहुँ न दीख संभु कर भागा ।।
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ । प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ ।।

रुद्रसंहिता सतीखण्ड ३०।८

हतकल्मष तद्देह: प्राप्तश्च तदग्निना ।
भस्मसादभवत्सद्यो मुनिश्रेष्ठ त्वदिच्छया ।।
तत्पश्यतां च खे भूमौ वादोऽभूत्सुमहांस्तदा ।
हाहेति सोद्भुतश्चित्रस्सुरादीनां भयावह: ।।

मानस १।६४।७-८

तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू । उर धर चन्द्रमौलि वृषकेतू ।।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा ।।

शिवपुराण, रुद्रसंहिता, पार्वती खण्ड ८।१०-११

सुलक्षणानि सर्वाणि त्वत्सुतायाः करे गिरे ।

एका विलक्षणा रेखा तत्फलं शृणु तत्वतः ।।

योगी नग्नोऽगुणोऽकामी मातृतात विवर्जितः ।

अमानोऽशिववेषश्च पतिरस्याः किलेदृशः ।।

रामचरितमानस १।६७।१, ७-८ तथा दोहा :

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी । सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ।।

अगुन अमान मातु-पितु हीना । उदासीन सब संसय छीना ।।

जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल बेष ।

अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ।।

शिवपुराण, पार्वती खण्ड १६।२६

शिववीर्यसमुत्पन्नो यदिस्याचनयस्सुराः ।

स एव तारकाख्यस्य हन्ता दैत्यस्य नापरः ।।

रामचरित मानस १।८२

सब सन कहा बुझाइ विधि, दनुज निधन तब होइ ।

संभु सुक्र संभूत सुत, एहि जीतइ रन सोइ ।।

शिवपुराण, पार्वती खण्ड, रुद्र संहिता ४८।४१,४३-४४

वेदमन्त्रेण गिरिशो गिरिजाकरपंकजम् ।

जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः ।।

महोत्सवो महानासीत्सर्वत्र प्रमुदावहः ।

बभूव जयसंरावो दिवि भुव्यन्तरिक्षके ।।

साधु शब्दं नमः शब्दं चक्रुः सहतिहर्षिता : ।

रामचरितमानस १।१०१।३-६

पानिग्रहन जब कीन्ह महेसा । हियँ हरषे तब सकल सुरेसा ।।
बेदमन्त्र मुनिबर उच्चरहीं । जय जय जय संकर सुर करहीं ।।
बाजहिं बाजन बिबिध विधाना । सुमनवृष्टि नभ भै विधि नाना ।।
हर गिरिजा कर भयउ बिबाहू । सकल भवन भरि रहा उछाहू ।।

शिवपुराण, रुद्रसंहिता २।२-३ :

हिम शैल गुहाकाचिदेका परमशोभना ।
यत्समीपे सुरनदी बहति वेगत: ।।

रामचरितमानस १।१२५।१ :

हिमगिरिगुहा एक अति पावन । बह समीप सुरसरी सुहावनि ।।

शिवपुराण, रुद्रसंहिता ३।५-६

मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् ।
शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ।।
स्वलोकाधिकं रम्य नानावस्तुविराजितम् ।

रामचरितमानस १।१२६ :

बिरचेउ मग महुँ नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार ।
श्रीनिवासपुर तें अधिक, रचना बिबिधप्रकार ।।

शिवपुराण, रुद्रसंहिता ४।७-६, १३, १५, १७

मोहिनी स्वरूपमादाय कपटं कृतवान्पुरा ।
असुरेभ्यो पाययस्त्वं वारुणीमृतं न हि ।।
वैत्येभ्यन्न विषं रुद्रो दयां कृत्वा महेश्वर: ।
भवेन्नष्टाखिला माया व्यापरते हरे ।।

गति: सा कपटा तडतिप्रिया विष्णो विशेषत: ।
इदानीं लप्स्यसे विष्णो फलं स्वकृतकर्मणा: ।
अन्वकार्षीस्सवरूपेण येन कापट्यकर्मकृत् ।।
तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं भवताद्दु:खमुग्धरे ।
यन्मुखं कृतवान्मेत्वं ते भवन्तु सहायिन: ।।
त्वं स्त्रीवियोगज दु:खंलभस्व परदु:खद: ।।

रामचरितमानस १।१३६ । ८,दोहा तथा १३७।५-६ :

मथत सिंधु रुद्रहि बौरायहु । सुरन्ह प्रेरि बिषपान करायहु ।।
असुर सुरा विष संकरहि, आपु रमा मनि चारु ।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट व्यवहारु ।।
। पावहुगे फल आपन कीन्हा ।।
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा । सोइ तनु धरहु श्रापमम रहा ।।
कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी । करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ।।
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी । नारि बिरहं तुम्ह होब दुखारी ।।

शिवपुराण,पार्वती खण्ड ५४।७४-७७ :

स्वप्नेपि यन्मनो नित्यं स्वपति पश्यति ध्रुवम् ।
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता ।।
या पितृ-भ्रातृ-सुतवत् परम्पश्यति सद्धिया ।
मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता ।।
बुद्ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति न ।
निकृष्टा कथिता सा हि सुचरित्रा च पार्वति ।।
पत्यु: कुलस्य च भयाद् व्यभिचारं करोति न ।
पतिव्रताऽधमा सा हि कथितापूर्वसूरिभि: ।।

रामचरितमानस ३।५।११-१५

जग प्रतिव्रता चारि बिधि अहहीं । बेद पुरान संत सब कहहीं ।।
उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं ।।
मध्यम परपति देखइ कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ।
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ।।
बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ।।

ख. स्कन्दपुराण[१]:

तस्मात्तु रामायणनामधेयं परं तु काव्यं शृणुत द्विजेन्द्राः ।
यस्मिन् श्रुते जन्मजरादिनाशो भवत्यदोषः स नरोऽच्युतः स्यात् ।।

रामचरितमानस १।१५।१०-११:

जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ।।
होइहहिं रामचरन अनुरागी । कलिमल रहित सुमंगल भागी ।।

स्कन्दपुराण[२]:

अहो भवन्नाम जपन्कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या ।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव राम नाम ।।

रामचरितमानस १।१६।३ :

महामंत्र जोइ जपत महेसू । कासी मुकुति हेतु उपदेसू ।।

स्कन्दपुराण,माहेश्वरखण्ड २१।५२

उन्मत्तभूतबहुभिस्त्वपां त्यक्त्वा मनीषिभिः ।
भूत प्रेतपिशाचैश्च मदनेन विमोहितैः ।।

---

१. तुलसीग्रन्थावली,प्रथम खण्ड,पृ०३०
२. वही, पृ० ३४

रामचरितमानस १।८५।६-७ :

देव दनुज नर किंनर व्याला । प्रेत पिसाच भूत बेताला ।।
इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी । सदा काम के चेरे जानी ।।

* *

ग. शिवसंहिता[१]

मुक्तिस्त्री-कर्णपूरी मुनिहृदयपय:पक्षतीरि-भूमी
संसारापारसिन्धौ : कलिकलुषतम: स्तोमसौमार्कबिम्बौ ।
उन्मीलत्पुण्यपुंजद्रुमदलितदले लोचने च श्रुतीनां
कामं रामेति वर्णौ शमिह कलयतां सन्ततं सज्जनानाम् ।।

रामचरितमानस १।२०।६

भगति सुतिय कल करन बिभूषन । जग हित हेतु विमल बिधुपूषन ।।

* *

घ. उमासंहिता :[२]

कुन्देन्दुकर्पूरतनुर्ह्युमेश: करुणार्णव: ।
दीनस्नेहकर: कुर्यात्कृपां मदनमर्दन: ।।

रामचरितमानस १।४

कुंद इंदु सम देह, उमा रमन करुना अयन ।
जाहि दीन पर नेह, करउ कृपा मर्दन मयन ।।

* *

---

१. तुलसी ग्रन्थावली प्रथम खण्ड, पृ० ३५

२. वही, पृ० ६

ह०. शिवगीता[१]

सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम।

यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ।।

रामचरितमानस ४।३

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत ।

मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।

^ ^

च. श्वेताश्वतरउपनिषद् ४।१६ :

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।

स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।।

रामचरितमानस १।११८।५-७ :

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना । कर बिनु करम करइ बिधि नाना ।।

आनन रहित सकल रस भोगी । बिनु बानी बकता बड़ जोगी ।।

तन बिनु परस नयन बिनु देखा । ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ।।

^ ^

छ : कुमारसम्भव ५।२८ :

स्वयं विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तयापुनः ,

तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ।।

रामचरितमानस १।७४।७

पुनि परिहरे सुखानेउ परना । उमहि नामु तब भयउ अपरना ।।

^ ^

कुमारसम्भव ३।३६ :

लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्र शाखाभुजबन्धनानि ।

रामचरितमानस १।८५।१

सब के हृदयँ मदन अभिलाषा । लता निहारि नवहिं तरु साखा ।।

^ ^

---

१. हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० २८४-२८५ तथा गोसाईं,तुलसीदास,पृ०२३४-३५

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने पार्वती मंगल में भी कुमारसम्भव के कुछ श्लोकों के छायानुवाद पर प्रकाश डाला है ।[1]

शैव आचार्य वसुगुप्त की –

निरुपादान संभारमभित्तावेव तन्वते ।
जगत् चित्रं नमस्तस्मै कलाश्लाघ्याय शूलिने ।।

स्तुति के आधार पर विनयपत्रिका के 'केशव ! कहि न जाइ का कहिये ।' पद की रचना के विषय में ऊपर शैव दर्शन के सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है ।

६. शैव आख्यान का समाहार

तुलसीदास ने वैष्णव ग्रन्थों के साथ शैव ग्रन्थ तो लिया ही, वे मानस जैसी महान् रचना को भी शैव आख्यान से रहित रखना उपयुक्त नहीं समझते थे । वाल्मीकि तथा अध्यात्मरामायण दोनों में सतीचरित, कामदहन और पार्वती मंगल का अभाव है । परन्तु तुलसीदास ने अपनी रामायण में इनका भी संयोजन कर इन्हें ग्रन्थ का एक अंग बना लिया है । मानस के रचना क्रम पर विचार करते हुए डा० बुल्के ने उसकी तीन स्थितियाँ मानी हैं --

१. रामचरित :

क. बालकाण्ड दोहा १ से २६ तक ,
ख. बालकाण्ड - दोहा १२१ से ३६१ तक- हेतु कथायें, रावण-चरित विष्णु की अवतार कथायें, राम-विवाह ,
ग. अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड के प्रथम ६ दोहे ,

२. शिवरामायण :

क. बालकाण्ड दोहा ४४ से ४७ तक - याज्ञवल्क्य-भारद्वाज,संवाद
ख. बालकाण्ड दोहा १०४ से १२० तक-शिव-पार्वती संवाद,
ग. बालकाण्ड में दोनों संवादों के निर्देश,

---

१. हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ० १८४-२८५ तथा गोसाईं तुलसीदास, पृ० २३४-३५

घ. अरण्यकाण्ड के ७ वें दोहे से लंकाकाण्ड तक,

ङ. उत्तरकाण्ड पूर्वार्द्ध - दोहा १ से ५२ तक ,

३. रामचरितमानस :

क. मानस-रूपक का पूर्व रूप, प्रस्तावना तथा मानस विषयक गौण प्रक्षेप,

ख. बालकाण्ड दोहा ४८ से १०३ तक - पूर्वलिखित शिव-विवाह,

ग. बालकाण्ड दोहा ३० से ४३ तक - प्रस्तावना उत्तरार्द्ध ,

डा० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार मानस-रचना के तीन स्तर इस प्रकार रहे होंगे -

१. प्रथम पाण्डुलिपि - पृथ्वी की विनय से प्रारम्भ कर बालकाण्ड का उत्तरार्द्ध । इसमें वक्ता मात्र कवि रहा होगा ।

२. द्वितीय पाण्डुलिपि - बालकाण्ड की प्रथम ३५ चौपाइयों के अतिरिक्त शेष सभी चौपाइयां । इसमें वक्ता याज्ञवल्क्य, शिव और तदनन्तर काकभुशुण्डि रहे होंगे ।

३. तृतीय पाण्डुलिपि- ग्रन्थ की प्रारम्भिक ३५ चौपाइयां ।

डा० वौदवील, डा० गुप्त की प्रथम पाण्डुलिपि से लगभग सहमत हैं, पर वे प्रस्तावना के पूर्वार्द्ध के २६ दोहों तथा अरण्य के ६ दोहों को भी उसका अंश मानती हैं । वे द्वितीय पण्डुलिपि में शिव-पार्वती संवाद से लेकर उत्तरकाण्ड के ५२ दोहे तक समस्त सामग्री सम्मिलित मानती हैं । तृतीय पाण्डुलिपि में वे भुशुण्डि संवाद (दोहा ५२ से १३० तक ), शिवचरित (दोहा ४४ से १०४ तक) तथा प्रस्तावना उत्तरार्द्ध (दोहा ३० से ४३ तक) रखती हैं । डा० गुप्त के ठीक उल्टे क्रम से वे बालकाण्ड की प्रस्तावना के पूर्वार्द्ध को प्रथम पाण्डुलिपि का तथा उत्तरार्द्ध को तृतीय पाण्डुलिपि का अंश मानती हैं ।

इस प्रकार मानस का शिवचरित (बालकाण्ड दोहा ४८ से १०३ तक) प्राथमिक स्तर पर कवि का उद्दिष्ट नहीं था । डा० बुल्के तथा डा० वौदवील ने उसे तृतीय पाण्डुलिपि की रचना माना है परन्तु डा० गुप्त की यह दूसरी पाण्डुलिपि भी अन्यों की मान्य तीसरी पाण्डुलिपि जैसी ही है क्योंकि वे तीसरी पाण्डुलिपि में

मानस की प्रस्तावना-मात्र रखी हैं । ग्रन्थ समापनके समय तुलसी उसमें शिवचरित को भी सम्मिलित करने का लोभ संवरित नहीं कर सके और उन्होंने रामकथा का वर्णन करने के पूर्व उसको भी संयोजित कर लिया ।

शिवचरित की रचना का स्वतन्त्र अस्तित्व उसके काव्यत्व तथा फलश्रुति से भी प्रमाणित हो जाता है । काव्यत्व की दृष्टि से उसकी समर्थ शब्द-रचना, बरात का स्वभाव वर्णन, लोकरीति का ज्ञान, लोकचित्त को आकर्षित करने की क्षमता, हास्य की अवतारणा आदि उसे उत्कृष्ट काव्य की श्रेणी में रखने को पूर्ण समर्थ हैं । समापन में तुलसी ने कहा है ––

जगु जान षन्मुख जन्मु कर्म प्रतापु पुरुषारथु महा ।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संछेपहिं कहा ।।
यह उमा संभु बिबाहु जे नर-नारि कहहिं जे गावहीं ।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुखु पावहीं ।।

अत: डा० बुल्के की इस धारणा को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि तुलसी ने मानस की तृतीय पाण्डुलिपि में पूर्वलिखित शिवचरित को संगुफित किया होगा ।

१० शिव-उमा संवाद को मानस का एक घाट बनाना

रामचरितमानस के मूल अधिष्ठाता शिव थे, जिन्होंने उसे उमा (१।३०।३, १।३५।११), लोमश (७।११३।११) तथा काकभुशुण्डि (१।३०।४) को सुनाया था । तुलसी ने उसे अपने गुरु से प्राप्त किया (१।३०क) और ग्रन्थ-रचना के समय उसे कई संवादों में प्रस्तुत किया है, यह संवाद है —

१. शिव-पार्वती संवाद,
२. काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद ,
३. याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद और
४. तुलसी-सन्त संवाद ।

यही चार संवाद मानस के चार घाट हैं :--

सुठि सुंदर संवाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि ।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ।। - रा०मानस १।३६

चारों संवाद क्रमश: ज्ञान, उपासना, कर्मकाण्ड तथा दैन्यतारूप हैं । शिव उमा, लोमश तथा भुशुण्डि को रामकथा दे ही चुके थे और पुन: भुशुण्डि से गरुड़ तथा याज्ञवल्क्य ने वह प्राप्त कर ली थी । एक बार लोमश ने भी काकभुशुण्डि को रामकथा सुनाई थी । यदि तुलसी चाहते तो शिव-उमा संवाद का उल्लेख मात्र करके मानस-रचना कर सकते थे । शिव द्वारा लोमश,लोमश द्वारा काकभुशुण्डि (७।११३।९-१०) और अगस्त्य (१।४८।३) तथा काकभुशुण्डि (७।५७) द्वारा शिव को सुनाने का उल्लेख है ही । परन्तु अध्यात्मरामायण के शिव-पार्वती संवाद के समान उन्होंने रामकथा के अधिष्ठाता शिव के संवाद को रखना आवश्यक माना ।

## ११. तुलसी द्वारा शिव की गुरु रूप में स्वीकृति

कवितावली (७।१५१) में शिव-स्तुति करते हुए तुलसीदास ने कहा है —

सब विधि समर्थ, महिमा अकथ, तुलसीदास-संसय समन ।

यहां शिव को सर्वसमर्थ तथा महामहिम मानना तो उपयुक्त लगता है परन्तु तुलसीदास के संशयों का शमनकर्ता होना विचारणीय है । प्रस्तुत सन्दर्भ में रामचरितमानस की कतिपय अर्द्धालियां द्रष्टव्य हैं -

सो उमेस मोहि पर अनुकूला । करिहि कथा मुद मंगल मूला ।।
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ । बरनउं राम चरित चित चाऊ ।।
भनिति मोरि सिव कृपां बिभाती । ससि समाज मिलि मनहुं सुराती ।।१।१५।७-८
संभुप्रसाद सुमति हियं हुलसी । रामचरितमानस कवि तुलसी ।।-१।३६।१

अर्थात् १. शिव की तुलसी पर अनुकम्पा है और वे रामकथा को आनन्द तथा मंगलमय बना देंगे, २. तुलसी रामकथा का वर्णन शिव-पार्वती के स्मरण तथा उनसे प्रसाद पाकर कर रहे हैं, ३. शिव की कृपा से तुलसी की रचना पूर्णिमा के समान प्रकाशमान होगी , तुलसी के हृदय में रामचरितमानस के प्रणयन की प्रेरणा शिव की अनुकम्पा से जाग्रत

हुई । यहाँ पर शिव को इतना महत्व देने का क्या कारण हो सकता है । रचना में रामकथा का वर्णन है, राम की अनुकम्पा होनी चाहिए । तुलसी का शिव से क्या सम्बन्ध है जो वे शिव से प्रेरणा पाकर उन्हीं के स्मरण, अनुकम्पा तथा विश्वास से रचना कर रहे हैं और शिव ही तुलसी के संशयों का समाधान करते हैं । कार्य के पूर्व स्मरण तथा विश्वास इष्ट या गुरु का किया जाता है, अनुकम्पा इष्ट या गुरु की स्वयं पर होती है और संशय का निवारक एकमात्र गुरु होता है । शिव तुलसी के क्या हैं, यह देखना है । वे कहते हैं --

> गुरु पितु मातु महेस भवानी । प्रनवउं दीनबन्धु दिनदानी ।
> सेवक स्वामि सखा सिय पी के, हित निरुपधि सब विधि तुलसी के ।।
>
> रा०मानस १।१५।३-४
>
> पाहि भैरव रूप राम रूपी-रुद्र, बन्धु गुरु, जनक जननी, विधाता ।।
>
> - विनयपत्रिका ११।८

यहाँ तुलसी ने शिव से गुरु, पिता, माता, बन्धु तथा स्वामी का सम्बन्ध माना है । इसका यह अर्थ तो है ही कि वे तुलसी के सर्वेसर्वा और हर प्रकार से हितैषी हैं । परन्तु क्या शिव से उनका कोई सम्बन्ध घनिष्ठ या प्रमुख भी है । हनुमानबाहुक में मिलता है --

> सीतापति साहेब, सहाय हनुमान नित,
> हित उपदेस को महेस मानो गुरु के ।
> मानस बचन काय सरन तिहारे पाँय,
> तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुर के ।। - छन्द ४३

कई बातें कहते समय जो पहले कही जाती है वह प्राय: अधिक महत्त्वपूर्ण तथा विश्वसनीय होती हैं । मानस में तुलसी के मन ने शिव से सर्वप्रथम गुरु का सम्बन्ध माना है जो प्राथमिकता के आधार पर अधिक महत्व रखता है और इस सम्बन्ध की पुष्टि हनुमान बाहुक के
कथन से भी हो जाती है। मानस की चौपाई के चतुर्थ चरण का भाव बाहुक के
छन्द के दूसरे चरण के समान है । हनुमानबाहुक कवि के अन्तिम काल की रचना है, जब वह बाहुपीड़ा से पीड़ित थे। १६३१ वि० में मानस की रचना से अब-

तक लगभग ५० वर्ष बीत चुके थे । इस मध्य तुलसी के सभी सम्बन्धों का स्थिर हो जाना आवश्यक था और यह सत्य है कि शिव के प्रति स्थापित उनका प्रारम्भिक सम्बन्ध अन्ततक दृढ़ बना रहा ।

रामचरितमानस प्रारम्भ करते समय तुलसी ने पहले वाणी-विनायकका स्तवन किया है । काव्य-प्रणायन में रत हो रहे हैं इसलिए वाणी या सरस्वती का मंगल-दायक होना आवश्यक है और गणेश विघ्नविनाशक हैं । इसके बाद पार्वती और शिव की श्रद्धा तथा विश्वास के रूप में स्तुति है । तीसरे श्लोक में तुलसी गुरु की वन्दना करते हैं –

> बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणाम् ।
> यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्र: सर्वत्र वन्द्यते ।।

प्रथम चरण में गुरु की तुलना के लिए तुलसी को कोई लौकिक उपमान उपयुक्त नहीं लगा । और द्वितीय चरण का विशेषण लौकिक गुरु का न होकर शिव पर ही घटित होता है - जिनके आश्रय से वक्र चन्द्रमा भी वन्दित होता है । यदि इस चरण को देखें तो उसमें शिव की ही स्तुति है । अन्तत: यहाँ पर प्रधानता शिव की ही हो गई है ।

आगे गुरु-वन्दना में एक सोरठा है । मुद्रित प्रतियों में उसका पाठ है --

> बंदउं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि ।
> महामोह तमपुंज , जासु बचन रविकर निकर ।।

यहाँ गुरु को हरि रूप माना है, जबकि ऊपर संस्कृत-श्लोक में 'शंकररूपिणाम्' । जो परस्पर विरोधमूलक है प्राथमिकता के आधार पर पूर्व कथन अधिक महत्वपूर्ण है और उसकी पुष्टि शिव को गुरु मानने विषयक अन्य कथनों से भी हो जाती है ।

ऊपर के सोरठों को देखते हुए प्रस्तुत सोरठे की अतुकान्तता पर ध्यान जाता है । शेष चारों सोरठों में अन्तिम पदतुकान्त है - बदन-सदन, गहन-दहन, नयन-सयन, करुना अयन-मर्दन मयन । फिर यहाँ दूसरे तथा चौथे चरण के तुकान्त होने

की धारणा उत्पन्न होती है जिसके अनुसार हर पाठ होना चाहिए । इण्डियन प्रेस (प्रयाग) से प्रकाशित रामचरितमानस तथा १८७० और १८७८ वि० की दो पाण्डु-लिपियों[१] में यहाँ 'हर' पाठ ही दिया है । इससे गुरु वन्दना वाले संस्कृत श्लोक से साम्य हो जाता है –

बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।

और – बन्दौं गुरुपद कंज, कृपासिन्धु नर रूप हर ।

यहाँ गुरु के वचनों को महामोह रूपी अन्धकार का नाश करने के लिए सूर्य के समान कहा है । कुछ ऐसी ही शब्दावली का प्रयोग विनयपत्रिका के शैव स्तोत्रों में हुआ है –

मोह-निहार-दिवाकर संकर । ६।४ ,
मोह-तम-तरणि हर रुद्र शंकर । १०।१
मोह-तम -भूरि-भानुं । १२।४
अहंकार निहार उदित दिनेस । १३।४

इससे यह धारणा पुष्ट हो जाती है कि मूल में तुलसी को 'कृपासिन्धु नर रूप हर' पाठ ही अभिधेय था । सम्भव है बाद में लौकिक गुरु के नरहरिदास नाम के आधार पर उन्होंने हरि पाठ रख दिया हो ।

शिव रामकथा के अधिष्ठाता हैं शिव और सर्वप्रथम उन्हीं ने इसे प्रकाशित किया था । तुलसी उसका वर्णन कर रहे हैं इसलिए गुरु-शिष्य सम्बन्ध हो ही गया । रामचरितमानस के प्रमुख वक्ता शिव होने से भी यह सम्बन्ध आवश्यक था । पीयूषकार के अनुसार गुरु भवसागर से पार कराता है और मानस के उत्तरकाण्ड में गुणागार संसार-पारं नतोऽहं ( दोहा १०८ के पूर्व रुद्राष्टक का दूसरा चरण) कहा गया है , जिससे तुलसी का शिव-शिष्य होना सिद्ध होता है ।[२] भारतीय मनीषा में गुरु को

---

१. तुलसी संदर्भ, पृ० १४६ की दूसरी पाद टिप्पणी
२. मानस-पीयूष, बालकाण्ड (प्रथम भाग), पृ० ७३

भगवान् के तुल्य माना है । अज्ञान का निवारण करने के लिए परमेश्वर तथा गुरु में समान श्रद्धा आवश्यक है -

यस्यदेवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः । श्वेताश्वतरोपनिषद् ६।२३

और तुलसी राम तथा शिव में कोई अन्तर नहीं रखना चाहते हैं, इसलिए यह सम्बन्ध-स्थापन स्वाभाविक है ।

मानस की रचना के विषय में मूलगोसाईंचरित में कई रोचक तथ्यों का समावेश है । उसके अनुसार तुलसी ने रामकथा की रचना संस्कृत में प्रारम्भ की थी, परन्तु दिन में जो रचते थे रात में नष्ट हो जाता था । इस पर शिव ने उन्हें 'निज-बोली' में काव्य-रचना का स्वप्न दिया और पार्वती के साथ साक्षात् प्रकट होकर तुलसी को आदेश दिया कि वे अवध में रहकर 'भाषा' में काव्य-रचना करें । उन्होंने कहा कि मेरे पुण्य प्रसाद से तुम्हारी काव्यकला सामवेद के समान सफल होगी ।[१] शिव से आदेश पाकर तुलसी ने अवध में मानस की रचना की और फिर काशी में उसे शिव-पार्वती को सुनाया । पाठ समाप्त कर रात को प्रति शिवलिंग के पास रख दी गई । शिव ने उसका अनुमोदन किया और प्रातःकालजब मन्दिर के कपाट खुले तो प्रतिपरदिव्याक्षरों में सत्यं शिवं सुन्दरम् लिखापाया गया ।[२]

तुलसी पर शिव अनुग्रह की दो घटनाओं का विवरण गोसाईं चरित में भी मिलता है । पहली के अनुसार तुलसी के काशी आ जाने पर स्थानीय विद्याधर पंडित की प्रतिष्ठा कम हो गई । इससे वह तुलसी से ईर्ष्या रखने लगे और उन्हें मारना चाहा। एक दिन जब वह दुष्टों को लेकर मारने पहुंचा तो गदाधारी व्यक्ति को तुलसी का रक्षक पाकर भाग आया । तब उसने तुलसी से काशी परित्याग का वर मांग लिया । काशी से प्रयाण के पूर्व तुलसी ने शिव का दर्शन किया और चित्रकूट को चल दिये । इसी समय जब दुष्ट लोगों ने विश्वेश्वर के मंडप में जाना चाहा तो मंडप के द्वारा अकस्मात् बन्द हो गए और आकाशवाणी हुई कि तुलसीदास को वापिस बुला लो अन्यथा हरि-भक्त

---

१. गोसाईं चरित, परिशिष्ट, पृ० ३८७, ३७ वें दोहे के ऊपर की चौपाइयां

२. वही, पृ० २६०, दोहा ४७ तथा छन्द ६

के अपमान का तुम्हें प्रलय सदृश घोर दण्ड मिलेगा।[१] चित्रकूट गमन प्रसंग में कहा है कि नीमसार से वापिस आकर तुलसीदास बहुत समय तक काशी में रहे । जब हनुमान् की आज्ञा से चित्रकूट को चलने लगे तो शिव ने दण्डी का रूप धारण कर उन्हें रोकना चाहा । तुलसीदास ने कहा कि मैं प्रभु की आज्ञा से जा रहा हूं । तब शिव ने ध्यान लगाकर यथार्थ स्थिति जान ली और प्रत्यक्ष दर्शन देकर शीघ्र वापिस आने का आदेश दिया ।[२]

इन अलौकिक घटनाओं में भले ही सत्यता का अभाव हो पर इतना तो मानना पड़ेगा कि इनके रचयिता तुलसीका शिव से घनिष्ठ सम्बन्ध मानते थे । यह सम्बन्ध भी गुरु-शिष्य जैसा ही है । गोसाईं चरित के चित्रकूट गमन-प्रसंग में जब तुलसी प्रभु आज्ञा से चित्रकूट जाने की बात करते हैं तो शिव सबकुछ जानकर गुरुवत् उसका अनुमोदन कर देते हैं ।

इसी प्रकार की एक घटना गौतम-चन्द्रिका में भी मिलती है, जिसमें तुलसी स्वयं अपने को शिव का शिष्य बताते हैं । तुलसी की कीर्ति एवं कृत्यों से आकर्षित होकर भक्त लोग उनके पास विद्यार्जन तथा मन्त्र लेने के लिए आने लगे । इन समागतों को तुलसी का उत्तर होता था –

मन्त्र न जन्त्र न तन्त्रबल बिधा रामअधार ।
तुलसी चेरो जगत्गुरु संकर के दरबार ।।[३]

शिव को जगद्गुरु मानस में भी कहा गया है –

तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना । १।१११।५

फिर तुलसीदास भी तो जगत् के ही एक अकिंचन् जन हैं ।

---

१. वही, काशीखण्ड, १३ वां प्रसंग

२. वही, चित्र कूट खण्ड, २० वां प्रसंग ,

३. गौतमचन्द्रिका में तुलसीदास का वृत्तान्त (नागरीप्रचारिणी पत्रिका, २०१२ वि०, वर्ष ६०, अंक १ का अभिमुद्रण ) , पृ० १७

इस प्रकार तुलसी-साहित्य में शिवत्व का संयोग आकस्मिक न होकर उसकी गहन परिव्याप्ति है । इसके रूप भी विभिन्न हैं । जहाँ तुलसी ने वैष्णव ग्रन्थ के समानान्तर शैव ग्रन्थ की रचना की है, वहीं वैष्णव ग्रन्थ रामचरितमानस में शैव आख्यानों को संगुंफित कर उन्हें रचना का अभिन्न अंग बना दिया है । उनके काव्य में शैव उपमान , शैव अन्तर्कथायें तथा शैव अभिधान इतने सरल स्वाभाविक रूप में आये हैं जैसे कोई शैव हृदय उनका प्रयोग करेगा । शिवपुराण का तुलसी पर इतना गहन प्रभाव देखकर लगता है कि उसका उन्होंने एकाधिक बार अध्ययन किया होगा क्योंकि शिवचरित,तथा नारदमोह के प्रसंग में कतिपय स्थल जिस प्रकार से शिवपुराण के अक्षरश: अनुवाद हैं वह तभी सम्भव है जब या तो मूल सामने रखकर लिखा जाये या वह अंश कंठस्थ हों । तुलसी के सम्बन्ध में दूसरी बात ही अधिक सम्भाव्य है । कथा के प्रमुख पात्र एक साथ शैव -वैष्णव होकर समन्वय का आदर्श प्रस्तुत करते हैं और स्वयं तुलसी ने वैष्णव स्तुतियों के साथ शैव स्तुतियों की रचना तथा शिव को गुरु मानकर अपने उर्वर कवि हृदय से सहिष्णुता का अप्रतिम आदर्श प्रस्तुत किया है ।

## ख. तुलसी-साहित्य में शिव का स्वरूप एवं उनकी स्थिति -

वातुल शुद्धागम के अनुसार शैव-सिद्धान्तों में तीन तत्वों—शिव, सदाशिव तथा महेश की मान्यता है । इन्हीं को क्रमश: ~~बहुत से~~ ब्रह्म के निश्कला, सकला-निश्कला तथा सकला अर्थात् सूक्ष्म, स्थूल-सूक्ष्म और स्थूल अथवा तत्व, प्रभाव और मूर्ति स्वरूप कहा जाता है । निश्कला रूप में ब्रह्म का न आदि है न अन्त, वह निस्सीम, निराकार तथा सर्वशक्ति सम्पन्न परब्रह्म है । संसार के समस्त जीवों का तिरोधान उसी में होता है । परन्तु सृष्टि, स्थिति तथा लय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध महेश का है । यह एकमुखी, त्रिनेत्र तथा जटाजूट से सुसज्जित हैं । पद्मासन पर खड़े महेश दो हाथों में मृग तथा परशु धारण किए हैं तथा उनके शेष दो हाथ अभय और वरद मुद्राओं में हैं । भक्तों के लिए यह स्थानक,आसनस्थ,नृत्यरत, वाहनारूढ़, उग्र,सौम्य आदि विविध लीला-रूप धारण करते हैं । महेश की पच्चीस लीलामूर्तियाँ निम्नलिखित हैं —

| | |
|---|---|
| १. चन्द्रशेखर मूर्ति | १४. अर्धनारीश्वर मूर्ति |
| २. उमासहित ,, | १५. किरात ,, |
| ३. वृषभारूढ ,, | १६. कंकाल ,, |
| ४. नृत्त ,, | १७. चण्डेशानुग्रह ,, |
| ५. कल्याणसुन्दर ,, | १८. विषापहरण ,, |
| ६. भिक्षाटन ,, | १९. चक्रदान मूर्ति ,, |
| ७. कामदहन ,, | २०. विघ्नेश्वरानुग्रह ,, |
| ८. कालान्तक ,, | २१. सोमास्कन्द ,, |
| ९. त्रिपुरान्तक ,, | २२. एकपाद ,, |
| १०. जलन्धर वध ,, | २३. सुखासन ,, |
| ११. गजारि ,, | २४. दक्षिणा ,, |
| १२. वीरभद्र ,, | २५. लिंगोद्भव ,, |
| १३. शंकरनारायण ,, | |

इन्हीं महेश्वर की नासिका से वायु, मुख से ज्ञान, ग्रीवा से गणेश, वक्ष से षण्मुख, नाभि से पचास करोड़ देवों, केशों से असंख्यकरोड़ ऋषियों, तीन नेत्रों से सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि और एक सहस्रांश भाग से रुद्रदेव का आविर्भाव हुआ है। एक करोड़वें रुद्रभाग से विष्णु तथा एक करोड़वें विष्णु भाग से ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए हैं।[1]

स्वरूप-निर्माण का प्रस्तुत विवरण दृष्टि विशेष से सम्बद्ध होने के कारण सर्व-मान्य नहीं है। बहुप्रचलित मान्यता तथा लक्षण-ग्रन्थों के अनुसार शैव प्रतिमायें दो प्रकार की हैं -- लिंग प्रतिमा तथा रूप प्रतिमा। लिंगप्रतिमाओं के चल, मृण्मय, लौहज, रत्नज, दारुज, शैलज, क्षणिक, स्वयंभू, दैविक आदि विविध भेद हैं। एक अन्य प्रकार से उन्हें यथार्थ लिंग और मुखलिंग नाम से दो वर्गों में रख सकते हैं। मुखलिंग एक, तीन,

---

१. एलीमेन्ट्स आफ हिन्दू आइकनोग्राफी, द्वितीय भाग, द्वितीय खण्ड, पृ० ३६१-३७०

चार और पांचमुखी होती हैं। रूप प्रतिमायें मुद्रा के आधार पर शान्त या सौम्य और अशान्त या उग्र दो प्रकार की हैं। इनके अवान्तर भेद निम्न हो सकते हैं --

अ. शान्त या सौम्य शैव प्रतिमायें (स्वरूप)

क. अनुग्रह मूर्तियां :

१. विष्णवानुग्रह या चक्रदान मूर्ति,
२. अर्जुन अनुग्रह या किरातार्जुनीयमूर्ति,
३. रावण ,,
४. चण्डेश ,,
५. नन्दीश ,,
६. विघ्नेश्वर ,,

ख. नृत्त मूर्तियां :

७. नादान्त ( नटराज ) मूर्ति
८. ललित ,,
९. ललाटतिलक ,,
१०. कटिसम ,,
११. तालसंस्फोटित ,,

ग. दक्षिण मूर्तियां :

१२. योगमूर्ति ,,
१३. ज्ञान ,,
१४. व्याख्यान ,,
१५. वीणाधर ,,

घ. विशिष्ट मूर्तियां :

१६. गंगाधर मूर्ति ,,
१७. अर्धनारीश्वर ,,
१८. हरिहर ,,

ङ. सामान्य मूर्तियां :

१९. उमा सहित मूर्ति
२०. चन्द्रशेखर मूर्ति

२१. आलिंगन चन्द्रशेखर मूर्ति
२२. वृषवाहन मूर्ति
२३. सुखासन मूर्ति
२४. उमा-महेश्वर मूर्ति
२५. सौमा-स्कन्द मूर्ति
२६. कल्याणसुन्दर मूर्ति
२७. सदाशिव मूर्ति आदि,

आ. अशान्त या उग्र शैव प्रतिमायें (स्वरूप)

क संहार मूर्तियाँ :

१. कामान्तक मूर्ति,
२. त्रिपुरान्तक मूर्ति,
३. अन्धकान्तक मूर्ति
४. जलन्धर-वध मूर्ति,
५. वीरभद्र मूर्ति,
६. ब्रह्मशिरश्छेदक ( कंकाल या भिक्षाटन) मूर्ति,
७. मल्लारि शिव मूर्ति,
८. कालारि मूर्ति,
९. गजान्तक मूर्ति,
१०. शरभेश मूर्ति,

ख. भैरव मूर्तियाँ

अ. ब्राह्मणों के अनुसार बालरुद्र सोकर जागने पर नाम के लिए रोये। आठ बार ऐसा करने से उनके आठ नाम निम्न हैं —

| | |
|---|---|
| १. रुद्र | ५. अशनि |
| २. शर्व, | ६. भव |
| ३. पशुपति | ७. महादेव |
| ४. उग्र | ८. ईशान |

आ. अपराजित पृच्छा ( सूत्र २१२) में एकादश रुद्रों के लक्षणों में उपरोक्त अष्ट रुद्र के ईशान और भव के अतिरिक्त नौ नाम भिन्न दिये हैं --

| | |
|---|---|
| १. सद्योजात | ६. विजय |
| २. अघोर | ७. किरणाक्ष |
| ३. वामदेव | ८. अघोरास्त्र और |
| ४. तत्पुरुष | ६. श्रीकण्ठ |
| ५. मृत्युंजय, | |

इ. आगमों में निम्नआठ वर्गों के अन्तर्गत चौसठ रुद्रों के नाम मिलते हैं। यह चौसठ रुद्र योगिनियों के अधिपति हैं --

| | |
|---|---|
| १. असितांग समूह | ५. उन्मत्त भैरव समूह |
| २. रुरु ,, | ६. कपाल भैरव ,, |
| ३. चण्ड ,, | ७. भीषण ,, |
| ४. क्रोध ,, | ८. संहार ,, |

इनके अतिरिक्त रौद्र पाशुपत, विरुपाक्ष, महाकाल, वटुक भैरव आदि कुछ अन्य उग्र शैव विग्रह भी मिलते हैं।

तुलसीदास शिव के किन-किन स्वरूपों से परिचित थे यह जानने के निम्न माध्यम हो सकते हैं --

क. तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त शिव के पर्याय,

ख. सन्दर्भित अन्तर्कथाएं

ग. वर्णन में प्रयुक्त शिव के विशेषण

घ. शिव का स्वरूप वर्णन।

## क. तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त शिव के पर्याय :

तुलसी साहित्य में शिव के लगभग पैंसठ पर्याय मिलते हैं। इनमें से सर्वाधिक तैंतीस पर्याय अकेले रामचरितमानस में प्रयुक्त हुए हैं। दूसरा स्थान विनयपत्रिका का है जिसमें पच्चीस और तीसरा स्थान कवितावली का है जिसमें चौबीस पर्यायों का प्रयोग

हुआ है । वैविध्य की दृष्टि से पार्वतीमंगल लघुकृति होते हुए भी उसमें प्राय: नवीन पर्याय आये हैं । इसमें कुल सत्तरह शैव पर्याय मिलते हैं, जिनमें से चन्द्रभूषण, नीलकंठ, ईशान,पशुपति तथा प्रमथनाथ का प्रयोग केवल इसी ग्रन्थ में हुआ है । यह सभी पर्याय निम्न वर्गों में आते हैं -

१. कामारि ( रा०१।१२०क, ६।श्लोक १, वि०१०।६,५०।६,५४।३, ५५।१) इस वर्ग में आने वाले अन्य पर्याय मन्मथारि, कामरिपु (गी० १।६३।१), मर्दन-मयन् (रा० १।सो० ४) , अनंगआराती (रा०१।१०८।७) , मनोज नशावन (रा० १।५०।३) तथा मदनमदमोचन (रा० १।८६।१) हैं । तुलसी ने अन्तर्कथा के रूप में कामदहन का उल्लेख करते हुए रामचरितमानस के प्रारम्भ में शिवचरित के अन्तर्गत इस पूरी कथा का वर्णन किया है । सम्भवत: नारी के प्रति उदासीन होने के कारण ऐसे पर्यायों की संख्या नौ है ।

कामदहन की कथा का संक्षिप्त उल्लेख किया जा चुका है ।

२. पुरारि ( ब०५६,जा०६३, क० १।१०,२।६ आदि ) इससे मिलते-जुलते दो अन्य नाम हैं - त्रिपुरारि ( क० ६।१, ६।५६, वि० ६।४,१८।२) तथा त्रिपुरआराती (रा० १।५७।८)।शैव अन्तर्कथाओं का वर्णन करते समयइस आख्यान पर विचार हो चुका है ।

इन दोनों नामों से सम्बद्ध आख्यानों के आधार पर कामान्तक तथा त्रिपुरान्तक मूर्तियां बनाने का विधान है जो शिव के उग्र स्वरूप के अन्तर्गत संहार-मूर्तियों में आती हैं ।

३. गौरीश (रा० १।१०४।४), ५।३३।२, ६।२८, गी० ५।२८।७) यह नाम तीन प्रकार के हैं -

क. शक्ति के उग्र रूप से सम्बद्ध - चंडीश (क०१।१८,१।२१) ,चंडीपति (क० ६।४१)

ख. शक्ति पर स्वामित्व सूचक - गौरीश, गौरीनाथ (क०७।१६६) ,भवानी-नाथ ( क०७।१६६)

ग. दाम्पत्यसूचक -

अ. सामान्य-गिरिजापति(वि०६।१,जा०१),उमापति (वि०४।४),

उमावर ( वि० ७।१८)

आ. शृंगारिक - गिरिजारमन (रा० १।१०३) तथा उमारमन (रा०१।सौ०४)

यह नाम शिव के सौम्य स्वरूप से सम्बद्ध हैं । पार्वती को लेकर शिव की उमासहित, उमा-महेश्वर, कल्याणासुन्दर आदि मूर्तियां बनाने का विधान है । तुलसी ने पार्वती-मंगल का वर्णन मानस के अतिरिक्त प्रथक कृति में भी किया है इसलिए सम्भव है कि कल्याणासुन्दर मूर्ति से भी परिचित रहे हों । कल्याणासुन्दर की स्थानक मूर्तियों में ब्रह्मा को पौरोहित्य कार्य करते प्रदर्शित किया जाता है और अन्य देवतागण पृथ्वी तथा आकाश से मंगल-कार्य देखते मिलते हैं । तुलसीदास द्वारा वर्णित शिव-पार्वती विवाह में भी ब्रह्मा वैवाहिक कृत्यों की व्यवस्था करते हैं और देवगण बरात में उपस्थित होते हैं ।

४. शशिशेखर ( पा०ह०५, मं० ६६; क० ७।१६६) ; शिव - तुलसी साहित्य में शिव के सौम्य स्वरूप चन्द्रशेखर के अन्य पर्याय चन्द्रभूषण (पा०ह० १) , चन्द्रमौलि (रा०१।६४।७), चन्द्रअवतंश (रा० १।८८।६) , चन्द्रललाम (वि० १५७।२) तथा चन्द्रमाललाम (क०१।६) हैं । जटामुकुट में चन्द्रमा धारण करने के कारण उन्हें इस नाम से पुकारा जाता है । इस स्वरूप की मूर्तियां दक्षिण भारत में अधिक मिलती हैं, जिनमें चतुर्भुजी शिव को मृग तथा परशुधारण किए दिखाया जाता है । उनके शेष दो हाथ अभय और वरद मुद्रा में रहते हैं । उनके ध्यान मन्त्र का एक अंश है - परशुमृगवराभीतीहस्तम् । तुलसीदास ने शिव को परशु या मृगधारी कहीं नहीं कहा है । इससे प्रतीत होता है कि वे शिव के चन्द्रधारी स्वरूप से परिचित होते हुए भी उसके मूर्तिशास्त्रीय लक्षणों से अनभिज्ञ थे ।

५. शूलपाणि (ह०१२,१३) : शूल धारण करने के कारण शिव को शूलपाणि, शूलधर (क०७।१४६) , शूलिन् (वि०१२।४) आदि नामों से अभिहित किया जाता है । तुलसीदास ने इन्हीं तीन नामों का प्रयोग किया है ।

६. गिरीश ( पा० २, गी० १।२।२४) कैलाश वासी होने के कारण शिव गिरीश कहलाते हैं, रावणाअनुग्रह की सौम्य मूर्तियों में उन्हें पार्वती तथा परिचरों के साथ कैलास पर आसीन दिखाया जाता है । तुलसी ने शिव को गिरिनाथ (रा०१।४८।५) भी कहा है ।

७. वृषभेश (वि० ११।५) - शिव का वाहन वृषभ है और उस पर आरूढ़ होने के कारण शिव वृषभेश कहलाते हैं। इससे सम्बद्ध वृषवाहनमूर्ति शिव के सौम्य स्वरूपों में आती है।

इन प्रमुख नामों के अतिरिक्त तुलसी द्वारा प्रयुक्त अन्य शिव पर्यायों को स्वरूप के आधार पर निम्न दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :--

क. रुद्रता सूचक

१. रुद्र (दो०१४२, रा० १।८६।४ आदि)।
२. पशुपति (पा०छं० १२)।
३. भव (रा० १।४।१ आदि)।
४. शर्व (वि० ५३।१,५७।५)।
५. ईशान (पा० ६४,छं० १३)।
६. महादेव (क०७।१६७ आदि)।
७. वामदेव (छं० ६,१४,पा०२६,५२)
८. भैरव (वि० ११ क०७।१५२)।

इनमें से प्रथम छ: स्वरूपों की गणना अष्ट रुद्रों में की जाती है और वामदेव को अपराजित पृच्छा के एकादश रुद्रों में सम्मिलित किया गया है।

ख. सौम्यतासूचक

१. सदाशिव (वि०३।३,गी० १।१२।४)।
२. गंगाधर (वि० १२।३)।

प्रस्तुत नाम ऐसे हैं जिनके मूर्तिविधान का शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णन किया गया है और इन स्वरूपों की मूर्तियां उपलब्ध होती हैं। इनके अतिरिक्त तुलसी द्वारा प्रयुक्त कुछ शिव नाम ऐसे हैं जिनके मूर्तिकरण के लक्षणों का अभाव है।

अ. महत्तासूचक

१. महेश (०छं० १७,४३, ब० १५, ५३ वै० ३४, क० १।१६,वि० ६४।२ आदि) सो आगमों में महेश त्रितत्वों में से एक हैं।
२. सुरनाथ : (रा० १।१०६।८) यह महादेव का पर्याय हो सकता है।
३. सुरराज (रा०१।११०।३) ; सामान्यत: इसका प्रयोग इन्द्र के लिए होता है।

४. काशीपति (वि० १३।६) : शिव काशी के स्वामी हैं, इस आधार पर यह अधिकार सूचक नाम है ।

५. विश्वनाथ (क० ७।१८२ आदि) :

६. ईस (वि० १७।१, २०।१, क० ५।३२ आदि) :

७. भवेश (क० ७।१५२,१६१,१६२ आदि) :

अष्टरुद्रों में एक नाम भव का है, परन्तु सम्भवतः तुलसीदास का अभिप्राय उससे न होकर सृष्टि के अधिपति से रहा लगता है ।

आ. कल्याणसूचक

१. शिव (गी०५।४।४१।२, वि० ६३।८, रा० ९।१५।८ आदि ) ।

२. शम्भु(रा०१।१।३,दो० २३७,रा०प्र०१।२।१,गी०१।२५।६ आदि) ।

३. शंकर (ह० ४४,दो० ६६,१०१ आदि )

इ० स्वभावसूचक

१. भोलानाथ : (ह० ३४,क० ७।१६६) : सौम्य ।

२. आशुतोष (रा० २।४४।८) : सौम्य ।

३. हर (ह०४,३३,४२ आदि ) : सृष्टि संहारक के रूप में रौद्र ।

४. हर्ता (ह०३०) :

ई. आकृति- : आधृत

१. पंचमुख (ह०३): शिव के मुखलिंगों में एक भेद यह भी है, जिसमें पांच मुखों के नाम सद्य,वामदेव,अघोर,तत्पुरुष तथा ईशान हैं ।[१]

२. त्रिलोचन (क०७।१४६,१५०आदि) : कामदहन के समय शिव ने ललाट के तृतीय नेत्र से अग्नि-निक्षेप किया था । इस प्रकार इसका सम्बन्ध शिव के कामान्तक स्वरूप से है ।

३. नीलकंठ (पा० २७) : शिव ने समुद्रमंथन से उत्पन्न विष का पान करते समय उसे कंठ में रोक लिया था । इससे कंठ नीलवर्ण हो गया था । आगमों में वर्णित महेश की पच्चीस लीलामूर्तियों में इसे विषापहरण-मूर्ति कहा जाता है ।

उ. अभिधान-आधृत

१. पिनाकी(क०७।१५३) : शिव द्वारा गृहीत पिनाक के आधार पर

---

१. अपराजितपृच्छा,सूत्र २०४।१४-१६

२. भुजगराज भूषण (रा० १।१०६।८) : शिव नागों का ही ग्रैवेयक, भुजबन्ध आदि धारण करते हैं, इसलिए यह नाम दिया गया ।

३. वृषकेतु (रा० १।३५आदि) : शिव का वाहन वृषभ है और उनकी पताका पर भी इसी का निरूपण है । श्रीनगर के एस०पी०एस० संग्रहालय के एक हरिहर चित्र में पताका पर वृषभ का स्पष्ट चित्रण है ।

## ख. सन्दर्भित अन्तर्कथाएँ

तुलसीदास के साहित्य में उल्लिखित अन्तर्कथाओं में से कामदहन, त्रिपुर, अन्धक तथा जलन्धर-वध , दक्ष-यज्ञ-विध्वंस, शिव के विषपान और ज्योतिर्लिंग के आधार पर क्रमश: कामान्तक, त्रिपुरान्तक, अन्धकान्तक, जलन्धरवधमूर्ति, वीरभद्र, विषापहरण और लिंगोद्भव मूर्तियों के निर्माण का विधान मिलता है । इनकी कथाओं का उल्लेख किया जा चुका है । प्रथम पांच कथाओं का सम्बन्ध शिव के रौद्र रूप से है । तुलसी के अनुसार शिव ने जिस विषम परिस्थिति में गरल पान किया था उसके आधार पर उनका शिवत्व एवं दयालु रूप प्रकाश में आता है । ज्योतिर्लिंग शिव की महत्ता का परिचायक है ।

मानस के शिवचरित तथा पार्वतीमंगल में तुलसीदास ने शिव-पार्वती परिणय का वर्णन किया है । तारकासुर के अत्याचारों से पीड़ित सृष्टि को परित्राण देने का एक ही उपाय था कि शिव से उत्पन्न पुत्र को सेनापति बनाकर देवता युद्ध करें । इस कार्य के लिए शिव का सहमत होकर उसे कार्यरूप में परिणत करना उनकी दयालुता का प्रमाण है । शिव द्वारा पार्वती के पाणिग्रहण पर आधारित मूर्ति को कल्याणसुन्दर नाम से बनाने का विधान है ।

## ग. वर्णन में प्रयुक्त शैव विशेषण

तुलसीदास ने शिव के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग किया है, वे तीन प्रकार के हैं –

१. निर्गुणात्मक :
२. सगुणात्मक :
३. निर्गुणात्मक-सगुणात्मक ।

१. निर्गुणात्मक :

सच्चिदानन्दघन (क०७।१५०, वि० १०,१२ )

अकल ( वि० १० ) निरुपाधि (वि०१०)

निर्गुण (वि० १०,१२,१३); (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक १)

निरंजन (वि०१०) ब्रह्म (वि० १०)

अज (वि०१६) (मानस ७।१०८,रुद्राष्टक ५)

निर्विकार ( वि० १०, १२ );सर्वव्यापक (वि० १०)

ज्ञान-विज्ञान रूप (वि०११) वेदातीत (वि० १२)

निर्मल (वि० १२) कालातीत (वि० १२)

निराकार (वि० १३); (रा०७।१०८ रुद्राष्टक २)

अविनाशी (रा० १।२६ ।१ , १।४६।३)

निर्विकल्प (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक १),

निरीह (रा०७)१०८,रुद्राष्टक १) ; चिदाकाश ( रा० ७।१०८,रुद्राष्टक १)

आकाशवास अर्थात् अनन्त (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक १) , अ

ओंकार ( प्रणव)- मूल(रा० ७।१०८,रुद्राष्टक २)

गिरा-ज्ञान-गोतीत ( रा० ७।१०८, रुद्राष्टक २)

संसारपार (रा० ७।१०८, रुद्राष्टक २)

ब्रह्माण्ड रूप (वि० १०); संसार जिनका अंशमात्र है (वि० १०)

अखण्ड (रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ५)

चिदानन्दसंदोह ( रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ६)

सर्वभूत -अधिवासी (रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ६ )

अन्तर्यामी (रा० १।५१।५) आदि ।

२. सगुणात्मक : इन

इन विशेषणों से शिव के जिन स्वरूपों का निर्माण होता है वे दो प्रकार के हैं -

क. रौद्र -

विशाल लाल नेत्र (क०७।१५६, वि० १० )

भयंकर वेष (क०७।१६०, वि० १२) ताण्डवकारी (वि०१०,११)

सृष्टि संहारक या प्रलयकारण (वि० १०,११)

उग्र (वि०१०) शर्व (वि० १०)

भीषणाकार (वि०११) भयंकर (वि०११)

महाकाल (वि० ११,१२) प्रथमराज ( वि० १३)

भूतनाथ (क० ७।१५२) भीम ( क०७।१५१, १५२)

भयानक (क० ७।१५२) भयभवन ( क० ७।१५२)

भैरव (क०७।१५२),वि० ११) प्रचण्ड (रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ५)

दुर्धर्ष ( रा० १।९८।४) विकराल भूत -वैताल-प्रेत-पिशाच प्रिय (क०७।१५१,१५४,१६८,वि० ११) आदि

ख. सौम्य -

गंगाधर (क० ७।१४६,१५०,१५५,१५६, वि० १०,११,१२ रा० ७।१०८,रुद्रा०३)

बालचन्द्रधर ( क० ७।१४६, वि० १०,११,१२,रा० ७।१०८,रुद्राष्टक ३)

विषपायी (क०७।१४६,१५०,१५२,१५७,१५८,१७०)

जनरंजन ( क० ७।१५०,१५२) कुन्द वर्ण (क० ७।१५०,वि० १०,१२)

इन्दुवर्ण (क०७।१५०,वि०१०,१२) कर्पूरवर्ण(क०७।१५०,वि०१०,१२,१३)

शंखवर्ण ( वि० १०,१२) गौरवर्ण(क०७।१५०,१५८,वि०११,१२,१३)

हिमाचल सदृश गौर वर्ण (रा० ७।१०८,रुद्राष्टक ३)

शिव ( क० ७।१५०)

अभिरामधाम (क०७।१५०,१५२,वि० १०,११)

उमारमन (क० ७।१५०,वि० ११) गुणभवन या गुणागार(क०७।१५०,वि११)

विषम भोजन (क० ७।१५१)

भोले या भोलानाथ ( क० ७।१५३, १५६,१६१,१६२,१६३,१६६)

दरिद्रशिरोमणि (क० ७।१५४) घर में भांगधारी (क० ७।१५४,१५५)

भांगभक्षक ( क० ७।१५६) आंगन में धतूरा सम्पन्न ( क० ७।१५४, १५५)

सुन्दर ( क०७।१५६) भिखारी वेष (क० ७।१६०)

अशुभ देखने पर भी कल्याण राशि ( वि० १०)

पार्वतीपति (वि० १२) परम रम्य (वि० १२)

राजीव लोचन (वि० १२) अर्धनारीश्वर(क०१४६,१५०,१५१,१६०, वि० १०)

प्रसन्न मुखाकृति (रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ४)आदि

ग. सामान्य

यह विशेषण ऐसे हैं जिनका प्रयोग रौद्र तथा सौम्य दोनों स्वरूपों में किया जा सकता है।

भस्मधारी ( क० ७।१४६, १५१,१५२,१५५,१५८,१५६, वि० १०,११)

सर्पधारी (क० ७।१४६-१५२,१५४,१५५,१५८, १५६, वि० ६-१२ ,रा० ७।१०८ रुद्राष्टक - ३)

मुण्डमालधारी (क० ७।१४६,१५१, वि० १०,११,रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ४)

डमरूधारी (क० ७।१४६,१५१,१५५,१५८)

याचकप्रिय ( क० ७।१५४) वरदायक (क० ७।१५५)

श्मशानवासी (क०७।१५५,१५८,वि० ६) कौतुकी (क० ७।१५५)

करुणामय (क०७।१५७, वि० ६,१०,११)

वृषवाहनप्रिय ( क०७।१५८, १६०, वि० १०,११)

भस्म की सम्पत्ति सम्पन्न ( क० ७। १५८, १६० )

पिंगल जटाजूट ( क० ७।१५६, वि० १०, ११ )

शृंगी ( क०७।१५६)

दयालु (क०७।१६०, वि० ३,७,६,१२,१३ , रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ४)

दीनबन्धु (क० ७।१६०,वि० ३) विश्वनाथ (दो० २४०)

शरणागतवत्सल (वि० ६)

कोटि सूर्यसदृश शारीरिक तेज सम्पन्न (वि०१०,रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ५)

श्रवणकुण्डलधारी ( वि० १०,११, रा० ७।१०८, रुद्राष्टक ३ )

अवधूत (वि० १० ) बाणधारी (वि० १०,११)

तलवारधारी ( वि०१०,११)

बाघम्बरधारी (वि० १०, ११, रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ४ )

गजचर्मधारी ( वि० १०)

सिद्ध-सुर-मुनि-मनुज-सेव्यमान (वि० १०)

डमरुवादक (वि०१०) कैलासवासी ( वि० १०,११)

महाबलवान् ( वि० ११) अतिविशाल (वि०११)

कुबेर के मित्र (वि० ११) ढालधारी (वि० ११)

सिद्ध-सनकादि-योगी-विधि-विष्णु से चरण-पूज्य (वि० १२)

ब्राह्मण-प्रिय (वि० १२) गुणनायक ( वि० १३)

कामदाहक ( क० ७।१४६, १५०, १५२, १६०, १६१, वि० ११)

त्रिपुरारि ( क० ७।१४६ , १५०, १५६, १६१, रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ६ )

त्रिलोचन (क० ७।१४६,१५० , १५६ )

दिगम्बर (क० ७।१४६,१५०, १५१, १५३, १५४, १५६ )

त्रिशूलधारी ( क० ७।१४६, /१६१, वि० १०, ११, १२, रा० ७।१०८ रुद्राष्टक५)

विषधारी (क० ७।१५१,१५४,१५७,१५६,वि० १०,१२)

सूर्य-चन्द्र-अग्निरूप नेत्र सम्पन्न ( क० ७।१५२)

कल्याणधाम (क० ७।१५२)

पिनाकी ( क० ७।१५३) बावले (क० ७।१५३, वि० ५)

नीलकण्ठ ( रा० ७।१०८ , रुद्राष्टक ४ )

भावगम्य (रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ५ ) आदि ।

### ३. निर्गुणात्मक -सगुणात्मक :

इनका सम्बन्ध शिव के निर्गुण तथा सगुण दोनों स्वरूपों से हो सकता है ।

मोक्षदायक ( क० ७।१५६,१६०,वि० ३,१०, ११, १२ )

दारिद्र्यनाशक (क० ७।१६०)

अणिमा आदि अष्टसिद्धियों के स्वामी ( वि० ६ )

मोहनाशक ( वि० ६, १०,११,१२ रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ६ )

विज्ञानघन (वि० १०)

तत्त्व-तत्त्ववेत्ता ( वि० १०,१२)

सर्वेश ( वि० १०,१२) यतीश (वि०१०)
अच्युत ( वि० १०) विभु ( वि० १०)
ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि को शक्तिदायक (वि० १०)
सर्व उपकारी ( वि० १०) अभयदायक (वि० ११)
डाकिनी-शाकिनी-खेचर-भूचर, यन्त्र-मन्त्र आदि अभिचार विनाशक (वि०११)
भयानक कार्य करने वाले (वि० ११)
शेष , शारदा, नारद, निगम आदि जिनका गुणगान करते हैं (वि०११)
कल्याणदायक ( वि० १२, रा० १।४६।३ )
अति सुलभ ( वि० १२) अति दुर्लभ ( वि० १२, रा० १।८६।४)
लोकनाथ (वि० १२) कलिकालनाशक ( वि० १२)
सर्वसौभाग्यमूल (वि० १२) त्रिलोक के सिरमौर (क०७।१५६)
शुद्ध भाव प्रिय ( क० ७।१५६-१६०) चतुर्फलदायक (क०७।१५६,१५८,१६१)
दुख-भंजक(क० ७।१५० वि० ११,१२) अकाम (क० ७।१५०)
भव-भय-भंजक (क०७।१५१,१५२) सर्वसमर्थ (क० ७।१५१)
अकथमहिमायुक्त (क०७।१५१) भूमिधर (क०७।१५२)
भवेश (क०७।१५१) कुयोगनाशक ( कु० ७।१०८ )
प्रकृष्ट ( रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ५)
त्रिताप नाशक ( रा० ७।१०८ रुद्राष्टक (५)
कल्पान्त (प्रलयकारी (रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ६)
सज्जनों को आनन्ददायक (रा० ७।१०८ रुद्राष्टक ६ ) आदि ।

## घ. शिव का स्वरूप-वर्णन

शिव के सम्बन्ध में तुलसी की धारणा है कि वे "साजु अमंगल मंगल रासी" हैं । इसलिए कवितावली तथा विनयपत्रिका की स्तुतियों से शिव का जो स्वरूप निर्धारित होता है उसके अनुसार वे कुन्द-इन्दु-कपूर सदृश गौर वर्ण हैं । उनके सिर पर जटाजूट में गंगा, मस्तक पर त्रिनेत्र और कण्ठ में विष की नीलिमा, मुण्डमाल तथा व्याल हैं । वे भस्म, गजखाल और बाघम्बर धारण करते हैं। उनके हाथों में कपाल , डमरू, तलवार, शूल , धनुष-बाण तथा साथ में भूत-प्रेत-पिशाच रहते हैं ।

वृषभ उनका वाहन है और श्मशान तथा कैलाश निवास स्थान । वे अर्धांग में पार्वती को भी धारण करते हैं । 'विकट वेष' (क० ७।१५० , वि० १२ ), 'भयभवन' ( क० ७।१५२), 'बावरे' ( क०७।१५३, वि० ५) , 'भूत-वैताल सखा' ( क० ७।१५४), 'भयंकररूप '(क० ७।१६०) , 'मसाननिवासी' (वि० ६)तथा 'व्याल-नृकपाल माला' (वि० १० ) धारण किये वे कल्याण राशि होते हुए भी अशुभ के समान दिखाई देते हैं ।

तुलसीदास ने विनयपत्रिका तथा कवितावली के शिव-वर्णन के अतिरिक्त निम्न स्थलों पर शिव के बाह्य स्वरूप का स्वतन्त्र वर्णन किया है ।

क. पार्वतीमंगल

१. वटु रूप शिव का तपस्यारत पार्वती के प्रति : नारद से प्रबोधित होकर पार्वती शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या करती हैं । तपस्या करते हुए दीर्घकाल हो जाने पर पार्वती की परीक्षा लेने शिव वटु वेष में आते हैं । यहाँ उनको विचलित करने के लिए वटु ने शिव की ऐसी विशेषताओं का वर्णन किया है जिन्हें लोक में दूषण माना जाता है । वटु के अनुसार बावले शिव का स्वरूप निम्न-प्रकार है :--

कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं ।
अगुन अमान अजाति मातु पितु हीनहि ।।
भीख मागि भव खाहिं चिता-चित सोवहिं ।
नाचहिं नगन पिसाच पिसाचिनि जोवहिं ।।
भांग धतूर अहार छार लपटावहिं ।
जोगी जटिल सरोष भोग नहिं भावहिं ।।
[illegible] हर मुख पंच तिलोचन ।
बामदेव फुर नाम काम मद मोचन ।।
नर कपाल गज खाल व्याल विष भूषन ।। - मंगल ४६-५३

शिव का वेष अमंगलमयतथा अत्यन्त भयानक है । वे हर समय शशिकला की चिन्ता में निमग्न रहते हैं । भूत-प्रेत-पिशाच उनके गण हैं तथा वे स्वयं वृषभ को वाहन

बनाये हैं (- मंगल ५४-५५, हरिगीतिका ७ ) ।

२. पार्वती की तपस्या तथा निष्ठा से प्रसन्न हो शिव के साक्षात् प्रकट होने पर : इस समय शिव की मुख मुद्रा मनमोहक थी । उनके नेत्र विशाल और कमनीय थे। गौर शरीर पर विभूति तथा दीर्घ ललाट पर चन्द्रमा शोभायमान था ( - हरिगीतिका मंगल ६७ ) ।

३. बरात के समय : भूत-प्रेत तथा पिशाच शिव के गण हैं जिनके मुख तथा वेष विविध प्रकार के हैं । इनके वाहन सूअर, भैंसा, कुत्ता, गदहा आदि हैं । वे कमठ पृष्ठ की खाल से मढ़कर उन्हें नगाड़े के रूप में बजाते हैं और नर कपाल में जल भरकर पीते-पिलाते हैं । इस समय शिव गजचर्म, सर्प तथा मुण्डमाल धारण किए हैं । ( शिव की इस बरात को देखकर अगवानी के लिए आए हिमगिरि के पक्षधर तथा उनके वाहन भयभीत हो गए । घर पहुँचकर बच्चे बताते हैं कि बावला वर वृषभ, पर आरूढ़ है और भयानक भूत, प्रेत, वैताल उसके बराती हैं ( - मंगल ६२,६८,६६,१०३, १०४,१०६, हरिगीतिका १२) ।

वर तथा बरात का ऐसा स्वरूप देखकर पार्वतीकी माँ अत्यन्त चिन्तित हैं और नारद को दोष दे रही हैं । उस समय हिमवान् कहते हैं कि शिव की महिमा अगम्य है, जिसे वेद भी नहीं जानते ।

४. हिमवान् के यहाँ शिव का परिवर्तित स्वरूप : जब शिव के वर वेष को देखकर विष्णु, इन्द्र आदि बराती मुंह फेरकर हँस रहे थे और नगर में कोलाहल हो रहा था तब शिव ने अपना स्वरूप बदल दिया । अब वे -

> भए सुंदर सत कोटि मनोज मनोहर ।।
> नील निचोल छाल भइ फनि मनि भूषन ।
> रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन ।। - मंगल १११,११२

इस प्रकार पार्वतीमंगल में शिव के दो स्वरूपों का निरूपण हुआ है :--

अ. नरकपाल, गजखाल, व्याल आदि वीभत्स तथा भयोत्पादक अभिधान धारण किए भूत-प्रेत-पिशाचों के अधिपति वाला अमंगल तथा भयानक रौद्र स्वरूप ।

आ. मनमोहक मुखमुद्रा सम्पन्न नीलाम्बर तथा चन्द्रकलाधारी गौर वर्ण जो करोड़ों कामदेवों से भी अधिक सुन्दर-सौम्य है ।

ख. रामचरितमानस

१. हिमवान् के यहां नारद द्वारा पार्वती का भविष्य बताते हुए :

पार्वती के भावी पति (शिव) का वर्णन करते हुए नारद कहते हैं कि वह गुण, मान तथा माता-पिता हीन, उदासीन और चिन्तामुक्त होगा । उसे निष्काम मन, योगी, जटाधारी, नग्न तथा अमंगल वेष होना चाहिए (१।६७।८ तथा दोहा ) ।

२. सप्तर्षियों का तपस्यारत पार्वती के प्रति : शिव को पति रूप में पाने के लिए पार्वती तपस्या करती हैं । दीर्घकाल के बाद उनकी परीक्षा लेने के लिए शिव सप्तर्षियों को भेजते हैं । सप्तर्षि पार्वती से कहते हैं कि यह बात अच्छी नहीं जो तुम स्वभावत: उदासीन शिव को प्राप्त करना चाहती हो । वह तो निर्लज्ज और दिगम्बर हैं । उनका न कोई कुल है और न घर । वे नितान्त गुणहीन हैं और कपाल, व्याल आदि धारण किए कुवेष बनाए रहते हैं । पहले लोगों के कहने पर उन्होंने सती से विवाह किया था परन्तु उन्हें धोखा देकर (दक्ष यज्ञ में) मरवा डाला और अब निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक सोते हैं । वह तो भिक्षाटन से पेट भरते हैं और नितान्त एकान्तप्रिय हैं । ऐसे अवगुन भवन महादेव के साथ रहने से क्या लाभ होगा ? ( -१।७६ ।५-८ तथा दोहा) ।

३. बरात की तैयारी में शिव की साजसज्जा के समय --

सिवहि संभुगन करहिं सिंगारा । जटा-मुकुट अहि मौरु संवारा ।।
कुंडल कंकन पहिरे व्याला । तन बिभूति पट केहरि छाला ।।
ससि ललाट सुंदर सिर गंगा । नयन तीनि उपवीत भुजंगा ।।
गरल कंठ उर नर सिर माला । असिव वेष सिवधाम कृपाला ।।
कर त्रिशूल अरु डमरु बिराजा । चले बसहं चढ़ि बाजहिं बाजा ।।

-१ ।९२।१-५

तुलसी ने शिव के गणों का वर्णन करते हुए कहा है कि वे विविध प्रकार के वेष तथा वाहन धारण किए हुए थे, जिन्हें देख कर शिव को प्रसन्नता हो रही थी। उनमें —

> कोउ मुखहीन बिपुलमुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।।
> बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना।।
> तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।
> भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें।।
> खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन वेष अगनित को गनै।
> बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै।।
> नाचहिं गावहिं गीत, परम तरंगी भूत सब।
> देखत अति बिपरीत, बोलहिं बचन बिचित्र बिधि।।

— १।९३।६ से सोरठा तक,

शिव की इस बरात को देखकर हिमवान् के नगरवासी भयभीत हो गए। उनके वाहनों ने पलायन कर दिया और बच्चे प्राण लेकर घर पहुँचे। बच्चे घर में बताते हैं कि यह बरात है या यमराज का सैन्य। बावला नग्न वर वृषभ पर आरूढ़ है। वह भस्म तथा कपाल और व्याल के आभूषण धारण किए अत्यन्त भयंकर लगता है। उसके साथ में विकट मुखी राक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच तथा योगिनियां भी हैं। परन्तु शिव के यथार्थ स्वरूप को समझकर माता-पिता बच्चों को समझाते हैं कि भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है ( -१।९५।४ से दोहे तक)।

४. विवाह के पश्चात् कैलास पर : पार्वती से विवाह करने के बाद शिव कैलास पर रहने लगे। एक बार शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु से युक्त मनोरम काल में शिव वट वृक्ष के नीचे बाघम्बर बिछा कर बैठे हुए थे। उस समय के शिव स्वरूप के विषय में तुलसीदास ने कहा है —

> कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा।।
> तरुन अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना।।

भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी । आननु सरद चंद छबि हारी ।।
जटा मुकुट सुरसरित सिर, लोचन नलिन बिसाल ।
नीलकंठ लावन्यनिधि, सोह बालबिधु भाल ।।
बैठे सोह काम रिपु कैसें । धरें सरीरु सांतरसु जैसें ।।

— १।१०६।६-८ तथा दोहा, १०७।१

पार्वती वहीं पर शिव के समीप आकर कहती हैं कि आप विश्वनाथ तथा त्रिपुरारि हैं । समस्त संसार आपकी महिमा से परिचित है । चल, अचल, नाग, मनुष्य, देवता आदि सभी आपकी चरण सेवा करते हैं । आप सर्वसमर्थ तथा सर्वज्ञ हैं। समस्त कलाओं, गुणों, योग, ज्ञान तथा वैराग्य के आप भाण्डार हैं और आपका नाम भक्तों के लिए कल्पतरु के समान है ( - १।१०७।७-८ तथा दोहा ) ।

इस प्रकार तुलसीदास ने मानस में शिव के मंगलमय सौम्य स्वरूप का वर्णन करते हुए भी उनके कपाल-व्यालधारी प्रमथराज वाले अमंगल तथा रौद्र रूप को अधिक महत्व दिया है । उन्हें देखकर बच्चे ही नहीं वयस्क तथा पशु भी भयभीत हो जाते हैं । जनक के धनुष-यज्ञ में भी नगरवासी कहते हैं कि पंचमुखी शिव विकटवेष धारण करने वाले हैं ।[१]

'अगुनहिं सगुनहिं कछु नहिं भेदा' कीमान्यता के अनुसार तुलसी-साहित्य के प्रस्तुत अनुशीलन के आधार पर शिव के निम्नस्वरूप निर्धारित होते हैं —

क. निर्गुण - तुलसीदास ने इस रूप को अधिक प्रश्रय नहीं दिया है । इस दृष्टि से शिव निराकार, निरंजन,निर्विकल्प, निर्विकार, निरुपाधि, निरीह, निर्मल, अज, अकल, अविनाशी तथा सर्वव्यापक हैं । उनका न आदि है न अन्त । वे वाणी, ज्ञान तथा इन्द्रियों से परे हैं और वेद उन्हें नेति नेति कहते हैं ।

ख. सगुण - तुलसीदास को शिव का यही रूप प्रिय है । इसी से लौकिक सम्बन्ध स्थापित करना भी सम्भव है । इस रूप में शिव सिर पर जटाजूट, चन्द्रकला तथा गंगा, कानों में कुण्डल, नीलवर्ण कण्ठ में मुण्डमाल तथा व्याल और समस्त शरीर

---

१. रामचरितमानस १।२२०।७; उनके पंचमुखी होने का उल्लेख अन्यत्र भी है — १।३१७।२

पर भस्म धारण करते हैं। वे या तो नग्न रहते हैं या बाघम्बर और गजचर्म लपेटते हैं। वृषभ उनका वाहन है, और कभी-कभी अर्धांग में पार्वती को रखते हैं। उनके हाथों में धनुष बाण, खड्ग, डमरू, ढाल, त्रिशूल आदि रहते हैं। अभिधानों तथा गणों-परिवारकों के आधार पर शिव का साकार कलेवर दो प्रकार का है।

१. सौम्य या मंगल वेष — इस रूप में शिव के जनरंजक गौर वर्ण शरीर पर नील परिधान, सुशोभित होता है। उनके नेत्र कमलवत् शोभायमान होते हैं और जटा-जूट, गंगा, चन्द्रकला, व्याल तथा भस्म धारण करने पर भी वे अभिरामधाम तथा परम रम्य दिखाई देते हैं। उनकी मुखाकृति से स्मित भाव प्रस्फुटित होता है।

२. रौद्र या अमंगल वेष —मुण्डमाल, नरकपाल तथा व्याल धारण किए कभी-कभी शिव का आकार भीषण तथा भयंकर हो जाता है। इस रूप को महाकाल तथा भैरव की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। प्रलयकाल में वे डमरू बजाते हुए ताण्डव करते हैं। भूत-प्रेत-बेताल तथा पिशाचों के अधिपति होने के कारण उन्हें भूतनाथ, प्रमथनाथ तथा प्रमथराज कहा जाता है। इनके साथ होने पर शिव की भयंकरता और भी अधिक विकराल हो जाती है। परन्तु शिव के दोष भी गुण हैं[1] और उनका अमंगल वेष भी मंगलदायक है।[2] इसीलिए वे पृथ्वी के अलंकरण हैं।[3]

तुलसी साहित्य में शिव का स्वरूप देखने के बाद अब शिव की अन्य विशेषताओं का अवलोकन किया जाता है :-

१. शिव देवाधिदेव : शिव को महेश के अतिरिक्त तुलसी ने महादेव (रा०१।४७।८, १।८०),कविता० ७।१६७) भी कहा है। पार्वती उन्हें सुरनाथ (रा० १।१०६।८) तथा सुरराज (रा० १।११०।३) कहकर सम्बोधित करती हैं। विनयपत्रिका (पदांक ६) के अनुसार वे देव-देव—देवाधिदेव— हैं।

---

१. वही १।६६।४

२. साजु अमंगल मंगलरासी ।। वही १।२६।१

३. गीतावली १।१५।१

२. विष्णु से चरण-वंद्य : तुलसीदास ने विनयपत्रिका में एक स्थान पर दिखाया है कि ब्रह्मा और विष्णु शिव की चरण-वन्दना करते हैं।[१]

३. जगद्गुरु : शिव दर्शन में शिव को संगीत ,योग, ज्ञानतथा नृत्य का आचार्य माना गया है। इनके आधार पर उनकी वीणाधरदक्षिणामूर्ति, योगदक्षिणामूर्ति, ज्ञानदक्षिणामूर्ति तथा नटराज मूर्तियां दक्षिण भारत में प्रचुरता से मिलती हैं। शिव रामकथा के रचयिता, अधिष्ठाता तथा प्रथम वक्ता होने के कारण भी आदि-आचार्य हुए। जगत् को रामकथा प्रदान करने के कारण वे जगद्गुरु हैं। पार्वती शिव से कहती हैं --

तुम्ह त्रिभुवन गुरु बेद बखाना। - मानस १।१११।५

४. आशुतोष : कवितावली तथा विनयपत्रिका की शिव-स्तुतियों में तुलसीदास ने शिव की आशुतोष प्रकृति का उन्मुक्त हृदय से चित्रण किया है। रथ-हाथी-घोड़े, श्रेष्ठवीर, धन-धाम, विनयशील रति जैसी पत्नी, सुन्दर शरीर तथा पुत्र, विद्या-विवेक आदि लौकिक गुण, महाराजाओं सदृश मान-सम्मान तथा परलोक में इन्द्र का पद अथवा मोक्ष आदि की संप्राप्ति शिव पर बिल्व या आक के दो पत्र और धतूरे के पुष्पों मात्र से सम्भव है।

चाहै न अनंग-अरि एको अंग माने को,
दै बोई पै जानियै, सुभावसिद्ध बानि सो।
बारि बुंद चारि त्रिपुरारि पर डारियै तो
देत फल चारि, लेत सेवा सांची मानि सो।।
--कवितावली ७।१६१ ,

तथा -- सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।
दिए जगत जहं लगि सबै, सुख गज रथ घोरे।। - विनयपत्रिका ८।२

५. भोलानाथ : शिव इतने भोले हैं कि धोखे से भी दो-चार पत्तों के समर्पण को सम्पूर्ण पूजा-पद्धति मान लेते हैं। गुणनिधि तो ऊंचे पर टंगे घंटे की चोरी करने के लिए उनके विग्रह पर खड़ा हो गया था। शिव ने उसी को सर्वस्व समर्पण मानकर गुणनिधि को मोक्ष दे दिया।

---

१. विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविन्दं ।-पद १२।२

६. अवढरदानी : शिव शीघ्र प्रसन्न तो होते ही हैं, उस समय देने में भी चूक नहीं करते हैं। सन्तों तथा वेदपुराणों के अनुसार जो कैवल्यपद महामुनियों तक को दुर्लभ है, वह शिवसहजही दे डालते हैं। संसार में उनके समान कोई अन्य दानी नहीं है। उन्हें सदैव याचक और देना ही अच्छा लगता है। दान करनेमेंवे विष्णु से भी महान् हैं। उन्हें सदैव याचक और देना ही अच्छा लगता है। क्योंकि करोड़ों योग-साधनाओं से योगी-मुनि जिस मोक्ष को विष्णु से संकोच के साथ माँगते हैं, वही शिवपुरी काशी में कीट पतंगों तक को मिल जाता है। शिव की इस अमितदानी प्रकृति के कारण ब्रह्मा तो उन्हें बावला समझते हैं और व्यथित तथा चिन्तित होकर पार्वती से निवेदन करते हैं —

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद बड़ाई भानी ।।
निज घर की बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री-सारदा सिहानी ।।
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत, हौं आयो नकबानी ।।
दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी ।।

— विनयपत्रिका ५

ब्रह्मा के कथन में कितनी उद्विग्नता है कि शिव ने जिन लोगों को स्वर्ग दिया है उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनकी व्यवस्था करते करते मेरे तो नाकों दम आ गया। नकबानी आना मुहावरा है। तुलसी ने ब्रह्मा से इसका प्रयोग कितनी सुन्दरता से कराया है कि मैं तो तंग आ गया। शिव की कृपालुता से कोई भी दीन-दुखी शेष नहीं रहा है, इसलिए दैन्य और दुख दुखी हैं कि अन्ततः रहें कहां ?

कवितावली में भी एक कवित्त ऐसा ही है जिसमें ब्रह्मा पार्वती से कहते हैं कि अपने बावले तथा भोले दानी पति को समझा लो —

नागो फिरै कहै मागनो देखि 'नखांगो कहूं', जनि मागिये थोरो'।
नांकनि नाकप रीझि करैं तुलसी' जग जो जुरै जाचक जोरो।
नांक संवारत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो।
ब्रह्म कहै, गिरिजा सिखवो पति रावरो, दानि है बावरो भोरो। — ७।१५३

शिव ने जिन जिन को स्वर्ग प्रदान किया उनकी व्यवस्था करते-करते मैं तो तंग आ गया, पर शिव मेरा तनिक भी उपकार नहीं मानते हैं ।

७. योगी : तुलसीदास ने कवितावली तथा रामचरितमानस के कितने ही स्थलों पर शिव को योगी दिखाया है । योग साधना के कारण शिव योगीश तथा योगपति कहलाते हैं ।[१] काम दहन के बाद सप्तर्षि हिमवान् के पास शिव-पार्वती के विवाह का प्रस्ताव लेकर आते हैं । हिमवान् से मिलने के पूर्व वे पार्वती से मिलकर कहते हैं कि तुमने शिव से विवाह करने का जो प्रण किया था, वह व्यर्थ हो गया, क्योंकि शिव ने काम को भस्म कर दिया और वे निष्काम हो गए हैं । इस पार्वती उत्तर देती हैं कि --

तुम्हरें जान कामु अब जारा । अब लगि संभु रहे सबिकारा ।।
हमरें जान सदा सिव जोगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ।।-मानस१।९०।२-३

अष्टांग योग का सातवां अंग ध्यान है । जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाये केवल उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना ध्यान है ।[२] धर्म, लक्षण और अवस्था नामक तीन परिणामों में चित्त का संयम करने से अतीत और अनागम तथा सूर्य में संयम करने से समस्त लोकों का ज्ञान हो जाता है ।[३] त्रेतायुग में जब शिव और पार्वती अगस्त्य के आश्रम से वापिस आ रहे थे, रास्ते में सीता-हरण से उद्विग्न राम और लक्ष्मण से भेंट हुई । शिव ने राम को इष्टदेव के समान प्रणाम किया तो पार्वती को सन्देह हुआ कि जगतवन्द्य शिव किसको अभिवादन कर रहे हैं । शिव ने राम के अवतरण की बात कही परन्तु पार्वती को विश्वास नहीं हुआ । अत: शिव की आज्ञानुसार वे राम की परीक्षा लेने जाती हैं । पार्वती ने सीता का रूप धारण कर राम की परीक्षा लेनी चाही, परन्तु राम ने सब कुछ जान लिया । भयभीत पार्वती शिव से कह देती हैं कि मैंने परीक्षा नहीं ली । पार्वती के इस कथन पर शिव

---

१. कवितावली ७।१५१

२. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।- पातंजल योगसूत्रम् ३।२

३. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।- वही ३।१६
तथा-भुवन ज्ञानं सूर्ये संयमात् ।-वही ३।२६

को विश्वास नहीं होता । जो पार्वती पहले समझाने पर भी नहीं मानतीं और परीक्षा लेने जाती हैं, यह कैसे सम्भव है कि उन्होंने परीक्षा न ली हो । उस समय शिव को यथार्थ स्थिति जानने के लिए ध्यान का आश्रय लेना पड़ता है और–

तब संकर देखेउ धरि ध्याना । सतीं जो कीन्ह चरित सबु जाना ।।

-- मानस १।५६।४

ध्यान करने पर शिव को यथार्थ स्थिति का बोध हो जाता है कि पार्वती ने सीता का रूप धारण करके राम की परीक्षा लेने का प्रयत्न किया था ।

योग का अष्टम अंग समाधि है । तुलसीदास ने कई स्थलों पर शिव की समाधि का भी वर्णन किया है । सती-मोह के बाद शिव ने कैलास पर आकर ऐसी समाधि धारण की जो ८७००० वर्ष तक चली थी । तारकासुर के बध का उपाय बताते हुए ब्रह्मा कहते हैं कि उस पर शिव का पुत्र ही विजय पा सकता है, परन्तु शिव सब कुछ त्याग कर समाधिलीन हैं । शिव की समाधि भंग करने के लिए कामदेव को प्रेरित और सहमत किया जाता है । जब कामदेव ने शिव पर अपने विषम पंचवाणों का प्रहार किया तो उनके मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ । उसी समय शिव जाग्रत हुए और उनकी समाधि टूट गयी ।[१]

योग से शिव का आदिकालीन सम्बन्ध है । सिन्धुघाटी की पशुपति मुद्रा पर लांछित आकृति योगासन में प्रदर्शित है । इसे शिव का रूप माना जाता है ।[२] मध्यकाल में नाथ सम्प्रदाय में भी शिव कीयोगी रूप में मान्यता है ।

शिव के योगी स्वरूप को लेकर शिल्पशास्त्र में योगदक्षिणामूर्ति के निर्माण का प्राविधान है । शैवागमों के अनुसार एक बार शिव दक्षिण में मुख किए बैठे थे । उसी समय उन्होंने ऋषि-मुनियों को योग तथा ज्ञान का उपदेश दिया था । दक्षिणाभिमुख आसीन होने के कारण ऐसी मूर्तियां दक्षिणामूर्ति कहलाती हैं । शिव की योगदक्षिणामूर्तियां दक्षिण भारत में प्रचुरता से उपलब्ध होती हैं । विष्णु-कांची की एक योगदक्षिणामूर्ति में अक्षमाल धारण किए शिव का एक हाथ वितर्कमुद्रा में है । उनके आसन के नीचे दो मृग तथा योगोपदेश सुनते हुए ऋषिगण आकाश में

---

१.रामचरितमानस १।५८।७-८, १।६०।२, १।८३।३, १।८७।३-४

२. देखिए पीछे तृतीय अध्याय ।

प्रदर्शित हैं ।[१]

तुलसीदास ने शिव की ध्यान मुद्रा तथा समाधि का वर्णन करके शिव को योगी मानने की दीर्घकालीन परम्परा का अनुसरण किया है ।[२]

८. मुनि : राम-सीता विवाह के बाद बरात विदा करते समय जनक राम से कहते हैं-

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा । मुनि महेस मन मानस हंसा ।।

—मानस-१।३४१।४

राम को नाग-पाश से मुक्त करने पर गरुड़ को मोह हो गया था । मोह का शमन करने के लिए शिव ने उन्हें भुशुण्डि के पास भेज दिया । भुशुण्डि ने रामकथा सुनाकर गरुड़ का मोह समाप्त कर दिया । उसी समय वे गरुड़ से कहते हैं कि तुम्हारा मोहित हो जाना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है । मोह से शिव, नारद जैसे मुनिश्रेष्ठ तक आबद्ध हो गए थे ।

नारद भव बिरंचि सनकादी । जे मुनिनायक आतमबादी ।।
मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ।।

—मानस ७।७०। ६-७

विनयपत्रिका में भी कहा है —

भगति दुरलभ परम, संभु-सुक-मुनि-मधुप ,
प्यास पदकंज मकरंद-मधु पान की ।।- २०६।४

९. तपस्वी :

नारद ने पार्वती का भविष्य बताकर सलाह दी कि वे शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या करें परन्तु मैना को यह सुझाव अधिक रुचिकरनहीं लगा । उसी समय पार्वती को स्वप्न होता है, जिसमें तप की महत्ता दिखाई गई है, पार्वती कहती हैं कि एक गौर वर्ण सुन्दर ब्राह्मण ने स्वप्न में मुझे तप करने का उप-

---

१. डेवलपमेन्ट आफ हिन्दू आइकनोग्रेफी, पृ० ४७०-४७१

२. देखिए —प्रभु समरथ सर्बग्य सिव, सकल कला गुनधाम ।
जोग ग्यान बैराग्य निधि, प्रनत कलपतरु नाम ।। - मानस १।१०६

( कृपया अगले पृष्ठ पर देखें )

उपदेश दिया है, क्योंकि तप सुखदायक और दुख-दोष नाशक है। तप का महत्व बताते हुए ब्राह्मण ने कहा कि विधाता संसार की रचना, विष्णु पालन और रक्षण तथा शिव उसका संहार तपस्या की शक्ति के द्वारा ही करते हैं।[1]

गीतावली में बाल राम के तोतले वचनों का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने उत्प्रेक्षा रूप में शिव को तपस्वी दिखाया है --

बाल-बोध बिनु अरथ के सुनि देत पदारथ चारि।

जनु इन्ह बचनन्हि तें भए सुरतरु तापस त्रिपुरारि।। पद २२।६

पार्वती मंगल ( मंगल २१ ) में भी नारद ने शिव को तपस्यारत बताया है।

१०. सिद्ध :

योग और तन्त्र से प्रभावित जितनी भी धर्म साधनायें हैं, उनमें माना गया है कि साधना के बाद साधकको सिद्धियां उपलब्ध होती हैं। अथर्ववेद में सिद्धियों तथा उन्हें प्राप्त करने के अभिचारों और अनुष्ठानों का वर्णन है। पतंजलि ने जन्म, औषधि, मन्त्र,तप तथा समाधि से उपलब्ध सिद्धियों का उल्लेख किया है।[2] ब्रह्मवैवर्तपुराण में सर्वज्ञत्व, दूरश्रवण आदि चौंतीस सिद्धियां बताई हैं, जबकि हठयोग

---

पिछले पृष्ठ का अवशेष --

तथा -- कासी करामाति जोगी जागति मरद की।।-कवितावली ७।१५८

भोरानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं।। -वही ७।१५६

मानस में पार्वती का भविष्य कथन कहते हुए नारद उनके भावी पति को योगी बताते हैं (१।६७) पार्वतीमंगल में भी तपस्यारत पार्वती की परीक्षा लेते समय वटु शिव को योगी कहते हैं (-मंगल५१)।

गोसाईं चरित के अनुसार जब तुलसीदास काशी से चित्रकूट जा रहे थे, तो शिव दण्डी रूप में उन्हें रोकने आये। तुलसी के यह कहने पर कि मैं भगवान् की आज्ञा से जा रहा हूं शिव ध्यान धारण करके इसकी सत्यता देखते हैं (चित्रकूट खंड,गमनप्रसंग).।

---

१. तपबल संभु करहिं संघारा। - मानस १।७३।४

२. जन्मौषधिमन्त्रतप: समाधिजा: सिद्धय:। - पातंजलयोगदर्शन ४।१

साधना के अनुसार इनकी संख्या आठ है - अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व और वशित्व । बौद्धतन्त्रों में अष्ट सिद्धियों की मान्यता है । इन सिद्धियों को प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति सर्वसमर्थ हो जाता है । जिसे यह सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं वह सिद्ध कहलाता है । शिव को यह सिद्धियां राम की भक्ति से उपलब्ध हो चुकी हैं ।[१]

११. हृदय प्रेरक :

मनुष्य अपने कार्य कभी तो स्वत: अन्त: प्रेरणा से करता है और कभी उनके सम्पादन में दूसरों की प्रेरणा निहित रहती है । मन्थरा को सरस्वती की प्रेरणावश राम के राज्याभिषेक से प्रसन्नता नहीं हुई । वह कैकेयी को प्रेरित करती है कि राम को वनवास और भरत को राज्य देने के लिए दशरथ से वर मांगे । मन्थरा की इच्छानुसार कैकेयी प्रेरित हो जाती है । परन्तु सामान्य जन में लोक प्रेरणा की शक्ति का अभाव होता है । शिव ऐसे हैं जो सभी के हृदय प्रेरित करने में सक्षम हैं । इसीलिए राम को वनवास हेतु जाने से रोकने के लिए दशरथ शिव से प्रार्थना करते हैं कि -

< < < । बिनती सुनहु सदासिव मोरी ।।
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी । आरति हरहु दीन जनु जानी ।।
तुम्ह प्रेरक सबके हृदयं, सो मति रामहि देहु ।
बचनु मोर तजि रहहिं घर, परिहरि सीलु सनेहु ।।
—मानस २।४४।७-८ तथा दोहा

१२ मायावी या रूप परिवर्तनकारी :

परकाया - प्रवेश की विधा जानने वाला व्यक्ति अपने जीव को किसी निर्जीव शरीर में प्रवेश करा सकता है और प्राकाम्य सिद्धि में सिद्ध व्यक्ति मनोभिलषित स्वरूप धारण करने में सक्षम होता है । तुलसीदास ने पार्वतीमंगल तथा रामचरितमानस में पांच स्थानों पर शिव को भी स्वरूप या वेष परिवर्तित करते दिखाया है ।

---

१. सिध्धि पाई संकर हूं । - विनय पत्रिका, ८६।२

## क. पार्वतीमंगल

१. तपस्यारत पार्वती की परीक्षा हेतु वटुरूप - शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए पार्वती भीषण तपस्या में संलग्न थीं । उन्हें रात-दिन, नींद, भूख,प्यास आदि का कुछ भी अनुभव नहीं होता था । वे कभी कन्द मूल तथा फल खा लेती थीं और कभी जल तथा वायु पर ही निर्भर रहती थीं । जब उन्होंने सूखे पत्ते खाना भी छोड़ दिया तो उन्हें अपर्णा कहा जाने लगा । चारों ओर उनकी प्रशंसा होने लगी कि ऐसा महान् तप किसी ने कभी नहीं किया है । उस समय पार्वती के प्रेम, नियम, संकल्प आदि की परीक्षा लेने के लिए शिव वटु वेष में उनके पास जाते हैं-

काहूं न देख्यौ कहहिं यह तपु जोग फल फल चारि का ।
नहिं जानि जाइ न कहति चाहति काहि कुधर-कुमारिका ।।
वटु वेष पेखन पेम पनु ब्रत नेम ससिसेखर गए ।
मनसहिं समरपेउ आपु गिरिजहि बचन मृदु बोलत भए ।। हरिगीतिका ५

पार्वती के उद्देश्य को जानकर वटु उनकी परीक्षा लेने के लिए शिव की लौकिक कुरूपताओं का वर्णन करते हैं । परन्तु पार्वती किसी भी प्रकार विचलित नहीं होतीं और अपनी सखी के माध्यम से वटु से चले जाने का निवेदन करती हैं । पार्वती की तपस्या से प्रसन्न हो वटु रूप शिव उसी समय साक्षात् प्रकट हो जाते हैं ।

सुनि बचन सोधि सनेहु तुलसी सांच अबिचल पावनो ।
भए प्रगट करुनासिंधु संकरु भाल चंद सुहावनो ।। हरिगीतिका ८

२. लोकाचारवश मंगल रूप : पार्वती से विवाह करने के लिए जब शिव हिमवान के नगर गए तो उनके साथ में विविधमुखी भूत-प्रेत-पिशाच आदि गण थे और वे स्वयं गजचर्म,सर्प तथा मुण्डमाल धारण किए वृषभारूढ़ थे । ऐसी बरात देखकर अगवानी के लिए आए हुए नगरवासियों के वाहन भाग गए और वे स्वयं भयभीत हो गए । नगर में वार्ता का विषय शिव और उनकी बरात ही था । विष्णु, इन्द्र आदि बराती देवता भी मुंह फेर कर हँस रहे थे । उस समय लोकाचार को देखते हुए शिव ने मंगलमय सौम्य रूप धारण कर लिया । उनके शरीर का गजाम्बर नीलाम्बर में परिवर्तित हो गया और सर्प मणिमय अलंकरण बन गए -

लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सौहर ।
भए सुंदर सत कोटि मनोज मनोहर ।।
नील निचोल छाल भइ फनि भूषन ।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन ।। मंगल १११-११२

शिव ने स्वयं ही नहीं अपने गणों का भी स्वरूप बदलकर उन्हें मंगलमय तथा कामदेव के समान मनोहर बना दिया । अब शिव चन्द्रमा के समान लग रहे थे और बराती नक्षत्र वत् सुशोभित थे ( मंगल ११३-११४) ।

ख. रामचरितमानस

३. मनुष्य-रूप : राम-जन्म के समय आकाश से पुष्प वर्षा हुई और मागध,सूत आदि ने राम का गुणगान किया । जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में दशरथ ने अमित सम्पत्ति वितरित कर दी । हर्षोल्लास में उन प्राप्तकर्ताओं ने भी दान-सामग्री अपने पास न रखकर अन्यों को दे दी । कस्तूरी, चन्दन तथा कुंकुम की तो जैसे कीचड़ ही हो गई । अगरु और धूप का धुआं इतना अधिक था कि अन्धेरा हो गया और अबीर देखकर लगता है वायुमण्डल में लालिमा व्याप्त है । राजमहल में मृदुवाणी से होने वाला वेद पाठ पक्षियों के समयानुकूल चहचहाने जैसा लग रहा था । नगर के आनन्दोत्सव को देखने के लिए सूर्य ने भी अपना रथ रोक दिया । सब लोग इतने मग्न थे कि किसी को इसका आभास तक नहीं होने पाया कि दिन एक मास का हो गया । महोत्सव देख-कर सूर्य तथा अन्य देवगण यह कहते हुए गए कि राम के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । शिव पार्वती से कहते हैं कि उस समय मैं भी वहां मनुष्य रूप में उपस्थित था ।

औरउ एक कहउं निज चोरी ।
काकभुसुंडि संग हम दोऊ । मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ ।।
परमानन्द प्रेम सुख फूले । बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ।।
यह सुभचरित जान पै सोई । कृपा राम कै जापर होई ।
तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा । दीन्ह भूप जो जेहिमन भावा ।।
गज रथ तुरग हेम गो हीरा । दीन्हें नृप नानाविधि चीरा ।।

—१ । १९६ । ३-८

४. विप्ररूप : राम-विवाह के समय जनकपुर में महान् उत्सव आयोजित हुआ। विवाह-मण्डप के कदली व स्तम्भ स्वर्णनिर्मित थे जिनमें पन्नों के पर्ण तथा फल और पद्मराग मणियों के पुष्प संलग्न थे। हरितमणियुक्त बांसों का निर्माण पन्नों तथा सपर्ण नागबेलि का निर्माण स्वर्ण से हुआ था। नागवल्लियों के मध्य मौक्तिकमालायें तथा माणिक्य, मरकत और वज्र निर्मित पद्म सुशोभित थे। मण्डप के अन्दर गजमुक्ताओं से आपूरितविविध प्रकार के चौक थे।

जिस समय रामचन्द्र,दशरथ आदि मण्डप में विराजमान थे उनके वैभव को देख कर लोकपाल भी लज्जित हो रहे थे। नगर तथा आकाश में कोलाहल हो रहा था और देवता पुष्प-वर्षा कर रहे थे। जनक और दशरथ का प्रीति-मिलन अद्वितीय था, जिसकी प्रशंसा देवता तक कर रहे थे। उस समय राम की लीलाओं को जानने तथा उनमें रस लेने वाले शिव आदि देवता ब्राह्मणों के गुप्त वेष में उपस्थित थे।

बिधि हरि हरु दिसिपति दिन राऊ, जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ ।।
कपट विप्र बर वेष बनाएं। कौतुक देखहिं अति सचु पाएं ।।
पूजे जनक देव सम जानें। दिए सुआसन बिनु पहिचानें ।।
पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलह उभय दिसि आनंदमई ।।
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को विबुधमन प्रमुदित भए ।।

-- १।३२१।६-८ तथा छन्द

५. हंस-रूप : सती-दाह और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस के बाद शिव घूमते हुए उत्तर दिशा में नीलगिरि पर पहुंचे। उस पर्वत के शिखर स्वर्णमय थे और वहां सुन्दर सरोवर था। उसी पर्वत पर काकभुशुण्डि निवास करते थे। वे बहुत ही निष्ठापूर्वक वट वृक्ष तले बैठकर रामकथा कहते थे, जिसे सुनने के लिए विविध विहगगण आते थे। जब शिव वहां पहुंचे तो उन्हें अतीव आनन्द प्राप्त हुआ और वे भी रामकथा-श्रवण का मोह संवलित न कर सके। पक्षियों के मध्य उन्होंने हंस रूप धारण कर निवास किया और रामकथा सुनी। शिव पार्वती से कहते हैं --

बट तर कहि हरि-कथा प्रसंगा । आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा ।।

जब मैं जाइ सो कौतुक देखा । उर उपजा आनन्द बिसेषा ।।
तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास ।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउं कैलास ।। - ७।५७।७,१० तथा दोहा,

गीतावली (१।१७) में एक ऐसे ज्योतिषी का वर्णन है जो वृद्ध ब्राह्मण के वेष में अवध पहुंचता है । कौशल्या उसे भवन में बुलाकर राम आदि का भविष्य पूछती हैं । यहां पर तुलसीदास ने यह स्पष्ट नहीं कहा है कि वह शिव ही थे, परन्तु ज्योतिषी का नाम शंकर होना इस तथ्य का संकेत देता है कि शिव ही ज्योतिषी के रूप में उपस्थित हुए थे । साथ ही राम को देखकर ज्योतिषी के पुलकित और प्रेमाश्रुपूरित होने तथा गोद में लेने पर प्रसन्नता के अतिरिक्त से यह द्योतित होता है कि वे शिव ही थे । इतना ही नहीं तुलसी ने ज्योतिषी द्वारा राम का भविष्य विस्तार से और अन्य भाइयों का औपचारिक रीति से कहलाया है ।

धर्मखण्ड में राम की वनयात्रा के मध्य शिव ब्राह्मण के वेष में राम से मिलने के लिए आते हैं[1] तुलसीदास ने राम-विवाह के अवसर पर पार्वती को भी गुप्त वेष में उपस्थित दिखाया है ।[2]

१३. शाबरमन्त्र रचयिता : ऐसा माना जाता है कि कलियुग में प्राणियों के दुख दूर करने के लिए शिव-पार्वती भील रूप में अवतरित हुए थे । उस समय शिव वे ने शाबर मन्त्रों का प्रणयन किया जिन्हें पार्वती की आज्ञा से गणेश लिपिबद्ध करते गए । इन्हीं मन्त्रों का संग्रह 'सिद्ध शाबर मन्त्र' ग्रन्थ कहलाता है । मानस-पीयूष में 'सबर' का अर्थ भील दिया गया है । पीयूषकार के अनुसार भील भाषा में भील द्वारा प्रकट होने के कारण इसका नाम शाबर तन्त्र पड़ा ।[3] तुलसीदास कहते हैं --

---

१. रामकथा, पृ० ३८२
२. रामचरितमानस १।३१८।६-७; जानकीमंगल, १३१
३. मानस पीयूष, बालकाण्ड, भाग १, पृ० २७३

कलि बिलोकि जग हित हर गिरिजा । साबर मन्त्र - जाल जिन्ह सिरिजा ।।
अनमिल आखर अरथ न जापू । प्रगट प्रभाव महेस प्रतापू ।।

— मानस १।१५।५-६

१४. संहारक : सृष्टि विषयक तीन कृत्यों —निर्माण, पालन तथा संहार — के लिए क्रमश: ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र की कल्पना की गई है, तुलसीदास भी इस मान्यता से सहमत हैं —

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर । —कवितावली ७।१७३

परन्तु तुलसीदास ने दो स्थलों पर शिव के परम संहारक या सर्वनाशक स्वरूप को मान्यता दी है । सम्भवत: इसी आधार पर उन्होंने हनुमानबाहुक में हरिहर को पालनकर्ता दिखाकर मृत्यु को संहारक बताते हुए शिव का मृत्यु से तादात्म्य किया है ।[1]

राम की माया से विमोहित शिव-परित्यक्त सती अपने पिता के यहां यज्ञ में गईं । वहां शिव का भाग न देखकर उन्होंने योगाग्नि में स्वयं को भस्म कर दिया । सती की मृत्यु का समाचार पाकर कुपित शिव ने वीरभद्र को भेजकर समस्त यज्ञ का विध्वंस करा दिया । इसमें समस्त देवों को दण्डित होना पड़ा । तुलसीदास ने कहा है कि यह आख्यान लोकप्रिय और प्रचलित होने के कारण मैं इसका वर्णन संक्षेप में कर रहा हूं । पुराणों के अनुसार सती-दाह का समाचार पाने पर शिव के क्रोध से ही वीरभद्र की उत्पत्ति होती है और वह दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करते हैं ।

शिव के सर्वनाशक रूप का चित्रण काशी की रुद्रबीसी के प्रसंग में हुआ है । कवितावली के उत्तरकाण्ड में इसका अत्यन्त करुणाजनक तथा हृदय विदारक चित्रण है ।

संकर सहर सर, नर नारि बारिचर
बिकल सकल महामारी माजा भई है ।
उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगात जल थल मीचुमई है।। _७।१७६

---

१. रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरिहर
मीच मारिबे को ज्याइबे को सुधापान भो । - हनुमानबाहुक ११

तुलसीदास प्रार्थना कर रहे हैं –

गौरीनाथ, भौरानाथ,भवत भवानीनाथ।
बिस्वनाथपुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सी नारीं कासीबासी,
बेदकही,सही ससिसेखर कृपाल की।
छमुख-गनेस ते महेस के पियारे लोग
बिकल बिलोकियत,नगरी बिहाल की।
पुरी सुरबेलि केलि काटत किरात कलि
निठुर निहारियो उघारि डीठ भाल की।। - ७।१६६

१५. अहंकार रूप :-- क्रोध के समय मनुष्य रौद्र रूप धारण कर लेता है। उसी समय उसमें संहारक प्रवृत्ति का संचार होता है। समस्त ब्रह्माण्ड की पुरुष रूप में कल्पना की जाये तो उस परमब्रह्म परमपुरुष का अहंकार ही सृष्टि संहारक है। विराट् पुरुष की कल्पना यजु ( अ० ३१) तथा ऋक्वेदों तथा गीता में भी हुई है। गीता में विराट् पुरुष के अन्दर रुद्रों का निवास तो दिखाया है (अ०११।६,२२) परन्तु रुद्र विराट् पुरुष की किस वृत्ति के प्रतीक हैं यह नहीं बताया है। भागवतपुराण में कृष्ण तथा बाणासुर संग्राम के बाद विराट्रूप भगवत्स्तुति में रुद्र ने अहं को आत्मा कहा है,[1] जबकि अध्यात्मरामायण में अहंकार को रुद्ररूप बताया है।[2] तुलसीदास ने अध्यात्मरामायण के आधार पर शिव को अहंकार-रूप माना है।[3]

१६. परशुराम के गुरु :

ऊपर विचार किया जा चुका है कि शिव को तुलसीदास ने एकमात्र अपना गुरु ही नहीं जगद्गुरु माना है। परन्तु मानस में परशुराम शिव के एक विशिष्ट शिष्य के रूप में चित्रित हुए हैं। जनक-परिवार में शिव का एक धनुष राजा देवरात

---

१. देखिए अ० १०।६३।६ ३५

२. रुद्रोऽहंकाररूपस्त्वं। ३।१।४२

३. रामचरितमानस ६।१५ क

के समय से चला आ रहा था, जिसे शिव स्वयं दे गए थे। जनक ने यह निश्चय किया था कि जो शिव-धनुष भंग करेगा, उसी से सीता का विवाह होगा। राम इस धनुष को भंग करते हैं। धनुष-भंग का समाचार सुनकर परशुराम वहां आते हैं और अत्यन्त दर्प के साथ धनुष भंग करने वाले का नाम पूछते हैं

< < कहु जड़ जनक धनुष के तोरा ।।
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउं महि जहं लहि तव राजू
— मानस १।१७० । ३,४

परशुराम के विकराल रूप को देखकर समस्त सभा स्तम्भित हो जाती है और स्वयं राजा जनक भयभीत हो जाते हैं। लक्ष्मण - परशुराम-संवाद के समय वातावरण अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण हो जाता है। जिस उल्लासपूर्ण वातावरण में परशुराम का आगमन होता है उसके कारण परशुराम का मानस में एक विशिष्ट स्थान बन जाता है। परशुराम का कहना है कि जिसने शिव-धनुष तोड़ा है, मैं उसका बध करूंगा क्योंकि शिव मेरे गुरु हैं।

वाल्मीकि तथा अधिकांश रामकथाओं के अनुसार परशुराम के आक्रोश तथा संघर्ष का कारण यह था कि वे अपने एक समर्थ क्षत्रिय प्रतिद्वन्द्वी को ढूंढ़कर उससे युद्धकरना चाहते थे। नृसिंहपुराण में संघर्ष का एक नवीन कारण 'राम' नाम दिया गया है। अध्यात्मरामायण में दोनों कारणों का समन्वय है। परशुराम कहते हैं कि अरे क्षत्रिय अधम ! तू मेरे ही समान राम नाम से विख्यात होकर पृथ्वी पर विचरण करता है। यदि तू वास्तव में क्षत्रिय है तो मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध कर, एक पुराने जीर्ण-शीर्ण धनुष को तोड़कर व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रहा है।[१] स्पष्ट ही यहां धनुष की अवज्ञा है। संघर्ष के एक अन्य कारण का उल्लेख सर्वप्रथम महावीरचरित में मिलता है। यहां परशुराम राम का दमन करने लिए इसलिए आते हैं कि उन्होंने शिव का धनुष तोड़ कर गुरु का अपमान किया है। परशुराम का शिव-शिष्य होना परवर्ती

---

१. १ देखिए - बालकाण्ड ७।१०-१२

राम-नाटकों की कल्पना है ।[१] तुलसीदास ने अपना प्रेरणा स्रोत वाल्मीकि या अध्यात्म-रामायण को न बनाकर इन्हीं को बनाया है ।

१७. राक्षसों के इष्ट (उपास्य ) : शिव पार्वती को बताते हैं कि रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण ने भीषण तप किया था और रावण की इच्छानुसार मैंने उसे मनुष्य तथा वानर के अतिरिक्त अन्य से अवध्य का वर दिया था ।[२] रावण ने अपनी शिव-भक्ति के सम्बन्ध में स्वयं कहा है –

जान उमपति जासु सुराई । पूजेउं जेहि सिर सुमन चढ़ाई ।।
सिर सरोज निज करन्हि उतारी । पूजेउं अमित बार त्रिपुरारी ।।
—मानस ६।२५।२-३

रावण की शिव-भक्ति तथा शिव के अनुग्रह का उल्लेख अन्यत्र भी कई स्थानों पर हुआ है ।[3]

१८. भूत-प्रेतों के अधिपति : तुलसीदास ने कई स्थानों पर शिव को प्रमथराज,[४] प्रमथनाथ[५] तथा भूतनाथ[६] कहकर सम्बोधित किया है । पार्वतीमंगल तथा रामचरितमानस में शिव-बरात के प्रस्थान एवं मार्ग में इनका सुन्दर वर्णन है । इनके मुख विविध प्रकार के होते थे और यह सूअर, भैंसा, कुत्ता, गदहा आदि के असामान्य वाहन रखते थे । बरात लेकर जाने के समय शिव ने भृंगी के द्वारा अपने समस्त गणों को बुलवाया । उन सबमें कुछ के मुख, हाथ, पैर, नेत्रों का अभाव था और कुछ में यह सब अस्वाभाविक रूप में अधिक थे ।

---

१. विशेष विवरण के लिए देखिए - रामकथा , पृ० ३०७-३०८

२. रामचरितमानस १।१७७।१-५

३. वही, ५।४९ ख, ६।६४।६-७ ; विनयपत्रिका १६२।३, २१६।३ आदि,

४. ~~पार्वतीमंगल, मंगल-६८-~~, विनयपत्रिका १३।५

५. पार्वतीमंगल, मंगल ६८

६. कवितावली ६।५०, ७।१६६, १६७, १६८, १७१

तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ।।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन वेष अगनित को गनै ।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ।।

- मानस १।६३ के ऊपर छन्द

शिव को विकराल रूप वाले अपने यह गण प्रिय हैं[१]। इसीलिए शिव का सम्बन्ध संहार तथा श्मशान से होने के कारण तुलसीदास ने युद्धस्थल पर शिव के साथ भूत-बेतालों को भी दिखाया है ।[२]

१६. काशी के अधिष्ठाता : शिवपुराण ( रुद्र, सृष्टि, अ० ६ ) आदि की मान्यता के अनुसार तुलसीदास ने शिव को काशी का अधिपति बताया है ।[३] शिव की स्तुतियां तथा यदाकदा इसका उल्लेख मिलने के अतिरिक्त कवितावली के उत्तर-काण्ड में काशी की महामारी का वर्णन लगभग ग्यारह - बारह कवितों में हुआ है । पांच कोस में बसी हुई काशी पुण्य की राशि और स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों का साधन है ।[४] क्योंकि सद्गुण यहां के योद्धा, गणेश एवं कार्तिकेय सेनापति, पार्वती स्वामिनि तथा शिव स्वामी हैं ।[५] सम्पूर्ण काशी में शिव का ऐश्वर्य व्याप्त है ।[६] यहां कीट-पतंगों तक को मोक्ष प्राप्त होता है[७] और वहां के नर-नारी साक्षात्

---

१. कवितावली ७।१५१

२. वही, ६।५०

३. मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यानखानि अघ हानिकर ।
जहं बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ।। - दोहावली२३७ तथा विनयपत्रिका ६, ८, ६, २२ आदि

४. ~~वही~~ कवितावली, ७।१७२

५. वही ७।१७०

६. वही ७।१५८

७. विनयपत्रिका १।४

तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे ।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ।।
खर स्वान सुअर सृकाल मुख गन वेष अगनित को गने ।
बहु जिनस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बने ।।

- मानस १।६३ के ऊपर छन्द

शिव को विकराल रूप वाले अपने यह गण प्रिय हैं[१]। इसीलिए शिव का सम्बन्ध संहार तथा श्मशान से होने के कारण तुलसीदास ने युद्धस्थल पर शिव के साथ भूत-बैतालों को भी दिखाया है ।[२]

१६. काशी के अधिष्ठाता : शिवपुराण ( रुद्र, सृष्टि,अ० ६ ) आदि की मान्यता के अनुसार तुलसीदास ने शिव को काशी का अधिपति बताया है ।[३] शिव की स्तुतियां तथा यदाकदा इसका उल्लेख मिलने के अतिरिक्त कवितावली के उत्तर-काण्ड में काशी की महामारी का वर्णन लगभग ग्यारह - बारह कवित्तों में हुआ है । पांच कोस में बसी हुई काशी पुण्य की राशि और स्वार्थ तथा परमार्थ दोनों का साधन है ।[४] क्योंकि सद्गुण यहां के योद्धा, गणेश एवं कार्तिकेय सेनापति, पार्वती स्वामिनि तथा शिव स्वामी हैं ।[५] सम्पूर्ण काशी में शिव का ऐश्वर्य व्याप्त है ।[६] यहां कीट-पतंगों तक को मोक्ष प्राप्त होता है[७] और वहां के नर-नारी साक्षात्

---

१. कवितावली ७।१५१

२. वही, ६।५०

३. मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यानखानि अघ हानिकर ।
जहं बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न ।। - दोहावली२३७ तथा विनयपत्रिका ६,८,९,२२ आदि

४. ~~वही,~~ कवितावली ७।१७२

५. वही ७।१७०

६. वही ७।१५८

७. विनयपत्रिका १।४

शिव तथा पार्वती के समान हैं ।[१] परन्तु महामारी के समय वहां की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है --

संकर सहर सर, नरनारि बारिचर
विकल सकल महामारी माजा भई है ।
उछरत उतरात हहरात मरि जात
भभरि भगात जल-थल मीचुमई है ।। - कवितावली ७।१७६

काशी निवास के समय जब शैवों ने तुलसी का विरोध किया तो उन्होंने बड़े मार्मिक शब्दों में वहां के अधिपति को उपालम्भ दिया है --

देवसरि सैवों बामदेव गाउं रावरे हीं
नाम राम ही के मागि उदर भरत हौं ।

^ ^

पाइ के उराहनो उराहनो न दीजो मोहि
कालकला कासिनाथ कहें निबरत हौं ।। -कवितावली ७।१६५

शिव ने अपनी नगरी होने के कारण प्रलयकाल में र इसकी रक्षा अपने त्रिशूल पर रख कर की थी[२]। और तुलसीदास ने शिव की नगरी होने के कारण विनय-पत्रिका के एक पद में काशी की स्तुति करते हुए काशी-निवास का उद्बोधन किया है[3]। काशी का अधिपति होने के कारण तुलसी ने शिव को काशीश[४] तथा काशीपति[५] नामों से भी सम्बोधित किया है ।

गोसाईं चरित ( काशी खण्ड, मधुसूदन सरस्वती निर्णय प्रसंग ) में मिलता है कि अयोध्या में कलि-कुचाल के समय राम ने तुलसीदास को आदेश दिया कि जाकर

---

१. कवितावली, ७।१७१

२. वही, ७।१८१

३. विनयपत्रिका , पद २२

४. वही १३।६

५. वही, ६।५

काशी में निवास करो । वह सुख की राशि है और शिव वहां के रक्षक हैं । यह सुनकर तुलसीदास काशी आये और वहां की शोभा देखकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई ।

२०. <u>कैलास-निवासी</u> : शिव कैलास के निवासी हैं जो उनकी शक्ति पार्वती के जनक हिमवान् का एक अंश है । इस को लेकर संस्कृत में दो बड़े ही व्यंग्यात्मक श्लोक मिलते हैं —

असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमन्दिरम् ।
हरो हिमालये शेते हरि: शेते महोदधौ ।।

तथा कमले कमला शेते हर: शेते हिमालये ।
हरि : क्षीरोदधौ शेते मन्ये मत्कुणशंकया ।।

कैलास भारत के उत्तर में है और शिव का उत्तर दिशा से सम्बन्ध वैदिक साहित्य में ही स्थिर हो चुका था । परन्तु वहां पर्वत का नाम मुंजवान मिलता है[1]। तुलसीदास ने परवर्ती कल्पना के अनुसार शिव का निवास कैलास ही माना है । त्रेता युग में अगस्त्य के यहां से शिव कैलास पर आकर वहीं समाधि लगाते हैं ।[2] पार्वती से विवाह के बाद शिव कैलास पर आते हैं और वहीं रहकर विविध भोग विलास करते हैं —

जबहिं संभु कैलासहिं आए । सुर सब निज निज लोक सिधाए ।।
करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा । गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ।।
— रामचरितमानस १।१०३।३,५

पार्वती के राम-विषयक सन्देहों का निराकरण होने के पूर्व भी कहा गया है —

परम रम्य गिरिबर कैलासू । सदा जहां सिव उमा निवासू ।। वही१।१०५।८

राम के राज्याभिषेक के बाद भी शिव वापिस होकर कैलास ही आते हैं ।[3] कैलास पर निवास के कारण तुलसी ने शिव को गिरीश[4] तथा गिरिनाथ भी कहा है[5]।

---

१. देखिए पीछे प्रथम अध्याय

२. रामचरितमानस १।५८।६-८

३. वही ७।१४ ख

४. वही १।५५।८;२।८१।२ तथा गीतावली १।२।२४; पार्वतीमंगल,मंगल २ ;जानकीमंगल मंगल १००,१२८ आदि । ५ रामचरितमानस १।४८।५

विनयपत्रिका के एक पद में शिव का कैलास तथा काशी से सम्बन्ध दिखाते हुए भवन कैलाश, आसीन काशी मिलता है।[1] मूर्तिकला के अन्तर्गत रावणानुग्रहमूर्ति में रावण को शिवयुक्त कैलास उठाये प्रदर्शित किया जाता है।

२१. पार्वती के पति : शिव तथा पार्वती को लेकर तुलसीदास ने मानस के प्रारम्भ में शिवचरित का ही संन्निवेश किया है। इसमें शिव का सती सहित अगस्त्य के पास जाना, वापिस आते समय राम को देखकर सती का विमोह और सीता के वेष में राम की परीक्षा लेना, शिव द्वारा उनका मानसिक परित्याग, दक्षयज्ञ में शिव का अंश न देखकर सती का आत्मत्याग दिखाने के बाद सती के पुनर्जन्म का वर्णन है। अब सती हिमवान् के यहां पार्वती रूप में उत्पन्न हुईं थीं। इस जन्म में भी शिव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए वे नारद के निर्देशानुसार तपस्या करती है और अन्ततः शिव तथा पार्वती का विवाह हो जाता है। शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन करने के लिए तुलसीदास ने एक पृथक कृति पार्वतीमंगल का प्रणयन किया है।

पार्वती के अन्य विविध नामों — गिरिजा, गौरी, उमा, भवानी, चंडी-आदि-के आधार पर तुलसीदास ने शिव को गिरिजापति[2], गिरिजारमन,[3] गौरीश,[4] गौरीनाथ,[5] उमापति,[6] उमावर,[7] उमारमन,[8] भवानीनाथ,[9] चंडीश,[10] चंडीपति[11] आदि नामों से अभिहित किया है।

---

१. विनयपत्रिका १०।५

२. वही ६।१, जानकीमंगल, मंगल १

३. रामचरितमानस १।१०३

४. वही १।१०४।४, ५।३३।२, ६।२८, गीतावली ५।२८।७

५. कवितावली ७।१६६

६. रामचरितमानस ६।२५।२, विनयपत्रिका ४।४

७. वही ७।१

८. रामचरितमानस १।४     ९. कवितावली ७।१६६

१०. वही १।१८,२१

११. वही ६।४१

२२. गणेश तथा कार्तिकेय के पिता : ब्रह्मा ने तारकासुर के अत्याचारों से पीड़ित देवताओं को बताया कि शिव का पुत्र ही असुरों पर विजय प्राप्त कर सकता है। निदान देवों की विनय पर शिव ने पार्वती से विवाह किया। इससे उन्हें कार्तिकेय नामक पुत्र प्राप्त हुआ।

हर-गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहिविधि विपुल काल चलि गयऊ ।।
तब जनमेउ षटबदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहिं मारा ।।
—रामचरितमानस १।१०३।६-७

विनयपत्रिका में सर्वप्रथम गणेश की स्तुति है। इसमें उन्हें शिव तथा पार्वती का पुत्र कहा है —

गाइये गनपति जग बंदन। संकर सुवन भवानी नंदन ।।

कवितावली के उत्तरकाण्ड में काशी का वर्णन करते समय शिव को वहां का अधिष्ठाता, पार्वती को अधिष्ठात्री तथा पुत्रद्वय गणेश और कार्तिकेय को वहां का योद्धा बताया गया है।[1]

२३. हनुमान् रूप : लांगूल उपनिषद्, विविध पुराणों, रामायणों तथा लोककथाओं आदि में हनुमान् के जन्म को लेकर तीन प्रकार की धारणायें मिलती हैं —

क. रुद्रावतार - स्कन्दपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भविष्यपुराण, नारदपुराण, कृत्तिवास रामायण, उड़िया महाभारत, धर्मखण्ड, लांगूलोपनिषद्, हनुमद्विजय आदि।[2]

ख. शिव रूप - महाभागवत तथा बृहद्धर्मपुराण में शिव हनुमान का रूप धारण करके राम की सहायता करने का वचन देते हैं।[3]

ग. शिव के पुत्र - शिव महापुराण, रामविभा, सारलादासमहाभारत, तत्व-संग्रह रामायण, बैगा भूमिया जाति की दन्तकथा आदि।[4]

---

१. वही, ७।१७०

२. देखिए-रामकथा, पृ० १५८, १६१, ६६०, ६६२, २३५, ६६३, १८४, १७६

३. वही, पृ० १७३, ३१७

४. वही, पृ० १६२, ६६४, २२७

अध्यात्मरामायण में सभी वानरों को देवांशसम्भूत तथा इच्छानुकूल स्वरूप धारण करने वाला बताकर[1] हनुमान को महाबलवान, पराक्रमी, बुद्धिश्रेष्ठ तथा केसरी और पवन का पुत्र कहा है ।[2] हनुमन्नाटक में उन्हें रुद्रावतार (१३।३१), रौद्र रुद्रावतार (५।३३), पवनपुत्र रुद्रावतार (६।३,६।२७, तथा १३।३० के ऊपर गद्य) तथा माहेश (११।३५) बताया है ।

तुलसीदास ने हनुमन्नाटक के आधार पर हनुमान् को रुद्र का अवतार मानते हुए[5] उन्हें पवन[3] तथा केसरी का पुत्र माना है ।[4] और उनके लिए महादेव, कपाली ( वि० २६।१),पुरारी (वि०२७।१), रुद्रों तथा कामविजयकारियों में अग्रगण्य ( वि० २७।३), हर्ष में नृत्यकारी ( वि० २७।५),जटाजूटधारी (वि०२८।२), वामदेव ( वि० २८।५), मन्मथमथन, ऊर्ध्वरेत, महानाटक निपुण ( वि० २६।३), शूलपाणि(वि०२६।५), भोलानाथ-भूतनाथ (हनु० ४३) सदृश विशेषणों का प्रयोग करते हुए वामदेव-रूप ( हनु० १४) कहा है । इनमें से प्राय: सभी विशेषण शिव के लिए प्रयुक्त होते हैं । एक प्रकार से देखा जाये तो तुलसी-साहित्य में शिव और हनुमान् में पूर्णसाम्य मिलता है । शिव ने शाबर मन्त्रों की रचना की है तो हनुमान् महानाटक निपुण हैं । शिव ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस किया तो हनुमान् ने अशोकवाटिका नष्ट कर दी थी । शिव ने राम-जन्म, राम-विवाह, पार्वती-परीक्षा तथा रामकथा-श्रवण के समय स्वरूप-परिवर्तन किया तो हनुमान भी वेष-परिवर्तन में सक्षम हैं । वे भी राम-लक्ष्मण के प्रथम दर्शन[6] तथा लंका-विजय के बाद भरत से मिलने के समय[6] ~~१२~~ विप्र रूप

---

१. असंख्याता: समायान्ति हरय: कामरूपिण: ।
सर्वदेवांशसम्भूता सर्वे युद्धविशारदा: ।। - ४।६।७,

२. देखिए ४।६।१२,१३,१५

३. ~~वही~~ विनयपत्रिका ३३।१,रामाज्ञा प्रश्न ६।४।१

४. विनयपत्रिका २६।१

५. वही,२५।३ तथा जेहि सरीर रति राम सों , सोइ आदरहिं सुजान ।
रुद्रदेह तजि नेहबस, संकर मे हनुमान ।।

जानि राम सेवा सरस,समुझि करब अनुमान ।
पुरुषा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान ।। दोहावली१४२,१४३

धारण करते हैं और लंका में मसक रूप से प्रवेश करते हैं ।[१]

डा० बुल्के के अनुसार रामकथा की लोकप्रियता के कारण शैवों ने शिव की महत्ता दिखाने के लिए सुन्दरकाण्ड के नायक हनुमान् को रुद्र का अवतार घोषित कर दिया ।[२] परन्तु तुलसीदास ने शिव द्वारा हनुमत्-स्वरूप धारण करने का कारण राम की भक्ति का आनन्ददायक होना माना है ।[३]

तुलसी-साहित्य में उपलब्ध हनुमान के निम्न स्वरूप विशिष्ट महत्व रखते हैं-

क. त्रिदेव आदि हनुमान के आज्ञाकारी -

करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल,
को है जगजाल जो न मानत इताति है । - हनुमानबाहुक ३०,

ख. हनुमान् का गुणगान सुनने से देवों को प्रसन्नता -

तेरी गुनगान सुनि गीरबान पुलकत,
सजल बिलोचन बिरंचि हरि हर को ।। - वही ३३

ग. संसार-रक्षक -

जयति रणधीर, रघुवीरहित, देवमणि, रुद्रअवतार, संसार-पाता ।
-विनयपत्रिका २५।३

घ. संसार के अधिपति-

राहु-रवि-शुक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरण करण-भयहरण जय भुवन भर्ता ।
-विनयपत्रिका २५।२

जयतिनिर्भरानन्द-संदोह कपि केसरी, केसरी-सुवन भुवनैक भर्ता ।-वही २६।१

ङ. सिद्धिदाता-

मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारुत पूत ।
सकल सिद्धि कर कमल तल, सुमिरत रघुबर दूत ।।
-रामाज्ञाप्रश्न ६।४।१, दोहावली २२६

---

१. रामचरितमानस ५।४।१

२. हिन्दी-अनुशीलन (धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक), पृ० ३४७ तथा रामकथा, पृ० ६६७और७२७

३. दोहावली १४२-१४३

छ. विघ्नविनाशक -

धीरबीर रघुबीर प्रिय सुमिरि समीर कुमारु ।
अगम सुगम सब काज करु करतल सिद्धि बिचारु ।। - दोहावली-२३०

छ. राम-भक्त ( दास्य भाव)

हनुमान सम नहिं बड़ भागी । नहिं कोउ राम-चरन अनुरागी ।।
- मानस ७।५०।८

जानकीनाथ चरणानुरागी । - विनयपत्रिका २६।२,तथा २५१।१ भी,

नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपाकरि अनपायनी ।।
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी । एवमस्तु तब कहेउ भवानी ।।
-- मानस ५।३४।२-२

ज. राम तथा सीता के सेवक -

तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे । - विनयपत्रिका ३३।७

झ. राम के स्वभाव , गुण, शील, महिमा तथा प्रभाव से परिचित -

राम! रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाव,
जान्यो हर, हनुमान,लखन,भरत । - वही १५१।१

ञ. राम-जन्म से हर्षित --

राम जनम सुभ काज सब कहत देवरिषि आइ ।
सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमंग न अमाइ ।। -रामाज्ञाप्रश्न४।४।१

ट. राम के कार्यों में सहायक -

तेरे बल रामराज किये सब सुरकाज
सकल समाज साज साजे रघुबर के । - हनुमानबाहुक ३३

ठ. राम के सखा --

बामदेव रूप भूप राम के सनेही । - वही १४
श्रीराम-प्रिय-प्रेम-बन्धो । - विनयपत्रिका २८।५
समरथ सुअन समीर के, रघुबीर-पियारे । - वही ३३।१

ड. राम के प्रिय

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना । तै मम प्रिय लछिमन ते दूना ।।
-- मानस ४।३।७

यह बताना रोचक एवं महत्वपूर्ण है कि एक स्थान पर राम हनुमान् को सुत कहकर सम्बोधित करते हैं ।

सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं । देखेउं करि बिचार मन माहीं ।।वही५।३२।७

किसी भी भारतीय आख्यान अथवा ग्रन्थ में हनुमान को राम का पुत्र नहीं माना गया है । विदेशों मेंमलय के सेरीराम तथा स्याम के रामजातक में ही हनुमान् का जन्म राम के वीर्य से दिखाया गया है । हिकायत सेरीराम के अनुसार राम से उत्पन्न सीता के भ्रूण को अंजनी के मुंह में प्रतिष्ठापित करने से अथवा तपस्यारत अंजनी पर अनुरक्त होकर राम के और वीर्यपतन और उसे वायु के द्वारा अंजनी के मुख में रखवाने से हनुमान का जन्म होता है । रामजातक में हनुमान का जन्म वानर तथा वानरी रूप राम और अंजनी से प्रदर्शित है ।[१] ऐसा लगता है कि मानस में राम ने इसका प्रयोग अतिशय प्रेम एवं स्नेहवश किया है ।

२४. रामकथा के अधिष्ठाता एवं प्रवक्ता -- वाल्मीकि को आदिकवि मानने के साथ उनकी रामायण को आदिकाव्य और प्रथम रामायण माना जाता है । परन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि वाल्मीकि रामायण ही आदिरामायण न होकर 'महा-रामायण' मूल तथा आदि-रामायण थी जो अब अनुपलब्ध है । सात काण्डों में विभाजित साढ़े तीन लाख श्लोकों की इस वृहत् रामायण के रचयिता शिव माने जाते हैं जिसे उन्होंने स्वायम्भुव मन्वन्तर के प्रथम सतयुग में पार्वती को सुनाया था।[२] इसके अतिरिक्त निम्न अन्य रामायणें भी शिव तथा पार्वती के संवाद-रूप में रची गई हैं :-

क. अध्यात्म रामायण- एक समय कैलास पर आसीन शिव से उनके वामांक में विराजमान पार्वती राम के तत्व को पूछती हैं । उसी के अन्तर्गत उत्तर में शिव ने अध्यात्मरामायण का प्रणयन किया है ।[३] इसमें प्रमुख वक्ता-श्रोता शिव और पार्वती केअतिरिक्त अन्य वक्ता-श्रोता है - सीता-राम तथा हनुमान्, ब्रह्मा तथा

---

१. देखिए-रामकथा, पृ० ६६५

२. हिन्दुत्व, पृ० १३७

३. अध्यात्मरामायण १।१।५-१५

तथा नारद और सूत तथा पाठक ।

ख. आनन्दरामायण -- १२२५२ श्लोकों की यह वृहत् रामायण ६काण्डों में विभाजित है । सीता द्वारा शतस्कन्ध रावण तथा चण्डी रूप में मूलकासुर के वध से इस पर शाक्त प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है[१]। ११२ इस रामायण के लौकिक प्रकाशन के विषय में कहा गया है कि इसे ब्रह्मा ने शिव से सुनकर नारद को सुनाया और नारद ने उसे वाल्मीकि को सुनाया[२]।

ग. रामायण-महामाला - ५६००० श्लोकों की इस रामायण की रचना तामस मन्वन्तर के दशम त्रेता में हुई थी । यह सप्त सोपानबद्ध है और इसमें शिव का नीलगिरि पर मराल वेष से निवास, मराल होने का कारण, काक से कथाश्रवण भी रचना का विशिष्ट अंग बनाया गया है ।[३]

घ. बलरामदास रामायण - इसके अरण्यकाण्ड में लक्ष्मणको रुद्रावतार माना है और अनुसूया उन्हें शूलधारी कहती हैं ।[४]

ङ०. रामायण चम्पू - इसके रचयिता शिव परन्तु श्रोता नारद हैं । इसकासमय श्राद्धदेव मन्वन्तर का प्रथम त्रेता है । इसमें कार्तिकेय जन्म के अतिरिक्त गणेश-उत्पत्ति का भी वर्णन है । ऐसा लगता है कि यह शैव मत से अधिक प्रभावित है ।[५]

अध्यात्मरामायण के अनुकरण पर तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में चार संवाद रखे हैं --

---

१. रामकथा , पृ० १६८-१७०

२. वही, पृ० ४१

३. हिन्दुत्व, पृ० १३६

४. रामकथा, पृ० २४२,

५. हिन्दुत्व , पृ० १४३

क. तुलसीदास और पाठक या सन्त ।

ख. याज्ञवल्क्य- भारद्वाज

ग. भुशुण्डि- गरुड़ ।

घ. शिव-पार्वती ।

इनमें प्रमुख संवाद शिव और पार्वती का है । एक बार त्रेता युग में शिव और सती अगस्त्य के आश्रम से कैलास आ रहे थे । मार्ग में शिव ने सीता की खोज में विकल राम को देखकर सच्चिदानन्द कहकर उनका अभिवादन किया तो सती के मन में सन्देह उत्पन्न हुआ -

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद ।

सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ।।

बिष्नु जो सुर हित नर तनु धारी । सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ।।

खोजइ सो कि अग्य इव नारी । ग्यानधरम श्रीपति असुरारी ।।

--मानस १।५० तथा ५१।१-२

शिव सती को राम की यथार्थता बताते हैं, परन्तु सती सीता का रूप धारण कर राम की परीक्षा लेती हैं और शिव उनका परित्याग कर देते हैं । मनसा परित्यक्त सती पुनर्जन्म में शिव को पति के रूप में पाकर पुन: प्रश्न करती हैं जिन राम को मुनि गण अनादि ब्रह्म बताते हैं और वेद-पुराण जिनका गुणगान तथा आप जिनका अहर्निश जाप करते हैं वे दशरथ के पुत्र हैं अथवा परमब्रह्म ? वे तो अज्ञ की भाँति नारी-वियोग में मग्न थे ? यदि उन्हें परमब्रह्म का अवतार मान लिया जाये तो अवतार का कारण, बालचरित, सीता-विवाह, वनवास आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त तथा अन्य भी जो रहस्य हों उन्हें कहिए ।[1]

-मानस

औरउ राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ।।/१।१११।३

पार्वती के इन प्रश्नों का शिव ने जो उत्तर दिया वही रामकथा अथवा रामचरित है । शिव ने प्रारम्भ में इसे छिपाकर रखा था,[2] परन्तु अवसर जानकर उसे उद्घाटित किया --

---

१. रामचरितमानस १।१०७ वें दोहे के आगे ,

२. मति अनुरूप कथा मैं भाषी । जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ।। वही ७।१२८।१

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ।। वही
१।३०।३

कीन्हि प्रस्न जेहिं भांति भवानी । जेहि विधि संकर कहा बखानी ।। वही १।३३।१

रामचरितमानस मुनि-भावन । बिरचेउ संभु सुहावन पावन ।। वही१।३५।६

तथा- रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।। वही ,१।३५।११

रामकथा के नामकरण के विषय में तुलसीदास कहते हैं --

रचि महेश निज मानस राखा ।

तातें रामचरित मानस बर । धरेह नाम हियं हेरि हरषि हर ।।

--वही १।३५।११-१२

अर्थात् शिव ने इसे अपने मानस में गुह्यकरके रखा था, इसलिए उन्होंने राम के इस चरित को रामचरितमानस कहा । यहां मानस का अर्थ हृदय है और मानस सरोवर को भी कहते हैं । अध्यात्मरामायण में राम हनुमान् से कहते हैं कि आत्मा और पर-मात्मा -रूप परम रहस्य का उद्घाटन मेरा हृदय ही है जो मैंने तुम्हें सुनाया है ।

इदं रहस्यं हृदयं ममात्मनो मयैव साक्षात्कथितं तवानघा । - १।१।५२ ,

इस प्रकार जैसे अध्यात्मरामायण का रहस्य-उद्घाटन राम का हृदय है उसी प्रकार तुलसी का 'रामचरितमानस' शिव का हृदय है ।

रामचरित 'मानस' = रामचरित रूप सरोवर ,

सरोवर = ह्रद ,

ह्रद तथा मानस= हृदय,

रामचरितमानस' = रामचरित रूपी हृदय ,

अध्यात्मरामायण में आत्मा-परमात्मा के उद्घाटित रहस्य का हृदय नाम राम ने स्वयं रखा है और तुलसीदास के द्वारा वर्णित रामकथा का रामचरितमानस नाम भी स्वयं शिव का दिया हुआ है ।

शिव रामकथा के अधिष्ठाता ही नहीं उसके व्याख्याता भी है । इसीलिए महारामायण,अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण,रामायण महामाला,बलराम-दास रामायण, रामायण चम्पू तथा १८ वीं शती की काश्मीरी रामायण अथवा रामावतारचरित[1] में प्रमुख वक्ता शिव ही हैं ।

---

रामचरितमानस के अनुसार शिव ने रामकथा का उद्घाटन तीन पात्रों के प्रति किया था –

क. उमा :

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा । बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ।।
मानस ।१।३०।३

रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा ।।
वही १।३५।११ ,

ख. काकभुशुण्डि :

सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा । वही १।३०।४

ग. लोमश :

रामचरित सर गुप्त सुहावा । संभु प्रसाद तात मैं पावा ।। वही ७।११३।११

काकभुशुण्डि ने रामकथा शिव के अतिरिक्त लोमश ऋषि से भी सुनी थी –

मुनि मोहि कछुक काल तहं राखा । रामचरितमानस तब भाषा ।।
सादर मोहि यह कथा सुनाई । × × वही ७।११३।६-१०

इन काकभुशुण्डि से ही रामकथा का प्रचार लोक में हुआ उन्होंने यह गरुड़ (-मानस १।१२०ख) तथा याज्ञवल्क्य को सुनाई थी और याज्ञवल्क्य से इसे भारद्वाज ने प्राप्त किया था --

सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा । × × ×
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा । तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा ।
-- वही १।३०।४-५

तुलसीदास ने इसे अपने गुरु से सुना था –

मैं पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकर खेत । - वही १।३०क ,

इस प्रकार शिव द्वारा रामकथा के लौकिक उद्घाटन का यह क्रम निम्न प्रकार हुआ-

शिव (रामकथा के अधिष्ठाता रूप-मानस १।३०।३,१।३३।१, १।३५।६,१।३५।११,७।११३।११ तथा ७।१२८।१)

उमा (-मानस१।३०।३, १।३५।११)

लोमश(मानस७।११३।११)

(मानस ७।११३।६-१०) → काकभुशुण्डि (मानस१।३०।४)
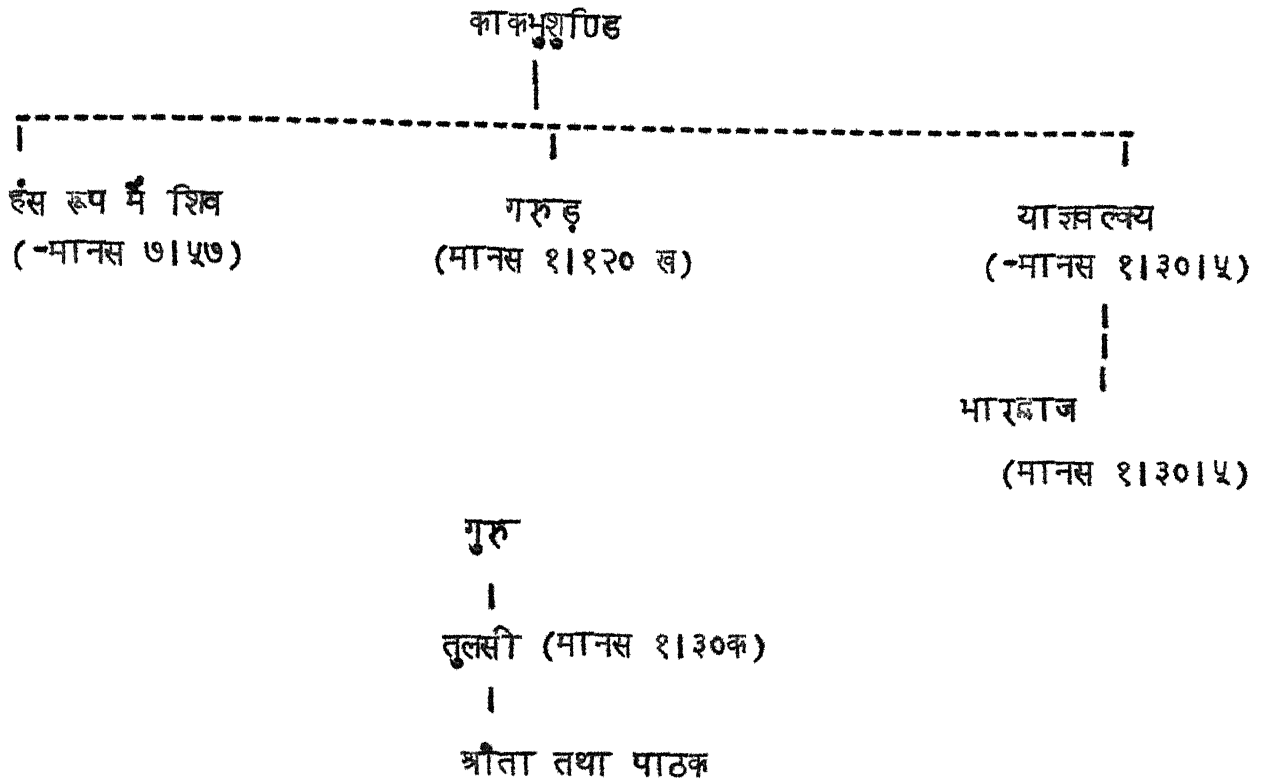
मूलगोसाईंचरित में भी शिव द्वारा रामकथा के लौकिकप्रकाशन का यही क्रम दिया गया है।[१]

२५. रामकथा-रस के भोक्ता :- मानस लंकाकाण्ड में भुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि आपने मुझसे शिव की प्रिय रामकथा सुनकर मुझे अत्यन्त उपकृत किया है।[२] स्वयं तुलसी ने कहा है कि रामकथा शिव को नर्मदा के समान प्रिय है।[३] इस प्रियभाव

---

१. गोसाईंचरित, पृ० २८६

२. देखिए ७।१२३।४-५

३. सिवप्रियमेकल सैल सुता सी। - मानस १।३१।१३,

नर्मदा से प्राप्त स्फटिक, कृष्ण अथवा रक्तवर्ण के अण्डाकार प्रस्तर खण्डों को शिव का स्वरूप माना जाता है। इसका अर्थ यह है कि शिव को नर्मदा अत्यन्त प्रिय होने के कारण वे उसमें सात्वत निवास करते हैं। उसीप्रकार उन्हें रामकथा भी इतनी प्रिय है कि उसी में निमग्न रहते हैं। वायु, पद्म, स्कन्द आदि पुराणों में भी नर्मदा को शिव की प्रिय बताया है।

-- मानसपीयूष

के कारण शिव ने रामकथा से प्रेम न रखने वालों के कानों को सर्प-विवर के समान कहा है ।[१]

शिव के रामकथा-प्रेम का एक प्रमाण उसके उद्घाटन में निहित है । उन्होंने रामकथा एकमात्र पार्वती के अतिरिक्त लोमश तथा काकभुशुण्डि को भी सुनाई है । परन्तु उनके रससिद्ध होने का प्रत्यक्ष प्रमाण रामकथा-श्रवण है । शिव रामकथा के अधिष्ठाता होकर भी अगस्त्य तथा काकभुशुण्डि से उसे सुनते हैं ।[२] भुशुण्डि से सुनने के लिए उन्हें मराल वेष तक धारण करना पड़ा ।

२६. राम की महत्ता से परिचित :- शिव में राम के गुप्त रूप को जानने की शक्ति थी, इसीलिए उन्होंने अगस्त्याश्रम से आते समय मार्ग में राम को देखकर अभिवादन किया ।[३] लंका युद्ध के समय जब राम नागपाश में आबद्ध होते हैं[४] तथा मायामय असंख्य रावणों को देखकर देवता पलायन को तत्पर होते हैं,[५] उस समय शिव में राम की महिमा जानने के कारण कोई अन्यथा भाव नहीं आता है । वे जानते हैं कि यह राम की लौकिक लीला-मात्र है । नागपाश में आबद्ध राम को मुक्त करने से विमोहित गरुड़ का मोह नष्ट करने के लिए ब्रह्मा उन्हें शिव के पास भेजते समय कहते हैं -

जान महेस राम प्रभुताई ।। - मानस ७।६०।६ ,

राम भी शिव को अपने स्वभाव से परिचित मानते हैं -

सुनहु सखा निज कहउं सुभाऊ । जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ।।[६]

राम के यथार्थ स्वरूप से अवगत होने के कारण ही सत्योपाख्यान में शिव

---

१. मानस १।११३।२

२. वही १।४८।३ तथा ७।५६

३. वही १।५०।३      ४. वही ६।७३।११ से दोहे तक

५. वही , ६।६६।१-८ ,

६. वही ५।४८।१, तथा - वामदेव ! राम को सुभाव सील जानियत । - कवितावली ७।१६६

~~६. रामकथा, पृ० ३५१~~

विश्वामित्र को आदेश देते हैं कि वे यज्ञ की रक्षा के लिए राम को ले आयें।[1]

२७. राम की लीलाओं के रस-भोक्ता : त्रेता युग में अगस्त्य के आश्रम से आते समय शिव विचार करते हैं कि राम रघुके वंश में अवतरित हुए हैं। किसी प्रकार उनके दर्शन हो जाते। संयोग से उन को राम से भेंट हो जाने पर वे इतने प्रसन्न होते हैं कि मार्ग में शरीर पुलकायमान हो उठता है। शिव की तत्कालीन भावविभोरता के विषय में सती सोचती हैं --

भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी।।

—मानस १।५०।८,१४८

शिव विमान पर आरूढ़ होकर राम-रावण युद्ध देखने आते हैं[2] और राम के जन्म तथा विवाहोत्सव के समय तो गुप्त वेष में घुलमिलकर लीला-पान करते हैं।[3] लंका-विजय के बाद शिव राम के पास सबसे बाद में निश्चिन्त भाव से जाते हैं और राम की स्तुति करके राज्याभिषेक पर पहुंचने की पूर्व-सूचना दे देते हैं।[4] यह पूर्व-सूचना उनके अतिशय प्रेमाधिक्य की परिचायक है। राज्याभिषेक के समय भी वे एकान्त देखकर सबसे बाद में पुलकित शरीर से जाते हैं।[5] इन्हीं कारणों से भारद्वाज कहते हैं कि राम को देखकर शिव के हृदय तथा नेत्र परितृप्त नहीं होते हैं।[6] काकभुशुण्डि का तो कहना है कि शिव ने योगी का अशिव रूप राम की लीलायें देखने के लिए ही धारण किया --

जेहि सुख लागि पुरारि असुभ वेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन।। - मानस ७।८८क

२८. राम-नाम के महत्त्व से परिचित -- तुलसीदास स्वयं ही नहीं उनके पात्र भी राम-नाम को मुक्ति का अचूक साधन मानते हैं।[6] बालि कहता है कि

---

१. रामकथा, पृ० ३४१
२. रामचरितमानस ६।९१।१०२
३. वही १।१९६।३-८ तथा १।३२१।६-८ और छन्द
४. वही ६।११४ क से ११५ तक
५. वही ७।१३ ख
६. वही २।२०६
७. पतित पावन राम-नाम सो न दूसरो।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो।। - विनयपत्रिका ६९।५

राम-नाम के प्रभाव से ही शिव काशी में मोक्ष प्रदान करते हैं[१]। काशी पुण्य क्षेत्र है। वहां मृत्यु होने से मोक्ष प्राप्त होता है। परन्तु यह मोक्ष सहज ही नहीं मिल जाता। मृत्यु के समय शिव राम-नाम का उपदेश देते हैं और उससे मुक्ति होती है।

महिमा राम नाम कै, जान महेस।
देत परमपद कासी, करि उपदेस।।[२]

राम-नाम की इस मोक्षदायक शक्ति को शिव स्वयं स्वीकार करते हैं --

कासी मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम-बल करउं बिसोकी।।
-- मानस १।११९।१,

इसीलिए उन्होंने शतकोटिरामायण में से दो अक्षरों के इस राम-नाम को निकाल लिया है --

रामचरित सत कोटि महं, लिय महेस जियं जानि।।
वही १।२५ तथा दोहावली ३१,

तथा - सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि
लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृतु है।- विनयपत्रिका २५४।२

मत्स्यपुराण (५३।१०), पद्मपुराण (४।१।२४), पाराशर्य उपपुराण, अद्भुतरामायण (सर्ग १), आनन्दरामायण (यात्रा काण्ड, सर्ग २, राज्य काण्ड, सर्ग १) आदि में वाल्मीकिकृत एक शतकोटिश्लोक रामायण का उल्लेख मिलता है।[३] आनन्दरामायण ( यात्रा काण्ड) के अनुसार वाल्मीकि कृत शतकोटिरामायण की कथा सुनने के लिए तीनों लोक से देव-यक्ष-दैत्य आदि आया करते थे। रामायण के सौन्दर्य से आकर्षित होकर प्रत्येक लोक के निवासी उसे अपने लोक में ले जाने की इच्छा करने लगे तो शिव ने विष्णु से इस विवाद का निर्णय कराया। विष्णु ने तीनों लोकों के लिए उसके तीन भाग किए तो 'राम' नाम केवल दो अक्षर शेष रहे, जिन्हें शिव ने मांग लिया। इन्हीं से शिवमृत्युकाल में काशीवासियों को मुक्ति

---

१. जासुनाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अविनासी।। वही४।१०।४
२. बरवै रामायण७।५३
तथा - महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासी मकुति हेतु उपदेसू।। मानस १।१९।३
३. रामकथा, पृ० ७२६ तथा मानसपीयूष बालका०भाग १, पृ० ४२४-४२५

देते हैं ।

> ह्वैमारे याचमानाय मह्यं शैवे ददौ हरि: ।
> उपदिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ ।।
> रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति ।[1]-सर्ग२।१५-१६

इस प्रकार राम-नाम सर्वप्रथम शिव को प्राप्त हुआ और वही इसके प्रथम व्याख्याता हैं ।

इस राम-नाम के प्रभाव से ही नाग,कपाल, भस्म आदि धारण किए कुवेष शिव शिव कहलाते हैं ।[2] इसी के विश्वास पर शिव ने कालकूट का पान कर लिया और उसने अमृत सदृश फल देकर शिव को अजर अमर कर दिया ।[3] जैमिनि-पुराण के अनुसार रामनाम का प्रभाव एकमात्र शिव ही जानते हैं और पद्मपुराण के अनुसार राम-नाम के प्रभाव को अन्यों से पार्वती दो गुना जानती हैं तथा शिव पार्वती से भी दोगुना जानते हैं ।[4] इसीलिए --

> बेद हू, पुरान हू पुरारि हू पुकारि कह्यो,
> नाम प्रेम चारि फल हू को फरु है । - विनय पत्रिका २५५।३

२६. <u>राम-नाम के उपासक</u> : जिस राम-नाम के कारण शिव पर कालकूट विष का अमृत तुल्य प्रभाव पड़ा उसका शिव द्वारा जप करना स्वाभाविक है । वे उसका जाप काशी में मोक्ष प्रदान करने के लिए तो करते ही हैं,[5] समस्त अमंगलों तथा पापों को नष्ट कर कल्याण करने के लिए भी उसे जपते हैं ।

---

१. मानस पीयूष,बालकाण्ड, भाग१, पृ० ४२४ से उद्धृत

२. नाम प्रसाद संभु अबिनासी । साजु अमंगल मंगल रासी ।। मानस १।२६।१

३. नाम प्रभाउ जान सिव नीको । कालकूट फलु दीन्ह अमी को ।। वही १।१६।८
तथा - मंत्र सो जाइ जपहि, जो जपि भे, अजर अमर हर अचइ हलाहलु ।
—विनयपत्रिका २४।४

४. मानस पीयूष ,बालकाण्ड, प्रथम भाग, पृ० ३४६

५. रामचरितमानस १।१६,३, १।४६।३ तथा दोहा, ४५२।६, १।६०।३, १।७५।८, १।१०८।७, विनयपत्रिका १०८।२,१५२।११,१५७।२,१८४।४, २४७।२,गीतावली,१।१२।४,कवितावली ७।१५०,दोहावली २४ आदि ,

मंगल भवन अमंगल हारी । उमा सहित जेहि जपत पुरारी ।

- मानस १।१०।२

तथा

हरन अमंगल अघ अखिल,करन सकल कल्यान ।

राम नाम नित कहत हर, गावत वेद पुरान ।। दोहावली ३५

तुलसीदास ने रामचरितमानस, विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली, दोहावली आदि में विभिन्न स्थानों पर शिव को राम-नाम का उपासक कहा है ।[१]

३०. राम-भक्ति-माहात्म्य के ज्ञाता : तुलसीदास ने जितने ही स्थलों पर राम-भक्ति का महत्व प्रतिपादित किया है । वे राम की भक्तिहीन जीवन को व्यर्थ मानते हैं ।[२] क्योंकि राम-भक्ति के बिना सुख असम्भव है ।[३] राम-भक्ति के इस माहात्म्य से शिव परिचित हैं ।[४] वे पार्वती से स्वानुभूति कहते हैं कि संसार स्वप्नवत् मिथ्या और एकमात्र राम की भक्ति ही सत्य है ।

उमाकहउं मैं अनुभव अपना । सत हरि भजन जगत सब सपना ।। मानस३।३६।

३१. राम-भक्ति प्रदायक : तुलसीदास ने विनयपत्रिका की प्रारम्भिक स्तुतियों में प्राय: सभी देवों के साथ शिव से भी राम-भक्ति याचित की है ।[५] परन्तु शिव के सम्बन्ध में उनकी तद्विषयक धारणा किंचित् भिन्न है, क्योंकि वे कहते हैं --

बिनु तव कृपा राम-पद-पंकज, सपनेहुं भगति न होई ।।

--विनयपत्रिका ६।२

तथा - नातो नाते राम के राम सनेहु ।

तुलसीमांगतजोरि कर जनम-जनम सिव देहु ।। - दोहावली ८६,

---

१. कवितावली ७।३८

२. विनयपत्रिका ८७।१

३. गीतावली २।८२।१

४. विनयपत्रिका ८७।१ ३,७,६,१०,१४

५. देखिए- दोहा १३३

इसीप्रकार दोहावली में एक स्थान पर विश्वास के बिना भक्ति की प्राप्ति असम्भव बतायी गई है[1] और मानस के प्रारम्भ में (श्लोक २) शिव को विश्वास-रूप कहा गया है । यहभी द्रष्टव्य है कि शिव रामकथा के अधिष्ठाता हैं और रामकथा-श्रवण से राम-भक्ति प्राप्त हो जाती है ।[2] रामकथा के सप्त-सोपान राम-भक्ति के मार्ग हैं ।[3] कथा-श्रवण के बाद पार्वती स्वीकार करती हैं कि उनमें राम की भक्ति का अभ्युदय हो गया है ।[4] इससे निष्कर्ष निकलता है कि शिव राम-भक्ति प्रदान करने वाले हैं । शिव ने भी भुशुण्डि से कहा है कि मेरे प्रभाव से तेरे हृदय में राम की भक्ति उत्पन्न होगी ।[5] फिर स्वयं राम कहते हैं कि --

औरउ एक गुपुत मत, सबहि कहउं कर जोरि ।
संकर भजन बिना, भगति न पावइ मोरि ।। - मानस ७।४५

तथा - भगति मोरि तेहि संकर देहहि ।। - वही ६।३।३

३२. विष्णुलोक प्रदायक --राम ने सागर-सेतु पर शिवलिंग स्थापितकिया था, जो रामेश्वर कहलाया । राम कहते हैं कि जो रामेश्वर पर गंगाजल अर्पित करेगा उसे मेरी सायुज्य मुक्ति और जो उस के दर्शन करेगा उसे सालोक्य मुक्ति अर्थात् मेरा लोक प्राप्त होगा ।[6] इसी आधार पर तुलसीदास ने कवितावली में शिव को श्रीनिकेत देने वाला कहा है --

देत सम्पदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि । - ७।१६०

---

१. देखिए - दोहा १३३

२. मुनि दुर्लभ हरि भगति नर, पावहिं बिनहिं प्रयास ।
जो यह कथा निरन्तर, सुनहिं मानि विस्वास ।। - मानस ७।१२६
तथा - पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं ।
_वही, उत्तरकाण्ड के अन्त में दूसरा श्लोक

३. रामचरितमानस ७।१२६।३

४. वही, ७।१२६।८ तथा दोहा

५. वही ७।१०६।१०

६. वही ६।३।२

तुलसी-साहित्य में शिवत्व तत्व के प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि उसमें शिव का महत्वपूर्ण एवं अपना एक विशिष्ट स्थान है । कवि ने उन्हें आशुतोष, अवढरदानी, देवाधिदेव, जगद्गुरु, रामकथा के अधिष्ठाता तथा व्याख्याता, राम-भक्ति और विष्णु लोक प्रदायक दिखाकर उन्हें एक परमोच्च आसन पर आरूढ़ कर दिया है । उनके अनुग्रह के बिना कोई भी राम-भक्ति पाने में असमर्थ है । इतना ही नहीं उन्हें विष्णु से भी महान् दिखाया गया है । तुलसी ने यह अनायास नहीं सायास कहा होगा । तुलसी का अभिधेय रामकथा और राम-भक्ति का निष्पादन है, परन्तु यह दोनों शिव के अधिकार में हैं। यहां पर राम और शिव से सम्बद्ध कुछ ऐसी स्थितियों पर विचार किया जा रहा है, जिनके आधार पर यह कहना कठिन होगा कि उनमें कौन महान् है, और क्या वे दो सत्तायें हैं या एक ही सत्ता के दो विविध रूप अथवा दो सत्ताओं का एक ही समन्वित स्वरूप ।

## राम और शिव की सापेक्षता –

यहां पर राम और शिव के ऐसे पारस्परिक सम्बन्ध द्रष्टव्य हैं जिनमें दोनों एक ही भावभूमि पर अवस्थित हैं । कुछ विषयों में दोनों की सहिष्णुता का बोध होता है तो कुछ विषय ऐसे हैं जिनमें दोनों के एकात्म भाव का प्रदर्शन प्रतीत होता है ।

### १. नाम-प्रचार में अन्योन्याश्रय:

राम-नाम की महिमा का प्रतिपादन करते हुए तुलसीदास ने विनयपत्रिका में कहा है –

राम -नाम-कल्पतरु देत फल चारि रे
कहत पुरान, बेद, पंडित पुरारि रे ।-६७।४

^ ^

गावत बेद-पुरान, संभु-सुक, प्रगट प्रभाउ नाम को । - ६६।१

^ ^

गति न लहै राम-नाम सों बिधि सों सिरजा को ?
सुमिरत कहत प्रचारि कै बल्लभ गिरिजा को ।। - १५२।११

कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को ।। - १५६।१

संभु-सिखवन रसन हू नित राम-नामहिं घोसु । - १५६ ।४

मरत महेस उपदेस हैं कहा करत,

सुरसरि-तीर कासी धरम-धरनि ।

राम-नाम को प्रताप हर कहैं, जपैं आप

जुग जुग जानैं जग बेदहूं बरनि ।। - १८४।४

राम-विवाह के समय नगर के वैभव एवं ऐश्वर्य को देखकर देवगण आश्चर्यचकित एवं स्तम्भित रह जाते हैं । उस समय शिव राम की महिमा एवं यथार्थता का बोध कराते हुए राम-नाम को समस्त अमंगलनाशक बताते हैं ।[1] शिव ने रावण द्वारा अपमानित एवं परित्यक्त विभीषण को कुबेर के यहां मिलने पर यही परामर्श दिया कि तुम्हें राम की शरण में जाना चाहिए क्योंकि उनका नाम तक दुख-सागर को सोखने के लिए अगस्त्य के समान है ।[2]

दूसरी ओर विष्णु शिव के नाम-जप का उपदेश देते हैं । अपने मोह का परिशमन होने पर नारद विष्णु से क्षमा-याचना करते हुए पाप-प्रक्षालन का उपाय पूछते हैं । तब विष्णु उन्हें शिव के नाम-जप का आदेश देते हैं जिससे हृदय को तत्काल शान्ति प्राप्त होगी ।

---

१. रामचरित मानस १।३१५।१

२. राम की सरन जाहि, सुदिनु न हेरै ।

जाको नाम कुंभज कलेस-सिंधु सोखिबे को ।

गीतावली ५।२७।२-३

तथा - मानस १।१६।३ , कवितावली ७।७४,

बरवैरामायण, बरवै ५३।५६

जपहु जाइ संकर सतनामा । होइहि हृदयं तुरत बिश्रामा ।।- मानस१।१३८।५

मानस के अनुसार विष्णु शिव के नाम-जाप का आदेश इसलिए देते हैं कि नारद ने उन्हें दुर्वचन कहते हुए शाप दिया था । परन्तु शिवपुराण में इसका कारण शिव के सुझाव की अवहेलना है । नारद ने काम-विजय की बात शिव को बताई तो शिव ने कहा था कि इस विष्णु से मत कहना । परन्तु नारद ने विष्णु से कह दिया था कि इस जिसके परिणाम में स्वयंवर तथा शाप की घटनायें घटित हुईं । शिवपुराण में भी विष्णु ने शतनामशिवस्तोत्र के जप का आदेश दिया है । शिव के शतनाम शिवपुराण के अतिरिक्त शिवलिंगार्चनतन्त्र में भी मिलते हैं[१]।

## २. भक्ति के प्रचार में अन्योन्याश्रय :

शिव ने रामकथा का उद्घाटन पार्वती के विमोह को दूर करने के लिए किया था । राम की लौकिक लीलाओं से भ्रमित होकर सती उन्हें सामान्य मनुष्य समझती हैं परन्तु शिव जब उनको निर्गुण और सगुण का भेद बता देते हैं कि निराकार ही साकार हो जाता है तब पार्वती भी राम-भक्त हो जाती हैं[२]।

रामकथा कहते हुए बालि-वध, जटायु की मृत्यु, सेतुबन्ध, राम-रावण-युद्ध आदि कितने ही स्थलों पर शिव राम की भक्ति का महत्वबताते हुए उसे करने की प्रेरणा देते जाते हैं ।[३] नाग-पाश में आबद्ध राम को मुक्त करने पर गरुड़ विमोहित हो जाता है । तब शिव उसे सत्संग द्वारा राम की भक्ति प्राप्त करने के लिए नीलगिरि पर भुशुण्डि के पास भेज देते हैं ।[४] त्रेता युग में शिव अगस्त्य के आश्रम में इसी उद्देश्य से गए थे कि रामकथा का रसपान और राम-भक्ति का प्रचार कर सकें । अगस्त्य के पूछने पर शिव उन्हें राम की भक्ति बताते हैं ।

---

१. मानस पीयूष, बालकाण्ड, भाग २, ख, पृ० ७१५-७१६

२. रामचरितमानस १।११६।७-८, तथा ७।१२६ भी

३. वही ३।१२।५, ३।३३।३, ६।३,६।४५।४-५ आदि ,

४. वही ७।६१, विनय पत्रिका में भी शिव ने ईर्ष्या के परित्याग तथा भगवत्कथा-श्रवण को भगवद्भक्ति का मार्ग बताया है ( पद २०५) ।

रिषि पूछी हरिभगति सुहाई । कही संभु अधिकारी पाई ।।-
मानस १।४८।४

तथा — ‹ ‹ भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ।। -वही१।५१।७

राम तो शिव-भक्ति का प्रचार सप्रमाण करते हैं । सेतुबन्ध के समय वे पहले रामेश्वर नाम से शिवलिंग की स्थापना तथा पूजन करते हैं, फिर शिव-भक्ति की महिमा बताते हैं । राम का कहना है कि रामेश्वर के दर्शन से विष्णुलोक और रामेश्वरपरजल समर्पित करने से सायुज्य मोक्ष प्राप्त होगा ।[1]

पुराणों में पद्म, भागवत तथा स्कन्द ने शिव को वैष्णव भक्ति के व्याख्याता रूप में चित्रित किया है तो शिवपुराण ने विष्णु को शैव भक्ति का प्रचारक दिखाया है । मत्स्य तथा गरुड़ पुराणों में दोनों ही स्थितियां उपलब्ध होती हैं ।[2]

३. सेवक-स्वामि भाव :-

तुलसीदास ने रामचरितमानस के प्रारम्भ में शिव से अपने तथा राम के विविध विविध सम्बन्ध स्थापित करते हुए कहा है —

सेवक स्वामि सखा सि पी के । - १।१५।४

इनमें से प्रथम दो सम्बन्ध परस्पर विरोधात्मक दिखाई देते हैं क्योंकि जो सेवक होगा वह अपने स्वामी का भी स्वामी कैसे होगा । परन्तु तुलसीदास ने दोनों में अनन्यता एवं समानता बोध के लिए उनमें परस्पर सेवक तथा स्वामी दोनों भाव स्थिर किए हैं ।

राम पार्वती से विवाह के लिए जब शिव को प्रेरित करते हैं तो शिव का यही उत्तर है कि अनुचित होते हुए भी मैं आप सदृश स्वामी के आदेश की अवमानना नहीं कर सकता हूं ।[3] आगे जब ब्रह्मा आदि देवगण विवाह हेतु प्रार्थना करते हैं उस समय भी शिव अपने प्रभु का आदेश मानकर स्वीकृति देते हैं ।[4] पार्वती से

---

१. रामचरितमानस ६।३।२
२. देखिए- पीछे द्वितीय अध्याय, पृ० ५४;
३. कह सिव जदपि उचित अस नाहीं । नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं ।।
— मानस १।७७।१
४. वही, १।८६।५

से विवाह के बाद राम विषयक पार्वती के सन्देहों का शमन करते हुए शिव ने स्पष्ट कहा है –

रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ । - मानस १।११६

तथा कासीं मरत जंतु अवलोकी । जासु नाम बल करउं बिसोकी ।।

सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी । रघुबर सब उर अंतरजामी ।।-वही ११६।१-२

यही कारण है कि तुलसीदास ने कई स्थानों पर राम के चरणों को शिव द्वारा सेव्य[1] तथा राम को शिव का जीवनधन और 'साहेब' कहा है ।[2]

यह सत्य है कि शिव, हनुमान्, लक्ष्मण तथा भरत राम को स्वामिवत् मानते हैं, परन्तु राम का उनके प्रति दूसरा ही दृष्टिकोण है, वे उन्हें क्रमश: स्वामी सखा तथा बन्धु ही मानते हैं ।[3]

संस्कृत में शिवपुराण शिव को राम का स्वामी स्थिर करता है[4] तो लांगूल उपनिषद् में हनुमान्- रूप कलाग्नि रुद्र राम के सेवक दिखाये गए हैं ।[5] रामेश्वर शब्द में षष्ठी तत्पुरुष समास-रामस्य ईश्वर: रामेश्वर: –से ईश्वर राम के स्वामी और राम एव ईश्वरो यस्य स: समास करने से राम शिव के स्वामी अर्थ निष्पन्न होता है ।

४. परस्पर प्रिय भाव –

सेवक-स्वामी का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध दोनों को मैत्री के समकक्ष धरातल पर ले आता है । सत्यता तो यह है कि सच्ची मित्रता में प्रत्येक अन्य का स्वामी भी होता है और सेवक भी । शिव को स्वामी मानकर राम के

---

१. वही ४।२५, ५।४७, ७। श्लोक २, विनयपत्रिका , ४६।५,६४।२

२. गीतावली २।२।३, कवितावली ७।१२५

३. राम ! रावरो सुभाउ, गुन सील महिमा प्रभाउ,
जान्यो हर , हनुमान , लखन , भरत ।
आप माने स्वामी के सखा सुभाइ भाइ, पति,
ते सनेह-सावधान रहत डरत ।। - विनयपत्रिका २५१।१-२

४. रुद्रसंहिता, सती खण्ड, अ० २४

५. लांगूल उपनिषद् १-२

बात करने[1] से तो उनका प्रिय-भाव ध्वनित होता है , परन्तु शिव द्वारा सती के परित्याग पर तुलसी ने स्पष्ट कहा है -

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी । बिनु अघ तजी सती असि नारी ।।
पनु करि रघुपति भगति देखाई । को सिव सम रामहि प्रिय भाई ।।
-मानस १।१०४।७-८

यहाँ पर शिव की ओर से राम के प्रति भक्ति-भाव है, जबकि राम उन्हें भाई के तुल्य मानते हैं ।

नारद के मोह का परिशमन होने पर राम उन्हें शिव-शतनाम के जप का आदेश देते हुए कहते हैं -

कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे । असि परतीति तजहु जनि भोरे ।।
-मानस १।१३८।६

तथा सेतुबन्ध के समय शिवलिंग स्थापित करते हुए कहा है - शिव समान प्रिय मोहि न दूजा ।( वही ६।२।६,)गुरु का अपमान करने के कारण शिव भुशुण्डि को शाप देते हैं, परन्तु भुशुण्डि के गुरु द्वारा क्षमा-याचना करने पर शिव कहते हैं कि क्षमाशील तथा परोपकारी ब्राह्मण मुझे राम के समान प्रिय हैं ।[2]

यहीकारण है कि तुलसीदास ने कितने ही स्थलों पर राम के लिए कामारि-प्रिय , कामारि अभिरामकारी,अनंग-अरि प्रिय, शिव-प्राण सदृश विशेषणों का प्रयोग किया है ।[3] बृहत्कोशलखण्ड में राम तथा शिव की मैत्री[4] तथा पद्मपुराण (३।५०।२०-२१), बृहन्नारदीय पुराण (२१।७०-७१) आदि में उनके समान भाव का प्रतिपादन है ।'रामेश्वर' शब्द में भी 'रामश्चासौ ईश्वरः' समास करने से राम और ईश्वर (शिव) की समता सिद्ध होती है ।

५. उपास्य-उपासक:-

भागवतपुराण (१२।१३।१६) तथा स्कन्दपुराण ( कल्याणांक, वैष्णव, उत्कल , पृ० ३६३) में शिव को परम वैष्णव माना गया है और मत्स्य (अ० १७६), पद्म ( ४।३६,४६) आदि (अ० १६), देवीभागवत ( ८।८), आदि पुराणों में

---

१. रामचरितमानस २।२६४।२ १.
२. क्षमासील जे पर उपकारी । ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी ।। - वही ७।१०६।५
३,४ कृपया अगले पृष्ठ पर देखें ।

शिव नरसिंह, राम, कृष्ण, संकर्षण तथा विष्णु की स्तुति और भक्ति करते हैं। दूसरी ओर हरिवंश (विष्णु ७४।८-३८,४६), पद्म (स्वर्ग, अ०२८,३६,३।३७), देवीभागवत (४।२५,१०।४), शिव (रुद्र, सृष्टि, अ० २), वायु (अ० २४), लिंग (अ० १८), स्कन्द आदि पुराणों में कृष्ण, राम, नर-नारायण तथा विष्णु को शिव की स्तुति तथा पूजा करते दिखाया है। परवर्ती कृष्ण उपनिषद् के अनुसार कृष्ण ने शिव की भक्ति और उन्हें अपना एक नेत्र अर्पित करके शिव से चक्र प्राप्त किया था। शरभ उपनिषद् में भी विष्णु को शिव के चरणकमलों का अभिलाषी बताया है।

तुलसीदास ने इन दोनों की स्थितियों को ग्रहण करते हुए शिव तथा राम में अन्योन्याश्रित भक्ति प्रदर्शित की है। परन्तु दोनों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि शिव को राम-भक्ति दिखाने के प्रति तुलसी अधिक जागरूक रहे हैं। इसीलिए राम को मनोजवैरिवन्दित, कामारिसेव्य, कामारिवन्दित, भववन्द्य[1] आदि विशेषणों से अभिहित किया है। इसी प्रकार कितने ही स्थानों पर राम के लिए मार-रिपु-हृदय-मानस-मराल, महेस मन मानस हंस, संकर मानस राजमराल, हर हृदि मानस बाल-मराल, मदनरिपु-कंज हृदि-चंचरीक, शर्व-हृदि-कंज-मकरन्द-मधुकर रुचिर रूप, काम-अरि-हृदय-कंज-मकरन्द-मधुप, शंकर-हृदि-पुण्डरीक-चंचरीक सदृश काव्यात्मक शब्दावलीका प्रयोग हुआ है।[2] शिव की नीलग्रीवता का कारण यही माना जाता है कि उन्होंने अपने हृदय में राम का निवास होने के कारण विष को कण्ठ में ही रोक लिया था। विनयपत्रिका (१५४।२) में राम को शिव के भक्ति-सरोवर और गीतावली (१।९२।३) में प्रेम सरोवर का हंस कहा है।

शिव की राम-भक्ति का इससे अधिक पुष्ट प्रमाण क्या होगा कि इष्ट की शक्ति (सीता) कास्वरूप धारण कर लेने मात्र से अपनी पत्नी का परित्याग कर देते हैं। सती द्वारा राम की परीक्षा लेने पर शिव निश्चय करते हैं कि --

सती कीन्ह सीता कर वेषा।
जौं अब करउं सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती। १।५६।७-८

और-- एहिं तन सतिहि भेंट मोहि नाहीं। सिव संकल्पु कीन्ह मन माहीं।।
वही १।५७।२

---

पिछले पृष्ठ का शेष- ३. विनयपत्रिका ५०।६,५५।१; रामचरितमानस १।१९८।२ आदि
४. रामकथा, पृ० १७८

---

१. रामचरितमानस ३।४ में अत्रि कृत स्तुति; ६। श्लोक १; विनय०५४।३,५६।२ आदि
२. विनयपत्रिका ५१।३; रामचरितमानस १।२८५।५; १।३४१।४; ३।८।१; ३।११।८; गीतावली १।२६।३ तथा विनयपत्रिका ४६।२; ५३।१; रामचरितमानस ७।५१।२; गीतावली ७।३।६

उसी समय आकाशवाणी होती है –

। जय महेस भलि भगति दृढ़ाई ।।

असपन तुम्ह बिनु करइ को आना । राम भगत समरथ भगवाना ।। – वही१।५७।४-५

सती-त्याग के बाद शिव रामकथा का श्रवण करते हुए भ्रमण करने लगे। इस मध्य उनकी राम-भक्ति और भी अधिक पुष्ट हो गई। शिव की अविचल भक्ति देखकर राम प्रकट होकर शिव की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार के व्रत का निर्वाह करने वाला तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।[1] आगे पुनः कहा गया है–

सिवसम को रघुपति व्रतधारी । बिनु अघ तजी सती असि नारी ।।
पनु करि रघुपति भगति देखाई । ..... ।मानस१।१०४।७-८

लंका-विजय के बाद शिव सजल नेत्र, पुलकित तथा रोमांचित तन, परम प्रीतिपूर्वक सबसे अन्त में पहुंचकर राम की स्तुति करते हैं। शिव कृत इस राम-स्तुति में हृदयस्पर्शिता और मार्मिकता है। वह मात्र औपचारिक नहीं। उसी समय शिव राज्याभिषेक में पहुंचने की पूर्व-सूचना देकर अपनी अतिशय भाव-विभोरता का परिचय देते हैं। राज्याभिषेककालीन स्तुति में शिव ने –

'भयाकुल पाहि जनं', 'सरनागतमागत पाहि प्रभो', 'तव नाम जपामि नमामि हरी', 'प्रनमामि निरन्तर श्रीरमनं', 'महिपाल ! बिलोकय दीन जनं' आदि ~~कह~~ कहते हुए अन्त में राम की अनपायनी भक्ति मांगी है –

बार बार बर मांगउं, हरषि देहु श्रीरंग ।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ।। – मानस ७।१४ क ,

शिव की राम-भक्ति के दो प्रकार –

क दास्य भाव :-- शिव राज्याभिषेक में पहुंचने की सूचना देते समय राम को नाथ ~~नाथ~~ कहते हैं।[2] इसी प्रकार कई स्थानों पर शिव के हृदय में राम के चरणों का

---

१. रामचरित मानस ~~७।५१।२, गीतावली ७।३।६~~ १।७६।४-६

२. वही ६।११५

निवास तथा राम के चरणकमलों के रसपान से शिव रूप मधुप की अतृप्ति बताई है ।[१] गंगा विष्णु का चरणोदक है और शिव उसे सिर पर धारण करते हैं ।[२] सती का मानसिक त्याग करने पर शिव राम के चरणों में सिर नमन करते हैं ।[३] और पार्वती से विवाह के समय स्वामी राम का स्मरण करते हैं ।[४]

ख. बाल रूप के उपासक : शिव की राम-भक्ति दास्य भाव की होते हुए भी शिव राम के बाल-रूप से अधिक आकर्षित और उसी के उपासक हैं । शिशु राम की क्रीड़ाओं पर मुग्ध होने के कारण[५] वे राम को बादलों छिपकर देखते हैं[६]। रामचरितमानस में तो उन्हें राम-जन्म के समय मनुष्य रूप में उपस्थित-मात्र दिखाया है,[७] परन्तु गीतावली (१।१७) के अनुसार शिव वृद्ध ज्योतिषी के रूप में आने पर भवन के अन्दर बुलाये जाते हैं । वहाँ कौशल्या राम आदि शिशुओं को भविष्य कथन के लिए समर्पित करती हैं । उस समय —

नखसिख बाल बिलोकि बिप्रतनु पुलक,नयन जल छायो ।
लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो ।।

कुण्डलिया रामायण में राम-जन्म के समय शिव योगी के वेष में आते हैं ।[८]

सम्भवत: वसिष्ठ भी शिव के उपासक भाव से परिचित हैं, इसीलिए वे शिव को यह बताना आवश्यक तथा उपयुक्त समझते हैं कि लक्ष्मण-भरत आदि चारों शिशुओं में राम कौन-से हैं ।

---

१. वही १।३२४ के ऊपर पहला छन्द, १।३२८।५, ५।८२।८, विनयपत्रिका २०६।४
२. विनय पत्रिका १७।१, १८।२ , कवितावली २।५, २।६, रामचरितमानस १।२११।१३
३. रामचरितमानस १।५७।१
४. वही, १।१००।४
५. गीतावली १।८।५
६. वही, १।७।३
७. वही १।१७
८. भूमिका (तुलसीसाहित्य) पृ० ७६,

बाल बिलोकि अथरवणी हँसि हरहिं जनायो । - गीतावली १।६।१८

राम के स्वरूप विषयक पार्वती के सन्देहों का समाधान तथा रामकथा प्रारम्भ करने के पूर्व शिव राम के बाल स्वरूप की ही वन्दना करते हैं ।

बन्दउं बाल रूप सोइ रामू । सब विधि सुलभ जपत जिसु नामू ।।
मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ।। -
-- मानस १।११२।३-४

सत्योपाख्यान में शिशु राम के दर्शनार्थ शिव के साथ भुशुण्डि भी आते हैं । इन दोनों का वेष ब्राह्मण का है ।[1] मानस में भुशुण्डि ने स्वयं कहा है कि मेरे इष्टदेव बालक राम हैं और जब-जब वे अयोध्या में अवतरित होते हैं, मैं वहां उनकी शिशु-लीलाओं को देखकर सुख प्राप्त करता हूं ।[2] गीतावली (१।५।६) में पार्वती शिशुराम की परिचर्या से हर्षित दिखाई गई हैं । जिन्हें राम का बाल रूप प्रिय नहीं है, तुलसी के अनुसार वे गधा, शूकर तथा श्वान से भी निकृष्ट हैं ।[3]

राम की शिव-भक्ति प्राय: कवि-कथनों में न मिलकर घटनात्मक रूपों में अधिक मिलती है । यह बताना महत्वपूर्ण होगा कि विनयपत्रिका (१२।२) में शिव को विष्णु-विधि-वन्द्य चरणारविन्द कहने के अतिरिक्त मानसेतर ग्रन्थों में शिव तथा राम का उपास्य-उपासक रूप उपलब्ध नहीं होता है । मानस में राम को शिव का पूजन करते दिखाया गया है । इसे तीन रूपों में रखा जा सकता है ।

क. मनसा-पूजन :[4] राम वनवास के लिए जाते समय —

गनपति गौरि गिरीसु मनाई । चले असीस पाइ रघुराई ।। मानस २।८१।२

तथा गंगा-सन्तरण के बाद गुह के साथ प्रस्थान करते समय शिव का स्मरण करते हैं —

तब गनपति सिवसुमिरि, नाइ सुरसरिहि माथ ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ ।। वही २।१०४

---

१. रामकथा , पृ० ३३७

२. रामचरितमानस ७।७५।५, ७।११४।१२-१४

३. कवितावली १।१६

४. राम रात्रि को शयन के समय शिव का स्मरण करके ही जाते हैं (मानस १।३५७)

राम लंका विजय के बाद अवध आते समय सीता को रामेश्वरलिंग दिखाकर शिव को प्रणाम करते हैं ( - वही ६।११६क) ।

ख. अर्चा-पूजन :-

राम लखन सिय जान चढ़ि, संभु चरन सिरु नाइ । - मानस २।८५ .

ग. पार्थिव-पूजन :-

मानस में यह चार स्थलों पर मिलता है --

अ. केवट द्वारा गंगा पार कराये जाने पर :--

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा । पूजि पारथिव नायउ माथा ।।-२।१०३।१

आ. प्रयाग में संगम-स्नान करने के बाद :--

मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा । पूजि जथाविधि तीरथ देवा ।। -२।१०६।६

इ. भरत के चित्रकूट -आगमन के पूर्व सीता के दुस्वप्न का परिशमन करने के लिए :--

पूजि पुरारि साधु सनमाने ।। - २।२२६।८

ई. सेतुबन्ध के समय :-- यहाँ पर शिव की स्थापना तथा पूजन का विस्तृत वर्णन है और वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । ग्रन्थों में शिव की शैलज, दारुज, मृणमय, क्षणिक आदि विविध प्रकार की लिंग-प्रतिमाओं का विवरण मिलता है । उपरोक्त तीन सन्दर्भों में यह अनुमान लगाना नितान्त दुष्कर है कि राम ने किस प्रकार की लिंग-प्रतिमा का पूजन किया होगा । यहाँ भी तुलसी ने इस सम्बन्ध में कुछ भी संकेत नहीं दिया है, तथापि यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत प्रतिमा शैलज रही होगी । राम परम रम्य स्थान देखकर लिंग की स्थापना कर रहे हैं इसलिए उनके मन में लिंग के स्थायित्व की भावना अवश्य रही होगी और तब स्थापित प्रतिमा मृणमय, दारुज या क्षणिक नहीं हो सकती । फिर लौहज, रत्नज तथा शैलज तीन प्रकार की शेष रहती हैं । प्रसंग सेतुबन्ध का चल रहा है और उसके लिए वानरगण विशाल पर्वतों को ला रहे हैं । अतः राम द्वारा स्थापित रामेश्वर लिंग शैलज ही रहा होगा ।

यहाँ राम शिवलिंग पूजन एकाकी न करके मुनियों की उपस्थिति में करते

हैं । पूजन के उपरान्त राम ने कहा है कि मुझे शिव के समान अन्य कोई प्रिय नहीं । शिव से द्रोह रखने वाला कोई व्यक्ति मेरा भक्त कहलाना चाहे तो यह उसका दम्भ ही होगा । ऐसे व्यक्ति मुझे स्वप्न में भी प्रिय नहीं हैं । हम दोनों में किसी का भी विरोधी होने पर कल्पान्त घोर नरक प्राप्त होगा । राम के इन कथनों से मुनियों को सहमत होना इस बात का प्रमाण है कि जन भावना इसके पक्ष में थी । राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना तथा राम और शिव की समानता का प्रतिपादन मुनियों को पूर्णतया मान्य था ।

शिवलिंग की स्थापना के बाद उसके विधिवत् पूजन करने से ज्ञात होता है कि तुलसीदास इस समस्त विधि-विधान से भलीभांति परिचित थे ।

कृत्तिवास रामायण में लिंग-स्थापना के समय शिव साक्षात् प्रकट होकर राम के दोनों हाथ पकड़ लेते हैं । दोनों हर्षित होकर प्रेमालिंगन करते हैं । तब शिव कहते हैं कि प्रभु किसी की पूजा करते हो । तुम मेरे इष्टदेव हो । राम कहते हैं - नहीं, तुम मेरे इष्ट हो और रावण - वध के लिए पुष्प-जल ग्रहण करो ।[१] अध्यात्मरामायण (७।४।२७) में राम द्वारा करोड़ों शिवलिंग स्थापित करने का उल्लेख है संथालों की रामकथा के अनुसार राम ने शिव के मन्दिर का निर्माण कराया था और वे सीता के साथ नित्यप्रति शिव-पूजन के लिए जाया करते थे ।[२]

तुलसीदास ने पार्वती को महान् राम-भक्त [३] दिखाने के साथ-साथ सीता को शिव-पार्वती का स्मरण करते दिखाया है ।[४] धनुष-यज्ञ के समय वे ध प्रार्थना करती है कि धनुष की गुरुता कम हो जाये —

मन ही मन मनाव अकुलानी । होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।
करहु सफल आपनि सेवकाई । करि हितु हरहु चाप गरुआई ।।

— मानस १।२५७।५-६

---

१. कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ६६

२. रामकथा, पृ० २२५

३. रामचरितमानस ७।५५।७, ७।१२६ आदि

४. गीतावली १।६२।२, जानकीमंगल, मंगल १००,

यह ध्यान देने योग्य है कि यहां सीता 'सेवकाई' की बात करती हैं, अर्थात् वे पहले से शिव-पार्वती की भक्त हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ के अतिरिक्त अन्य कोई स्थल ऐसा नहीं है जहां सीता को शिव की भक्ति करते दिखाया हो। हां, कवितावली में सीता के द्वारा वट-वृक्ष की स्थापना[१] इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि तुलसीदास ने वट में शिव का निवास माना है।[२] मानस (बालकाण्ड) में कई स्थानों पर शिव को वट के नीचे ही बैठे दिखाया है।[३] इसीप्रकार सीता ने पार्वती का पूजन तो किया है[४] परन्तु पार्वती ने सीता का पूजन कहीं नहीं किया है।

६. एक के विरोध से अन्य की प्राप्ति दुर्लभ :-

तुलसीदास ने शिव और विष्णु में समान भाव दिखाने तथा राम-भक्ति के साथ शिव-भक्ति का परिपालन कराने के उद्देश्य से शिव-निन्दक को पुनर्जन्म में सहस्रवर्ष पर्यन्त दादुर रहने[५] तथा शिव-द्रोही को सम्पत्ति की अलभ्यता[६] और उसके कार्य की असम्पन्नता का प्रतिपादन किया है।[७] भारद्वाज को रामकथा सुनाने के पूर्व शिवचरित सुनाने में याज्ञवल्क्य का यही उद्देश्य निहित था कि भारद्वाज को शिव-भक्ति का ज्ञान हो सके।[८] शिवचरित के श्रवण से पुलकित भारद्वाज को देखकर याज्ञवल्क्य कहते हैं -

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहिं ते सपनेहुं न सोहाहीं।।
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन एहू।। मानस१।१०५।
५-६

---

१. उत्तरकाण्ड, कवित्त, १३९
२. वही, कवित्त, १४०
३. देखिए १।५२,२, १।५८।७, १०६।२ आदि
४. रामचरितमानस १।२२८।२, १।२३५।४ तथा नीचे, गीतावली १।७१।३ तथा १।७२
५. रामचरितमानस ७।१२१।२३,
६. वही, १।२६७।२ ,
७. मैं जगविदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु बिमुख कै होई।।वही १।६५।३
८. वही १।१०४

सेतुबन्ध के अवसर पर शिवलिंग की स्थापना करके यही बात स्वयं राम ने कही है ।

सिवद्रोही मम भगत कहावा । सो नर सपनेहुं मोहि न पावा ।।
संकर बिमुख भगति चह मोरी । सो नारकी मूढ़ मति थोरी ।।
संकरप्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुं बास ।। -वही६।२।८दोहा

राम के इस कथन की संपूर्ति भुशुण्डि के उदाहरण में प्राप्त होती है, जो पूर्व-जन्म में अयोध्या के शूद्र थे । वह एक कट्टर भक्त और अन्य देवों के निन्दक थे । उनके गुरु शैव होते हुए भी परम सहिष्णु और समन्वयवादी थे । गुरु का कहना था कि शिव-भक्ति का फल हरि-भक्ति होनी चाहिए और शैव को वैष्णव भक्ति भी करणीय है ।[१] भुशुण्डि को गुरु का यह उपदेश रुचिकर नहीं लगा और वह गुरु से द्वेष भाव रखने लगे । भुशुण्डि को इसका दण्ड स्वयं शिव ने दिया ।

देवीभागवत पुराण (वेंकटेश्वर प्रेस) में विष्णु ने कहा है कि मैं शिव को प्राणप्रिय हूं और शिव मुझे प्राणप्रिय है । हम दोनों का चित्त गूढ़ भाव से परस्पर आसक्त है अतएव हम दोनों में कोई भेद नहीं । जो मनुष्य मेरा भक्त होकर शिव से द्वेष करता है वह निश्चय ही नरकगामी होता है ।

नरकं यांति ते नूनं ये द्विषंति महेश्वरम् ।
भक्तामम विशालाक्षि सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।। ( -६।१८।४७)

शिवपुराण में स्वयं शिव ने कहा है कि विष्णु-निन्दक शैव के पुण्य का क्षय हो जाता है (रुद्र, सृष्टि ६।८-६) तथा उसे शिव-भक्ति प्राप्त नहीं होती है ( रुद्र, सती ४३) ।

७. एक के भक्त को अन्य द्वारा फल-प्राप्ति :-

विनय पत्रिका (५६।२) में राम को 'भवभक्तहित' और कवितावली (७।१६७) में शिव को राम-भक्तों के लिए कल्पवृक्ष कहा है । मानस (७।६६।१०) में राम-भक्त भुशुण्डि स्वयं स्वीकार करते हैं कि मैं विविध जन्मों में शिव की कृपा के

---

१. वही, ७।१०६।२

कारण मोह में आविष्ट नहीं हुआ। मानस में किष्किन्धाकाण्ड का अन्तिम दोहा प्राय: इस रूप में मुद्रित मिलता है –

भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनिहिं जे नर अरु नारि।

तिन्ह कर सकल मनोरथ, सिद्ध करहिं त्रिसिरारि ।।

त्रिसिरारि का पाठभेद त्रिपुरारि भी है। इस काण्ड के प्रारम्भिक दो सोरठों में काशी और शिव की वन्दना हुई है। इस आधार पर लाला भगवानदीन की धारणा है कि यहां अन्त में महादेव के विषय में लिखना संगत है। मानसपीयूष में त्रिपुरारि पाठ के समर्थन में अन्य कई कथाकारों के मत भी उद्धृत हैं। यदि यहां कवि का अभीष्ट पाठ त्रिपुरारि है तो यही अर्थ होगा कि शिव राम-भक्तों की अभिलाषायें पूर्ण करते हैं।

वायपुराण ( अ० ६६ ) में एक की स्तुति को अन्य की स्तुति तथा एक की निन्दा को अन्य की निन्दा कहा गया है।

८. शिव और विष्णु दोनों के लिए समान विशेषणों का प्रयोग :–

संस्कृत में ब्रह्मविद्या उपनिषद् तथा मत्स्य, हरिवंश, स्कन्द, वायु, भागवत, पद्म, अग्नि आदि पुराणों में शिव को वैष्णव तथा विष्णु को शैव अभिधानों का प्रयोग करके उनकी एकात्मकता प्रकट करने का प्रयास किया गया है। तुलसीदास ने राम और शिव को जगत पिता तथा सीता और पार्वती को जगज्जननी माना है। सम्पूर्णजगत् ~~शिव-और-रा~~ का जनक एक ही होना चाहिए और जगज्जननी भी एक ही सत्ता हो सकती है। शिव और राम के समान विशेषण निम्न हैं :--

जगत् के माता-पिता :--

सीता और राम :

सिख हमारि सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जियं सीता ।।

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरिलोचन छवि लेहु निहारी ।।

—मानस १।२४६।२-३

जगदम्बा जानकी जगतपितु रामचन्द्र । —कवितावली १।१५

एहि बिधि राम जगत पितु माता । - मानस १।२००।१

और राम शक्ति संयुक्त हैं —

संजुक्त सक्ति नमामहे । —मानस ७।१३ के ऊपर स्तुति का पहला छन्द,

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।

बंदउं सीता राम पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ।। - मानस १।१८

पार्वती और शिव :

तुम्ह माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु । - मानस १।८१,

जगत मातु पितु संभु भवानी । तेहिं सिंगारु न कहउं बखानी ।।

- वही १।१०३।४

जगदात्मा महेस पुरारी । जगत जनक सब के हितकारी।।वही१।६४।५

मायापति:—

राम :

जगतप्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू ।।-वही १।११७।७

मायाबस्य जीव अभिमानी । ईस बस्य माया गुन खानी ।।-वही,७।७८।६

शिव

तुम्ह माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु । - वही १।८१ ,

तब मायाबस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान । - वही ७।१०८ग

अन्तर्यामी-सर्वज्ञ -

राम :

अंतरजामी रामु सिय, तुम्ह सरबग्य सुजान । - वही २।२५६

शिव :

जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी । हर अंतरजामी सब जानी ।। वही१।५१।५

जगज्जननी

सीता :

जनकसुता जगजननि जानकी । - वही १।१८।७

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी । जगदंबिका रूप गुन खानी ।।-वही१।२४७।१

सोइ नवल तनु सुंदर सारी । जगत जननि अतुलित छबि भारी । ।
- वही १।२४८।२ ,

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।

जो सृजति जगुपालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की ।। - वही२।१२६के ऊपर छन्द

जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।- विनयपत्रिका ४१।४,

पार्वती :

जगत मातु सर्वग्य भवानी । - मानस १।७२।८

देखिप्रभुबोले मुनि ग्यानी । जय जय जगदंबिके भवानी ।।-वही १।८१।८

जग संभव पालन लय कारिनि । निज इच्छा लीला वपु धारिनि ।।-वही १।६८।४

जयगजबदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुतिगाता ।।

नहिं तव आदि मध्य अवसाना । अमित प्रभाउ वेदु नहिं जाना ।।

भव भव विभव पराभव कारिनि । विस्व विमोहनि स्ववस विहारिनि ।
- वही १।२६५।६-८

तुलसी मुदित महेस मनहिं मन , जगत-मातु मुसुकानीं ।।-विनयप०५।५

लौकिक दृष्टि से सीता राम की शक्ति या पत्नी हैं और पार्वती शिव की । तुलसीदास ने राम और शिव तथा सीता और पार्वती के लिए ऐसे समान विशेषणों का प्रयोग किया है जो संसार में किसी एक के लिए ही प्रयुक्त हो सकते हैं । इस प्रकार उनमें परस्पर एकात्मकता का अनुमान होता है ।

तुलसीदास ने रामवाचक हरि और शिववाचक हर शब्द हरिहर का कई स्थानों पर इस रूप में प्रयोग किया है जिससे इन दोनों की पृथक एकात्म सत्ता का बोध होता है । समस्त तुलसी साहित्य में हरिहर शब्द का प्रयोग निम्न स्थलों पर

मिलता है :-

१. रामचरितमानस -

१. हरिहर कथा विराजति बैनी । सुनत सकल मुद मंगल दैनी ।।

—बालकाण्ड २।१०,

२. हरिहर जस राकेस राहु से । पर अकाज भट सहसबाहु से ।।

—वही,४।३

३. हरिहर पद रति मति न कुतरकी । तिन्ह कहुं मधुर कथा रघुबर की ।।

—वही ६।६ ,

४. नारद जानेउ नाम प्रतापू । जग प्रिय हरि हरिहर प्रिय आपू ।।

— वही २६।३

५. अभिमत दानि देवतरुवर से । सेवत सुलभ सुखद हरिहर से ।।

—वही ,३२।११ ,

६. हरिहर बिमुख धर्म रति नाहीं । ते नर तहं सपनेहुं नहिं जाहीं ।।

-- वही १०६।१

७. आन उपायं निधन तव नाहीं । जौं हरिहर कोपहिं मन माहीं ।।

— वही,१६६।४

८. जे परिहरि हरिहर चरन, भजहिं भूतगन घोर ।
तेहिकइ गति मोहि देउ विधि, जौं जननी मत मोर ।।

—अयोध्याकाण्ड, १६७

९. जे न भजहिं हरि नर तनु पाई । जिन्हहि न हरिहर सुजसु सोहाई ।।

—वही,१६८।६

१०. देख थल तीरथ सकल, भरत पांच दिन माझ ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयउ दिवसु भइ सांझ ।। _वही ३१२,

११. मुनि महिदेव साधु सनमाने । बिदा किये हरिहर सम जाने ।।

—वही, ३१९।४

१२. हरिहर निन्दा सुनइ जो काना । होई पाप गोघात समाना ।।

—लंकाकाण्ड ३२।२

२. गीतावली :

१३. "अजर अमर होहु, करौ हरिहर छोहु"
जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद देये हैं । -बालकाण्ड ११।४

१४. दिव्य-देह, इच्छा-जीवन जग विधि मनाइ मंगि लीजै ।
हरिहर-सुजस सुनाइ, दरस दै, लौग कृतारथ कीजै ।। अरण्यकाण्ड, १५।२

३. विनयपत्रिका :

१५. तथाकथित हरिशंकरी पद , सं० ४६

१६. पांडु-सुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी, सबरि सुद्ध किये सुद्धता लेस कैसो ।
प्रेम लखि कृष्न किए आपने तिनहु कौ, सुजस संसार हरिहरको जैसो ।
—१०६।४ ,

४. दोहावली :

१७. तुलसी परिहरि हरिहरहि पांवर पूजहिं भूत ।
अंत फजीहत होहिंगे, गनिका के से पूत ।। - ६५ ,

१८. हरिहर जस सुर नर गिरहुं बरनहिं सुकबि समाज ।
हांडी हाटक घटित चरु रांधे स्वाद सुनाज ।। - १६७

१६. संगसरल कुटिलहिं भए हरि-हर करहिं निबाहु ।
ग्रह गनती गनि चतुर बिधि कियो उदर बिनु राहु ।। - ३३६

२०. तुलसी किए कुसंग थिति होहिं दाहिने बाम ।
कहि सुनि सकुचिअ सूम खल गत हरिसंकर नाम ।। - ३६१ ,

२१. पांडु सुवन की सदसि तै नीको रिपु हित जानि ।
हरिहर समसब मानिअत मोह ग्यान की बानि ।। - ४१६

२२.

५. कवितावली :

२२. आपु महापातकी हँसत हरि-हरहू कौ,
आपु है अभागी, भूरिभागी डाटियतु है । - उत्तरकाण्ड -६६

६. हनुमानबाहुक :

२३. रचिबे कौ बिधि जैसे पालिबे कौ हरिहर
मीच मारिबे कौ ज्याइबे कौ सुधापान भो । - ११

इनमें से प्रत्येक स्थल पर हरिहर का द्विवचनात्मक अर्थ विष्णु और शिव लिया जाता है, जबकि कई सन्दर्भों में तुलसी को हरिहर से एक समन्वित स्वरूप अभिप्रेय रहा हो सकता है । सम्भव है रामू की प्रेम रामायण से कुछ विशेष तथ्यों का उद्घाटन हो सके । इस सम्बन्ध में निम्न तथ्य विशेष द्रष्टव्य हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में विद्वज्जनों को अपनी तद्विषयक धारणा पर पुनर्विचार की आवश्यकता है ।

क. हरिहरैक्य भाव की दीर्घ परम्परा

१. मूर्ति, मन्दिर, चित्र, सिक्के, अभिमुद्रायें आदि पुरातात्विक प्रमाण।
२. पौराणिक आख्यान ,व्रत, अनुष्ठान आदि ।
३. औपनिषदिक प्रतिपादन ।
४. संस्कृत स्तुतियाँ ।
५. हिन्दी में अन्य कवियों द्वारा हरिहर का वर्णन ।
६. हिन्दीतर भाषाओं में हरिहर का वर्णन ।

ख. तुलसी का समसामयिक समन्वयात्मक परिवेश

१. वाराणसी में इन्द्रद्युम्नेश्वर, कालमाधव,कृष्णेश्वर, गरुड़ेश्वर, जनकेश्वर, प्रह्लादेश्वर,महालक्ष्मीश्वर, वाराहेश्वर, हनुमदीश्वर, हरिकेशेश्वर, चक्रपाणि, भैरव,रामेश्वर, सीतेश्वर, लक्ष्मणेश्वर, भरतेश्वर, तारकेश्वर, लवकुशेश्वर, महालक्ष्मीश्वर, श्रीकंठलिंग प्रभृति शैव प्रतिमाओं का पूजन ।[1] लंका के निकट एक हरिहर मार्ग भी है ।

---

१. देखिए वाराणसी का आधिदैविक वैभव । यद्यपि लेखक ने प्रत्येक की प्राचीनता पर प्रकाश नहीं डाला है, तथापि यह आशा की जाती है कि इनमें से अधिकांश देवायतन तुलसी के समय अस्तित्व में रहे हो सकते हैं ।

२. वाराणसी निवासी अद्वैत कवि द्वारा १६०८ ई० में रामलिंगामृत काव्य की रचना, जिसमें राम रूप विष्णु और शिव के एकात्म का प्रतिपादन है। उसके १० वें सर्ग में राम रावण को अपना शिव रूप दिखाते हैं और १८ वें सर्ग में राम की पूजा विधि तथा राम के यज्ञ का वर्णन करने के अनन्तर कृष्ण, राम तथा शिव की अभिन्नता का निरूपण है।[१]

३. शिवलाधिक (यतीन्द्र) सरस्वती के शिष्य बोधेन्द्र सरस्वती द्वारा हरिहराद्वैतभूषणाम् ग्रन्थ का प्रणयन। इसमें कारिका तथा टीका दोनों को अलग-अलग तीन भागों में विभाजित किया गया है। तृतीय भाग में उपनिषद्, पुराण आदि अन्यान्य ग्रन्थों के आधार पर हरिहर के एकात्म स्वरूप का प्रतिपादन है।[२]

४. तुलसी के मित्र या सहयोगी मधुसूदन सरस्वती[३] द्वारा रचित शिव-महिम्न स्तोत्र की हरिहरपरक टीका।

५. गीतमचन्द्रिका से हरिहर विषयक निम्न तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है--

अ. हरिहर एक देवता वाचक :

जगहित हेतु संत अवतरहीं। गुनि सुनि हरिहर जस विस्तरहीं।।

< < <

चतुर्दसी हरिहर छवि जौहै।

< < <

मल्लमान हरिहर भक्ततोडर मल्ल अमान।

< < <

हरिहर नटवर बस बिसद कविता नटी विकास।

< < <

समरथ प्रभु सेवक सुखद हरिहर कृपानिकेत।

< < <

हरिहर जस साका बिस्तारत। अमित भयो चिंतामनि भारत।।

---

१. रामकथा, पृ० १६१,१६३,१६४

२. बोधेन्द्र सरस्वती ने अप्पयदीक्षित (१५२०-१५९३) का उल्लेख किया है अत: उनका समय अप्पय दीक्षित से किंचित् परवर्ती है।

३. गोसाईं तुलसीदास ,पृ० २८०

आ . हरिहर के भक्त या उपासक होना :

जगहित हेतु संत अवतरहीं । रुचि सुचि हरिहर जस विस्तरहीं ।।

< < <

मल्लमान हरिहर भक्त, तोडरमल्ल अमान ।

इ. हरिहर-पूजन की तिथियां :

चतुर्दसी हरिहर छबि जोहै । तुलसी बिस्वनाथ सिर सोहै ।।

< < <

कातिक कार्तिक्य आराधै । बिंदुमाधवहिं तुलसी साधै ।।

श्रीफल दल संकरहिं चढ़ाए । फल समर्पि हनुमत मन भाए ।।

परिशिष्ट ङ में दिखाया गया है कि कार्तिक में वैकुंठचतुर्दशी को हरिहर का पूजन किया जाता है और उसमें शैव-वैष्णव दोनों प्रकार के नैवेद्य-तुलसी तथा विल्वपत्र-का प्रयोग होता है ।

ई. तुलसीदास हरिहर-उपासक :

कातिक धवल एकादसि आवै । तुलसी कृष्नविवाह रचावै ।।

चतुर्दसी हरिहर छबि जोहै । तुलसी विस्वनाथ सिर सोहै ।।

पूनो अन्नपूर्ना पूजै । गीत पंचगंगाजस कूजै ।।

श्रीपति तुलसी कृष्न उमासिव । नाम जपत मंगल दिन रातिव ।।

< <

कातिक कार्तिक्य आराधै । बिंदुमाधवहिं तुलसी साधै ।।

श्रीफलदल संकरहि चढ़ाए । फल समर्पि हनुमत मन भाए ।।

दीपावलि सजि तुलसी गावत । कृष्नदत्त दुंदुभी बजावत ।।

ग. तुलसी की समन्वयात्मक प्रवृत्ति :

१. शिव और विष्णु में घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाया है ।

२. तुलसी ने अयोध्या, चित्रकूट, वृन्दावन प्रभृति वैष्णव तीर्थों के अतिरिक्त नर्मदा, काशी, रामेश्वरम् और कैलास की भी यात्रा की थी ।[१] उनका काशी-

१. वही, पृ० २८४

निवास अन्त: साक्ष्य से भी प्रमाणित है ।

३. शिव और विष्णु दोनों के प्रति अनन्य निष्ठा प्रकट की है ।

घ. तुलसी द्वारा हरिहर के ऐक्य स्वरूप का वर्णन करने के कारण -

१. तुलसीदास ने शिव तथा स्कन्दपुराण से मानस-रचना में पर्याप्त सामग्री का उपयोग किया है । इन दोनों में हरिहरैक्य स्वरूप का निरूपण है । इसी प्रकार विनयपत्रिका के मूल स्रोत स्तुतिकुसुमांजलि में ऐक्य स्वरूप की स्तुतियां हैं ।

२. तुलसीदास विष्णु और शिव के विविध स्वरूपों से परिचित हैं और श्रीरंग, नर-नारायण, बिन्दुमाधव,भैरव,अर्धनारीश्वर आदि का स्तवन भी किया है,[१]

३. हरिहर समन्वय की बात करते हैं, जो पौराणिक मान्यता है और स्वयं पुराणों का अध्ययन किया है ।

४. यदि शुद्ध वैष्णव होते तो पंचावतार--अर्चा, विभव, चतुर्व्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध), पर तथा अन्तर्यामी-- का ही विस्तृत वर्णन करते ।

५. जब रामेतर उपासना को व्यर्थ या उपासक को मूर्ख कहते हैं और स्वयं शिव के भक्त हैं, तो यही मान्यता है कि शिव राम में ही समाहित हैं । परवर्तीकाल में हरिहर को भी विष्णु का स्वरूप मानने की प्रवृत्ति विकसित हो गई थी ।

६. विनयपत्रिका के हरिशंकरी पद में आद्योपान्त वैष्णव-शैव क्रम से स्तुति है । पद की विषम संख्यक पंक्तियों को पृथक् करने से वैष्णव और सम संख्यक पंक्तियों के संग्रह से शैव स्तोत्र बन जायेगा, जिस प्रकार हरिहर विग्रह में किसी पार्श्व को ढक देने से अन्य पार्श्विक देवांश एकाकी आभासित होगा । तुलसी ने इस स्तोत्र में विष्णु और शिव का समन्वय करते हुए यही सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया है कि राम हरिशंकर रूप हैं ।[२] जिस प्रकार शिव की स्तुति ( पदांक ४-१४) करते हुए

---

१. विनय पत्रिका, पद ५७-५६

२. तुलसीदर्शन-मीमांसा, पृ० ६३

उन्होंने भैरव तथा अर्धनारीश्वर का भी स्तवन उसी क्रम में किया है, उसीप्रकार ४३ वें पद से राम-स्तुति प्रारम्भ करके ६० वें पद में नर-नारायण और ६१-६३ संख्यक पदों में विन्दुमाधव का स्तवन है । यह दोनों विष्णु के अन्य रूप हैं । इस वैष्णव स्तुति क्रम के मध्य ( ४९ वें पद में ) हरिशंकरी स्तोत्र की रचना से सिद्ध होता है कि तुलसी हरिशंकर को विष्णु का ही एक रूप मानते हैं, जिस प्रकार अर्धनारीश्वर को शिव का रूप माना जाता है । हरिशंकरी-स्तोत्र की फलश्रुति में तुलसी ने कहा है कि यह विष्णु-शिव-लोक का सोपान है । आगे एक पद में तुलसी का स्वप्रबोधन निम्नरूप में मिलता है —

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो ।
अगम जो अमरनिहुं सो तनु तोहिं दियो ।।
दियो सुकुल जनम, सरीर सुंदर, हेतु जो फल चारि को ।
जो पाइ पंडित परमपद,पावत पुरारि-मुरारि को ।। - १३५।१,

यहाँ मनुष्य शरीर से राम-भक्ति के द्वारा शिव और कृष्ण-लोक प्राप्ति की बात कही गई है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राम, कृष्ण और शिव में कोई अन्तर नहीं मानते थे । हरिहर के पृथक् लोक की कल्पना के अभाव में यही माना जा सकता है कि हरिहर- भक्ति से विष्णुलोक या शिवलोक अथवा दोनों लोकों की संप्राप्ति हो सकती है ।

विनय पत्रिका के प्रस्तुत पद का क्रम विधान देखकर तो ऐसा आभासित होता है कि कवि ने उसकी रचना हरिहर मूर्ति के सम्मुख बैठकर ही की हो ।

प्रस्तुत परिप्रेक्ष्य में हनुमानबाहुक के एक स्थल का अर्थ विचारणीय है । उसके सम्पूर्ण ११ वें छन्द का निम्न पाठ है —

रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरिहर
मीच मारिबे को ज्याइबे को सुधापान भो ।
धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को,
सोखिबे को, ~~जन-परितोषिबे-~~कृशानु,पोषिवे को हिमभानु भो ।
खल-दुख-दोषिवे को, जन-परितोषिवे को,
माँगिबो मलीनता को मोदक सुदानु भो ।
आरत की आरति निवारिबे को तिहूं पुर,
तुलसी को साहेब हठीलो हनुमान भो ।।

पं० महावीरप्रसाद मालवीय ने इसके प्रथम चरण का अर्थ किया है —आप सृष्टि रचना के लिए ब्रह्मा, पालन करने को विष्णु, मारने को रुद्र और जिलाने के लिए अमृतपान के समान हुए।[1] स्पष्ट है कि टीकाकार ने चार पदों में विच्छेद करते हुए बिधि,हरि तथा मारिबे को कों के बाद विराम लगाया है —

रचिबे को बिधि (भो)

जैसे पालिबो को हरि (भो)

हर मीच मारिबे को (भो)

ज्याइबे को सुधापान भो।

उक्त अर्थ में तृतीय पदांश के मीच शब्द का अर्थ आ ही नहीं सका है। जबकि मारने का काम उसी का है। दूसरे-तीसरे पदांशों का ठीक अन्वय होगा —

जैसे पालिबे को हरिहर (भो)

मीच मारिबे को (भो)

इस प्रकार यही अर्थ होगा - जैसे रचना के लिए ब्रह्मा, पालन के लिए हरिहर, मारने के लिए मृत्यु और जिलाने के लिए अमृतपान। रचना के समानान्तर पालन और नाश के समानान्तर जीवन का वर्णन है, जिनके लिए क्रमशः ब्रह्मा, हरिहर, मृत्यु और अमृत का नाम लिया गया है।पौराणिक कल्पना के अनुसार पालन का दायित्व विष्णु का है और हरिहर विष्णु के ही एक रूप हैं। कुतारी (इलाहाबाद) की हरिहर प्रतिमा के साथ वामन, वाराह तथा संकर्षण के विग्रह एक ही शिलास्तम्भ पर उत्कीर्ण हैं और परवर्ती काल में हरिहर में विष्णु को दक्षिणांश प्रदान करने से विष्णु की महत्ता तथा हरिहर को विष्णु का ही एक स्वरूप मानने की धारणा पुष्ट होती है।

डा० उदयभानु सिंह का तो अभिमत है कि मानस के प्रारम्भिक श्लोकों की छठी स्तुति हरिहरात्मक ही है। उन्होंने 'रामाख्यमीशं हरिं' में ईश शब्द शिव का व्यंजक माना है।[2] स्तुति में जिन विशेषणों का प्रयोग हुआ है, मानस को देखते हुए,वे हरिहरात्मक ही हैं और उनका शिव से कोई विरोध नहीं है।

---

१. हनुमानबाहुक,पृ० १४

२. तुलसी-दर्शन-मीमांसा, पृ० ६३,पादटिप्पणी ३

केशवदास

भक्तिकाल में होते हुए भी केशव को भक्त-हृदय नहीं मिला था । राज-दरबारों में रहने के कारण उनकी प्रवृत्ति वहीं जैसी थी । इसी कारण उन्होंने पूर्व परम्परा के अनुकूल वीरसिंह देवचरित ,रतनबावनी तथा जहाँगीरजसचन्द्रिका जैसे वीर चरण काव्यों और उत्तरकालीन रीतिकाव्यधारा का आचार्यात्मक प्रवर्तन करते हुए रसिकप्रिया, कवि प्रिया तथा नखशिख जैसे काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन किया । भक्तिकाव्य की दृष्टि से रामचन्द्रिका ही उनकी एकमात्र रचना है जिसमें उन्होंने राम-कथा को आधार बनाया है । मूलगोसाईं चरित के अनुसार केशव ने इसकी रचना एक रात में की थी ।[१] भले ही इस कथन में अतिशयोक्ति हो तथापि ग्रन्थ से स्पष्ट है कि यह रामचरितमानस जैसी धार्मिक अथवा दार्शनिक कृति नहीं है । रचनात्मक त्वरा या केशव की मनोवृत्ति के अनुकूल इसमें उन्हीं अंशों को महत्त्व मिला है जहाँ अलंकार-कौशल तथा वाग्विलास-प्रदर्शन को अवसर है । प्रारम्भ में रामावतार के कारणों तथा राम-जन्म के विशेष विवरण का अभाव केशव की रामकथा वर्णन की उत्सुकता का प्रमाण है । औपचारिकता का निर्वाह मात्र करते हुए वे मार्मिक स्थलों को छोड़ते गए हैं और अपनी दरबारी अभिरुचि के अनुरूपनखशिख , ऋतुवर्णन आदि को विस्तार से दिया है । ऐसे में ग्रन्थ से कवि की धार्मिक तथा दार्शनिकप्रवृत्ति का दोहन सिकता से तैल निकालने सदृश है ।तथापि रामचन्द्रिका तथा अन्य ग्रन्थों से उनकी धार्मिकता पर जो प्रकाश पड़ता है उससे हम उन्हें सहिष्णु ही कह सकते हैं ।

दार्शनिक दृष्टि से केशव के राम सर्वव्यापक तथा निर्गुण परब्रह्म के अवतार हैं ।[२] मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि भी उन्हीं के रूप हैं ।[३] वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, चन्द्र, आदि सभी का अभिमान नष्ट कर सकते हैं[४] क्योंकि यह सब उन्हीं के अंशावतार हैं ।[५] वे आदि-मध्य-अन्त में एकाकी होते हुए[६]

---

१. गोसाईंचरित, परिशिष्ट, दोहा ५८ की चौपाइयाँ ,

२. रामचन्द्रिका १२।६, १७।४३

३. वही २०।२०-२३

४. वही १८।१४

५. वही २०।४५

६. वही १३।३

भी सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार करने में समर्थ हैं ।[1] संसार में उनके सत्व गुण प्रधान रक्षक स्वरूप को विष्णु और तमोगुण प्रधान संहारक रूप को रुद्र कहा जाता है ।[2]

लौकिक स्तर पर राम तथा शिव का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । मृत्यु के समय शिव काशी में राम-नाम प्रदान करने[3] के अतिरिक्त स्वयं भी राम का स्मरण करते हुए उन्हें हृदय में धारण करते हैं ।[4] शिव ने राम द्वारा लंका-विजय के बाद आकर राम का स्तवन किया है ।[5] दूसरी ओर धनुष-भंग के बाद राम-परशुराम विवाद के समय शिव के आने पर राम उन्हें प्रणाम करते हैं[6] और लंका-विजय हेतु समुद्र-सन्तरण के अवसर पर सेतु के मूल में शिवलिंग स्थापित कर कहते हैं कि जो व्यक्ति इनके दर्शन या स्पर्श करेगा उसे मोक्ष की प्राप्ति होगी ।[7]

विविध वैष्णव उपनामों के साथ विन्ध्याचल की विभूतियुक्त शिव[8] तथा वीरसिंह के ग्यारह पुत्रों की एकादश रुद्रों[9] से उपमा और चतुर्भुज देव के नग्न दरबारियों को दिगम्बर महादेव[10] तथा अश्वारूढ़ वीरसिंह भूपति को पशुपति,[11] भारद्वाज वाटिका को महादेव-वाटिका,[12] भारद्वाज आश्रम को शिव के समाज,[13] कौपीनधारी तपस्वियों की शेषधारी शिव से समानता,[14] वर्षा के श्लिष्ट वर्णन

---

१. वही ११।१५

२. वही, २०।१८

३. वही १२।४४

४. वही १।१४

५. वही २०।२४

६. वही ७।४४

७. वही १५।३४

८. वीरसिंहदेवचरित २।६

९. वही २।४८

१०. वही १६।२६

११. वही १६।२

१२. रामचन्द्रिका २०।३४

१३. वही २०।४०

१४. वही २०।४१

में कालिका के अधिग्रहण[१] से उनकी धार्मिक सहिष्णुता ही प्रकट होती है । केशव द्वारा विद्या माया को अक्षर ब्रह्म से सम्बद्ध बताये जाने में शैवमत का प्रभाव होना भी महत्वपूर्ण है,[२] क्योंकि केशव की रचना शैव न होकर वैष्णव है ।

इसीप्रकार शिव के भक्त बाण द्वारा वैष्णवी सीता को माँ कह कर मिथिला के धनुष-यज्ञ से उठ जाना,[३] विश्वामित्र के साथ आगत राम-लक्ष्मण का तपोवन में हरि और हर का जाप होते सुनना,[४] वीरसिंहदेव के नगर में शिव का शासन होते हुए भी सभी के द्वारा राम-नाम का स्मरण[५] तथा वीरसिंहदेव द्वारा समस्त देवों का पूजन[६] सहिष्णु पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं ।

केशव ने एक स्थान पर शिव को संसार-सागर का केवट बताकर[७] वीरसिंह-देवचरित के प्रारम्भ में उनका स्तवन भी किया है । परन्तु यह महत्वपूर्ण है कि स्तुत्यशिव के उर चतुरचारु चक्की बसतु कहकर केशव ने विठोबा के समानान्तर एक हरिहरात्मक स्वरूप उपस्थित कर अपनी समन्वयात्मक परिदृष्टि का परिचय दिया है । अन्तर यही है कि विठोबा या पांडुरंग समग्रत: विष्णु विग्रह है, जिसके मस्तक पर शिवलिंग लांछित है और केशव के स्तुत्य उमेश्वर शंकर हैं जिनके हृदय में चक्रपाणि का निवास है ।

## सेनापति

सेनापति की एकमात्र उपलब्ध कृति कवित्तरत्नाकर है, जिसकी पाँच में से दो तरंगों में राम तथा रामकथा का वर्णन है । रामकथा के विषय में कवि ने कहा है —

---

१. जनु माया अच्छर सहित देखि । वही १३।८१

२. डा० कमलाभंडारी, मध्यकालीन हिन्दी-कविता पर शैवमत का प्रभाव, पृ० १७०

३. रामचन्द्रिका ५।२८ ४. वही ३।२

५. वीरसिंहदेवचरित १८।५ ६. वही ३२।२०

७. रामचन्द्रिका १५।३५

ऐसी रामकथा,ताहि कैसे कै बखानैं नर,

जातैं ए विमल बुद्धि बानी के विहीनै हैं ।

सैनापति यातैं कथाक्रम कौं प्रनाम करि

काहू काहू ठौर कै कवित्त कछू कीनै हैं ।। तरंग ४।६

इस प्रकार सैनापति द्वारा रामकथा के कतिपय प्रसंगों को ही आधार बनाने के कारण तत्सम्बन्धी चतुर्थ तरंग में उनकी भक्ति विषयक कुछ विशिष्ट परिचय अनुपलब्ध ही है । इस सम्बन्ध में रामरसायन-वर्णन नामक पांचवीं तरंग विशेषत: द्रष्टव्य है ।

ग्रन्थ का प्रारम्भ श्लेष-वर्णन की तरंग से होता है । परन्तु सैनापति ने इसके मंगलाचरण में राम-स्तवन श्लिष्ट ही किया है । 'सियापति का सेवक' होकर उन्होंने राम की आराधना तथा चर्चा की है । उनके इष्ट भगवान् राम भक्तवत्सल है भक्तों का सदैव ध्यान रखने के कारण उन्हें धीवर (केवट) का सखा वनचरों का स्नेही, जटायु का बन्धु , शबरी का अतिथि, पाण्डवों का दूत तथा अर्जुन का सारथी होना पड़ा । सहिष्णुतावश उन्होंने भृगु की लात के आघात को सहन किया व्याध के अपराध को क्षमा कर दिया, श्वान को निर्णय किया तथा बलि की दरबारदानी भी की ।[1] ऐसे भक्तवत्सल प्रभु की खड़ाऊं तक पूज्य हैं ।[2] जिनके चरण-स्पर्श से शिला रूप अहल्या को मोक्ष मिल गया और जिन्होंने प्रह्लाद की हिरण्यकशिपु तथा गज की ग्राह से रक्षा की, जिनके नाभिकमल पर ब्रह्मा का वास है, जिनका सनक आदि ध्यान करते हैं और वेद जिनके यशगायक हैं, शेष-सूर्य-चन्द्र पवन से सेवित उन धनुषधारी श्यामवर्ण राम के अतिरिक्त सैनापति को अन्य किसी का आश्रय नहीं है ।[3] राम के प्रति कवि की आस्था तथा एकनिष्ठता उसके निम्नकथनों में व्यक्त मिलती है --

१. और न भरोसौ, जिय परत खरोसौ, ताही

राम-पद-पंकज कौ पूरन भरोसौ है ।। ११२

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।१६

२. वही ११२ तथा ४।१

३. वही ५।३

२. राम महाराज जाकौं सदा अविचल राज,
बीर बरिबंड जो है दलन दुवन कौं ।

दुख तैं बचाउ , जातैं होत चित चाउ, मेरे
सोई है सहाउ, राउ चौदहौं भुवन कौं ।। ४।७३ (५।२)

३. कपट बिहीन, ऐसौ कौंन परबीन, जासौं
हूजियै अधीन सेनापति मान धन है ।
जगत भरन, जन-रंजन-करन, मेरौ
बारिद-बरन राम दारिद-हरन है ।। - वही ५।४

४. तुम ही हमारे धन, तोसौं बांध्यौ पेम-पन ,
और सौं न मानै मन, तोही सुमिरत हैं ।। ५।५

५. कीजै न गहर, बेग मेरौ दुखहर, मेरे
आठहू पहर आस रावरे चरन की ।। ५।१५

ऐसी एकनिष्ठता में वह प्रौढ़ता है कि कवि अपने कर्मों को परे रख केवल शरणागति के आधार पर ही मोक्ष का औचित्य समझता है । वह कहता है -

तुम करतार जन रच्छा के करनहार,
पुजवनहार मनोरथ चित चाहे के ।
यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ
हूजियै सरन महा पाप-ताप दाहे के ।।
जौ कोहू कहौ कि तेरे करम न तैसे, हम
गाहक हैं सुकृति भगति रस लाहे के ।
आपने करम करि हौं ही निबहौंगो, तौब
हौं ही करतार, करतार तुम काहे के ।। ५।२६

यह अधिकार भावना अपनों के ही प्रति होती है और अपने कभी विस्मृत नहीं करते हैं । इसीलिए वह राम की शरण में आकर निश्चिन्त हैं और -

सौवै सुख सैनापति, सीतापति के प्रताप,
जाकी सब लागै पीर ताही रघुबीर ही ।। ५।१६

सैनापति के उपास्य सामान्य मानव राम नहीं । जिसने जीव को, तन, मन, ज्ञान तथा बुद्धि देकर संसार में उत्पन्न किया है और जिसकी सृष्टि-रचना निस्सीम है । जो विश्वरूप, निराकार तथा निराधार है और हर स्थान पर जिसका तेज परिव्याप्त है,[१] उस पूर्ण पुरुष के राम पूर्ण अवतार हैं ।[२] इसीलिए वे राम के नृसिंहावतार[२क] का स्तवन और कृष्ण की जन्मभूमि वृन्दावन में निवास की कामना भी बड़े मनोयोग से करते हैं ।[३] राम के चरणों से नि:सृत होने के कारण वे गंगा की भक्ति को भी राम-भक्ति के समतुल्य रखते हैं ।[४]

श्लिष्ट रचना के लगभग आठ छन्दों में उन्होंने चन्द्र,[५] सूर्य,[६] हाथी,[७] गंगा[८] तथा स्त्री[१०] के साथ-साथ राम, रामकथा और राम की तलवार का वर्णन किया है । और दो कवित्तों में एक साथ राम तथा कृष्ण की समानता दिखाई है ।[११] इसी-प्रकार कम-से-कम तेरह छन्द ऐसे हैं जिनमें मेघ,[१२] मोती,[१३] राजा,[१४] रोगी,[१४क] केश,[१५] कुबेर,[१६] गोपीविरह[१७] एवं हरिणी[१८] के साथ कृष्ण, कृष्णकथा तथा गोपी-विरह को परिगृहीत किया है ।

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।१
२. वही ४।७
३. वही ५।३६,३७
४. वही ५।२१
५. वही ५।५५
६. वही १।११,७६
७. वही १।५८,७४,७५
८. वही १।६८
६. वही १।५५
१०. वही १।७०
११. वही १।५७,६६
१२. वही १,१२,६३,७७
१३. वही, १।६२,८१
१४. वही १।५६   १४क. वही १।८०
१५. वही १।७१
१६. वही १।६२
१७. वही १।६६
१८. वही १।८४

एक ओर जहाँ कवि वैष्णावत्व की दृष्टि से इतनी दूर तक पहुँचा है कि वह राम के अन्य अवतार नृसिंह ही नहीं, राम के खड़ाऊँ तथा कृष्णा, कृष्णाकथा, गोपी-विरह आदि तक को अपने काव्य का लक्ष्य बनाता है वहीं वह अपने पिता की तुलना शिव से करता है --

गंगाधर पिता, गंगाधर की समान जाकों । १।५

सेनापति के अनुसार शिव देवाधिदेव (५।४५) तथा जगद्गुरु (५।४४) हैं । सांसारिक विद्या से अविद्या का नाश तो हुआ नहीं इसलिए क्यों न शिव से ही गुरुमन्त्र लिया जाये जिसे पाने से काम-क्रोध का नाश होकर जीव चिदानन्द में लीन हो जाता है । शिव आशुतोष तो हैं ही, क्योंकि वे --

१. लेत ही चढ़ाइवे कौं जाके एक बेलपात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल है । ५/४५

२. चाहत धतूरे अरु आक के कुसुम छैक,
जिनें लेत कोई कहूँ भूलि हू न हटके ।
सेनापति सेवक कौं चारि वरदानि, देव
देत हैं समृद्धि जो पुरंदर के हटके ।। - ५।४६

जब इतनी शीघ्रता और सरलता से इष्ट को प्रसन्न किया जा सके तो फिर क्यों न उसी की शरण में जाया जाये । कवि अपने मन को प्रबोधित करता है --

१. कहा भटकत ! अटकत क्यों न तासों मन,
जातें आठ सिद्धि नव निधि रिद्धि तू लहै ।। ५।४५

२. हित उपदेस लेह, छांड़ि दे कलेस, सदा
सेइयै महेस, और ठौर कहा भटकै ।। ५।४६

३. बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरो
संकर तें राम-नाम पढ़िबे कौं मन है ।। - ५।४४

तीसरे उदाहरण में सेनापति ने काशी में मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर शिव से राम-नाम प्राप्त करने की अभिलाषा प्रकट की है । काशी शिव की नगरी है और वहाँ जाकर शिव से राम नाम प्राप्त करना है । इससे ज्ञात होता है कि सेनापति भी शिव को राम-नाम का अधिष्ठाता मानने में परम्परा का ही

अनुसरण करते हैं ।

सहिष्णुता का एक स्तर वह भी है जहां रामकथा के रचयिता कवि को कोमल कुचों को देखकर शिव का स्मरण हो आता है।[1] अर्धनारीश्वर आख्यान से भी कवि का परिचय है ( ५।४५,६०)। एक कवित्त में उसने सूर्य का वर्णन करते हुए शिव को अप्रस्तुत बनाया है । यही नहीं उस छन्द में श्लेष से भी शिव का वर्णन हुआ है[2]।

शिव के प्रति पर्याप्त श्रद्धाभाव होते हुए भी वह उन्हें राम की श्रेणी में नहीं रखता है । उसने अंगद द्वारा रावण को कहलाया है कि --

सूलधर हर तैं न ह्वै है धरहरि, कुंभ-
करन, प्रहस्त, इन्द्रजीत की कहा चली ।। ४।५६

एक स्थान पर तो शिव को भगवान् राम का पौत्र बताया है --

लोचन बिरोचन-सुधाकर लसत, जाको
नन्दन विधाता, हर नाती जाहि भायो है ।। - ५।६

गंगा भगवान् राम (विष्णु) का चरणोदक हैं और शिव को कालकूट सहन करने की शक्ति गंगाजल से ही प्राप्त हुई है ।[4] इसी प्रकार शिव के घोर रूप को शान्ति का कारण ही गंगाजल है –

काल तैं कराल कालकूट कंठ मांझ लसै
ब्याल उर माल, आगि भाल सब ही समैं ।
ब्याधि के अंग ऐसे ब्यापि रह्यौ आधो अंग
रह्यौ आधो अंग सो सिवा की बकसीस मैं ।

---

१. प्यारी के नयन असुवान बरसत, तासौं
भीजत उरोज देखि भाउ मन भारयौ है ।
सेनापति मानौं प्रानपति के दरस -रस,
शिव कौं जुगल जलसाई करि राख्यौ है ।। वही २।२३

२. वही ५।४८

३. वही ३।२४

४. वही ५।५१

ऐसे उपचार तैं न लागती बिलात बार,

पैयती न वाकी तिल एकौ कहूँ देस मैं ।

सैनापति जिय जानी सुधा तैं सरस बानी,

जौ पै गंगा रानी कौं न पानी होतौ सीस मैं ।। - ५।६०

राम के प्रति शिव का ऐसा सौहार्द भाव है कि उनकी लीला रूप सफलताओं से शिव को उत्कट आनन्द प्राप्त होता है । रावण के उपास्य होते हुए भी राम द्वारा सेतुबन्ध-निर्माण ( ४।४५) तथा राम की लंका-विजय के समय शिव प्रसन्न हो जाते हैं ( ४।६६) । शिवराम-नाम के अधिष्ठाता तो हैं ( ५।४४) जो उनके लिए निधि तुल्य है ( - ४।७५) ।

इसी प्रकार ज्ञात होता है कि वैष्णव होते हुए भी सैनापति का शैव धर्म के प्रति अत्यन्त उदार भाव है और उस उत्साह में वे शिव की आराधना को तत्पर हो जाते हैं । एक कवित्त में तो उन्होंने श्लेष से शिव और विष्णु का वर्णन एक साथ किया है -

सदा नंदी जाकौं आसा-कर है बिराजमान

नीकौ घनसार हू तैं बरन है तन कौं ।

सैन सुख राखै सुधा दुति जाकै सेखर है

जाकै गौरी की रति जो मथन मदन कौं ।।

जो है सब भूतन कौं अंतर निवासी रमैं

धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौं ।

जानि बिन कहैं जानि सैनापति कहैं मानि

बहुधा उमाधव कौं भेद छांड़ि मन कौं ।। - १।३८

विष्णु : जो सर्वदा आनन्दमय है, जिसका वरद हस्त विराजमान है और जिसके शरीर का वर्ण कर्पूर से भी अधिक सुन्दर है । जो क्षीरसागर में आनन्द-पूर्वक शयन करता है और अमृत की द्युतियुक्त शेष जिसके ऊपर छाया रखता है, जिसकी कीर्ति कल्याणकारी तथा जो मदों को नष्ट करने वाला है। वह समस्त प्राणियों में व्याप्त है और लक्ष्मी को हृदय में धारण करता है । जो सांसारिक भोगियों के समान आभूषण सम्पन्न है और जिसे ज्ञानी बिना कहे ही जान लेते हैं, ऐसे विष्णु का वर्णन सैनापति भेद-बुद्धि त्यागकर प्राय: करता है ।

शिव: जिसके साथ दण्डयुक्त नन्दी सदैव प्रस्तुत रहता है, जो कर्पूर वर्ण है और योगनिद्रा में लीन रहता है । जिसके मस्तक पर चन्द्रमा तथा हृदय में पार्वती का प्रेम है और जो कामदेव को नष्ट करने वाला है जो समस्त प्राणियों के मध्य निवास तथा रमण करने वाला, हृदय पर सर्पधारी तथा दिगम्बर है और ज्ञानी जिसे बिना बताये ही जानते हैं, सेनापति उस शिव को भेद-बुद्धि त्यागकर प्राय: कहा करता है ।

अन्तिम दो पंक्तियों से ज्ञात होता है कि शैवों और वैष्णवों अथवा शिव और विष्णु का विभेदात्मक भाव किसी न किसी रूप में सेनापति के समय विद्यमान अवश्य था । जो बुद्धिमान लोग थे वे तो इनमें कोई भेद नहीं करते थे, परन्तु कुछ ऐसे कट्टरपन्थी भी थे जो दोनों को पृथक समझकर दूसरे में अविश्वास रखते थे ।

देखा जाये तो सेनापति की यह धार्मिक उदारता अथवा सहिष्णुता अपने पैतृकों से विरासत में प्राप्त हुई थी । उनके परिवार में शिव या विष्णु के प्रति किसी प्रकार का विद्वेष भाव न होने के कारण ही उनके दादा का नाम परशुराम और पिता का नाम गंगाधर था ।[1] परशुराम विष्णु के अवतार हैं और गंगाधर शिव को कहा जाता है । इस शृंखला में स्वयं कवि का यथार्थनाम खोज का विषय है ।

वर्णन-शैली की दृष्टि से चन्द्रक कवि के एक स्तोत्र में श्लेष से शिव तथा विष्णुपक्षीय अर्थ निकलता है[2] और मधुसूदन सरस्वती ने शिवमहिम्नस्तोत्र का शिव के अतिरिक्त विष्णुपरक अर्थ भी किया था । हिन्दी में सेनापति द्वारा शैव-वैष्णव श्लिष्ट स्तुति सम्भवत: अद्वितीय है ।

---

१. वही, १।५

२. वही,

## अध्याय–८

## उपसंहार

अध्यात्म प्रधान भारतीय संस्कृति की एक विशेषता उसकी समन्वयशीलता तथा सहिष्णुता है । भारत इतना विशाल देश है कि कितनी ही वाह्य संस्कृतियों का यहाँ आगमन हुआ और साथ रहते हुए वे पल्लवित-विकसित हुईं । कालान्तर में वे अपने विकास के साथ अन्यान्य संस्कृतियों से प्रभाव ग्रहण करती रहीं । समन्वय-शीला इस पुण्यभूमि में आर्य-अनार्य तथा विविध जनजातीय संस्कृतियों के अतिरिक्त यूनानी, शक, कुषाण, मुस्लिम प्रभृति विदेशी संस्कृतियों के मध्य आर्य संस्कृति का विकास हुआ ।

यहाँ की प्राचीनतम संस्कृति के अभिज्ञान स्वरूप हमें दो प्रकार के प्रमाण उपलब्ध होते हैं --साहित्यिक और पुरातात्त्विक । प्रथम के अन्तर्गत विशाल वैदिक साहित्य को समाविष्ट किया जा सकता है तो पुरातात्त्विक प्रमाणों में सिन्धुघाटी के अवशेष आर्य-अनार्य संघर्ष का साक्ष्य उपस्थित करते हैं । ऋग्वेद में शंबर और दिवोदास के महान् युद्ध का वर्णन है जिसमें आर्यों ने शंबर के निन्यानवे दुर्गों तथा वर्चिन् के लाखों वीरों का विनाश कर दिया । यहीं त्रित द्वारा त्रिमुखी दास के वध का भी वर्णन है । तैत्तिरीय संहिता में त्रिशीर्ष को त्वष्टा का पुत्र तथा असुरों का भागिनेय कहा गया है । आर्यों ने इन अनार्य विजितों को दास बनाकर अपने समाज में समाविष्ट कर लिया । प्रस्तुत संघर्ष की अभिपुष्टि सैन्धव अवशेषों से भी हो जाती है । इस प्रकार वैदिककाल में आर्य और अनार्य संस्कृतियों का अस्तित्व स्वत:सिद्ध है । कुछ लोग असुरों को भी आर्यों का ही एक रूप मानते हैं और अनार्य के स्थान पर आर्येतर शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक समझते हैं ।

आर्य संस्कृति यज्ञ प्रधान थी, जिसमें देवमंडल की संख्या तैंतीससेलेकर तीन हजार तीन सौ उन्तालीस तक मिलती है ( - ऋग्वेद १।३४।११, १।४५।२, ८।३५।३, ८।३६।६), परन्तु यास्क ने त्रिधा विभाजन के आधार पर तीन ही देवों को प्रमुखता प्रदान की --

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ता : । अग्नि: पृथिवीस्थान: । वायुर्वेन्द्रो-
वान्तरिक्षस्थान:। सूर्यो द्युस्थान: ।(- निरुक्त ७।५)

अर्थात् निरुक्तों के अनुसार वेद में तीन ही देवता होते हैं --पृथ्वी स्थानीय अग्नि, अन्तरिक्ष स्थानीय वायु अथवा इन्द्र और द्युलोकीय सूर्य ।

अनार्य जननेन्द्रियोपासक थे, इसका प्रमाण वैदिक शिश्नदेवा:(लिंगोपासक) शब्द है । आर्यों ने इन शिश्नदेवा: शत्रुओं को यज्ञस्थल से दूर रखने की प्रार्थना की है । सैन्धव संस्कृति में ऐसे अवशेष प्राप्त भी हुए हैं, जो पुरुष तथा नारी जननेन्द्रिय के प्रतीक हैं । इन प्रतीकों तथा वहां के भग्नावशेषों से सिद्ध हो जाता है कि सैन्धव संस्कृति अनार्य थी, जिसे अन्य उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर द्रविड़ कहा गया है । इन सैन्धवों का एक देवता योगी के रूप में मान्य था, जिसका पशुओं से भी सम्बन्ध था ।

आर्यों द्वारा अनार्यों को समाज में समाविष्ट करने पर कालान्तर में यह स्वाभाविक हो गया कि वैदिक संस्कृति अनार्यों की इस अधिक सुगठित एवं समृद्ध संस्कृति से अल्पाधिक रूप में प्रभावित होती । इस प्रभाव का एक रूप वैदिक देव मंडल में मिलता है क्योंकि अनार्यों के पशुपति की आर्य लोग अवहेलना नहीं कर सके । उनके यहां का ऋग्वैदिक रुद्र आगे चलकर इसी देवता से प्रभावित होकर ताम्रवर्ण, लोहित, कृत्तिवासी ( वाज० सं० १६।७) तथा पशुपति (वही ३६।८ ) ही हो गया । प्रस्तुत शब्द द्रष्टव्य हैं। तमिल में शिवन् का अर्थ लाल और शेम्बु सन्दर्भ में तमिल भाषा के शिवन् और शेम्बु का अर्थ ताम्र (लाल धातु) होता है । इस आधार पर उक्त प्रमाणों के परिप्रेक्ष्य में इन्हीं शब्दों से संस्कृत के शिव और शम्भु की व्युत्पत्ति मानना पर्याप्त संगत प्रतीत होता है । यह अर्थ रुद्र की रक्तवर्णीयता से भी साहचर्य रखता है ।

ऋग्वैदिक रुद्र में अनार्य पशुपति की समाहिति के कारण परवर्ती आर्य रुद्र-शिव को ससम्मान आहूत नहीं करते हैं । वाजसनेयी तथा तैत्तिरीय संहिताओं के त्र्यम्बक होम में रुद्र को यज्ञ का भाग देने के पश्चात् उन्हें मूजवत् पर्वत के उसपार चले जाने को कहा गया है । इससे लगता है कि स्तोता को उनकी उपस्थिति अभीष्ट नहीं । इसी-प्रकार रुद्र यज्ञ का पुरोडाश खाया नहीं जाता अपितु उसे एक बांस में लटकाकर उत्तर दिशा के किसी पेड़ में बांध आने का विधान है । इसके बाद यजमान जल का स्पर्श कर पवित्र होता है और घर आकर केश मुंडवाता है तथा वैदिका-स्थल परिवर्तित करता

है । शतरुद्रिय स्तोत्र में रुद्र-शिव के तक्षक, रथकार, कर्मकार, कुलाल, निषाद, श्वनि (कुत्तपालक), मृगायु (व्याध) आदि गणों का उल्लेख है । स्पष्ट ही यह उनके उपासक रहे होंगे जो समाज के सम्भ्रान्त वर्ग से आये नहीं लगते हैं । अथर्ववेद में शिव को भूत-पिशाचों का अधिपति मान लिया गया है क्योंकि स्तोता इनसे रक्षा के लिए शिव का आह्वान करता है ।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में पौराणिक शिव का प्राय: समस्त स्वरूप स्थिर हो चुका था । पुराणों में दैवासुर संग्राम, असुर द्वारा वेदों के अपहरण, दक्ष-यज्ञ में शिव-भाग के अभाव तथा शिव द्वारा दक्ष-यज्ञ-विध्वंस को लेकर विविध आख्यानों की सर्जना हुई है । इनका मूल भी वैदिक साहित्य में उपलब्ध हो जाता है । वैदिक काल के प्रधान देवता इन्द्र का विष्णु में समाहार होने पर आगे चलकर तीन ही देवता प्रमुख रह गए - विष्णु : रक्षक, समस्त भुवनों के धारक, संसार के स्थापक होने तथा इन्द्र और सूर्य को समाहित कर लेने के कारण; रुद्र :भेषज, शुचि, पीयूष पाणि के साथ रौद्र होने तथा अनार्य पशुपति को समाहित कर लेने के कारण तथा प्रजापति ब्रह्मा: यज्ञ के देवता होने के कारण। इन्हीं तीनों का एकात्म स्थापित करते हुए कालिदास ने कहा है -

एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् ।
विष्णोर्हरस्तस्य हरि: कदाचिद्वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ।।

--कुमारसम्भव ७।४४

अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव एक ही मूर्ति के तीन रूप हो गए हैं । ये परस्पर अन्यान्य से छोटे-बड़े हुआ करते हैं । कभी शिव विष्णु से बढ़ जाते हैं, कभी ब्रह्मा इन दोनों से बढ़ जाते हैं और कभी यह दोनों ब्रह्मा से बढ़ जाते हैं । परन्तु ब्रह्मा बहुत काल तक स्थिर न रह सके । चिन्तन प्रधान उपनिषदों में यज्ञों पर सन्देह किया जाने लगा और आगे यज्ञों के साथ ब्रह्मा का भी महत्वघट जाता है और अन्तत: उनका लोप हो गया । उस समय नवीन देवों का अभ्युदय होते हुए भी विष्णु और शिव ही प्रधान रह गए जिनमें से प्रथम आर्य माने जाते हैं और दूसरे अनार्य । किन्तु विष्णु का नील वर्ण अनार्य प्रभाव का द्योतक माना जाता है । इसी प्रकार रक्तवर्णी शिव का शुभ्र वर्णी रूप आर्य प्रभावित । शिव का हिमालय से एकात्म हो जाना भी उनके गौर रूप का कारण हो सकता है ।

वैदिक काल में मरुतों का इन्द्र तथा रुद्र दोनों से योग रहा है । शिव-विष्णु की एकता में मरुतों का भी विशेष स्थान है । पौराणिक साहित्य में मरुत् पुत्र हनुमान् राम के अन्यतम सहायक सिद्ध हुए और उन्हें रुद्र-रूप, रुद्र-पुत्र अथवा दोनों रूपों में प्रस्तुत किया गया है । यद्यपि दोनों का सीधा सम्बन्ध तो प्रतीत नहीं होता है, तथापि परम्परागत साम्य अवश्य दिखाई देता है । दक्षिण भारतीय आणामन्ति से हनुमान् का जो रूप सम्बद्ध किया जाता है उसमें उनके पवन से सम्बद्ध होने का कोई सन्दर्भ नहीं मिलता । अत: यह वैदिक परम्परा से ही सम्बद्ध एवं उद्भूत लगता है । जिन विदेशी विद्वानों ने रामकथा को प्रतीकात्मक रूप में ग्रहण किया है उन्होंने राम को मेघ, हनुमान् को पवन और सीता को कृषि का द्योतक माना है ।

वैदिक आर्य-अनार्य संघर्ष की अनुगूंज पुराणों में भी अनेकरूपों में परिव्याप्त मिलती है । यहां विष्णु के विविध अवतारों की कल्पना के साथ शिव के भी विभिन्न स्वरूपों और सन्ततियों का अस्तित्व मिलता है । वैदिक संघर्ष की पृष्ठभूमि में पुराणों ने शिव और विष्णु की पारस्परिक महत्ता के द्योतक विविध आख्यानों की रचना कर डाली । शिव नाग और गंगा धारण करते हैं तो विष्णु शेषशायी हैं और गंगा उनके वामनावतार का चरणोदक मात्र है । सम्भवत: नाग शिवोपासक होने के कारण अपने इष्टदेव को अलंकृत रूप में पूजते थे इसीलिए उन्होंने अपने प्रतीक नागों को भी शिव का अलंकरण मान लिया । विष्णु कृष्ण रूप में कालिय नाग का दमन करते हैं । नाग-दमन का अन्य उदाहरण जनमेजय के नागयज्ञ के रूप में देखा जा सकता है जो यज्ञ प्रधान आर्यों द्वारा शिवोपासक नागों के नाश का प्रतीक है। शिव के काम दहन की प्रतिस्पर्द्धा में कृष्ण द्वारा रासलीलामेंकाम-विजय का आख्यान रचा गया । इसीप्रकार शिव के तृतीय नेत्र में अग्नि का निवास माना जाने पर कृष्ण को अग्नि-पान करते दिखाया गया । शिव समुद्रोद्भूत हलाहल का पान करते हैं तो कृष्ण कालिय के विष का दमन और पूतना के विष को पीकर उसका वध करते हैं । शिव पशु-पति हैं तो कृष्ण गोपालक । शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप के आधार पर वैष्णवों ने विष्णु के अर्धलक्ष्मीश्वर स्वरूप की कीभी कल्पना कर ली । राम द्वारा रावण-विजय, जनक के यहां शिव-धनुष भंग करने तथा परशुराम को पराभूत करने के मूल में भी शैव-वैष्णव संघर्ष और शैवों पर वैष्णवों की विजय निहित है । रावण के

सैनानी असुरों का स्वरूप शिव के गणों जैसा ही है। प्रस्तुत आख्यानों में शैव धर्म की अपेक्षा वैष्णव धर्म की महत्ता का प्रतिपादन उद्दिष्ट है। परन्तु ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें विष्णु की अपेक्षा शिव का उत्कर्ष दिखाया गया है। एक आख्यान के अनुसार विष्णु ने जब नेत्र से शिव का पूजन किया तो उन्हें चक्र प्राप्त हुआ। अन्य आख्यान में चक्र की उत्पत्ति शिव के पादांगुष्ठ से मानी गई है। कृष्ण मोर मुकुटधारी हैं तो मोर शिव के पुत्र कार्तिकेय का वाहन है। शैव और वैष्णव धर्म संघर्ष के इन आख्यानों की चरम परिणति शरभेश आख्यान है, जिसमें विष्णु-विरोधी असुर का नृसिंह रूप विष्णु द्वारा वध करने पर शिव शरभेश रूप में नृसिंह का वध करते हैं।

परन्तु संघर्ष और विद्वेष की कोई सीमा नहीं। समाज में एक साथ रहने के लिए पारस्परिक सौहार्द और सहिष्णुता आवश्यक है। इसलिए ऐसे भी आख्यान सृजित हुए जिनमें शिव और विष्णु का सामंजस्य प्रकट किया गया। उषा-अनिरुद्ध आख्यान के अनुसार पहले शिव और विष्णु में भीषण संग्राम होता है, फिर ब्रह्मा द्वारा उन की एकात्मता बताने पर दोनों परस्पर एकात्म हो जाते हैं। लिंगोद्भव आख्यान में ब्रह्मा और विष्णु का विवाद होने पर प्रकाश पुंज के आविर्भाव और ब्रह्मा को अपूज्यता का शाप मिलने तथा शिव और विष्णु के समन्वय के मूल में ब्रह्मा का लोप और हरिहरैक्य भाव ही अन्तर्निहित है। पौराणिक काल में शिव और विष्णु के समन्वयपरक यह स्थितियां कई रूपों में मिलती हैं। कहीं शिव और विष्णु की अन्योन्याश्रित भक्ति प्रदर्शित है तो कहीं उनमें स्वामी-सेवक, मैत्री तथा समानता भाव और एक के अभाव में अन्य की भक्ति असम्भाव्य प्रतिपादित की गई है। एक के पूजन से अन्य की प्राप्ति हो सकती है, एक के हृदय में अन्य का निवास है तथा प्रत्येक संयुक्त स्वरूप धारण करता है। पारस्परिक समन्वय की सर्वोच्च स्थिति वह है जहां शिव या विष्णु को अकेले अथवा सम्मिलित रूप में हरिहर बताया गया है और उनकी पूजा-पद्धति का पृथक विधान हुआ है।

हरिहर का एकात्मस्वरूप स्थिर हो जाने पर उनके स्तोत्र तथा मूर्ति-मन्दिरों की रचना प्रारम्भ हो गई। ऐसे प्राचीनतम स्तोत्र हरिवंश पुराण (२।१२५।२६-५८)

तथा भारवि के हैं। हर्षकालीन वाण ने नीलम जटित कुण्डल तथा मौक्तिक जटित त्रिकण्टकधारी राजकुमार की उपमा हरिहर के समन्वित स्वरूप से दी है (हर्षचरित, उच्छ्वास ४), जो श्याम (नील) तथा श्वेत वर्णीं होते हैं। कुषाणकाल से हरिहर के समन्वय भाव के शिल्पशास्त्रीय प्रमाण भी उपलब्ध होने लगते हैं, जहां कनिष्क के एक सिक्के पर शिव को गदाधारी प्रदर्शित किया है और राजघाट की अभिमुद्रा पर वृषभ के अतिरिक्त चक्र एवं शंख भी निरूपित हैं। कनिष्क के सिक्कों पर भी शिव को गदा, चक्र, त्रिशूल और छत्र धारण किए दिखाया गया है। हरिहर की सम्पूर्ण प्रतिमाओं का निर्माण गुप्तकाल से मिलने लगता है। अब तक यह मथुरा, इलाहाबाद, मध्यप्रदेश, बिहार तथा पूर्व में भुवनेश्वर और दक्षिण में बीजापुर तक मिली हैं। इसी काल की अहिच्छत्र (बरेली, उत्तरप्रदेश) तथा सुनेत (पंजाब) से प्राप्त मोहरों का हरिहर के मन्दिरों से सम्बद्ध होना हरिहर-उपासना की व्यापकता एवं दृढ़ता का प्रमाण है। गुप्तकाल से ही हरिहर के मूर्तिशास्त्रीय लक्षण भी उपलब्ध होने लगते हैं।

शिल्पशास्त्र में हरिहर का मूर्ति विधान प्राय: शैव प्रतिमाओं के अन्तर्गत समाविष्ट मिलता है और हरिहर मूर्ति में विष्णु को वामार्ध में प्रदर्शित करने का विधान है। अर्धनारीश्वर में शिव भाग प्रधान होने के कारण उसे शैव प्रतिमा माना जाता है और उसमें नारी अंश वामार्ध में रहता है। इससे लगता है कि हरिहर समन्वय का सूत्रपात मूलत: शैवों की ओर से हुआ होगा। इसी प्रकार लक्ष्मी और अम्बिका के रूप भी तात्त्विक समानता से युक्त मिलते हैं जो उनसे सम्बद्ध सूक्तों से प्रकट हैं। मुण्डमालातन्त्र,[1] कालीतत्त्व,[2] कथासरित्सागर (मंगलाचरण) आदि में शक्ति को नारायण रूप कहा गया है, जिससे अर्धनारीश्वर भी शिव और विष्णु का समन्वित

---

१. डा० बृजेन्द्रनाथ शर्मा, अघोररूपा पंचमुखी स्वच्छन्द भैरवी, हिन्दुस्तान (जनवरी, १९६९), पृ० २७

२. हिन्दुस्तान (१३ नवम्बर, १९६६), पृ० ७

रूप सिद्ध होता है । निश्चय ही यह प्रयास शैवों की कल्पना है । दक्षिण भारत में शैव-वैष्णव समन्वय के एक रोचक आख्यान की कल्पना हुई है । विष्णु के मोहिनी रूप पर शिव आकर्षित हो गए और उनके संयोग से सन्तान भी उत्पन्न हुई । दक्षिण में इसे शास्ता अथवा हरिहर पुत्र आयंगार कहा जाता है और वहाँ इसकी उपासना का पर्याप्त प्रचार है । नाक पर अंगुली रखे विचारमग्न शास्ता का कहना है कि --

उमामहं मातरमाह्वयामि

पत्न्यः पितुर्मातर एव सर्वाः ।

कथं नु लक्ष्मीमिति चिन्तयन्तं

शास्तारमीडे सकलार्थसिद्ध्यै ।।

अर्थात् शिव मेरे पिता है, इसलिए उमा को तो मैं माँ कह सकता हूँ परन्तु विष्णु के मोहिनी रूप से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी को क्या कहकर सम्बोधित करूं ।

७वीं-८वीं शती से हरिहरउपासना ने प्रबल और सार्वदेशिक रूप ग्रहण कर लिया और क्योंकि इस काल में ओसियां में पंचायतन शैली के हरिहर-मन्दिरों का निर्माण हुआ है । इसी काल से हरिहर की मूर्तियाँ धुरदक्षिण के अतिरिक्त काम्बुज आदि पूर्वी द्वीपों से भी मिली हैं । आगे निरन्तर क्षेत्र की व्यापकता होती गई और पश्चिम में गुजरात तथा राजस्थान, पूर्व में असम तथा दक्षिण में केरल-तमिलनाडु तक हरिहर की मूर्तियाँ, मन्दिर, अभिलेख आदि मिलते हैं । ऊपर सम्भावनाप्रकट की गई है कि हरिहरसमन्वय का प्रयास शैवों की कल्पना से अनुस्यूत होने के कारण हरिहर में शैव तत्व की प्रधानता है । परन्तु इस समन्वय को मान्यता शैव-वैष्णव दोनों धर्मों से मिली । हाँ, जिन मूर्तियों में दक्षिणार्ध में वैष्णव लक्षण मिलते हैं, उनकी वैष्णव प्रकृति प्रधान हो सकती है । इस दृष्टि से कुतारी (इलाहाबाद) का एक शिलापट्ट भी महत्वपूर्ण है जिसके चार पार्श्वों में वामन, संकर्षण तथा वाराह के साथ हरिहर प्रतिमा उत्कीर्ण है । विष्णु के तीन अन्य रूपों के साथ हरिहर को निरूपित करना इस तथ्य का प्रमाण है कि शिल्पी हरिहर को विष्णु का ही एक रूप समझता है । यद्यपि पुराणों से भी इसकी अभिपुष्टि होती है । इसी प्रकार अन्य कई प्रतिमाओं में शैव लक्षण दक्षिणार्ध में प्रदर्शित हैं । मध्यकाल में

वैष्णव धर्म की प्रधानता के बाद तो विष्णु को हरिहर में प्राय: दक्षिणार्ध ही मिल गया है क्योंकि आधुनिक चित्रों में उन्हें अधिकांशत: ऐसा ही दिखाया जाता है ।

हरिहरपरक व्यक्ति[1] क्षेत्र[2] नगर[3] तथा ग्राम[4] नाम हरिहर सम्प्रदाय की व्यापकता एवं प्रबलता के ज्वलन्त प्रमाण हैं । हरिहर के वामविष्णु, (अहिच्छत्र की मृणमुद्रा), शंकरनारायण ( शिल्परत्न, सुनैत की मोहरें), हर्यर्ध (काश्यपशिल्प, उत्तरकामिक,सुप्रभेद तथा पूर्वकारण आगम), अर्धनारायण (शिल्परत्न), हरिशंकर, रुद्र केशव(अग्निपुराण) हर्यर्धहर, हरमर्धहर, हरि (काश्यपशिल्प), प्रद्युम्नेश्वर (विजयसेन की देवपाड़ा प्रशस्ति), शम्भुविष्णु, हरअच्युत (कम्बुज) आदि विविध पर्याय भी सम्प्रदाय की लोकप्रियता के परिचायक हैं । इसी प्रकार हरिहर के मन्दिरों और प्रस्तर प्रतिमाओं के अतिरिक्त उपकरण रूप में काष्ठ, धातु, मृत्तिका और कागज का प्रयोग तथा अभिलेखों-स्तुतियों की प्राप्ति भी महत्वपूर्ण है । आधुनिककाल में बंगाल में हरिहर का उपयोग पटचित्र के रूप में होता है । नागपुर में हरिहर के यथार्थस्वरूप से किंचित् भिन्न एक मन्दिर का निर्माण आधुनिक काल में हुआ है जिसमें समस्त आचार हरिहर मन्दिरों के समान होते हुए भी मन्दिर में हरिहर की समन्वित मूर्ति के स्थान पर शिव और विष्णु के द्वैत स्वरूप की एक साथ पूजा होती है । हरिहर के यथार्थ स्वरूप से अनभिज्ञ होने के कारण ही श्री बलदेव उपाध्याय ने भागवत सम्प्रदाय में हरिशंकर मूर्ति को चतुर्मुखी तथा बीस भुजी कह दिया है । वस्तुत: विष्णु की विश्वरूप मूर्ति को चतुर्वक्त्र तथा बीस भुजी बनाने का विधान है ।[5]

---

१. विजयनगर राज्य के संस्थापक महाराज बुक्क प्रथम के उत्तराधिकारी महाराज हरिहर(१३७६-१३९९) । आज भी कितने ही लोगों के नाम हरिहरपरक मिलते हैं ।

२. हरिहर क्षेत्र,सोनपुर

३. हरिहर नगर, तुंगभद्रा का तटवर्ती; कम्बुज में भी ,

४. वाराणसी,चित्रकूट,गाजीपुर, बरेली आदि में कितने ही हरिहरपुर नामक गांव आज भी है ।

५. अपराजितपृच्छा, सूत्र २१९।२८-३२

साहित्यिक क्षेत्र में हरिवंश पुराण तथा भारवि से प्रारम्भ हरिहर स्तोत्रों की परम्परा को आगे चलकर तुंगोक, राजशेखर, जलचन्द्र, भवानन्द, हरि, आर्याविलास, त्रिपुरारिपाल, योगेश्वर, मल्लिनाथ आदि ने विकसित किया। जगद्धर भट्ट ने स्तुतिकुसुमांजलि में कितनी ही हरिहरात्मक स्तुतियों को समाविष्ट किया है और स्तोत्र समुच्चय में भी कई हरिहर स्तुतियाँ मिलती हैं। संस्कृत के स्तोत्र ~~समुच्चयों में भी~~ साहित्य के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में भी हरिहर-स्तुतियां तथा हरिहरैक्य भाव का समावेश हुआ है। अभिनन्द ( ६ वीं शती) कृत रामचरितम् में हरिहरात्मक श्लोक हैं और जैमिनीय अश्वमेध ( १२ वीं शती ) में अर्जुन सुधन्वा से कहते हैं कि हे वीर ! इस वाण से किरीट सहित तुम्हारा सिर अभी न गिरा दूं, तो विष्णु और शिव में भेद-बुद्धि करने से जो पाप होता है, वह सब मुझे प्राप्त हो —

अनेन वाणेन न पातयामि
शिरस्त्वदीयं सकिरीटमद्य ।
विभेदनाद्विष्णुगिरीशयोर्यत्
पापं समग्रं मम चास्तु वीर ।।[१] — १६।६४

प्रसन्नराघव (१३ वीं शती ई०) के भरत-वाक्य में सुग्रीव विष्णु तथा शिव में अभेद-बुद्धि की कामना करते हैं और आनन्दरामायण, धर्मखण्ड ( १५ वीं शती), रामलिंगामृत ( १७ वीं शती), प्रभृति संस्कृत के धार्मिक तथा ललित काव्यों में राम तथा शिव के अभेद का प्रतिपादन है।[२] १७ वीं शती की तत्वसंग्रह रामायण में तो राम को विष्णु, शिव, ब्रह्म, त्रिमूर्ति तथा परब्रह्म के अतिरिक्त हरिहर का भी अवतार कहा है।[३]

नवीं-दसवीं शती से संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी हरिहरैक्य भाव मिलता है। तमिल में शैव कंबर ने रामायण की रचना की है और

---

१. कल्याण (श्री विष्णु अंक, जनवरी,१६७३ ई०), पृ० २४० से उद्धृत ,

२. रामकथा, पृ० ३२१

३. वही, पृ० १७१

मलयालम में निरणाम कवि (१४-१५ वीं शती) ने शिवरात्रि माहात्म्य के साथ भागवत दशम स्कन्ध का भी प्रणयन किया। तुन्चुत्तु रामानुजन एलुत्तच्छन (१६ वीं-१८ वीं शती ई०) को राम, कृष्ण तथा शिव बराबर थे,[1] इसीलिए उन्होंने ब्रह्म को नारायण,जनार्दन, विष्णु, गोविन्द,मुकुन्द के साथ सदाशिव,त्रिलोचन आदि विशेषणों का प्रयोग किया है।[2] कन्नड़ के सर्वप्रथम कृष्णकाव्य जगन्नाथविजय (१२ वीं शती ई०) में रुद्रभट्ट ने शिव के मुंह से 'द्वय भावं नमगिल्ल वल्लवरे नानुं नीनुं' अर्थात् हम में द्वय भाव नहीं है, यह हम दोनों जानते हैं - कहलाकर हरिहरैक्य भाव प्रदर्शित कराया है।[3] १३ वीं - १४ वीं शती में आन्ध्र में शैवमत अत्यन्त प्रबल था। ऐसी परिस्थिति में १३ वीं शती के तिक्कन सोमयाजी दो शताब्दी पूर्व नन्नय-भट्ट द्वारा प्रारम्भ किए गए 'आन्ध्र महाभारत' को तभी पूरा कर सके, जब उसमें हरिहर को मान्यता दी।[4] इसी शती के बुद्धनाथ ने रंगनाथरामायण में राम के अन्तर्गत शिव का रूप भी समाविष्ट करने का प्रयास किया है। राज्याभिषेक के समय राम ऐसे लग रहे थे मानो वे ही शिव हों और वे ही विष्णु हों -

> मानित वेदोक्त मन्त्रपूर्वकमुगा-
> अभिषेकंबु करमर्थि चेय
> परिकिंपरामभूपालकुंडपुडु
> हरुडु विष्णुडु तान यनु माडिक नुंडे।[5]

गुजराती रामायण में राम द्वारा विविध स्थानों पर शिवलिंगों की स्थापना कराई गई है और किष्किन्धा काण्ड में राम-हनुमान भेंट को हरिहर के रूप में चित्रित किया गया है।[6] उड़िया रामायण में भी शैव-वैष्णव समन्वय का प्रयास हुआ

---

१. हिन्दी और मलयालम में कृष्णभक्ति-काव्य, पृ० ५३
२. वही, पृ० ८०
३. कन्नड़ का सर्वप्रथम कृष्णकाव्य; जगन्नाथविजय, हिन्दी-अनुशीलन (वर्ष १४, अंक २) पृ० २१
४. रामचरितमानस : तुलनात्मक अध्ययन, पृ० १७४
५. वही, पृ० १७६ से उद्धृत
६. वही, पृ० ३६४-३६५

है ।[1] और मराठी की भावार्थ रामायण में स्कनाथ ने भी हरिहरैक्य भाव का प्रतिपादनकिया है ।[2] बंगला की कृत्तिवासी रामायण में राम द्वारा शिव-स्थापना के समय शिव स्वयं उपस्थित होकर राम के हाथ पकड़ लेते हैं । तब दोनों हर्षित होकर प्रेमालिंगन करते हैं । शिव कहते हैं कि प्रभु किसकी पूजा करते हो । तुम तो मेरे इष्टदेव हो । राम कहते हैं कि तुम मेरे इष्टदेव हो और रावण-वध के लिए पुष्प जल ग्रहण करो ।[3] इस प्रकार स्कोनियानं द्वयो रथाश्वा: के आधार पर स्क ही बात विविध रूपों में कही गई मिलती है ।

जहाँ तक हिन्दी-साहित्य में हरिहरैक्य निरूपण का प्रश्न है, निर्गुण काव्य स्केश्वरवादी रहा है । इसकी ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी दोनों ही शाखाओं में इसी पर बल दिया गया है, जो प्रसंगात द्वैत भाव का निराकरण है । साथ ही यहाँ वैष्णवी भक्ति के साथ शैव योगसाधना का मणिकांचन संयोग है । सहजोबाई ने स्क पद में हरिहर-भक्ति का प्रबोधन किया है और मलिक मुहम्मद जायसी ने हरिहर को उपमान रूप में ग्रहण किया है । कृष्ण काव्य में विद्यापति हरिहर उपासना से अधिक प्रभावित लगते हैं, जबकि सूरदास तथा रसखानि ने भी हरिहरात्मक छन्दों का प्रणयन किया है । इन तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों के काव्य में भी हरिहर विद्वेष के स्थान पर सहिष्णुता की ही परिव्याप्ति है । रामकथा काव्य में सेनापति ने शिव और विष्णु दोनों के प्रति समान भाव रखा है तथा स्क छन्द में श्लेष से शिव और विष्णु का स्क साथ वर्णन किया है । हरिहरैक्य समन्वय की व्याप्ति सर्वाधिक रूप में तुलसी के साथ में मिलती है । तुलसी ने राम-रूप विष्णु को इष्ट और शिव को अपना आध्यात्मिक गुरु मानने के साथ दोनों के समन्वय को विविध प्रकार से प्रतिष्ठापित करने का प्रयास किया है । उन्होंने कई स्थलों पर हरिहर के स्कात्म स्वरूप की भी स्थापना और उसका वर्णन किया है । विनयपत्रिका का हरिशंकरी पद प्राय: ऐसी ही रचना है । उन्होंने राम-भक्त होकर शिव को जो महत्वपूर्ण स्थान दिया है तथा बहिसांक्य से उनकी जो सम्मिलित

---

१. वही, पृ० २६३

२. वही, पृ० ३५६, ३६५

३. कृत्तिवासी - बंगला-रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० ७७

शैव-वैष्णव भक्ति प्रमाणित होती है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि वे प्रच्छन्न हरिहर उपासक थे। जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया ,हरिहर वस्तुत: शैव रूप है, इसलिए मध्यकालीन वैष्णव कवि उसे यथोचित रूप में ग्रहण नहीं कर सके। क्योंकि आधुनिक काल तक हरिहर की स्वरूप-निर्मिति तथा पूजा-उपासना होने पर भी साहित्य में एकात्म स्वरूप की व्यप्ति उस रूप में नहीं है जैसी अपेक्षित थी। इस सन्दर्भ में हिन्दी का शैव-काव्य स्वतन्त्र अनुसंधान का विषय हो सकता है।

मध्यकालीन समाज में हरिहर-उपासना की प्रबलता का प्रमाण यही है कि विद्यापति, सूर, तुलसी, रसखानि, सेनापति आदि के अतिरिक्त बिहारी, बल्लभ, घनआनन्द, देव, बोधा आदि रीतिकालीन कवियों ने भी हरिहरैक्य भाव को मान्यता दी है। विद्यापति के समसामयिक भीषम कवि ने हरिहर उपासना हेतु प्रबोधित किया है [१] तथा सोलहवीं शती विक्रमी के उत्तरार्ध और सत्रहवीं के पूर्वार्ध में विद्यमान अल्प ज्ञात गद कवि ने हरिहर की तुलना करते हुए लिखा है --

उनके कंठ वनमाल कंठ रुंडमाला इनके।
उनके पीताम्बर वसन वसनमृगछाला इनके।
उन गोपियन संग एक गवर संग इनके सजे।
उन मुख सोहै बंस नाद मुख इनके गजे।
इनपै गरुड़ उन पै धवल कवि विचार बंधू चरण।
मन एक तन दोय है भेव एक न्यारो वरण।। [२]

बिहारी ने खण्डिता नायिका के प्रसंग में नायक को हरिहर से उपमित किया है --

प्रानप्रिया हिय में बसे, नखरेख-ससि भाल।
भलो दिखायो आइ यह, हरिहर रूप रसाल।। - बिहारी रत्नाकर,दो०२६९

---

१. मित्र - मजूमदार द्वारा सम्पादित विद्यापति, पृ० ६१९
२. ब्रज साहित्य का इतिहास, पृ० ७७७

महाकवि वृन्द के पुत्र वल्लभ कवि ने बल्लभ-विलास के मंगलाचरण में गणेश और शारदा के साथ हरिहरका स्तवन[1] तथा देव ने श्लेष से शिव और कृष्ण का एक साथ वर्णन किया है —

इन्दु-कलित सुन्दर बदन, मनमथ-मथन-विनोद ।
गोबरधन-गिरि जासु बन, बिहरन गोपति गोद ।।

--देवसुधा, भूमिका, छन्द १

घन आनंद ने शिव को कृष्ण रूप माना है —

संकर गिरिजापति नंदीसुर चंद्रचूड़ गंगाधर ।
आदिनाथ कैलासनिवासी भक्तराज भवभय -हर ।
महाहंस जगदीस जोगिमनि महादेवसिव संभु दयापर ।
आनंदघन सुरूप गोपिसुर, मंडित-वृंदावन-घर ।।

-- घनआनन्द, पदावली, ३३४

तथा बोधा ने विरहवारीश में एकसाथ कृष्णशंकर की वन्दना की है ।[2]

मध्यकालीन से इतर कवियों के काव्य में भी हरिहर-विरोध न होकर उनका सहिष्णु भाव ही प्रधान है । उस काल की अनुगूंज आज तक इस रूप में व्याप्त है कि हरिहर का शिल्पाश्रित स्वतंत्र स्वरूप विस्मृत होते हुए भी हरिहरैक्य भाव विद्यमान है । मानस-पीयूष[3] में पंचतत्वों के आधार पर शिव और विष्णु की समानता निम्नरूप में प्रदर्शित की गई है —

| | शैव | वैष्णव |
|---|---|---|
| पृथ्वी तत्व | विभूति | गदा |
| जल ,, | गंगा | पद्म |
| अग्नि ,, | भाल-नेत्र | सुदर्शन |
| वायु ,, | सर्प | पांचजन्य |
| आकाश ,, | डमरू | नन्दक |

---

१. ब्रजसाहित्य का इतिहास, पृ० ४३१
२. विश्वभारती-पत्रिका (खण्ड ७, अंक ४), पृ० १५७
३. भाग १, पृ० २०१-२०२ की पाद टिप्पणी

वैयाकरणों ने --

> उभयोरेका प्रकृति: प्रत्ययभेदाद्विभिन्नवद्भाति ।
> कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेदं विना शास्त्रम् ।।

अर्थात् 'हरि तथा हर शब्द एक ही 'हृ' धातु में क्रमश: इ तथा अ प्रत्ययों के संयोग से निष्पन्न हुए हैं परन्तु मूर्खजन शास्त्रों से अनभिज्ञ होनेके कारण उनको लेकर परस्पर कलह करते हैं', कहकर दोनों में एकात्म प्रदर्शित किया है । अमृतलाल नागर एकदा नैमिषारण्ये में पौराणिक काल का वर्णन करते समय हरिहरैक्य का भी स्थापन कराते हैं ।[1] एक स्तोत्र गन्थ के नितान्त वैष्णव होते हुए भी उसे हरिहर स्तोत्र कहा गया है ।[2] इसके प्रारम्भ में त्रिदेवों को एक स्वरूप मानते हुए विष्णु के विविध अवतारों का स्तवन है । इलाहाबाद में ऐसे कई आधुनिक देवालय हैं जिनका हरिहर मन्दिर नाम होते हुए भी उनमें हरिहर का एकात्म विग्रह न होकर एकमात्र शिव प्रतिमा का पूजन होता है । यह हरिहर की परम्परागत शैव प्रकृति का अधुनातन प्रमाण है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकाल में हरिहर-उपासना का प्रचलन होते हुए भी उसी काल से वैष्णवधर्म की प्रधानता के कारण हरिहर का यथार्थस्वरूप लोक में प्राय: विस्मृत हो गया । आज इसके स्थानापन्न रूप में उत्तर भारत में हनुमत उपासना और दक्षिण भारत में शास्ता की उपासना मानी जा सकती है । शास्ता तो हरिहर-पुत्र ही हैं और हनुमान् राम के सेवक होकर शिव के स्वरूप । हनुमान् की कुछ बहुमुखी मूर्तियां ऐसी भी मिलती हैं जिनके एकाधिक मुखों में शैव और वैष्णव तत्वोंको समाहित किया गया है ।

समग्र स्थिति का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि मध्यकालीन भक्ति-साहित्य में अनेक रूपों में परिव्याप्त हरिहर उपासना एक सुदीर्घ परम्परा से सम्बद्ध ऐसा सत्य है जिसका वास्तविक रूप तत्सम्बन्धी इतर दिशाओं के अध्ययन, अनुशीलन के बाद ही स्पष्ट होता है । उसकी महत्ता भी इस नये परिप्रेक्ष्य में कहीं अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि वह सांस्कृतिक एकता की गहरी प्रवृत्ति का द्योतक सिद्ध होता है ।

---

१. देखिए- पृ० २२५-२२६
२. प्रकाशक-देहाती पुस्तक भंडार, चावड़ी बाजार, देहली

## परिशिष्ट क

### वृहत्तर भारत में हरिहर

राजनैतिक दृष्टि से आज का बंगला देश भारतीय स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक भारत का ही अंग था, जबकि पूर्वी द्वीपों का उल्लेख कौटिल्य-अर्थशास्त्र , जातकों, कथासरित्सागर, वृहत्कथामंजरी और महाभारत, वायुपुराण आदि में मिलता है । वहां प्रथम भारतीय उपनिवेश दूसरी शती के प्रारम्भ में मलाया में स्थापित हुआ था और फिर दक्षिण-पश्चिम की हिन्दू राज्यों का विकास होता चला गया । ऐसा समझा जाता है कि पूर्वी द्वीपों में भारतीयों के प्रवास काल में वहां उत्तर प्रस्तरकालीन अवस्था थी । इस कारण वहां की संस्कृति पर समग्र रूप में भारतीय प्रभाव स्वाभाविक एवं आवश्यक ही है । वहां के शासकों ने राजधर्म के रूप में शैवमत को स्वीकार करके भी वैष्णव मन्दिर-मूर्तियों का निर्माण कराया तथा उन्हें दानदिया । बोर्नियो में शिव तथा वैष्णव दोनों प्रकार की मूर्तियां मिली हैं और मध्य जावा के टुक-मुस-नामक स्थान से प्राप्त छठी-सातवीं शती के एक संस्कृत लेख में शिवलिंग की स्थापना तथा शिव और विष्णु की महत्ता का वर्णन है । इसी लेख के पत्थर पर एक ओर शंख, चक्र तथा गदा और दूसरी ओर त्रिशूल का निरूपण है, जो क्रमश: वैष्णव तथा शैव प्रतीक हैं ।

#### चम्पा

यहां का प्रथम हिन्दू शासक श्रीमार था, जिसने दूसरीशती में राज्यवंश स्थापित किया । उसी समय से १५ वीं शती तक चम्पा में भारतीय संस्कृति का विकास होता रहा । यद्यपि ११ वीं शती में जयपरमेश्वरवर्मन ने शम्भुपुर के मन्दिर तोड़े थे , तथापि चम्पा की धार्मिक प्रवृत्ति मूलत: सहिष्णु ही थी । नब्बे प्रतिशत चमलेख शैव हैं, जिनमें शिव की उपासना, शिव-मूर्ति की स्थापना आदि का वर्णन है। शिव को देवाधिदेव माना गया है -

यस्य प्रभावातिशयात् सुरेशैर्भुत्वमान्योऽस्ति यशोभिरेव ।

परन्तु चम्पा में सभी धर्मों के प्रचलन का भी वर्णन मिलता है —

चम्पापुरीं दर्शितसर्व्वधर्मामपाजयत् पावनसारभूत: ।

यहां के तीन लेखों में विष्णु और दो लेखों में शिव-विष्णु का वर्णन है। प्रारम्भ में यहां का राजधर्म शैवमत था तथापि कुछ शासकों ने स्वयं को विष्णु का अवतार कहा है। १२ वीं शती से तो चम्पा का झुकाव वैष्णव धर्म की ओर ही हो गया। प्रकाशधर्म ने शिवलिंग की स्थापना के अतिरिक्त विष्णु-मन्दिर निर्मित कराया था और ८ वीं शती में इन्द्रवर्मन ने शंकरनारायण की मूर्ति स्थापित कराकर उसके लिए श्रीपवितेश्वर, मर्मोय तथा भुवनाग्रपुर के कोष्ठागार दान में दिए थे।

जावा

इसका प्राचीन यव नाम भारतीयों की ही देन है जिसका उल्लेख वाल्मीकि रामायण, महाभारत, हरिवंशपुराण आदि में मिलता है। यहां के शैव मन्दिरों पर रामायण के दृश्य निरूपित हैं और जावा के प्राचीनतम रामायण रचयिता शैव थे। रामायण ककविन ( सर्ग १२) में राम-भक्त विभीषण को शैव भी दिखाया है।[१]

मण्डन ने कृष्ण और शंकर के संयोग से बत्तीस प्रकार की हरिहर मूर्तियों के निर्माण की सम्भावना प्रकट की है और विष्णु तथा शिव के विविध स्वरूपों के आधार पर भारत में विभिन्न प्रकार की हरिहर मूर्तियां निर्मित हुई हैं। इसी परम्परा के अन्तर्गत जावा में शिव और विष्णु के बुद्ध अवतार की संयुक्त मूर्ति का विकास हुआ। भारत और विशेषत: पूर्वीद्वीपों में शासकगण अपने नाम में ईश शब्द जोड़कर इष्टदेव की मूर्ति स्थापित करतेरहे हैं। शासक की मृत्यु के पश्चात् उसके वंशज मृतक के उपास्य की मूर्ति इसी नाम से निर्मित कराते थे और मृतक को उपास्य के नाम से ही सम्बोधित किया जाता था। जावा का १३ वीं शती का कृतनगर शासक स्वयं को नरसिंहमूर्ति कहता था, परन्तु मृत्यु के बाद वह शिवबुद्ध कहलाया। उसके पिता विष्णुवर्द्धन की शिवबुद्ध प्रतिमा भी बनी थी। ११ वीं शती के एक लेख में भी शिवबुद्ध की संयुक्त प्रतिमा का उल्लेख है। कृतराजस की १३०६ ई० में मृत्यु होने पर सिंपिंग में उसकी अन्त्येष्टि की गई थी। यहीं के शिव-मन्दिर से एक हरिहर प्रतिमा प्राप्त हुई है जो कृतराजस की आकृति का प्रतीक है। रिम्बी के मन्दिर से प्राप्त

---

१. रामकथा, पृ० ७३४

तथा कथित पार्वती की प्रतिमा[1] कलात्मक दृष्टि से उक्त मूर्ति के समान होने से लगता है कि वह कृतराजस की पत्नी का प्रतीक है । इससे ज्ञात होता है कि जावा में हरिहर की शक्ति की भी मान्यता थी। जिमर ने इस प्रकार की मूर्तियों को हरिहरी ही माना है ।[2]

कम्बोडिया (कम्बुज)

यहां का राजधर्म शैवमत होते हुए भी यशोवर्मन् (नवीं शती), राजेन्द्रवर्मन् (१० वीं शती), सूर्यवर्मन् प्रथम ( १० वीं शती ), आदित्यवर्मन् द्वितीय ( ११ वीं शती), सूर्य वर्मन् द्वितीय (१२ वीं शती) आदि ने वैष्णव मूर्तियों तथा मन्दिरों का निर्माण कराके उन्हें दान भी दिया था । समन्वयात्मक दृष्टि से हरिहर के नाम पर एक नगर भी स्थापित हुआ था जिसे जयवर्मन द्वितीय (राज्यकाल ८०२-८५० ई० ) ने दो बार अपनी राजधानी बनाया और जहां उसने विविध मन्दिरों का निर्माण कराया । यहां के प्रसिद्ध अंकोर थाम के शिखरों पर निर्मित जिन मुखों को ब्रह्मा का माना जाता था, वे भी हरिहर के समझे जाते हैं ।[3] वोसलियै ने ल स्टैचूरैर ख्मैर ए सो एवोल्यूशन में यहां की पांच हरिहर मूर्तियों के चित्र दिए हैं ।[4] कम्बुज के ४३ वें लेख में हरिहर को यज्ञपतीश्वर कहा है । शम्भु, शंकर, हर, विष्णु, नारायण, अच्युत सदृश विविध शैव-वैष्णव पर्यायों के आधार पर यहां हरिहर के विविध स्वरूपों के मूर्तिकरण का विवरण मिलता है । ताम्रपुर के एक प्रधान ने शिव-विष्णु की संयुक्त मूर्ति स्थापित कराई थी ( लेख सं० २४) और यशोवर्मनकालीन एक लेख ( सं०७२)

---

१. सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ४२१

२. दि आर्ट आफ इंडियन एसिया, भाग १, पृ० १५०

३. धर्मयुग (१ नवम्बर, १६७० ), पृ० २२

४. सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० ३५१

में हर अच्युततथा अन्य लेख (सं० ४५) में शंकरनारायण की मूर्ति स्थापित करने का उल्लेख है ।

महारोजी से प्राप्त ७ वीं शती की हरिहर प्रतिमा मानवाकार से कुछ कम है । इसकी शिरोभूषा में शैव-वैष्णव अन्तर स्पष्ट है । चतुर्भुजी हरिहर की तीन भुजाएं खण्डित होते हुए भी दक्षिणपार्श्व में त्रिशूल स्पष्ट है । वाम वैष्णव भाग के शेष कर को चक्रधारी प्रदर्शित किया गया है । प्रसात अन्देत की हरिहर मूर्ति पूर्ण मानवाकार है । मूर्ति को अर्धभग्न चतुर्भुजाओं में आयुधों का अभाव होने पर भी प्रतिमा की हरिहरात्मक प्रवृत्ति शिरोभूषा से स्पष्ट हो जाती है, जिसका वामार्ध सादा और दक्षिणार्ध शिव भाग जटाजूटवत् बना है ।[१] बेओन सदृश वसारा ( VESARA ) मन्दिर से प्राप्त एक हरिहर प्रतिमा नोम पेन्ह के राष्ट्रीय संग्रहालय में संग्रहीत है ।[२] ख्मेरकला की एक मूर्ति पेरिस के म्युजे ग्यूमे में भी है ।

नेपाल --

प्रस्तुतविषय की दृष्टि से नेपाल का अक्षुण्ण महत्व है । यहां से प्राप्त हरिहर मूर्तियों के स्वरूप-वैविध्य से ज्ञात होता है कि यहां हरिहर-उपासना की एक दीर्घ एवं अन्त:व्यापी परम्परा का अस्तित्व रहा है, क्योंकि पाटन में १६ वीं शती में एक हरिशंकर मन्दिर का निर्माण हुआ तथा हरिहर को विशेष शक्तिसम्पन्न प्रदर्शित करने के लिए उन्हें दश और द्वादश भुजी तक निरूपित किया गया है । यही नहीं उनकी शक्ति हरिहरी के स्वरूप की स्वतन्त्र कल्पना भी नेपाल में मिलती है । भक्तपुर कलावीथिका की चतुर्मुखी तथा अष्टभुजी हरिहरी (१८ वीं शती) पद्मासन पर आरूढ़ हैं । देवी के तीन मुख सम्मुख तथा एक ऊपर प्रदर्शित है । वे वनमाला के अतिरिक्त कानों में रत्नकुण्डल (दक्षिण) तथा पत्रकुण्डल (वाम) धारण किए हैं । उनके भग्नावशिष्ट हाथों में कपाल, दीर्घ वस्तु तथा पद्म है । रानी पोखरी की हरिहरी (१७ वीं शती ) षड्मुखी तथा द्वादशभुजी हैं । भारतीय कला में ऐसी कोई मूर्ति अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई है ।

---

१. दि आर्ट आफ इंडियन एशिया, भाग २, फलक ५१७

२. दि पेलिसन हिस्ट्री आफ आर्ट्स, पृ० ४८३ तथा धर्मयुग(२२जुलाई १९७३)पृ० २५

हरिहर की दो मूर्तियों के साथ अलग से ब्रह्मा का भी निरूपण मिलता है और सशक्ति हरिहर की एक अद्वितीय मूर्ति पाटन के सुन्दरी चौक की है। आसनस्थ हरिहर के वाम पार्श्व में हरिहरी स्थित हैं और नीचे दक्षिण पार्श्व में वृषभ, वाम पार्श्व में दो सिंह तथा मध्य में गरुड़, प्रदर्शित है। हरिशंकर मन्दिर के हरिहर दशभुजी तथा कीर्तिपुर के हरिहर (१७ वीं शती) को द्वादशभुजी बनाया गया है। भारत में हरिहर की भी ऐसी प्रतिमाएं नहीं मिलती हैं।

नेपाल में हरिहर की अन्य प्रतिमाएं बाला जी (११ वीं शती), नक्सल (१२ वीं शती), पशुपतिनाथ मन्दिर (१३ वीं शती), पाटन, भक्तपुर आदि की हैं।

बंगलादेश —

सेन शासकों की राजधानी श्री विक्रमपुर (आधुनिक रामपाल) के भग्नावशेषों से ११२१ ई० की ऐसी अभिलिखित प्रतिमा मिली है, जिसे हरिहर की शक्ति मानना चाहिए। देवी पूर्ण प्रस्फुटित पद्म के ऊपर आकर्षक त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी हैं। उनके वाम ऊर्ध्वकर की अलंकृत टोकरी जैसी वस्तु पुष्प-टोकरी अथवा कमंडलु हो सकती है और दक्षिण ऊर्ध्व में अंकुश है। एक अधोहस्त वरदमुद्रा में है। देवी के दोनों पार्श्वों में दो परिचारिकायें हैं और दो गज उनका जलाभिषेक कर रहे हैं। पद्मासन पर के नीचे उकडूं बैठा सिंह उत्कीर्ण है।[1] खजुराहो की तथाकथित सिंहवाहिनी गजलक्ष्मी प्रतिमाओं में भी लगभग ऐसे ही लक्षण मिलते हैं। वहां देवी के वाम कर में अमृतघट है तथा दक्षिण अधोकर वरदमुद्रा में ही प्रदर्शित है।[2]

हरिहर के प्रद्युम्नेश्वर स्वरूप की द्योतक दो प्रतिमायें यहां के राजशाही जिले से प्राप्त हुई हैं। वे वामकर में त्रिशूल धारण किए हैं तथा अक्षमाल युक्त दक्षिण कर वक्ष पर रखा है। पीठिका के एक कोने में वृषभ उत्कीर्ण है। हरिहर का वैष्णव

---

१. एपिग्रेफिया इंडिका, भाग १७ (१९२३ - २४ ई०), पृ० ३५९-३६०

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान (१३ नवम्बर, १९६६), पृ० ६

लक्षण यहाँ वनमाला है, जो आजानु प्रदर्शित है ।[1]

<u>मारिशस</u>

मारिशस सनातन धर्म मन्दिर संघ द्वारा प्रस्तुत मारिशस मन्दिर चित्रावली में उल्लिखित दो मन्दिर हरिहर के हो सकते हैं । पैचित रिवैयर का मन्दिर १६६१ ई० का बना हुआ है और कात्र बोर्नूस के मन्दिर का निर्माण १६३२ ई० में हुआ था । पहले मन्दिर का स्थानीय नाम हरिहरचैत्र मन्दिर है ।

—

---

१. ए कैटैलाग आफ दि आर्क्यालाजिकल रैलिक्स इन दि म्युजियम आफ दि वरैन्द्र रिसर्च सोसायटी ( राजशाही), पृ० ११

## परिशिष्ट ख

### मध्यकाल से उत्तरवर्ती हरिहर की स्थिति -

पांचवें अध्याय में यह संकेत किया जा चुका है कि मध्यकाल से अन्य देव-प्रतिमाओं के समान हरिहर-मूर्तियों के निर्माण की धारा भी अवरुद्ध सी हो गई। यही कारण है कि मध्यकाल के पश्चात् की हरिहर मूर्तियों के प्रमाण उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। पांडिचेरी के फ्रेंच इन्स्टीट्यूट आफ इंडोलाजी से संगमहुलि ( सतारा) की एक ऐसी आसनस्थ प्रतिमा का चित्र प्राप्त हुआ है, जिसे हरिहर का कहा गया है। परन्तु उसमें हरिहर के कोई लक्षण स्पष्ट नहीं हैं। इसी प्रकार १९५४ ई० में नागपुर में एकहरिहर मन्दिर का निर्माण हुआ है, जिसमें सभी आचार हरिहरात्मक मन्दिरों सदृश होते हुए भी देव-विग्रह हरिहर का समन्वित स्वरूप नहीं है। यहां एक हाथ में गदा धारण किए गजारूढ़ विष्णु तथा त्रिशूलधारी वृषभारूढ़ शिव सम्मुख भाव से आकर परस्पर संमिलन करते प्रदर्शित हैं।

इस काल की विशेष उपलब्धि हरिहर के चित्र हैं, जो कपाट पर बने होने के अतिरिक्त लघु चित्र और पटचित्र के रूप में मिलते हैं, डोंगरा आर्ट गैलरी का कपाट चित्र किंचित् प्राचीन लगता है, जिसमें स्थानक हरिहर के वाम पार्श्व में पार्वती, वृषभ तथा सिंह और दक्षिण पार्श्व में लक्ष्मी, मानवाकार सपक्ष गरुड़ तथा एक पक्षी प्रदर्शित है। पक्षी की दीर्घ ग्रीवा उसके गरुड़ अथवा हंस होने में सन्देह उत्पन्न करती है। वस्तुत: वह एक वृक लगता है। इण्डियन म्यूजियम (कलकत्ता) के चित्र में अर्धपर्यंकासीन हरिहर की शक्तियों को मनोविनोद करते दिखाया गया है और श्रीनगर संग्रहालय के चित्रों में हरिहर खड़े हुए हैं। कल्याण में प्रकाशित चित्र में हरि-हर वृषभ तथा गरुड़ पर योगमुद्रा में आसीन हैं।[१] इन सभी चित्रों की उल्लेख्य विशेषता यह है कि वामार्ध में परम्परा के विरुद्ध शिव हैं। दक्षिणार्ध में विष्णु

---

१. कल्याण, फरवरी, १९५१ ई०

को प्रदर्शित करने वाले चित्र ,वाराणासी (भारतकला भवन), त्रिची (तायुमानवर शिव मंदिर) तथा कल्याण[१] के हैं । प्रथम दोनों चित्र स्थानक हैं जबकि तृतीय आसनस्थ । यह सभी चित्र आयुधक्रम तथा स्वरूप आदि की दृष्टि से पूर्णतया नवीनता को द्योतित करते हैं ।

डी०डी० कौसाम्बी ने एक ऐसे हरिहर चित्र को प्रकाशित किया है जो बंगाल में पटचित्र के रूप में प्रयुक्त होता है ।[२] इसमें शंख , चक्र तथा त्रिशूलधारी चतुर्भुजी हरिहर पद्मासन पर बैठे हैं । उनका दक्षिण एक कर अभय मुद्रा में है । हरिहर के वाम पार्श्व में वनमाला तथा वस्त्र और दक्षिणपार्श्व में नाग तथा बाघम्बर है । चन्द्रधारी दक्षिणांश सिर से सुरसरिता गंगा प्रवाहित हो रही हैं । इन सभी चित्रों में शिव के साथ प्राय: कृष्ण का समन्वय है । उसका कारण कृष्ण-काव्य तथा कृष्ण-चरित की व्यापकता ही सम्भाव्य है ।

जहां तक हरिहर की उपासना का सम्बन्ध है, देश के समस्त हरिहर मन्दिरों में उसकी अजस्र धारा अद्यावधि प्रवाहित होती चली आ रही है । हरिहर मन्दिरों के समन्वित स्वरूप से विमुख होते हुए भी नागपुर में हरिहर-भक्तों ने अपने इष्टदेव का एक नवीन मन्दिर तक बनवाया है । प्राचीन मन्दिरों की परम्परा में उत्तर के औसियां से लेकर दक्षिण के हरिहर अथवा तिरुणेलवेलि के मन्दिरों में भक्तगण आज भी पूर्ण उत्साह से एकत्रित होकर भक्तिभाव अर्पित करते हैं ।

—

---

१. कल्याण, जनवरी, १९७३ ई०

२. दि कल्चर एण्ड सिविलिजेशन आफ ऐन्शियण्ट इंडिया, पृ० २०५, चित्र १६

परिशिष्ट ग

## मौलिक हरिहर स्तोत्र

### १. स्कन्दपुराण --

गोविंद माधव मुकुंद हरे मुरारे शंभो शिवेश शशिशेखर शूलपाणे ।।
दामोदराच्युत जनार्दन वासुदेव त्याज्या भटाय इति संततमामनंति ।।१।।
गंगाधरांधकरिपो हर नीलकंठ वैकुण्ठ कैटभरिपो कमठाब्जपाणे ।।
भूतेश खंडपरशो मृड चंडिकेश त्याज्या० ।।२।।
विष्णो नृसिंह मधुसूदन चक्रपाणे गौरीपते गिरिश शंकर चन्द्रचूड ।।
नारायणासुरनिबर्हण शाङ्र्गपाणे त्याज्या० ।।३।।
मृत्युंजयोग्र विषमेक्षण कामशत्रो श्रीकांत पीतवसनांबुद नील शौरे ।।
ईशान कृत्तिवसन् त्रिदशैकनाथ त्याज्या० ।।४।।
लक्ष्मीपते मधुरिपो पुरुषोत्तमाद्य श्रीकंठ दिग्वसन शांतिपिनाकपाणे ।।
आनन्दकंद धरणीधर पद्मनाभ त्याज्या० ।। ५।।
सर्वेश्वर त्रिपुरसूदन देवदेव ब्रह्मण्यदेव गरुडध्वज शंखपाणे ।।
त्र्यक्षोरगाभरण बालमृगांकमौले त्याज्या० ।।६।।
श्रीराम राघव रमेश्वर रावणारे भूतेश मन्मथरिपो प्रमथाधिनाथ ।।
चाणूरमर्दन हृषीकपते मुरारे त्याज्या ० ।।७।।
शूलिन गिरीश रजनीश कलावतंस कंसप्रणाशन सनातन केशिनाश ।।
भर्ग त्रिनेत्र भव भूतपते पुरारे त्याज्या० ।।८।।
गोपीपते यदुपते वसुदेवसूनो कर्पूरगौर वृषभध्वज भालनेत्र ।।
गोवर्धनोद्धरण धर्मधुरीण गोप त्याज्या० ।।९।।
स्थाणो त्रिलोचन पिनाकधर स्मरारे कृष्णानिरुद्ध कमलाकर कल्मषारे ।।
विश्वेश्वर त्रिपथगार्द्रजटाकलाप त्याज्या० ।।१०।।
अष्टोत्तराधिकशतेन सुचारुनाम्नां संदर्भितां ललितरत्नकदंबकेन ।।
सन्नायकां दृढगुणां निजकंठगतां यः कुर्यादिमां स्रजमहो स यमं न पश्येत् ।।११।।
गुणावूचतुः ।।
इत्थं द्विजेन्द्र निजभृत्यगणान्सदैव संशिक्षयेदवनिगान्स हि धर्मराजः ।।
अन्येऽपि ये हरिहरांकधरा धरायां ते दूरतः पुनरहो परिवर्जनीयाः ।।१२।।

अगस्त्य उवाच ।।

यो धर्मराजरचितां ललितप्रबंधां नामावलि सकलकल्मषबीजहंत्रीम् ।।

धीरोऽत्र कौस्तुभभृत: शशिभूषणस्य नित्यं जपेत्स्तनरसं न पिबेत्स मातु: ।।१३

इति शृण्वन्कथां रम्यां शिवशर्मा प्रियेऽनघाम् ।।

प्रहर्षवक्त्र: पुरतोददर्श सप्तर्सी पुरीम् ।।१४।।

(--स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, धर्मराज रचित) ।

भारवि:

येनध्वस्तमनोभवेन बलिजित्काय: पुरास्त्रीकृतो

यो ऽ गंगा च दधेऽन्धकक्षयकरो यो बर्हिपत्रप्रिय: ।

यस्याहु: शशिमच्छिरो हर इति स्तुत्यं च नामामरा:

सोऽव्यादिष्टभुजंगहारवलयस्त्वां सर्वदो माधव: ।।३।।

तुंगोक :

एकावस्थितिरस्तु व: पुरमुरप्रद्वेषिणोर्देवयो:

प्रालेयांजनशैलशृंगसुभगच्छायांगयो : श्रेयसे ।

तार्क्ष्यत्रासविहस्तपन्नगफटा यस्यां जटापालयो

बालेन्दुद्युतिकोशसुप्तजलजो यस्यां च नाभीहृद: ।।४।।

राजशेखर:

यद्धाधर्जटं यदर्धमुकुटं यच्चन्द्रमन्दारयो -

र्धत्ते धाम यदाम च स्मितलसत्कुन्देन्द्रनीलश्रियो: ।

तत्क्लृप्तवाङ्गरथाङ्गसङ्गविकटं श्रीकण्ठवैकुण्ठयो -

र्वन्दे नन्दिमहोक्षतार्क्ष्यपरिषन्नामाङ्कमेकं वपु: ।।५।।

जलचन्द्र :

यज्जम्बूकम्बुरोचि: फणधरपरिषद्भोजिभोगीन्द्रकान्तं

नन्दच्चन्दारविन्दद्युतिचरणशिर: स्यन्दिमन्दाकिनीकम् ।

रक्षासंहारदक्षं मदनसमुदयोद्दीपनं शश्वदव्या -

दव्याघातं विबोधेऽप्युदधिगिरिसुताकान्तयोर्देहमेकम् ।।६।।

भवानन्द :

नियमितजटावल्लीलीलाप्रसुप्तमहोरगं
चरणकमलप्रान्ते मुक्तस्वविक्रमगोवृषम् ।
विततफणिभुक्पत्रच्छन्नं गदालगुडश्रियं
हरिहरवपुर्ब्रह्मोपास्यं पुनातु जगत्त्रयम् ।।

हरि:

देवस्यैकतमालपत्रमुकुटस्यार्धं पुरद्वेषिणो
देहार्धेन समस्यमानमसमं श्रेय: श्रियसायास्तु व: ।
यस्मिन् भूधरकन्यकाब्धिसुतयोरप्राप्तसंभोगयो-
रन्योन्यप्रतिकर्मनर्मभिदुरो भूयाननंगज्वर: ।।

आर्याविलास:

धात्रा सौहृदसीमविस्मितमुखं भेदभ्रमापासना-
त्सानन्दं मुनिभि: सनिर्वृति सुरैरेकत्र सेवासुखात् ।
पार्वत्या स्वपदावकृष्टिकुटिलभ्रूभंगमालोकित:
पायाद्वो भगवांश्चराचरगुरुर्देहार्धहारी हरि: ।।

हरिहरौ

अबलाद्वयविग्रहश्रीरमर्त्यनतिरत्नमालयोपेत: ।
पंचकमोदितमुख: पायात्परमेश्वरो मुहुरनादि: ।।

गवीशपत्रो नगजाविहारी कुमारतात: शशिखण्डमौलि: ।
लंकेशसम्पूजितपादपद्म: पायादनादि: परमेश्वरो व: ।।

गांगयामुनयोगेन तुल्यं हारिहरं वपु: ।
पातुनाभिगतं पद्मं यस्य तन्मध्यगं यथा ।। ३३।

यौ तौ शंखकपालभूषितकरौ मालास्थिमालाधरौ ,
देवौ द्वारवतीश्मशाननिलयौ नागारिगोवाहनौ ।।
द्वित्र्यक्षौ बलिदक्षयज्ञमथनौ श्रीशैलजावल्लभौ
पापं वो हरतां सदा हरिहरौ श्रीवत्सगंगाधरौ ।।

सम्प्राप्तं मकरध्वजेन मथनं त्वत्तो मदर्थं पुरा तद्युक्तं
बहुमार्गगां मम पुरीं निर्लज्ज वोढुस्तव ।
तामेवानुनयस्व भावकुटिलां है कृष्णा कण्ठग्रहं मुंचेत्याह रुषा
यमद्रितनया लक्ष्मीश्च पायात्स वः ।।

स्तुतिकुसुमांजलि

श्रीकम्बुकौस्तुभसुधांशुविषामृतानां
सौदर्यसौहृदसुखानुभवैकधाम ।
यत्सत्यधर्मकृतनिष्प्रतिघप्रतिष्ठं
तन्मंगलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः ।।

हीनार्धनाभिनलिनालयसंकटत्व-
सातंकसंकुचितवृत्तिकदर्थितांगः ।।
अर्धीचिकीर्षति तनुं द्रुहिणोऽपि यत्र ,
तन्मंगलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः ।।५।।

दृग्वर्तिनौ रवितमीरमणावखण्ड-
मूर्ती निजं च वपुरर्धमवेत्य वह्निः
यत्राधिकं ज्वलति लाघवमागतोपि
तन्मंगलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः ।।६।।

पादाग्रनिर्गतमवारितमेव वारि
यत्राधिरोहति शिरस्त्रिदशापगायाः ।
अत्यद्भुतं च रुचिरं च निरंकुशंच
तन्मंगलं दिशतु हारिहरं वपुर्वः ।।८।।

स्तोत्रसमुच्चय (भाग२),

हरिभक्ता हयवदनं हरभक्ताः प्रार्थयन्ति गजवदनम् ।
हरिहरभक्तास्तु वयं गुरुवदनं प्रार्थयामहे प्रथमम् ।।१।।

कपिञ्जरुचिजटामणिह्तहिमकरकोटिस्फुरन्मणीमुकुट: ।
अविरलविभूतिसंगो बहुमायोमाधव: सुखं दिशतु ।।२।।

यो इयङ्गुलीयकधरो यो हि कटकवांश्च यो हि कुण्डलवान् ।
य: श्यामलाधिकरुचिर्बहुमायोमाधव:सुखं दिशतु ।। ३ ।।

निटिललसत्तिलकतया कनकप्रभमध्यनेत्रदेदीप्र: ।
मुग्धस्मरमदहन्ता बहुमायोमाधव: सुखं दिशतु ।। ४।।

गणनायकतातोऽयं वेदस्तुत्यो न लोकवाग्विषय: ।
कालो वैकुण्ठपदो बहुमायोमाधव: सुखं दिशतु ।।५।।

रामानन्द:

शिवहरे शिवराम सखे प्रभो त्रिविधतापनिवारण हे विभो ।।
अज जनेश्वर यादव पाहि मां शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ।।१।।
कमललोचन राम दयानिधे हर गुरो गजरक्षक गोपते ।।
शिवतनो भवशंकर पाहि मां शिव हरे०।।२।।
स्वजरंजन मंगलमंदिरं भजति तं पुरुषं परमं पदम् ।।
भवति तस्य सुखं परमाद्भुतं शिव हरे० ।। ३।।
जय युधिष्ठिरवल्लभ भूपते जय जयार्जितपुण्यपयोनिधे ।।
जय कृपामय कृष्ण नमोऽस्तु ते शिव हरे० ।।४।।
भवविमोचन माधव मापते सुकविमानसहंस शिवारते ।।
जनकजारत राघव रक्ष मां शिव हरे० ।।५।।
अवनिमण्डलमङ्गल मापते जलदसुंदरराम रमापते ।।
निगमकीर्तिगुणार्णव गोपते शिव हरे० ।।६।।
पतितपावननाममयी लता तव यशो विमल परिगीयते ।।
तदपि माधव मां किमुपेक्षसे शिव हरे० ।।७।।
अमरतापरदेव रमापते विजयतस्तव नाम धनोपमा ।।
मयि कथं करुणार्णव जायते शिव हरे ० ।।८।।
हनुमत: प्रिय चापकर प्रभो सुरसरिद्धृतशेखर हे गुरो ।।
मम विभो किमु विस्मरणं कृत शिव हरे० ।। ९ ।।

नरहरीति परं जनसुंदरं पठति य: शिवरामकृतस्तवम् ।।
विशति रामरमाचरणांबुजे शिव हरे० ।।१० ।।
प्रातरुत्थाय यो भक्त्या पठेदेकाग्रमानस: ।।
विजयी जायते तस्य विष्णुसान्निध्यमाप्नुयात् ।।११ ।।

तुलसीदास : विनयपत्रिका ,पद ४६

दनुज-वन-दहन,गुन-गहन,गोविंदनंदादि-आनंद-दाताऽविनाशी ।
शंभु,शिव,रुद्र,शंकर,भयंकर,भीम-घोर,तेजायतन,क्रोध-राशी
अनंत,भगवंत-जगदंत-अंतक-त्रास-शमन,श्रीरमन,भुवनाभिरामं ।
भधराधीश जगदीशईशान, विज्ञानघन,ज्ञान-कल्यान-धामं ।।२।।
वामनाव्यक्त,पावन,परावर,विभो,प्रकट,परमातमा-प्रकृति-स्वामी ।
चन्द्रशेखर,शूलपाणि,हर,अनघ,अज,अमित,अविछिन्न,वृषभेष-गामी ।।३।।
नीलजलदाभ तनु श्याम,बहु काम छवि राम राजीवलोचन कृपाला
कंबु-कर्पूर-वपु धवल,निर्मल,मौलि जटा,सुर-तटिनि, सितसुमन-माला ।।४।।
वसनकिंजल्कधर,चक्र-सारंग-दर-कंज-कौमोदकी अति विशाला ।
मार-करि-मत्तमृगराज,त्रैनैन,हर,नौमि,अपहरण संसार-ज्वाला ।।
कृष्ण,करुणाभवन,दवन कालीय खल, विपुलकंसादि निर्वंशकारी ।
त्रिपुर-मद-भंगकर,मत्तगज-चर्मधर,अन्धकोरग-ग्रसन पन्नगारी ।।
ब्रह्म, व्यापक,अकल,सकल पर परमहित,ग्यान, गोतीत, गुण-वृत्ति-हर्ता ।
सिंधुसुत-गर्व-गिरि-वज्र, गौरीश, भव, दक्ष-मख अखिल विध्वंसकर्ता ।।७।।
भक्तिप्रिय, भक्तजन-कामधुक धेनु, हरि हरण, दुर्घटविकट विपति भारी ।
सुखद, नर्मद, वरद, विरज,अनवद्यऽखिल, विपिन-आनंद वीथिन-विहारी ।।८।।
रुचिर हरिशंकरी नाम-मंत्रावली द्वंद्वदुख हरनि, आनंदखानी ।
विष्णु-शिव-लोक-सोपान-सम सर्वदा वदति ~~कर्क~~ तुलसीदास विशद बानी।।९।

हरिहर सम्बन्धात्मक स्तुतियाँ

शिवमहिम्न स्तोत्र-

रथ: क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणि: शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयै: क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्रा: प्रभुधिय: ।।१८।।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-

र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।

गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा

त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-

नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत् तीर्णविकृति ।

तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः

समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ।२७॥

---

परिशिष्ट घ

## हरिहर के शिल्पशास्त्रीय लक्षण

सुप्रभेदागम (चतुस्त्रिंशत्तम पटल:)

पीताम्बरधरं विष्णुं व्याघ्रचर्माम्बरं हरम् ।
विष्णुं किरीटसंयुक्तं शंकरं तु जटान्वितम् ।।
श्यामवर्णं हरिं चैव शंकरं युक्तरूपिणाम् ।
हरिरर्धमिदं प्रोक्तं भिक्षाटनमत: परम् ।।

पूर्वकारणागम : एकादशपटल –

'ईशार्धं' पूर्ववत्प्रोक्तं विष्ण्वर्धं मुकुटं नयेत् ।
वामे तु द्विभुजोपेतं केयूरकटकोज्ज्वलम् ।।
स्यान्नक्रकुण्डलं कर्णे कटकं शंखहस्तकम् ।
अर्धपीताम्बरोपेतं भूषणैर्भूषणार्हकै: ।।
अज्वागतं तथा सर्वं चन्द्रशेखर वत्कुरु ।
हरिरर्धमिदं प्रोक्तं सुखासनमथ श्रणु ।।

उत्तरकामिकागम, षष्टितमपटल:

अर्धनारीश्वरो ह्येवं हर्यर्धं शृणुत द्विज: ।
प्राग्वत्कृत्वा महेशार्धं विष्ण्वर्धमितरत्र च ।।
भुजद्वययुतं शंखकटकस्तत्र संमत: ।
पीताम्बरसमोपेतं सर्वाभरणसंयुतम् ।।
हर्यर्धमेव ब्रह्मादिभागं चैव समाचरेत ।

अपराजित पृच्छा, सूत्र २१३।२८-२६:

कुण्डलं दक्षिणे कर्णे वामे मकरकुण्डलम् ।
अक्षमालां त्रिशूलं च चक्रं वै शंखमेव च ।।

मानसोल्लास (भाग २), विंशति ३।१।७४६-७५३

उमामहेश्वरस्यैवं स्वरूपं परिकीर्तितम् ।
देवं हरिहरं वक्ष्ये सर्वपातकनाशनम् ।। ७४६ ।।
दक्षिणे शंकरस्यार्धमर्धं विष्णोश्च वामत: ।
बालेन्दुभूषित: कार्यो जटाभारस्तु दक्षिणे ।। ७४७ ।

नानारत्नमयं दिव्यं किरीटं वामभागत: ।
दक्षिणं सर्पराजेन भूषितं कर्णमालिखेत् ।। ७४८ ।।

मकराकारकं दिव्यं कुण्डलं वामकर्णत: ।
वरदो दक्षिणो हस्तो द्वितीय: शूलभृत्तथा ।। ७४९ ।।

कर्तव्यौ वामभागे तु शंखचक्रधरौ करौ ।
दक्षिणं वसनं कार्यं द्वीपिचर्ममयं शुभम् ।। ७५० ।।
पीताम्बरमयं भव्यं जघनं सव्यमालिखेत् ।
वाम: पाद: प्रकर्तव्यो नानारत्नविभूषित: ।।७५१।।

दक्षिणाङ्घ्रि: प्रकर्तव्यो भुजगेन्द्रेण वेष्टित: ।
सुधांशुधवल: कार्य: शिवभागो विचक्षणै: ।। ७५२।।

अतसीपुष्पसङ्काशो विष्णुभागो विरच्यते ।
~~मिश्रकाख्यैः विलिखेत च ण्मुखं देवं मयूरवाहनम्~~ ।। ७५३ ।।

काश्यपशिल्प, पटल ७३।१-६

'अथ वक्ष्ये विशेषेण हरिर(म)र्धहरं परम् ।
आर्जवं स्वस्थि (ति) कं स्थानं स्थानकं समपादकम् ।।१।।

दक्षिणं चाभयं वामं (मे) कटकं पूरिमाश्रितम् ।
परशुं दक्षिणे वामे (भागे) शंखायुधधरं परम् ।।२।।

सख्ये वामे च मुकुटे जटाकिरीटमण्डितम् ।
प्रवालं श्यामरूपं तु तस्यौ (स्तौ)भाभरणान्वितम् ।।३।।
दक्षिणे तुग्रदृष्टि: स्याद्वामे दृष्टि: स (सु)शीतलम् (ला) ।
किंचित्प्रकाशितार्थं च दृष्ट्या तु तल्ललाटके ।।४।।

सर्वाभरणसंयुक्तं दिगम्बरसमन्वितम् ।
शिरश्चक्रसमायुक्तं तस्य लक्षणमुच्यते ।।५।।

रुद्रांशकविशालं तु तद्भा(ग)शेन वर्धितम् ।
घनं सुवृत्तचक्रं च पद्माकृतिम (अ)थापिवा ।।६।।

शिरश्चक्रविशालं तु सप्तभागैकभागिकम् ।
शिरसश्चक्रनालस्य विस्तारं द्विजसत्तम ।।७।।

चक्रायामत्रिभागैकं चक्रदं शिरसोन्नतम् ।
अग्र ललाटपट्टस्य शिरश्चक्रस्य नालकम् ।।८।।

चक्रं तर्जनीमालम्ब्य पुष्पमालां च मध्यमाम् ।
सर्वेषां देवदेवीनामेवमेव समाचरेत ।।९।।

अग्निपुराण ४९।२४-२५

'श्रिया धृतैकचरणौ विमलाद्याभिरीडित: ।
नाभिपद्मचतुर्वक्त्रो हरिशंकरको हरि: ।।
शूलर्ष्टिधारी दक्षे च गदाचक्रधरो पदे ।
रुद्रकेशव लक्ष्मांगो गौरीलक्ष्मीसमन्वित: ।।

वामनपुराण ६२।३०-३१

सार्द्धद्विनेत्रं कनकाद्रिकुण्डलं जटागुडाकेशखगर्षभध्वजम् ।
समाधवं हारभुजंगभूषणं पीताजिनाच्छन्नकटिप्रदेशम् ।।
चक्रासिहस्तं हलशार्ङ्गपाणिं पिनाकशूलाजगवान्वितं च ।
कपर्दखट्वांगकपालघण्टं सशंखटंकाररवं महर्षे ।।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण:

कार्यं हरिहरस्यापि दक्षिणार्धं सदाशिव: ।
वाममर्धं हृषीकेशश्वैतनीलाकृति: क्रमात् ।।
वरत्रिशूलचक्राब्जधारिणौ बाहव: क्रमात् ।
दक्षिणे वृषभ: पार्श्वे वामभागे विहङ्गराट ।।

मत्स्यपुराण२५६।२१-२७

शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् ।।२१।।
वमार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम् ।
बाहुद्वयं च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम् ।। २२ ।।
~~शङ्खचक्रैतरे दद्यात् कट्यर्धं~~
शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्ताङ्गुलिविभ्रमम् ।
चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्याद्गदाभृत: ।।
शङ्खमेवेतरे दद्यात् कट्यर्धं भूषणोज्ज्वलम् ।
पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम् ।।

दक्षिणार्धं जटाभारमर्धेन्दुकृतभूषणम् । भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम्।।
द्वितीयं चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम् ।
व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धं कृत्तिवाससम् ।
मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम् ।
शिवनारायणस्यैवं कल्पयेद्रूपमुत्तमम् ।।

## हरिहरस्वरूप

### हरिवंशपुराण २।१२५।२६-२७

हरं च हरिरूपेण हरिं च हररूपिणाम् ।
शंखचक्रगदापाणिं पीताम्बरधरं हरम् ।।
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्मधरं हरिम् ।
गरुडस्थं चापि हरं हरिं च वृषभध्वजम् ।।

### स्कन्दपुराण,ब्राह्म खण्ड,चातुर्मास्य माहात्म्य १५।११-१३

हरश्चैवार्द्धदेहेन विष्णुरर्द्धेन चाभवत् ।
एकतो विष्णुचिह्नानि हरचिह्नानि चैकत: ।।
एकतो वैनतेयश्च वृषभश्चान्यतोऽभवत् ।
वामतो मेघवर्णाभो देहोऽश्मनिचयोपम: ।।
कर्पूरगौरोऽसव्ये तु समजायत वै तदा ।
द्वयोरैक्यसमं विश्वं विश्वमैक्यमवर्त्तत ।।

---

परिशिष्ट ड१

## हरिहरेश्वर मन्दिर (हरिहर) के आचार

### स्नान का मन्त्र

गुहारण्य क्षेत्रे हरिद्रा तुंगभद्रा संगमे श्रीहरिहरेश्वर: सन्निधयी ।

### पूजा का मन्त्र

पांचरात्र संहिताओं के अनुसार वैदोक्त ।
स्फटिकवत रत्नमाला अन्तर्गत पुरुष सूक्त तथा श्रीसूक्त।

### नैवेद्य

तुलसी तथा बिल्व पत्र, गन्ध-लेपन ।

### दैनिक पूजन

प्रात:काल : वैदोक्त मन्त्र से अभिषेक के पश्चात्, पूजा, अलंकार, नैवेदनम् तथा महामंगल आरती ।

सायंकाल : महामंगल आरती ।

### पूजा-विधि

वैदोक्त ।

### नैमित्तिक पालकी सेवा

प्रत्येक सोमवार, शुक्रवार तथा शनिवार को मूर्ति शिविका में रखकर मन्दिर की परिक्रमा की जाती है ।

### वार्षिक समारोह

१. माघ शुद्ध दशमी से पूर्णिमा - वाहनोत्सव ।
२. माघ शुद्ध पूर्णिमा-हरिहरेश्वर का रथोत्सव ।

३. माघ बहुलप्रतिपदा-

अन्य विशिष्ट तिथियां--

१. रामनवमी, शिवरात्रि, गोकुलाष्टमी, श्रावण मास--विशेष अभिषेक ।
२. आश्विन-नवारात्रि में विशेष पूजन ।
३. कार्तिक - दीवाली के अवसर पर एक मास दीपाराधना ।
४. मार्गशीर्ष (धनुर्मास) - सामान्यत: प्रात:कालीन पूजन ८ से ६-३० के मध्य होता है, परन्तु इन दिनों में ५ से ६-३० के मध्य किया जाता है ।
५. पौष - नौदिन हरिहरेश्वर स्वामी की नवरात्रि ।

दक्षिण भारत में गोमती को हरिहर की शक्ति माना जाता है और बहुत से दक्षिणभारतीय श्रद्धालु उनकी उपासना करते हैं । एक सूचना के अनुसार दक्षिण में शंकर नयिनारकोयिल--जिसे पुन्नागवन और देवी को पुन्नागवनेश्वरी कहा जाता है -- में आषाढ़ शुक्ल पंचमी से पूर्णिमा तक गोमती की तपस्याका समारोह होता है । पूर्णिमा को शिव और विष्णु शंकरनारायण रूप में प्रकट होकर उनसे विवाह करते हैं । विवाह का विधान वैदिक रीति से सम्पन्न कराया जाता है और विवाह-पूर्व शंकर-नारायण की बरात निकलती है । वैवाहिक अनुष्ठान के पश्चात् मूर्तियों को यथास्थान प्रतिष्ठापित कर दिया जाता है । शंकरनयिनारकोयिल में शंकरनारायण के अतिरिक्त एक गर्भगृह में गोमती की भी प्रतिमा है । एक सूचना में हरिहर के हरिहरेश्वर का वैवाहिक समारोह फाल्गुन में सम्पन्न होना बताया गया है ।

नागपुर के हरिहर मन्दिर में वैकुण्ठ चतुर्दशी को हरि-हर के भेंट दिवस के रूप में मनाया जाता है और रामनवमी, आषाढी एकादशी, महाशिवरात्रि आदि को विशिष्ट कार्यक्रम आयोजित होते हैं । शिव एकादशी को रात्रि - जागरण के साथ-कीर्तन होता है ।[१]

---

१. मन्दिर की नियमावली, पृ० १५

परिशिष्ट च

## हरिहर के पुरातात्विक प्रमाणों की सूची

मन्दिर

| | |
|---|---|
| गुप्तकाल | अहिच्छत्र, बरेली (वामविष्णु अभिलिखित मृणमुद्रा प्राप्त) |
| वही | सुनेत,पंजाब (शंकरनारायणाभ्यां-अभिलिखित मोहरें प्राप्त) |
| ८ वीं शती ई० (दो) | ओसियां, जोधपुर |
| ११ वीं शती ई० - | बंगाल (विजयसेन का देवपाड़ा शिलालेख) |
| ११०० ई० | खजुराहो |
| १२ वीं शती ई० | आन्ध्रप्रदेश में तीन मन्दिर[1] |
| १२ वीं शती ई० - | कोल्हापुर[2] |
| १२२४ ई० | हरिहर |
| १५-१६ वीं शती ई० - | संकरनारायिनाकोयिल,तिरुणेलवेलि,मद्रास[3] |
| १६ वीं शती ई० से पूर्व | बालाजी मन्दिर,तिरुपति |
| १७७६ ई० | गंगावास आम्घाटा, नदिया |
| ? | सोनपुर,बिहार |
| ? | रामनाड[4] |
| ? | मल्हारनगर (आलमपुर),भिंड[5] |

---

१. इंडियन आर्क्यालाजी (१९५८-५९), ए रिव्यू, पृ० ६२

२. एपिग्रेफिया इंडिका, भाग २९(१९५१-५२),पृ० १३

३. साउथ इण्डिन इमैजेज आफ गाड्स एण्ड गाडेसेज, पृ० १२५

४. साउथ इण्डियन,आइन्स,पृ० ६३४

५. मध्यप्रदेश सन्देश, २६ जुलाई, १९६६ ई०

## प्रस्तर मूर्तियाँ

| समय | प्राप्ति-स्थान | सम्प्रति-स्थिति |
|---|---|---|
| चौथी-पांचवीं शती ई०(दो) | गिरधरपुर टीला, मथुरा | मथुरा संग्रहालय |
| गुप्तकाल | कुलारी,इलाहाबाद | इलाहाबाद संग्रहालय |
| वही | | मथुरा संग्रहालय |
| ५ वीं शती ई० | मध्यप्रदेश | राष्ट्रीय संग्रहालय |
| गुप्तकाल | बिहार | भारतीय संग्रहालय |
| ५-६ वीं शती ई० | पटना | पटना संग्रहालय |
| उत्तर गुप्तकाल | मथुरा | मथुरा संग्रहालय |
| छठी शती ई० | शत्रुघ्नेश्वर मन्दिर समूह | भुवनेश्वर |
| वही | गुहा सं० १, | बादामी,बीजापुर |
| ५७८ ई० | गुहा सं० ४,बादामी | बादामी,गुहा सं० ४,जिला |
| छठीं-सातवीं शती ई० | मुण्डेश्वरी,शाहाबाद,बिहार | पटना संग्रहालय,पटना |
| ७ वीं शती ई० | परशुरामेश्वर मन्दिर,भुवनेश्वर | |
| वही | धर्मराज रथ | महाबलिपुरम्,चिंगलपुट |
| वही | बैदला,उदयपुर | |
| वही | जगत,उदयपुर | |
| ७ वीं, ८ वीं शती ई० | सम्भवतः मध्य भारत | राष्ट्रीय संग्रहालय,दिल्ली |
| वही | आदिवराह गुहा मन्दिर,महाबलिपुरम्, चिंगलपुट | |
| वही | अयिनिनादेश्वर(शिव,मन्दिर, अरगण्डनल्लूर) अर्काट | |
| वही | गुफा सं० १०, पिल्लयिर्पट्टि,रामनाड | |
| ७४० ई० रावल पाडी गुहा, ऐहोल | | |
| वही (चार) | विरुपाक्ष मंदिर,पट्टडकल,बीजापुर | |
| वही | भैरवकुण्डा,जिला-नैल्लूर | |
| वही | गौहाटी | गौहाटी, संग्रहालय |
| वही | विष्णु मन्दिर, औसियाँ,जोधपुर | |
| वही | माता कामन्दिर, औसियाँ,जोधपुर | |
| ८ वीं-९ वीं शती ई० | महरावाँ, जिला गया | पटना संग्रहालय,पटना |

| समय | प्राप्तिस्थान | सम्प्रति स्थिति |
| --- | --- | --- |
| ८ वीं- ९ वीं शती | इलाहाबाद | प्रयाग संग्रहालय |
| ९ वीं शती | देवपाणी, नौगांव | गौहाटी, संग्रहालय |
| वही | नौगांव | वही |
| वही | आबानेरी, जयपुर | |
| वही | शिव मन्दिर, बुचकला | |
| ९ वीं शती ई० | चन्द्रभागा नदी-झालरापाटन, राजस्थान | झालावाड़ पुरातत्व संग्रहालय |
| वही | भांदक, जिला चांदा | केन्द्रीय संग्रहालय, नागपुर |
| ९३०-९५० ई० | लक्ष्मण मन्दिर खजुराहो | |
| ९-१० वीं शती ई० | मानिकपुर, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, संग्रहालय | |
| ९५० के लगभग | मुवरकोयिल | |
| १० वीं शती | तिरुप्पारुरै, आदिमूलेश्वर शिव मन्दिर, त्रिची | |
| १० वीं शती | बिहार | भारतीय संग्रहालय |
| १० वीं शती | परमेश्वरमंगलम, जिला चिंगलपुट | |
| १००० के लगभग | खजुराहो | खजुराहो संग्रहालय |
| १००२-१००३ ई० | विश्वनाथ मन्दिर, खजुराहो | |
| १०१०-१०२० ई० | सूर्यमन्दिर, मन्खर, महेसाना, गुजरात | |
| १०-११ वीं शती ई० | -- | भरतपुर संग्रहालय, भरतपुर |
| वही | मनवालेश्वर (शिव) मन्दिर, तिरुवैलविक्कुडि, तंजौर | |
| वही | मुखलिंगेश्वर मन्दिर, मुखलिंगम्, जिला श्रीकाकुलम् | |
| वही | सोमेश्वरशिवमन्दिर, मुखलिंगम, श्रीकाकुलम् | |
| ११ वीं शती ई० | सम्भवत: राजस्थान | राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली |
| वही | शरणागतरक्षक (शिव) मन्दिर, तिल्लैयादि, तंजौर | |
| वही | गंगयिकोण्डाचोलपुरम्, त्रिची | |
| वही | त्रिकूटेश्वर (शिव) मन्दिर, गदग, धारवाड़ | |
| वही (दो) | मन्दिर, तंजौर | |
| वही | | राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली |

| समय | प्राप्ति स्थान | सम्प्रति स्थिति |
| --- | --- | --- |
| ११०० के लगभग | चतुर्भुज मन्दिर, खजुराहो | |
| ११-१२ वीं शती | वैट्टिनादिस्वामी शिव मन्दिर, तिरुमलपादि, त्रिची | |
| वही | नैमिषारण्य, सीतापुर | |
| १२ वीं शती प्रारम्भ (दो) | लिंगराज मन्दिर, भुवनेश्वर | |
| १२ वीं शती का प्रारम्भ | होयसलेश्वर, हैलेबिड | |
| १२ वीं शती का प्रारम्भ | चेन्नकेशव मन्दिर, अद्दलगुप्पा, तुमकूर, मैसूर | |
| १२ वीं शती | राजस्थान | राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली |
| वही | कौशाम्बी | पटना संग्रहालय |
| वही | -- | लखनऊ संग्रहालय |
| वही | बघेरा, अजमेर | राजपूताना संग्रहालय, अजमेर |
| वही | सामवेदीश्वर शिव मन्दिर, तिरुमंगलम्, त्रिची | |
| वही | -- | जयपुर संग्रहालय |
| १२-१३ वीं शती | केशव मन्दिर, बेलूर, हसन | |
| वही | केदारेश्वर शिव मन्दिर, हैलेबिड, हसन | |
| वही | विराटेश्वर शिव मन्दिर, चित्तलि, त्रिची | |
| वही | पुरन्दर | प्रिंस आफ वेल्स म्युजियम, बम्बई |
| १२२४ ई० | हरिहरेश्वर मन्दिर, हरिहर | |
| १३ वीं शती | --- | बैजनाथ स्कल्पचर गोडाउन, अल्मोड़ा |
| वही | होसहोललु | |
| वही | अगस्त्येश्वर शिव मन्दिर, मुनियूर, तंजौर | |
| वही (तीन) | नटराज मन्दिर, चिदम्बरम्, द० अर्काट | |
| वही | पाण्ड्यन गुहा मन्दिर, कुन्नकुडि | |
| वही | केशव मन्दिर, सोमनाथपुर | |
| १३३८ ई० | विद्याशंकर मन्दिर, शृंगेरी | |
| १४-१५ वीं शती | कुम्भस्वामी मन्दिर, चित्तौड़ | |
| १४४०-१४४८ ई० | कीर्तिस्तम्भ, चित्तौड़ | |

| समय | प्राप्ति-स्थान | सम्प्रति स्थिति |
|---|---|---|
| १५ वीं शती ई०(दो) | मीनाक्षी-सुन्दरेश्वर शिव मन्दिर,मदुराई | |
| वही | शिव मन्दिर ,मदुराई | |
| वही ( १४६० ई० ) | कुम्भश्याम मन्दिर,एकलिंग जी,उदयपुर | |
| १५-१६ वीं शती | नागराजस्वामी शिवमन्दिर,नगीर, तंजौर | |
| १६ वीं शती | गौल्लवारियम्मगुदि भग्नावशेष,श्रीशैलम,कुरनूल | |
| १६-१७ वीं शती | सुब्रह्मण्यमन्दिर, तिरुप्पोरुर, चिंगलपुट | |
| मध्यकाल | रैहली, सागर | |
| मध्यकाल | उज्जैन | |
| आधुनिककाल | सगुनेश्वर समाधि, संगमहुलि,सतारा | |
| ? | बालाजी, तिरुपति | |
| ? | विठोवा,पण्ढरपुर | |

धातुप्रतिमाएं

| | | |
|---|---|---|
| १४ वीं शती ई० | विद्याशंकर मन्दिर,शृंगेरी | |
| १५-१६ शती ई० | शंकरकोविल,तिरुनलवेलि | |

मृण्मूर्ति

| | | |
|---|---|---|
| ११-१२ वीं शती ई० (दो) | शाहाबाद,जि० हरदोई | |

काष्ठ प्रतिमा

| | | |
|---|---|---|
| १८-१६ वीं शती ई० | तिरुनरायनपुरम्,त्रिचनापल्ली | |

भित्ति चित्र

| | | |
|---|---|---|
| १७-१८ वीं शती ई० | पद्मनाभपुरम्[1] | |

---

१. ए शार्ट गाइड टु पद्मनाभपुरम् पैलेस, पृ० ३

| | |
|---|---|
| ? | छम्ब (वाहन तथा शक्तियाँ रहित) |
| ? | छम्ब (वाहन तथा शक्तियाँ सहित) |
| ? | डोंगरा आर्ट गैलरी, जम्मू |

लघु चित्र

| | |
|---|---|
| १७५० ई० | राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली |
| १८ वीं शती ई० | पटना संग्रहालय, पटना |
| २० वीं शती ई०(दो चित्र) | एस०पी०एस०संग्रहालय, श्रीनगर |
| ? | नैशनल म्युजियम, कलकत्ता |
| ? | भारतकला भवन, वाराणसी |
| ? | त्रिची |
| १९५१ ई० | कल्याण( फरवरी, १९५१ ई० ) में प्रकाशित |
| १९७३ ई० | कल्याण (जनवरी, १९७३ ई०) में प्रकाशित |

पट चित्र

आधुनिककाल में बंगाल में प्रयुक्त ।

परिशिष्ट – ज

## सन्दर्भ तथा सहायक ग्रन्थों की अनुक्रमणिका

### संस्कृत

#### वैदिक

ऋग्वेद

अथर्ववेद

यजुर्वेद

वाजसनेयी संहिता

तैत्तिरीय संहिता

मैत्रायणी संहिता

ऐतरेय ब्राह्मण

तैत्तिरीय ब्राह्मण

उपनिषद्- संस्कृति संस्थान, बरेली

#### लौकिक : पुराण

अग्निपुराण- संस्कृत संस्थान बरेली, प्रथम संस्करण, १९६८ ई०

आदिपुराण - वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९८६ वि०

आदि ब्रह्मपुराण- नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १८९१ ई०

गरुड़ पुराण- संस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम संस्करण, १९६८ ई०

गरुड़पुराण- तेजकुमार, बुक डिपो, लखनऊ द्वितीय संस्करण, १९५२ ई०

देवीभागवतपुराण-१.वेंकटेश्वर मुद्रणायन्त्रालय, २०११ वि०

2.मु० नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

नारदपुराण - सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद, प्रथम संस्करण, १९४० ई०

बृहन्नारदीयपुराण - नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १८८० ई०

पद्मपुराण भाषा - नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, तृतीय संस्करण, १९२४

ब्रह्मपुराण- ५ क्लाइवब रो, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, १९५४ ई०

ब्रह्मवैवर्तपुराण- ५, क्लाइवरो, कलकत्ता

भविष्यपुराण

भागवतमहापुराण- गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, २००८ वि०

मत्स्यपुराणम् (मूल मात्र)- ५ क्लाइव रो, कलकत्ता, प्रथम संस्करण, २०११ वि०

मत्स्यमहापुराण (हिन्दी अनुवाद मात्र)-अनु० रामप्रताप त्रिपाठी, हिन्दी सा०स०, २००३

मार्कण्डेयपुराण- संस्कृति संस्थान, बरेली, प्रथम संस्करण, १९६७ ई०

लिंगपुराण- नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, १८९७ ई०

वामनपुराण-नवलकिशोर वर्मा, लखनऊ, १८९० ई०

वायुमहापुराण- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, २००७ वि०

वाराहपुराण - नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

विष्णुपुराण- सं० मुनिलाल गुप्त, गीता प्रेस, गोरखपुर, षष्ठम् संस्करण, २०२४ वि०

विष्णुधर्मोत्तरपुराण- वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

शिवमहापुराण- वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

स्कन्दपुराण - नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्रथम संस्करण १९०८ ई०

हरिवंश पुराण - सं० रामानारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वि०सं०, २०२४ वि०

## संस्कृत पुराणेतर—

अध्यात्म रामायण - सं० मुनिलाल, गीताप्रेस गोरखपुर, चौदहवां संस्क०, २०३४वि०

अपराजितपृच्छा (भुवनदेव) - सं० अम्बाशंकर मन्कड, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९५०

अहिर्बुध्न्यसंहिता- आड्यार लाइब्रेरी, आड्यार, मद्रास, १९१३ ई०

आर्यासप्तशती (गोवर्धनाचार्य)-चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९६५ ई०

कथासरित्सागर (भाग १)(सोमदेव) बिहार राष्ट्रभाषा, पटना, प्रथम संस्क०, १९६० ई०

कादम्बरी (बाण) चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, १९६१

कालिदास-ग्रन्थावली, सं० सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रका०मं०, अलीगढ़, तृतीय सं०२०१९वि०
(रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार) अभिज्ञान
अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीयम्

काव्यप्रकाश (मम्मट)-सं० भट्ट वामन झलकीकर, भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्यूट,
पूना, १९५० ई०

काश्यपज्ञानकाण्ड(काश्यपसंहिता)-तिरुमल तिरुपति देवस्थानमुद्रणालय,तिरुपति

~~काश्यपशिल्प-/मुद्रणालय,१६२६-ई०~~ (आनन्दाश्रम)

काश्यपशिल्प(महेश्वर)- सं० कृष्णा शर्मा,आनन्दाश्रममुद्रणालय,१६२६ ई०

किरातार्जुनीय(भारवि)-चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस,वाराणसी,चतुर्थ संस्क०२०१८

कृत्यकल्पतरु- (लक्ष्मीधर भट्ट) -षष्ठ भाग, व्रतखण्ड,औरियन्टल इन्स्टीट्यूट,बड़ौदा१६५३

गर्ग संहिता- वैंकटेश्वर प्रेस,बम्बई

चतुर्वर्गचिन्तामणि (हेमाद्रि)-एसियाटिक सोसायटी,कलकत्ता ,१६३४ वि०

ज्याख्या संहिता -गायकवाड़ औरियन्टल(१६३१ ई०),बड़ौदा

दिनचर्या- पं० भूपेन्द्रनाथ सान्याल,गीताप्रेस गोरखपुर, तृतीय संस्करण, १६६६ वि०

देवतामूर्तिप्रकरणम् एवं रूपमण्डनम्(मण्डन)-मैट्रोपोलिटन प्रिंटिंग,हाउस,कलकत्ता,१६२६

ध्वन्यालोक(आनन्दवर्धन)सं० महादेव शास्त्री-जयकृष्णादास हरिदास,गुप्त,बनारस,१६४०

नारदीय भक्ति-सूत्र - गीताप्रेस,गोरखपुर,ग्यारहवां संस्क०,२०२० वि०

पातंजलि योगदर्शन- गीताप्रेस,गोरखपुर,नवम संस्करण, सं० २०२८ वि०

प्रबोधचन्द्रोदय (कृष्णामिश्र),चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी,

प्रसन्नराघव्- मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी,प्रथम संस्करण, १६७०

वृहत्संहिता (वराहमिहिर)-चौखम्बा विद्या भ०,वाराणसी,१६५६ ई०

वृहत्स्तोत्ररत्नाकर- पण्डित पुस्तकालय,काशी,२०२० वि०

भगवद्गीता-गीता प्रेस,गोरखपुर,चतुर्दश संस्करण, सं० २०२० वि०

मयमत (मय मुनि)-राजकीय मुद्रण यन्त्रालय,त्रिवेन्द्रम,१६१६ ई०

महाभारत- गीताप्रेस,गोरखपुर

मानसार- आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी,प्रेस,१६३३ ई०

मानसोल्लास(सोमेश्वरदेव)-औरियन्टल इन्स्टीट्यूट,बड़ौदा,१६३६ ई०

राघवपाण्डवीयम् (कविराजपण्डित)-चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी,१६६५ ई०

लक्ष्मीतन्त्र- आड्यार लाइब्रेरी एण्ड रिसर्च सैन्टर,आड्यार,मद्रास

वाल्मीकिरामायण-टीका०-पाण्डेय रामतेज शास्त्री,प्रका०पण्डित पुस्तका०,काशी,१६५१

विश्वकर्मवास्तुशास्त्र- टी०एम०एस०एस०एम०लाइब्रेरी,तंजौर,१६५८ ई०

शिल्परत्न (श्रीकुमार)-राजकीय मुद्रणालय,त्रिवेन्द्रम,त्रावनकोर (भाग १, २ )

शिवमहिम्नस्तोत्र- गीताप्रेस गोरखपुर,सातवां संस्करण, २०२२ वि०

श्रीशंकरदिग्विजय(माधवाचार्य)- श्रीश्रवणनाथ ज्ञान मन्दिर,हरद्वार,2000वि०

संस्कृत कवियों की अनोखी सूझ-नैशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली, प्र०सं०१९६३ ई०

संस्कृत सूक्तिसागर-अखिल भारतीय विक्रम परिषद्,काशी,प्र०सं० २०१४ वि०

सदुक्तिकर्णामृत(श्रीधरदास)-सं० सुरेशचन्द्र बनर्जी,प्रकाशक-के०एल० मुखोपाध्याय,कलकत्ता,
प्रथम संस्करण,१९६५ ई०

सम्प्रदाय प्रदीप- विद्या विभाग,कांकरौली, प्रथमसंस्करण

सर्वदर्शन संग्रह- लक्ष्मीवेंकटेश्वर स्टीमप्रेस,बम्बई

सात्वततन्त्र- चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी,१९३४ ई०

सायंप्रातस्मरणस्तोत्र - सं० स्वामि बलदेव पुरी-महानिर्वाणी अखाड़ा,प्रयाग

सुभाषितसुधारत्नभांडागारम-वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,बम्बई, १९८५ वि०

सुभाषितरत्नकोष (भाग ४२) हरवर्ड ओरियन्टल सीरीज,१९५७ ई०

सूक्ति सुधाकर- गीताप्रेस,गोरखपुर (सप्तम संस्करण,२०२३ वि०

सेतुबन्ध- महाकवि प्रवरसेन-राजकमल प्रका०,प्रा०लि०,दिल्ली

स्तुतिकुसुमांजलि(जगद्धर भट्ट)-संस्कृत बुकडिपो-कचौड़ीगली,बनारस

स्तोत्र भारती-कण्ठहार-भारती कृष्णातीर्थ महाराज-भारतीय विद्या भ०,बम्बई,१९६७

स्तोत्र संग्रह-नवलकिशोर प्रेस,१९०५ ई०

हनुमन्नाटक- चौखम्बा संस्कृत सीरीज़आफिस,वाराणसी,प्र०सं० १९६७ वि०

हरिहराद्वैतभूषणम् (बोधेन्द्र सरस्वती)-गवर्नमेंट प्रेस,मद्रास,सन् १९५४

हरिहरैकभाववर्णनम् - भगवानवत्स सिंह-वेंकटेश्वर प्रेस,बम्बई,१९६७ वि०

हितोपदेश- पण्डितपुस्तकालय,काशी, १९६७ ई०

गुजराती : गुजराती साहित्य (खण्ड ५: मध्यकालनो साहित्य-प्रवाह),१९८५वि०

**हिन्दी ग्रन्थ : मौलिक**

अक्षर अनन्य (ग्रन्थावली) -मध्यप्रदेश शासन-हिन्दी-साहित्य-परिषद्,भोपाल,
प्रथम संस्करण २०२६ वि०

अनुराग बांसुरी (नूर मोहम्मद)-हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग,द्वितीय संस्क०२००७

कबीर ग्रन्थावली- हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय,प्र०संस्क०,१९६१ ई०

जायसी-ग्रन्थावली- नागरीप्रचारिणी सभा,वाराणसी ,चतुर्थ संस्करण
(पद्मावत, अखरावट,आखिरीकलाम )

पद्मावत- सं० डा० माताप्रसाद गुप्त,भारती भंडार,इलाहाबाद, प्रथम संस्करण,१९६३

चांदायन(दाऊद)-प्रामाणिक प्रकाशन,आगरा,प्रथम संस्करण,१९६७ ई०
दादूदयाल की बानी- बैलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स,इलाहाबाद,१९६३ ई०
नानकवाणी-मित्र प्रकाशन,प्रा०लि०,इलाहाबाद
मलूकदास जी की बानी - बैलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स,इलाहाबाद,चतुर्थ संस्करण,१९७१ ई०
मधुमालती- मित्र प्रकाशन प्रा०लि०,इलाहाबाद,१९६१ ई०
मृगावती (कुतुबन)- प्रामाणिक प्रकाशन,आगरा, प्रथम संस्करण,१९६८ ई०
सहजोबाई की बानी- बैलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स,इलाहाबाद,दसवां संस्क०,१९६७ ई०
सुन्दरबिलास- बैलवेडियर प्रिंटिंग वर्क्स,इलाहाबाद,चतुर्थ संस्करण
कीर्तिलता-(विद्यापति)-मैथिली साहित्य समिति,तीरभुक्ति,इलाहाबाद,प्रथम संस्करण,
१९६० ई०
पुरुषपरीक्षा (विद्यापति)-लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस,बम्बई, १९८४ वि०
विद्यापति - खगेन्द्रनाथ मित्र ,विमानबिहारी मजूमदार ८५,ग्रे स्ट्रीट,कलकत्ता,नवीन सं० २०१०वि०
विद्यापति की पदावली- रामवृक्ष बेनीपुरी,पुस्तक भंडार,पटना,४,तृतीय सं०
विद्यापति पदावली-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्,पटना, पहला भाग,१९६१ ई०
,, दूसराभाग १९६७ ई० ,,
विद्यापतिगीत संग्रह-डा० सुभद्रा झा, मोतीलाल बनारसीदास,बनारस,१९५४ ई०
सूरसागर(सूरदास) - नागरी प्रचारिणी सभा,काशी,प्रथम भाग ,चतुर्थसंस्करण,२०२१वि०
,, ,, ,, द्वितीय भाग,तृतीय संस्क०,२०१८ वि०
सूरसारावली-सं० डा० मनमोहन गौतम,रीगल बुकडिपो,दिल्ली, प्रथम संस्करण,१९७० ई०
कृष्णदास(पदसंग्रह)-विद्या विभाग,कांकरौली,प्रथम संस्करण,२०१९ वि०
नन्ददास ग्रन्थावली (दो भाग),प्रयाग विश्वविद्यालय,प्रयाग,१९४२ ई०
परमानन्द सागर - सं० डा० गोवर्द्धननाथ शुक्ल,भारत प्रका० मन्दिर,अलीगढ़
छीतस्वामी- विद्या विभाग ,अष्टछाप स्मारक समिति,कांकरौली,प्रथम संस्करण २०१२
गोविन्दस्वामी- प्रथम संस्करण,२००८ वि०, विद्याविभाग, कांकरौली
कुंभनदास - प्रथम संस्करण २०१० वि० ,, ,,
परमानन्दसागर- प्रथम संस्करण,२०१६ वि० ,, ,,
सुदामाचरित-(हलधरदास) - भारतीभवन,पटना,प्रथम संस्करण,१९६६ ई०
मीरा पदावली- हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग,ग्यारहवां संस्करण

रसखानि ग्रन्थावली- वाणी वितान प्रकाशन,वाराणसी-१,तृतीय संस्करण,२०२१वि०
सुदामा चरित (नरोत्तम)- वाणी-वितान प्रकाशन,वाराणसी, द्वितीय सं०,२०२१ वि०
वैलिक्रिसन रुकमणी री (राठौड़राज प्रिथीराज)-विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी,
द्वितीय संस्करण,१९६६ ई०

कवितावली (तुलसीदास) -गीताप्रेस,गोरखपुर,सोलहवां संस्करण,२०१६ वि०
गीतावली- ,, ,, ,, दशम ,, २०१६ वि०
जानकी मङ्गल-गीताप्रेस,गोरखपुर-चतुर्थ संस्क०,२०२०वि०
दोहावली- गीताप्रेस,गोरखपुर,सोलहवां संस्करण,२०१६ वि०
पार्वतीमङ्गल-गीताप्रेस,गोरखपुर,चतुर्थ संस्करण,२०१८ वि०
बरवै रामायण- गीताप्रेस,गोरखपुर,तृतीय संस्करण, २०१६ वि०
रामचरितमानस-गीताप्रेस,गोरखपुर,बारहवां संस्करण, २०२१ वि०
रामचरितमानस- इंडियन प्रेस लि०,प्रयाग
रामचरितमानस- अखिल भारतीय विक्रम परिषद्,काशी, २०२८ वि०
मानस-पीयूष-भाग १- चतुर्थ संस्करण, २०१३ वि०
,, ,, भाग २क- तृतीय ,, २०१४ वि०
,, ,, भाग२ख-तृतीय ,, २०१४ वि०
,, ,, भाग ३क-तृतीय ,, २०१४ वि०
,, ,, भाग ३ख-तृतीय ,, २०१५ वि०
,, अयोध्याकांड,पूर्वार्द्ध-द्वितीय ,, २०११ वि०
,, ,, उत्त० तृतीय ,, २०११ वि०
,, अरण्यकांड तृतीय ,, २०१५ वि०
,, सुन्दरकांड तृतीय ,, २०१५ वि०
,, किष्किन्धाकांड द्वितीय ,, २०११वि०
,, लंकाकांड द्वितीय ,, २०११ वि०
,, उत्तरकांड द्वितीय,, २०१३ वि०
रामलला-नहछू-रामनारायणलाल,इलाहाबाद,द्वितीय संस्करण, १९५७ ई०
रामाज्ञा-प्रश्न- गीताप्रेस,गोरखपुर,चौथा संस्करण,२०२१,वि०
विनयपत्रिका- गीताप्रेस गोरखपुर,उन्नीसवां संस्करण,२०१८ वि०

विनय-पत्रिका-सं० वियोगीहरि, साहित्य सेवा सदन, वाराणसी, आठवां संस्क०, २०१५ वि०
वैराग्य-संदीपनी-गीताप्रेस, गोरखपुर, छठा संस्करण, २०२१ वि०
श्रीकृष्णगीतावली-रामनारायणलाल, इलाहाबाद, १९४७ ई०
हनुमानबाहुक- गीताप्रेस, गोरखपुर, तेईसवां संस्करण, २०२० वि०
~~केशव कौमुदी (रामचन्द्रिका) रामनारायणलाल बैनीमाधव, नवां संस्करण, २०१८ वि०~~
रामचन्द्रिका-केशवदास-केशवकौमुदी के नाम से रामनारायणलाल बैनीमाधव द्वारा
प्रकाशित, नवां संस्करण, २०१८ वि०
वीरसिंहदेवचरित- मातृभाषा मन्दिर, दारागंज, प्रयाग, प्रथम संस्करण, २०१३ वि०
कवित्त-रत्नाकर (सेनापति)-हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, १९३६

एकदा नैमिषारण्ये- अमृतलाल नागर, लोकभारती प्रका०, इलाहाबाद, प्रथमसं०, १९७२ ई०
गोसाईं-चरित- डा० किशोरीलाल गुप्त-वाणी-वितान प्रका०, ब्रह्मनाल, वाराणसी,
प्रथम संस्करण, २०२१ वि०
घनआनन्द ग्रन्थावली- वाणी-वितान, बनारस-१, २००९ वि०
देव-सुधा-गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, चतुर्थ संस्करण, २०२० वि०
दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता- शुद्धाद्वैत एकेडेमी, कांकरौली, प्रथम संस्क०, २००८ वि०
बिहारी रत्नाकर- सं० जगन्नाथदास रत्नाकर-ग्रन्थकार, शिवाला, बनारस, १९६० ई०
हरिहर स्तोत्र-देहाती पुस्तक भंडार, चावड़ी बाजार, देहली

## सहायक ग्रन्थ सूची (हिन्दी)

अद्भुत भारत-ए०एल०बाशम, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं०, आगरा, १९६७ ई०
अष्टछाप-परिचय-प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, प्र०सं०, २००४ वि०
आलवार भक्तों का तमिल प्रबन्धम् और हिन्दी कृष्णकाव्य-डा० मलिकमोहम्मद,
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम सं०, १९६४ ई०
उत्तरीभारत की सन्त परम्परा-परशुराम चतुर्वेदी, भारती भंडार, प्रयाग, प्र०सं०, २००८ वि०
उत्तर वैदिक समाज और संस्कृति- डा० विजयबहादुर राव-भारतीय वि०प्रका०, वारा-
णसी, प्रथम संस्करण, १९६६ ई०
ऋग्वैदिक आर्य- राहुल सांकृत्यायन-किताब महल, इलाहाबाद
कबीर- सं० डा० विजयेन्द्र स्नातक, राधाकृष्ण प्रका०, संस्करण, १९६५ ई०

कौटिल्य अर्थशास्त्र- सं० वाचस्पति गैरोला : चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी,१९६२
कृत्तिवास बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन-डा० रमानाथ त्रिपाठी,
गुजराती और ब्रजभाषा कृष्णकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन-डा० जगदीश गुप्त, हिन्दी परिषद्,विश्वविद्यालय प्रयाग, १९५७ ई०
गोसाईं तुलसीदास-विश्वनाथप्रसाद मिश्र-वाणी वितान प्रकाशन,ब्रह्मनाल,वाराणसी प्रथम संस्करण, २०२२ वि०
तुलसी- सं० डा० उदयभानु सिंह,राधाकृष्ण प्रकाशन,दरियागंज,दिल्ली, तृतीयसं०,१९७२
तुलसी के चार दल (प्रथम भाग) -सद्गुरुशरण अवस्थी,इंडियन प्रेस लि० प्रयाग,प्रथम संस्करण, १९३५ ई०
तुलसीदर्शन- डा० बलदेवप्रसाद मिश्र ,हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग,संस्करण२००५वि०
तुलसी-दर्शन-मीमांसा- डा० उदयभानु सिंह,लखनऊ विश्वविद्यालय,प्र०सं०,२०१८ वि०
तुलसी-दल- डा० उदयनारायण तिवारी तथा शुकदेव दुबे -साहित्य-सुमन-माला, दारागंज,प्रयाग
तुलसीदास और उनका साहित्य - डा० विमलकुमार जैन,साहित्य सदन,देहरादून
तुलसी-संदर्भ- माताप्रसाद गुप्त,विवेक कार्यालय,प्रयाग ,प्रथम संस्करण, १९३५ ई०
तुलसी-साहित्य की भूमिका- डा० रामरतन भटनागर,रामनारायणलाल,इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९५८ ई०
नाथ और सन्त साहित्य - डा० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय,काशी,हिन्दू वि०वि०,
नाथ सम्प्रदाय- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी-नैवेद्य निकेतन,वाराणसी-५ ,द्वितीय सं०
ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास - प्रभुदयाल मीतल,नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६८ ई०
ब्रज साहित्य का इतिहास- डा० सत्येन्द्र,भारती भंडार,लीडर प्रेस,इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, २०२४ वि०
भक्ति का विकास-डा० मुंशीराम शर्मा,चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी,संस्क०,१९५८ई०
भक्तिमार्गी बौद्धधर्म (नगेन्द्रनाथ वसु)अनु० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी भारती भंडार,इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, २०१८ वि०
भागवत सम्प्रदाय- बलदेव उपाध्याय-नागरीप्रचारिणी सभा, काशी,प्रथम संस्क०,२०१०
भारतीय दर्शन- डा० उमेश मिश्र- हिन्दी समिति,सूचना विभाग ( उ०प्र०),लखनऊ तृतीय संस्करण,१९७० ई०

भारतीय दर्शनों का समन्वय- आदित्यनाथ झा-मध्यप्रदेश शासन,परिषद,भोपाल,
प्रथम संस्करण, १९६६ ई०

भारतीय प्रेमाख्यान काव्य- डा० हरिकान्त श्रीवास्तव,हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,
बनारस,प्रथम संस्करण,१९५५ ई०

मध्यकालीन धर्म-साधना- हजारीप्रसाद द्विवेदी-साहित्य भवन, प्रा०लि०,इलाहाबाद,
तृतीय संस्करण,१९६२ ई०

मध्यकालीन प्रेम-साधना- परशुराम चतुर्वेदी,साहित्य भवन लि०,इलाहाबाद, प्र०सं०१९५२

मध्यकालीन हिन्दी-कविता पर शैवमत का प्रभाव- डा० कमला भण्डारी ,पंचशील
प्रकाशन,फिल्म कालोनी,जयपुर १३,प्र०संस्क०,१९७१ ई०

मध्ययुगीन प्रेमाख्यान- डा० श्याममनोहर पाण्डेय, मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद

मराठी-हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन,डा० र०श० केलकर,अक्षर प्रका०
प्रा०लिमि० ,दरियागंज,दिल्ली, प्रथम संस्करण,१९२६ ई

महावीरप्रसाद द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ -काशी नागरी प्रचारिणी सभा,१९६०

मानस : बालकाण्ड के स्रोत,श्रीशकुमार,हैमाभ प्रकाशन,चेतनगंज,वाराणसी,प्र०सं०१९५७

मानस-रहस्य- जयरामदास"दीन" गीताप्रेस,गोरखपुर,ग्यारहवां संस्करण, २०२६ वि०

मानस-शङ्का-समाधान-जयरामदास"दीन" गीताप्रेस,गोरखपुर,उन्नीसवां सं०,२०२१

मीरा स्मृति ग्रन्थ-बंगीय हिन्दी परिषद्,कलकत्ता,प्रथम संस्करण,२००६ वि०

मीराबाई-डा० प्रभात,हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा०लि०,बम्बई ,प्र०सं०,१९६५ ई०

मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ- राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन समिति,
कलकत्ता, १९५९ ई०

रामकथा - डा० कामिल बुल्के, हिन्दी परि०प्रका०,प्रयाग विश्ववि०,तृतीय सं०१९७१ई०

रामचरितमानस-तुलनात्मक अध्ययन- डा० नगेन्द्र तथा डा० रमानाथ त्रिपाठी,राधा-
कृष्ण प्रकाशन,दरियागंज,दिल्ली,प्रथम संस्करण, १९७४ ई०

रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय- डा० भगवतीप्रसाद सिंह-अवध साहित्य मंदिर,बलराम-
पुर,प्रथम संस्करण,२०१४ वि०

रामानन्द-सम्प्रदाय-डा० बदरीनारायण श्रीवास्तव,हिन्दी परिषद,प्रयाग वि०वि०,
प्रथम संस्करण, १९५७ ई०

राष्ट्रभाषा रजत जयन्ती ग्रन्थ-उत्कल प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक

वाराणसी का आधिदैविक वैभव-कुबेरनाथ सुकुल-काल भैरव,वाराणसी,संस्करण २०२५,
विद्यापति-प्रो० आनन्द मिश्र, बुकसेन्टर,पटना ४,प्रथम संस्करण,१९६२ ई०
विद्यापति ठाकुर-डा० उमेश मिश्र,हिन्दुस्तानी एकेडेमी,उ०प्र०,इलाहाबाद,१९६० ई०
वीरभूमि चित्तौड़ - रामवल्लभ सोमानी,मातेश्वरी प्रकाशन,गंगापुर(भीलवाड़ा),सं०१९६९
वैदिक दैवशास्त्र-डा० सूर्यकान्त शास्त्री,श्रीभारत भारती प्रा०लि०,दिल्ली, प्र०सं०१९६१
वैष्णव धर्म-परशुराम चतुर्वेदी-विवेक प्रकाशन,इलाहाबाद,प्रथम संस्क०,१९५३
वैष्णव-शैवऔर अन्य धार्मिक मत- रामकृष्णगोपाल भण्डारकर,अनु० महेश्वरीप्रसाद,
भारतीय विद्या प्रकाशन,वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९६७ ई०
शैवमत-डा० यदुवंशी,बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद,पटना,प्रथम संस्करण, सं० २०१२ वि०
सन्त-साहित्य-डा० प्रेमनारायण शुक्ल, ग्रन्थम कानपुर, संस्करण,१९६५ ई०
संस्कृत साहित्य का इतिहास - बलदेव उपाध्याय,शारदा मंदिर,वाराणसी, अ०सं०-
१९६८ ई०
सूफी काव्य विमर्श- डा० श्याममनोहर पाण्डेय,विनोद पुस्तक मन्दिर,आगरा,
प्रथम संस्करण, १९६८ ई०
सूफीमत और हिन्दी साहित्य - डा० विमलकुमार जैन, आत्मा०एण्ड संस,दिल्ल-६,
१९५५ ई०
सूर और उनका साहित्य- डा० हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रका० मं०,अलीगढ़,तृतीय सं०,
२०००वि०
सूरदास- डा० ब्रजेश्वर वर्मा,हिन्दी परिषद्,विश्वविद्यालय ,प्रयाग, तृतीय सं०१९५९ई०
हर्षचरित- एक सांस्कृतिक अध्ययन-डा० वासुदेवशरण अग्रवाल,बिहार-राष्ट्रभाषा-
परिषद्,पटना, द्वितीय संस्करण, १९६४ ई०
हरिहर मन्दिर (नागपुर) नियमावली- धान्यगंज,दलाल मंडल,भंडारा रोड,नागपुर,
१९६६ ई०
हिन्दुत्व- रामदास गौड़, सेवा उपवन,काशी, प्रथम संस्क०,२०००वि०
हिन्दूदेव परिवार का विकास-डा० सम्पूर्णानिन्द-मित्र प्रका०,प्रा०लि०,इलाहाबाद,१९६४
हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति-काव्य ,डा० के० भास्करन नायर,राजपाल
एण्डसन्स,दिल्ली, ७,प्रथम संस्करण,१९६० ई०
हिन्दी एवं मराठी के वैष्णव साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन- डा० नरहरि चिन्तामणि
जोगलेकर,जवाहर पुस्तकालय,मथुरा,२०२५ वि०
हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा में भक्ति- श्यामसुन्दर शुक्ल-काशी हिन्दू विश्ववि०,
वाराणसी,

हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि-डा० गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्यनिकेतन,कानपुर,प्रथम संस्करण,१९६१ ई०

हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - आचार्य विनयमोहन शर्मा-बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्,पटना,प्रथम संस्करण,२०१४ वि०

हिन्दी साहित्य का अतीत- विश्वनाथप्रसाद मिश्र,वाणी-वितान प्रका०,ब्रह्मनाल,वाराणसी, प्रथम संस्करण, २०१५ वि०

हिन्दी साहित्य का आदिकाल- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्,पटना,प्रथम संस्करण, १९५२ ई०

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डा० रामकुमार वर्मा,रामनारायण लाल इलाहाबाद,तृतीय संस्करण,१९५४ ई०

हिन्दी साहित्य कोश- ज्ञानमंडललि०,बनारस,प्रथम संस्करण,२०१५ वि०

पाण्डुलिपि सूचियाँ -

ए डेस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ दि संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट इन दि कलेक्शन आफ दि एसियाटिक सोसायटी आफ बंगाल,भाग ८,काव्य,कलकत्ता,१९३४

ए डेस्क्रिप्टिव कैटलाग आफ संस्कृत मैन्यूस्क्रिप्ट- काशिकराजकीय संस्कृत महाविद्यालय, सरस्वती भवन,पुस्तकालय, भाग १।१,२; २।१,२;३;४;५।१,२;६;७

कैटेलागस कैटेलागरम (भाग १), १९६२ ई०

हिन्दी शिल्प शास्त्रीय -

उत्खनित इतिहास (लियोनार्ड वुली)-आत्माराम एण्ड सन्स,दिल्ली,१९६६ ई०

खजुराहो- बी०एल० धामा और एस०सी० चन्द्र,भारतीय पुरातत्व विभाग,नईदिल्ली, द्वितीय संस्करण,१९६२

प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन-डा० वासुदेव उपाध्याय,मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६१ ई०

भारतीय कला-डा० वासुदेवशरण अग्रवाल-पृथिवी प्रकाशन,वाराणसी,प्रथम सं०,१९६६ ई०

भारतीय कला को बिहार की देन- डा० विन्ध्येश्वरीप्रसादसिंह,बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद,पटना, प्रथम संस्करण, १९५८

भारतीय वास्तुकला- डा० परमेश्वरीलाल गुप्त-नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,२००३

मारिशस मन्दिर चित्रावली- शब्दकार, २२०३, गली डकौतान, दिल्ली-६, संस्क०१६७१ई०

मोहें-जो-दड़ो तथा सिंधु-सभ्यता-सतीशचन्द्र काला, नागरी प्रचा० सभा, काशी, द्वितीय संस्करण, २००८ वि०

वास्तुशास्त्र (भाग दो) - डा० द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल -वास्तु वाङ्मय प्रकाशन शाला, लखनऊ ।

संक्षिप्त प्रदर्शिका- केन्द्रीय संग्रहालय, नागपुर, १६६१ ई०

सुदूरपूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास- डा० बैजनाथ पुरी, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, द्वितीय संस्करण, १६६५ ई०

—

## अंग्रेजी ग्रन्थ

A Bibliography of the Hoards of Punch-marked Coins of Ancient India : Dr.P.L.Gupta; Bombay Numismatic Society of India, 1955.

A catalogue of the Archaeological Relics in the Museum of the Verendra Research Society Rajshahi : Compiled by R.G. Basak & D.C.Bhattacharya 1919.

A Catalogue of the Brahmnical Images in Mathura Art : Vasudev Sharan Agrawal; U.P. Historical Society, Lucknow Edition 1951.

A Short Guide to Padamnabhapuram Palace : N.G. Unnithan; Department of Arch. Kerala State, Edition 1968.

Bhubneshwar : Debala Mitra, Director General of Arch., New Delhi, 1958.

Brief Directory of Museums in India: Museums Association of India, National Museum, New Delhi, 1969.

Elements of Hindu Iconography (Vol. 1, Part I) : T.A. Gopinath Rao; The Law Printing House, Mount Road, Madras, 1914, Vol. 2, Part 1,2, 1916.

Epic Mythology : E.W. Hopkins; Indological Book House Delhi, 1968.

History of Religions : E.W. Hopkins; Ginn & Co., London, 1895.

Iconography of Southern India : G. Jauveau Dubreuil Librairie orientaliste Paul Geuthner, Paris, 1937.

Iconography of Vidyarnavatantra : S. Shrikantha Shastri, 1944.

Icons in Bronze : D.R. Thaper; Asia Publishing House, 1961.

Indian Archaeology : A Review : Deptt. of Arch., Govt. of India, New Delhi, 1959.

Indian Bronzes : C. Sivaramamurti : Marg Publications, 34-38, Bank Street, Fort, Bombay, June, 1962.

INDIAN IMAGES (Part I) : B.C. Bhattacharya, Spink and Co., Calcutta and Simla, 1921.

INDO-SUMERIAN SEALS DECIPHERED : L.A. Waddell (London, Luzac & Co. 46, Great Rusell Street, W.C.). 1925.

India's Contribution to World Thought and Culture : Vivekanand Rock Memorial Committee, Pillaiyar Koil Street, Triplicane, Madras, First Edition, 1970.

KHAJURAHO : Krishna Deva ; Archaeological Survey of India, New Delhi, Edition 1967.

List of Ancient Monuments in Bengal : Revised upto 31.8.1895; The Bengal Secretariat Press, Calcutta, 1896-

Mohenjo-Daro and the Indus Civilization : John Marshall; Arthur Probsthan, 41, Great Russell Street, London 1931.

MOHEN-JO-DARO and The Civilization of Ancient India : N.C. Chaudhary; (W. Newman & Co. Ltd. 3, Old Court House Street, Calcutta).

Punch-marked Coins in the Andhra Pradesh Govt. Museum, Hyderabad : Dr.P.L. Gupta; Govt. of Andhra Pradesh, 1960.

Sanskrit-English Dictionary : M. Monier Williams ; Oxford University Press, London, New Edition, 1951.

Sculptures from Udaipur Museum : The Department of Arch. & Museums, Jaipur 1960.

Siva Mahadeva : Vasudeva Sharan Agrawal; Veda Academy, Varanasi-5, First Edition, 1966.

South Indian Images of Gods & Goddesses : H.K. Shastri; Govt. of Madras, 1916.

South Indian Shrines : P.V. Jagdisa Ayyar; Vest & Co., Madras, 1922.

Studies In Ancient Indian Seals : Kiranakumar Thapaliyal : Akhil Bharatiya Sanskrit Parishad, First Edition, 1972.

Temples of North India : The Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Edition 1959.

Temples of South India : The Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, March 1960.

The Art of Indian Asia(Vol. I and II) : Editor Joseph Campbell Bollingen Foundation, New York, Second Edition, 1964.

The Cultural Heritage of India, Vol. IV; The Ramakrishna Mission Institute of Culture, Calcutta 1956.

THE CULTURE AND CIVILIZATION OF ANCIENT INDIA IN HISTORICAL OUTLINE : D.D. Kosambi; Publisher: Reutledge and Kegan Paul, London, 1965.

The Development of Hindu Iconography : Jitendra Nath Banerjea, University of Calcutta, Second Edition, 1956.

The Indian Sadhus : G.S. Ghurye; The Popular Book Depot, Lamington Road, Bombay-7; 1953.

The Pelican History of Art : Benjamin Rowland, Penguin Books Ltd.

The Sacred Books of the East : Translated by Julius Eggeling Motilal Banarasidas, Varanasi., II Edition 1966.

MAGAZINES & PERIODICALS :

Archaeological Survey of India (New Imperial Series); Vol. 21; 42.

Archaeological Survey of India : Annual Report 1908-9; 1933-34.

Epigraphia Indica:Vol. 1,4,9,12,13,14,15,17,21,29,33,34,35.

Epigraphica Carnatica: Vol. 3,4,6,7,8,11,12,13(Part I).

Journal of The Asiatic Society : Vol. 21, No. 2.

Journal of The Oriental Institute of Baroda :
Vol. 17, No. 2 (Dec. 1967); Vol. 18, No. 1-2(Sep.-Dec. 1968).

Memoires of the Arch. Survey of India : No. 25,

Researcher : Vol. II( 1963).

The Journal of the Numismatic Society of India, Vol. 27, Part I.

पत्र-पत्रिकायें, जर्नल आदि (हिन्दी)

आजकल (दिल्ली) "बौद्धधर्म के २५०० वर्ष" विशेषांक, दिसम्बर, १९५६ ई०
कल्पना - अप्रैल, १९७३
नवम्बर, १९७३ ई०
कल्याण - विष्णु अंक (जनवरी, १९७३ ई०)/स्कन्दपुराण अंक (जनवरी, १९५१ ई०)
धर्मयुग - २२ जुलाई, १९७३ ई०
१ नवम्बर, १९७० ई०
६ जुलाई, १९५८ ई०
नवभारत टाइम्स - १० जनवरी, १९६६ ई०
नागरी प्रचारिणी पत्रिका - वर्ष ६०, अंक १, २०१२ वि०
वर्ष ७१, अंक २,
राजस्थान भारती - भाग ८, अंक - १-२
विश्वभारती - पत्रिका - जनवरी - मार्च, १९६७ ई०
सम्मेलन पत्रिका - जनवरी (इलाहाबाद) - कलाअंक
सरस्वती - दिसम्बर, १९६७
साप्ताहिक हिन्दुस्तान - २६ जनवरी, १९६७ ई०
,, १३ नवम्बर, १९६६ ई०
,, २८ फरवरी, १९७१ ई०
,, ५ जनवरी, १९६६ ई०
हिन्दी - अनुशीलन (इलाहाबाद)
धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, १९६० ई०
अप्रैल - जून, १९६१ ई०

---